आरोग्य आपका

प्रभावशाली-स्वावलम्बी-अहिंसात्मक-मौलिक-निर्दोष-वैज्ञानिक चिकित्सा पद्धतियाँ

- डॉ. चंचलमल चोरडिया

क्या है आरोग्य आपका पुस्तक में ?

निर्दोष प्रभावशाली चिकित्सा पद्धतियाँ

1. एक्यूप्रेशर
2. चुम्बक
3. शिवाम्बु
4. सूर्य किरण
5. सुजोक एक्यूप्रेशर
6. सुजोक बियोल मेरिडियन
7. ऊर्जा संतुलन
8. आध्यात्मिक चिकित्सा
9. चीनी पंच तत्व चिकित्सा
10. रंग चिकित्सा
11. स्वर चिकित्सा
12. मेथी चिकित्सा
13. तेल चिकित्सा
14. हास्य चिकित्सा
15. खिंचाव चिकित्सा
16. नाभि चिकित्सा
17. मुद्रा चिकित्सा
18. मस्तिष्क शोधन चिकित्सा
19. योग चिकित्सा
20. भोजन और स्वास्थ्य
21. जल और स्वास्थ्य
22. श्वसन और स्वास्थ्य
23. सौर ऊर्जा और स्वास्थ्य
24. संतुलन और स्वास्थ्य

प्रभावशाली उपचार एवं विशेषताएँ

1. सहज, सरल, सस्ती, अहिंसक, स्वावलम्बी, बिना दवा, बिना चिकित्सक, शरीर विज्ञान की सामान्य जानकारी पर आधारित, बिना किसी दुष्प्रभाव, प्रभावशाली ढंग से स्वयं द्वारा स्वयं के शरीर को स्वस्थ रखने वाली पद्धतियाँ।
2. मधुमेह, हृदय रोग, दमा एवं आँखों जैसे असाध्य रोगों का प्रभावशाली उपचार।
3. अन्तःस्रावी ग्रन्थियों, स्लीप डिस्क एवं नाड़ी संस्थान संबंधित रोगों का सरलतम उपचार।
4. ऊर्जा संतुलन से कषाय शमन।
5. आत्मिक स्वास्थ्य को प्रधानता।
6. सूर्य दर्शन द्वारा भूख एवं रोगों से मुक्ति।
7. निदान में मन, भाव एवं ज्ञानेन्द्रियों से प्रभावित समभाव तथा अन्य स्वास्थ्य संबंधी तथ्यों की उपेक्षा नहीं।
8. रक्त शोधन की सरलतम विधि।
9. सही दवा के चयन एवं परीक्षण की विधि का विवेचन।
10. सभी प्रकार के दर्दों, जलन, खुजली में तुरंत राहत।
7. खर्राटों, अनिद्रा, कब्ज, दस्तें, उल्टियों में तुरंत राहत पहुंचाने वाली।
8. अनेक शल्य चिकित्साओं का प्रभावशाली विकल्प।

मूलभूत सिद्धान्त

1. प्रकृति का सनातन सिद्धान्त है कि जहाँ समस्या होती है उसका समाधान उसी स्थान पर होता है।
2. यदि शरीर के किसी भाग में कोई तीक्ष्ण कांटा, सुई अथवा पिन चुभ जाए तो उस समय न तो आँख को अच्छे से अच्छा दृश्य देखना अच्छा लगता है और न कानों को मन पसन्द गीत सुनना। यहाँ तक कि दुनियाँ भर में चक्कर लगाने वाला हमारा मन क्षण मात्र के लिए अपना ध्यान वहां केन्द्रित कर देता है। जिस शरीर में इतना तालमेल और अनुशासन हो, क्या उस शरीर में कोई अकेला नामधारी रोग उत्पन्न हो सकता है?

   जो शरीर अपनी कोशिकाएँ रक्त, मांस, मज्जा, हड्डियाँ, चर्बी, वीर्य आदि अवयवों का निर्माण स्वयं करता है। जिसे आधुनिक विकसित स्वास्थ्य विज्ञान पूरी कोशिश के बावजूद अभी तक नहीं बना सका। ऐसे स्वचालित, स्वनिर्मित / स्वनियंत्रित शरीर में स्वयं के रोग को दूर करने की क्षमता न हों, यह कैसे संभव है?
3. शरीर का विवेकपूर्ण एवं सजगता के साथ उपयोग करने की विधि स्वावलम्बी जीवन की आधारशिला होती है। मानव की क्षमता, समझ और विवेक जागृत करना उसका उद्देश्य होता है। उपचार में रोगी की भागीदारी मुख्य होती है। जिससे दुष्प्रभावों की संभावनाएँ प्रायः नहीं रहती। यह उपचार बाल-वृद्ध, शिक्षित-अशिक्षित, गरीब-अमीर, शरीर विज्ञान की विस्तृत जानकारी न रखने वाला साधारण व्यक्ति भी आत्म विश्वास से स्वयं कर सकता है।
4. जैसे स्विच चालू करने की कला जानने वाला बिजली के उपकरणों का उपयोग आसानी से कर सकता है। उसे यह जानने की आवश्यकता नहीं होती कि बिजली का आविष्कार किसने कब और कहाँ किया? बिजलीघर से बिजली कैसे आती है? कितना वोल्टेज, करेन्ट और फ्रिक्वेन्सी है? मात्र स्विच चालू करने की कला जानने वाला उपलब्ध बिजली का उपयोग कर सकता है। विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों की ऐसी साधारण जानकारी से व्यक्ति स्वयं न केवल अपने आपको स्वस्थ ही रख सकता है, अपितु असाध्य से असाध्य रोगों का बिना किसी दुष्प्रभाव प्रभावशाली ढंग से उपचार भी कर सकता है।

मौलिक चिकित्सा कौनसी ?

स्वावलम्बी या परावलम्बी। सहज अथवा दुर्लभ। सरल अथवा कठिन, सस्ती अथवा महंगी। प्रकृति के सनातन सिद्धान्तों पर आधारित प्राकृतिक या नित्य बदलते मापदण्डों वाली अप्राकृतिक। अहिसंक अथवा प्रत्यक्ष - अप्रत्यक्ष रूप से हिंसा, निर्दयता, क्रूरता को बढ़ावा देने वाली। दुष्प्रभावों से रहित अथवा दुष्प्रभावों वाली। शरीर की प्रतिकारात्मक क्षमता बढ़ाने वाली या कम करने वाली। रोग का स्थायी उपचार करने वाली अथवा क्षणिक राहत पहुंचाने वाली। सारे शरीर को एक इकाई मानकर उपचार करने वाली अथवा शरीर का टुकड़ों-टुकड़ों के सिद्धान्त पर उपचार करने वाली। उपर्युक्त मापदण्ड के आधार पर हम स्वयं निर्णय करें कि कौनसी चिकित्सा पद्धति मौलिक है और कौनसी चिकित्सा पद्धति वैकल्पिक?

आरोग्य आपका

(प्रभावशाली स्वावलंबी अहिंसात्मक चिकित्सा पद्धतियां)

डॉ. चंचलमल चोरडिया

प्रकाशक

कल्याणमल चंचलमल चोरडिया ट्रस्ट, जोधपुर

आरोग्य आपका

(प्रभावशाली स्वावलंबी अहिंसात्मक चिकित्सा पद्धतियाँ)

लेखक

डॉ. चंचलमल चोरडिया

प्रकाशक

कल्याणमल चंचलमल चोरडिया ट्रस्ट
चोरडिया भवन, गोल बिल्डिंग रोड, जोधपुर 342003
फोन 2621454, 2637220 फेक्स 0291-2435471

© सर्वाधिकार लेखकाधीन सुरक्षित

सहयोग राशि : 260/- (दो सौ साठ रुपये मात्र)

द्वितीय संस्करण - सितम्बर 2004

मुद्रक :
जे.के. प्रिण्टिंग
जालोरी गेट के अन्दर, जोधपुर, मो. 3117670

पाठकों से मेरा विनम्र अनुरोध है कि इस पुस्तक को आदि से अन्त तक पढ़ने के पश्चात् आप जो भी प्रयोग करें, उसकी पूरी जानकारी तथा अनुभव, नाम पत्ते सहित प्रेषित कर मुझे अनुग्रहित करें, ताकि भविष्य में प्रकाशित होने वाले संस्करण में जनकल्याण हेतु उसे प्रकाशित किया जा सके।

लेखक का परिचय

• रंगरूप मल कोठारी (I.A.S. Retd.)

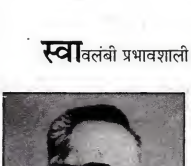

स्वावलंबी प्रभावशाली अहिंसक चिकित्सा पद्धतियों के चिंतक, लेखक, प्रशिक्षक, चिकित्सक श्री चंचलमल चोरडिया का नाम राष्ट्रीय स्तर के चिकित्सा विशेषज्ञों के साथ लिया जाता है। व्यावहारिक शिक्षा से विद्युत् इंजीनियर होने के कारण मानव शरीर रूपी विश्व में उपलब्ध सर्व श्रेष्ठ यंत्र को सुव्यवस्थित रखने हेतु चोरडिया जी का चिन्तन पूर्णत: मौलिक, सनातन सिद्धान्तों पर आधारित, अनुभूति परक, वैज्ञानिक एवं अकाट्य तर्कों पर आधारित है।

उनका चिन्तन न केवल सम्यक् ही है, अपितु प्राथमिकताओं के साथ-साथ समग्रता से ओत-प्रोत होने के कारण स्वास्थ्य के संबंध में उठने वाली प्रत्येक शंकाओं एवं समस्याओं का सरल एवं तर्क संगत समाधान प्रस्तुत करता है। 'स्वस्थ रहना सहज और सरल है' यह आपका नारा है। परावलंबन दु:ख का कारण है, फिर चाहे वह दवा का हो या डाक्टर का।

पूर्व में आप द्वारा लिखित पुस्तक **क्या बुद्धिमान व्यक्ति मांसाहारी हो सकता** है? आहार विज्ञान के क्षेत्र में तथा **स्वस्थ रहें अथवा रोगी : फैसला आपका** चिकित्सा जगत में अत्यधिक लोकप्रिय हुई है। आपकी जीवनशैली अहिंसक है और अनेक अहिंसक सेवाभावी संस्थाओं के कार्यों में आप काफी रुचि लेते हैं। चिकित्सा के क्षेत्र में होने वाली अधिकांश हिंसा को आप अनावश्यक एवं अज्ञान का प्रतीक मानते हैं। जानवरों पर प्रयोगों के आधार पर प्रमाणित दवाओं को वैज्ञानिक मानना, दुष्प्रभावों की उपेक्षा करना, हमारी आंशिक अथवा मिथ्या धारणाओं का परिणाम है, जो सनातन सिद्धान्तों से परे है। **जो प्राण हम दे नहीं सकते, उनको लेने का हमे कोई अधिकार नहीं है अत: सुख, शांति, प्रसन्नता एवं आनन्द चाहने वालों को अहिंसक जीवन शैली अपनाना स्वास्थ्य की प्राथमिक आवश्यकता है।** चोरडिया जी कुशल व्यवसायी, सफल अभियन्ता, प्रबुद्ध चिन्तक, स्पष्ट वक्ता, प्रखर लेखक, अच्छे गायक, कर्म योगी, धुन के धनी एवं दृढ मनोबल युक्त व्यक्तित्व के धनी है। 3-11-1941 को स्व. कल्याण मल जी चोरडिया के पुत्र रत्न के रूप में आपका जन्म जोधपुर में हुआ। 1964 में विद्युत् अभियन्ता की डिग्री प्राप्त करने के पश्चात् लगभग छ: साल तक देश के बड़े सीमेन्ट एवं कागज उद्योगों में आपने कार्य किया। 1970 में आपने नौकरी छोड़ बिजली क्षेत्र का व्यवसाय तथा राजस्थान के प्रख्यात बिजली-परामर्शदाता के रूप में अपना कार्य प्रारंभ

अनुक्रमणिका

अभिमत 10-19

आमुख 20-23

लेखक का परिचय 24-26

स्व-कथन 27-34

1. स्वस्थ जीवन क्या है ? 35-42

जीवन क्या है ?(35) स्वास्थ्य क्या है ?(36) स्वस्थ कौन ?(36) स्वस्थ जीवन के लिए स्वयं की सजगता आवश्यक(37) जीवन में सहजता जरूरी(39) स्वास्थ्य हेतु जीवन में हल्कापन अनिवार्य(40) सच्चा वैज्ञानिक कौन ?(40) क्या स्वास्थ्य हेतु शरीर विज्ञान का सम्पूर्ण ज्ञान आवश्यक है ?(41)

२. स्वास्थ्य प्राप्ति में अवरोधक बातें 43-46

रोग क्यों ?(43) जीवन की गलत प्राथमिकताएं(44) सही सोच का अभाव(45) असंयमित जीवन शैली(45) शरीर के स्वाभाविक विसर्जन क्रियाओं में अवरोध (46)

३. स्वास्थ्य हेतु शरीर को प्राथमिकताएं क्यों ? 47-56

बिना कारण कार्य नहीं होता(47) दुख रोग का मूल(48) दुख का मूल राग द्वेष(48) शक्ति का स्रोतः चेतना का विकास(50) अस्तित्व एवं जीवन के बोध हेतु विवेक आवश्यव(51) स्वास्थ्य हेतु समग्र दृष्टिकोण आवश्यक(51) आत्मा और शरीर का संबंध (52) स्वास्थ्य हेतु शरीर मन और आत्मा का तालमेल आवश्यक(52) आत्मा और शरीर का संबंध(53) आत्मा की उपेक्षा अनुचित(54) स्वास्थ्य हेतु शरीर को प्राथमिकता क्यों ?(54)

४. स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कुछ प्रमुख सिद्धान्त 57

५. पंच महाभूत का सिद्धान्त 58-71

पृथ्वी तत्त्व, (59) जल तत्त्व (59) अग्नि तत्त्व, (60) वायु तत्त्व, (60) आकाश तत्त्व, (61) पंच तत्त्वों का शारीरिक अवयवों एवं प्रवृत्तियों से संबंध, (61) पंच तत्त्वों का ज्ञानेन्द्रियों से संबंध (61) ग्रहों एवं राशियों का पंच तत्त्वों से संबंध (62) तत्त्वों का स्वाद और त्रिदोषों से संबंध (62) पंच तत्त्व से प्रभावित वास्तु और स्वास्थ्य (63) पगथली की आकृति प्रतिबिम्बित करती है - शरीर में पंच तत्त्वों की स्थिति (64) पंच तत्त्वों को संतुलित करने का प्रभावशाली उपाय - हस्त मुद्राएँ (65) शरीर मे हथेली प्रमुख सक्रिय भाग (65) मुद्राओं के सामान्य नियम (66) चंद प्रमुख मुद्राएँ –(67) ज्ञान मुद्रा (67) वायु मुद्रा (68) आकाश मुद्रा (68) शून्य मुद्रा (69) पृथ्वी मुद्रा (69) सूर्य मुद्रा (69) जल मुद्रा (69) प्राण मुद्रा (70) अपान मुद्रा (70) अपान वायु मुद्रा (70) जलोदर नाशक मुद्रा(71) शंख मुद्रा (71)

लिंग मुद्रा (71)

स्वर विज्ञान एवं स्वास्थ्य 72-81

स्वर क्या है ? (72) नाड़ियाँ क्या है ? (72) श्वसन में दोनों नथूनों की भूमिका (73) स्वर नियन्त्रण स्वास्थ्य का मूलाधार (74) स्वरों का प्रभाव (75) स्वर द्वारा ताप संतुलन (75-76) सुषुम्ना (77) ध्यान कब करें ? (77) स्वरों की पहचान (78) स्वर बदलने के नियम (78-79) चिकित्सा में स्वरों की प्रयोग विधि (79-80) पंच महाभूतों का स्वर पर प्रभाव (81-81)

पातंजलि योग और स्वास्थ्य 82-101

योग क्या है ? (82) यम (82-84) नियम (84-85) आसन (85-91) प्राणायाम (91-98) प्रत्याहार (98) धारणा (98) ध्यान (98-99) समाधि (99-100) योग का वर्तमान स्वरूप (100-101)

शरीर की मूल भूत आवश्यकताएँ 102-135

शरीर को पोषण करने वाले तत्त्वों का सम्यक् उपयोग आवश्यक (102) वायु और स्वास्थ्य (102) श्वसन क्रिया (102-103) प्राणायाम (102) श्वसन हेतु ऑक्सीजन युक्त प्राण वायु लाभप्रद (103) आयुर्वेद में वायु का महत्त्व (104) श्वास के प्रति सजगता का विकास (105) श्वास नाक से ही क्यों ले ? (105-106) नेति क्रिया (106-107) प्राकृतिक जीवन शैली का श्वसन पर प्रभाव (107) सही निःश्वास का महत्व (107-108)

जल और स्वास्थ्य 108-114

शरीर में जल के कार्य (108) भोजन के तुरन्त बाद पानी पीना हानिकारक (109) उषापान (109-110) गर्म पानी औषधि है (110-111) पानी कब न पीना चाहिए ? (111) पानी का उपयोग कैसे करें ? (111-113) जल चिकित्सा के अनुभूत प्रयोग (113-114)

भोजन और स्वास्थ्य 114-135

भोजन हेतु समग्र दृष्टिकोण आवश्यक (114-116) भोजन में प्राथमिकता क्या हो ? (116) भोजन का पूर्ण चयापचय आवश्यक (116-117) बार-बार भोजन करना हानिकारक (117-118) भोजन कैसा हो ? (118-119) भोजन बनाने हेतु सावधानियां (119-120) भोजन बनाने वालो के भावों का महत्व (120-121) भोजन भी दवा है (121) भोजन कितना, कैसे और कहाँ खाया जाये ? (121-123) भोजन में दृष्टि दोष (123) भोजन के अनुकूल हमारी दिनचर्या कैसी हो ? (123-128) भोजन कब करें ? (128-129) रात्रि भोजन क्यों हानिकारक ? (129-132) दिन चर्या के निर्धारण में स्वास्थ्य की प्राथमिकता अनिवार्य (133-134) पाचन तंत्र को आराम हेतु उपवास (134-135)

12. ऊर्जा संतुलन से कषाय शमन 186-187

13. महावीर का स्वास्थ्य चिन्तन 188-203

आत्म शुद्धि और चेतना का विकास (188) षट् द्रव्य का सिद्धान्त (188) महावीर की शरीर संबंधी अवधारणा (190) चित्त, भाव, मन, वाणी और शरीर का संवध (191) प्राण ऊर्जा और ऊर्जा के स्रोत (१९२) संयम ही जीवन है (193) सम्यक् प्रवृत्ति अनिवार्य (194) महावीर का कर्म सिद्धान्त (195) महावीर का नव तत्त्वों का सिद्धान्त (196) आस्रव (196) संवर (197) निर्जरा (198) महावीर का योग शास्त्र (198) बाह्य तप (199) आभ्यंतर तप (200) कषाय की मंदता साधना एवं स्वास्थ्य का मापदण्ड (201) महावीर का चिन्तन पूर्णत: वैज्ञानिक (202)

14. प्रभावशाली स्वावलंबी अहिंसात्मक उपचार पद्धतियाँ 204-215

क्या स्वास्थ्य हेतु समान मापदण्डों का निर्धारण संभव है ? (204) स्वास्थ्य हेतु चिकित्सा के विभिन्न दृष्टिकोण (205) उपचार की आवश्यक प्राथमिकताएँ (206) निदान संबंधी चिन्तन योग्य बातें (207)क्या आधुनिक निदान पूर्ण और सही होता है ? (207) क्या शरीर में अकेला रोग आ सकता है ? (207) क्या समान लक्षणों वाले दो रोगी एक जैसे हो सकते हैं ? (208) क्या भाव निदान को प्रभावित करते हैं ? (208) निदान में आयु का महत्त्व (209) मौसम का प्रभाव (209) शारीरिक ध्वनियाँ और रोग (209) रंग का रोग से संबंध (209) स्वाद और रोग (210) गंध और रोग (210) शरीर से विसर्जित होने वाले तरल पदार्थों की रोग निदान में भूमिका (210) निदान में अंगों में प्रवाहित होने वाले ऊर्जा प्रवाह के क्रम की भूमिका (212) निदान को प्रभावशाली बनाने में सहयोगी-सामान्य जानकारी (212) क्या एक जैसे लक्षणों का संबंध अलग अलग अंगों से हो सकता है ? (213) क्या आधुनिक निदान पूर्णत: वैज्ञानिक है ? (214) स्वावलंबी चिकित्सा प्रभावशाली क्यों ?(214)

मस्तिष्क शोधन की क्रिया 216-217

शरीर के लिए उपयोगी खाद्य पदार्थों के परीक्षण की विधि 218-219

संतुलन और स्वास्थ्य 220-237

रोग का प्रारम्भ स्वयं की असजगता (220) शारीरिक क्रियाओं का वर्गीकरण (221) संतुलन ही स्वास्थ्य का मूलाधार (221) विभाव अवस्था असंतुलन का प्रतीक है ? (223) असंतुलन की बाह्य अभिव्यक्तियाँ (223) तापक्रम का असंतुलन (224) शारीरिक असंतुलनों के परीक्षण एवं उपचार की विधियाँ (224) असंतुलन के लक्षण (224) पैरों का संतुलन करने की विधि (226) शरीर में मेरु दण्ड का महत्त्व (227) मेरु दण्ड असंतुलन का परीक्षण (231) मेरु दण्ड को संतुलित करने की विधि (233) मेरुदण्ड के घुमावदार व्यायाम (235) मेरु दण्ड का व्यायाम करते समय ध्यान रखने योग्य सावधानियां

18. खिंचाव चिकित्सा 238-240

19. नाभि आरोग्य का मूलाधार है 241-249

नाभि का महत्त्व (241) नर से नारायण बनाने में नाभि का योगदान (241) नाभि को कमल की उपमा (242) जीवन चर्या का आधार नाभि (242) नाभि और पाचन (242) नाभि केन्द्र खिसकने के प्रभाव (243) नाभि असंतुलन के कारण (244) तनाव का नाभि पर प्रभाव (244) स्वास्थ्य के लिए सम्यक् आचरण आवश्यक (245) नाभि के आकार से रोग निदान (245) नाभि निरीक्षण की विधि (247) नाभि केन्द्र ठीक करने की विधियाँ (247)

20. प्रभावशाली चैतन्य चिकित्सा 250-252

21. हास्य चिकित्सा 253-255

22. प्रभावशाली मेथी चिकित्सा 256-259

23. प्रभावशाली तेल चिकित्सा 260-263

शुद्ध घी स्वास्थ्य वर्धक (260) आयुर्वेद में तेल से रोगोपचार (261) तेल मर्दन में लाभ (262) सूर्यमुखी तेल की विशेषता एवं असाध्य रोगों का प्रभावशाली उपचार (२६२)

प्रभावशाली एक्युप्रेशर चिकित्सा 264-275

एक्युप्रेशर क्या है (264) शरीर एक इकाई के रूप में कार्य करता है (264) संतुलन एक्युप्रेशर (264) जोनोलोजी (265) स्वनियन्त्रित नाड़ी संस्थान का पगथली की अंगुलियों से संबंध (265) रिफ्लेक्सोलोजी (266) सुजोक एक्युप्रेशर (267) मेरेडियन एक्युप्रेशर (268) शियात्सु एक्युप्रेशर (268) शरीर के किसी एक भाग के अनेक प्रतिवेदन क्यों ?(269) एक्युप्रेशर द्वारा रोग निदान का सिद्धान्त (269) एक्युप्रेशर प्रभावशाली क्यों? (270) क्या रोग के नाम से निदान और उपचार एक्युप्रेशर सिद्धान्तों के अनुकूल है ?(272) एक्युप्रेशर चिकित्सा हेतु आवश्यक निर्देश (273) एक्युप्रेशर द्वारा उपचार की विधि (273) दर्द विहीन एक्युप्रेशर चिकित्सा विधि (274) एक्युप्रेशर स्वयं द्वारा स्वयं के उपचार की प्रभावशाली पद्धति।

अन्तःस्रावी ग्रन्थियों और स्वास्थ्य 276-286

अन्तःस्रावी ग्रन्थियों का प्रभाव (276) अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ : प्रभावी चैतन्य केन्द्र (277) अन्तःस्रावी ग्रन्थियों और ऊर्जा चक्रों में समानता (278) ग्रन्थियों की कार्य प्रणाली (279) प्रमुख अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ (279) पीयूष ग्रन्थि (279) पिनियल ग्रन्थि (280) थायरोइड ग्रन्थि (281) पेराथायरोइड ग्रन्थि (282) थायमस ग्रन्थि (283) एड्रीनल ग्रन्थि (283) पैन्क्रियाज ग्रन्थि (283) प्रजनन ग्रन्थियाँ (284) ग्रन्थियों को प्रभावित करने वाले तथ्य (285) अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के उपचार

की सरलतम पद्धति (285)

सभी रोगों की एक दवा : शिवाम्बु 287-293

मूत्र द्वारा साध्य-असाध्य रोगों की पहचान (288) शिवाम्बु के प्रयोग की विधियाँ (289) शिवाम्बु का स्वभाव पर प्रभाव (290) शिवाम्बु और भोजन (290) शिवाम्बु से होने वाले तात्कालिक उपचार एवं अन्य उपयोग (290) विविध चिकित्साओं के साथ शिवाम्बु का प्रयोग (292) शिवाम्बु के प्रति जनजागरण (292) सरकारी उपेक्षा और हमारा दायित्व (292)

चुम्बकीय चिकित्सा पद्धति 294-303

संतुलन ही स्वास्थ्य का मूलाधार है (294) चुम्बकीय ऊर्जा की विशेषता (294) पृथ्वी के चुम्बक का हमारे जीवन पर प्रभाव (294-95) विभिन्न क्षेत्रों में चुम्बक के प्रयोग (295-296) चुम्बकीय चिकित्सा की विशेषता (296) चुम्बकीय चिकित्सा के अनुभूत प्रयोग (296) चुम्बकीय उपचार का सिद्धान्त एवं विशेषताएँ (297) चुम्बकीय उपचार की मुख्य तीन विधियाँ (298) चुम्बकीय जल का उपयोग (299) चुम्बकीय चिकित्सा के प्रभावशाली प्रयोग (300) बिना बाह्य चुम्बक चुम्बकीय उपचार (302) अपेक्षाएँ (303)

सूर्य किरण चिकित्सा 304-313

सूर्य चिकित्सा अति प्राचीन (304) प्रातःकालीन उदित सूर्य दर्शन से लाभ (304) सूर्य किरणों का स्वास्थ्य वर्द्धक प्रभाव (305) सूर्य किरणों में विभिन्न रंग (306) आयुर्वेद के त्रिदोष से समानता (307) तीन रंग की विशेषताएँ - नारंगी रंग की विशेषताएं (308) हरे रंग की विशेषताएँ (308) नीले रंग की विशेषताएँ ((309) दवा निर्माण की विधि (310) पानी की दवा तैयार करने की विधि 9310) सूर्य तप्त पानी लेने की विधि (310) चीनी या मिश्री की दवा तैयार करने की विधि (311) सूर्य तप्त तेल तैयार करने की विधि (311) नीले तेल के विशेष प्रयोग (311) सूर्य की किरणों की सीधा डालने की विधि (312) सफेद रंग की बोतल में तैयार किया गया पानी (312) सूर्य चिकित्सा तालिका (313)

मानव कल्याण में सौर ऊर्जा का योगदान 314

मानव जीवन की मूलभूत समस्याएँ (314) अनन्त शक्तियों का स्रोत: मानव मस्तिष्क (314) मस्तिष्क को सोलेरियम बनाने में आँखों का योगदान (315) मस्तिष्क को सोलेरियम बनाने हेतु श्री हीरा रतन माणक के प्रयोग (315) सूर्य दर्शन की विधि (317) भूख से मुक्ति (317)

रंग चिकित्सा 319-325

रंगों का जीवन पर प्रभाव (319) रंगों द्वारा आन्तरिक भावों की पहचान (320) मुख्य मूल रंग (320) नियन्त्रक रंग (320) शरीर के विभिन्न भागों को विशेष प्रभावित करने वाले संबंधित रंग

(321) अवयवों से संबंधित विशेष रंग (322) पंच तत्त्व का रंगों से संबंध (322) त्वचा के रंग की रोग में भूमिका (323) कपड़ों एवं वातावरण के रंगों का प्रभाव (323) रंग संतुलन की स्वावलंबी विधि (324) रंग चिकित्सा की चमत्कारिक अनुभूति (324)

उपचार के प्रभावशाली उपकरण 326

उपचार को प्रभावशाली बनाने वाले चंद उपकरण (326) दर्द नाशक इलेक्ट्रोनिक एक्युपंचर मशीन (326) अल्पकालीन उपयोग वाले मसाजर (327) शक्तिशाली मसाजर (328)

स्वास्थ्य सुरक्षा एवं उपचार को प्रभावी बनाने वाली जीवन शैली 330-332

आँखों के रोगों का बिना दवा उपचार 333-335

कमजोर दूर या नजदीक की दृष्टि (333) मोतिया बिंब का उपचार (334) रतोन्धी (334) रंग न पहचान पाना (334) आँखों के अन्य रोगों का उपचार (334) नेत्र ज्योति अच्छी रखने के उपाय (335)

बिना दवा हृदय रोगों का उपचार 336-344

हृदय संबंधी रोग (337) हृदय रोग के प्रमुख कारण (338) हृदय रोग के लक्षण (338) हृदय रोगों में विविध सुरक्षात्मक उपचार (340) हृदय रोग का दौरा पड़ने पर क्या करें? (344)

बिना दवा मधुमेह का प्रभावशाली उपचार

मधुमेह का कारण (345) मधुमेह क्या है ?(345) मधुमेह के दुष्परिणाम (346) शरीर में इंसुलिन की आवश्यकता को कैसे नियन्त्रित किया जा सकता है ? (346) शरीर मे अधिकांश कार्यों की वैकल्पिक व्यवस्था होती है (347) सही समय पर भोजन करें (348) पाचन के नियमों का पालन करें (349) पाचन तंत्र को अनावश्यक क्रियाशील न रखें (349) भोजन में स्वाद का संतुलन रखें (349) सद्साहित्य का स्वाध्याय एवं सम्यक् चिन्तन करें (349) तनाव विसर्जन के प्रयोग करें (350) श्रम साध्य नियमित जीवन शैली जीएँ (350) पैंक्रियाज को सशक्त बनाने के उपाय (350) मधुमेह उपचार के चामत्कारिक प्रयोग

बिना दवा दमा का प्रभावशाली उपचार

दमा क्या है ? (353) दमा क्यों होता है ? (353) दमा के प्रकार (354) श्वास नली में सूजन से होने वाला दमा (355) एलर्जिक अस्थमा (355) दमा का कारण अन्यत्र भी हो सकता है (355) दमा का उपचार (357)

अभिमत

आरोग्य-विज्ञान के विशेषज्ञ श्री चंचल मल चोरडिया की नवीनतम पुस्तक "**आरोग्य आपका**" संत्रस्त और तनावग्रस्त मनुष्य के लिए वैसी ही वरदान साबित होगी, जैसे परिश्रान्त पथिक के लिए तरूवर की शीतल छाँव। प्रबुद्ध समाज में अपने निहित स्वार्थों के लिए चिन्ता करते हुए कई लोग मिलते हैं, पर मेरे तेरे के दायरे से ऊपर उठकर सम्पूर्ण समाज के कुशल स्वास्थ्य और विकास पर चिन्तन और अनुशीलन करने वाले लोग कम ही होते हैं। समाज उन्हीं देव पुरुषों का ऋणी होता है, जो सबके कल्याण में अपना कल्याण देखा करते हैं। श्री चंचल मल चोरडिया की अनूठी अद्‌भुत सेवाएँ निरन्तर समाज का वह मार्ग दर्शन कर रही हैं, जिसकी वर्तमान समाज को आवश्यकता है।

स्वस्थ जीवन के लिए जितना तन का स्वस्थ होना जरुरी हैं, स्वस्थ मन की भी उतनी ही भूमिका है। **शरीर, मन और आत्मा के समुचित संतुलन का नाम ही स्वास्थ्य है**। इन तीनों के बीच जहाँ कहीं भी असंतुलन की अवस्था आती है, वहीं स्वास्थ्य और सुख की मीनारें चरमरा जाती हैं। श्री चोरड़िया ने स्वास्थ्य के इस मर्म को समझा है और इससे जुड़े विभिन्न वैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक पहलुओं की खोज की है। "**आरोग्य आपका**" उनके इसी प्रयास का परिणाम है।

श्री चोरडिया बन्धु के हम आभारी हैं कि जिन्होंने हमें इन सब बातों के लिए प्रेरित किया है। **क्षण चाहे फुरसत के हों या व्यस्तता के, हमें इस प्रकार की अच्छी पुस्तकें अवश्य पढ़ते रहना चाहिए। आखिर हम सबकी स्वस्थता ही सम्पूर्ण समाज का निर्माण करेगी।**

चन्द्रप्रभ
श्री चन्द्रप्रभ ध्यान निलयम्, संबोधिधाम, कायलाना रोड, जोधपुर 342004

भारत जैसे गरीब देश में चिकित्सा का व्यवसायीकरण चिंता का विषय है। **पश्चिमी भाषा, परिवेश, वेशभूषा रहन सहन के साथ-साथ हमारे समाज को पश्चिम से प्राप्त चिकित्सा पद्धति भी रास आ गई है**। तत्काल अनुकूल परिणाम की प्राप्ति के पश्चात उसके दुष्परिणाम (Side effects) भोग कर भी समाज सजग होता नहीं दिखाई दे रहा है।

वनस्पतियों, आयुर्वेदिक साधारण नुस्खों, सूर्य किरण, प्राणायाम, योगाभ्यास, यम-नियम के पालन से स्थायी लाभ प्राप्त हो सकता है। रोगादि निवारण के साथ सात्विक तुष्टि एवं पुष्टि प्राप्त होती है। प्रस्तुत पुस्तक **आरोग्य आपका** से जनता लाभ उठायेगी, ऐसा मेरा विश्वास है। चोरडिया जी को उनके चिन्तन एवं सुन्दर प्रकाशन के लिए साधुवाद।

स्वामी सत्यमित्रानन्द गिरि
भूतपूर्व जगत् गुरु शंकराचार्य, समन्वय कुटीर सप्त सरोवर, हरिद्वार

आपके अथक प्रयास व जिज्ञासा का परिणाम ही '**आरोग्य आपका**' पुस्तक का आधार है। आपके ज्ञान व परिश्रम से विभिन्न प्रकार की चिकित्साओं के द्वारा मानव शरीर को कैसे निरोग रखा जा सकता है का पूरा ज्ञान आपने इस ग्रन्थ में समावेश किया है। इस प्रकार का प्रयास जिसमे विभिन्न चिकित्सा प्रणालियों का समन्वय हो शायद ही कोई अभी तक कर पाया है।

आशा है कि आपकी इस पुस्तक से कई पीड़ित मानव अपने आपको स्वस्थ कर पायेंगे।

प्रशांत कोठारी
वरिष्ठ प्रबंधक राजस्थान पत्रिका

आरोग्य आपका पुस्तक में स्वास्थ्य संबंधी प्रकृति के सनातन सिद्धान्तों, उसके प्रभावों, जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं के सम्यक् उपयोग आदि पर प्रेरणास्पद प्रस्तुति की गई है। पुस्तक में चिकित्सा के साथ-साथ सुस्वास्थ्य संबंधी पठनीय एवं संग्रहणीय सामग्री सुविज्ञ पाठकों के लिए प्रेरणादायक एवं लाभकारी है।

डॉ. पी.के. गुप्ता

Principal & ControllerDr. Sampurnanand Medical College, Jodhpur

"**आरोग्य आपका**" पुस्तक के अध्ययन से स्पष्ट है कि चोरडियाजी ने चिकित्सा क्षेत्र में सुलभ आसान क्रियाओं को एक पुस्तक रूपी धागे में पिरो कर जो मानवता की सेवा की है, यह निःसंदेह आपकी दूरदृष्टि, गहन अध्ययन और मेहनत का परिचायक है। यह पुस्तक एक घरेलू चिकित्सक का काम तो करेगी ही साथ ही चिकित्सा के मकड़जाल में उलझे उन पीड़ित लोगों के लिए एक मार्गदर्शक के रूप में भी पहचानी जायेगी।

पुस्तक में उपयोगी, अनुपयोगी पदार्थों के चयन की विधि, मस्तिष्क शोधन प्रक्रिया, सौर ऊर्जा का मानव कल्याण में योगदान, महावीर का स्वास्थ्य दर्शन, शारीरिक संतुलन की कला, यिन यांग का सिद्धान्त जैसी चिकित्सा क्रियाएँ मेरी समझ में आम आदमी को चिकित्सा के नये आयामों से जोड़ने का काम करेगी।

आपने जिस तरह अपने जीवन को मानव कल्याणार्थ समर्पित कर रखा है, यह पुस्तक भी चिकित्सा सेवा के क्षेत्र में मील का पत्थर साबित होगी। पुस्तक में समाहित चिकित्सा विधियाँ निसंदेह आपकी मेहनत और उसके पीछे रहे सेवाभाव के नजरिये का स्वरूप प्रस्तुत कर रही है। **अहिंसा, शाकाहार और स्वदेशी के क्षेत्र में आपका चिंतन भी नई पीढ़ी के लिए प्रेरणा का स्रोत है। मेरा तो यह भी मानना है कि चंचलमल चोरडिया का नाम मेहनत, साहस, धैर्य और अध्ययन जैसे शब्दों और विषयों का पर्याय बन गया है। आपकी धुन से "आरोग्य आपका" पुस्तक चिकित्सा क्षेत्र में एक दस्तावेज के रूप में पहचानी जाएगी।**

ओम गौड़
स्थानीय संपादक, दैनिक भास्कर, जोधपुर

"आरोग्य आपका" श्रेष्ठ प्रस्तुति –कर्मठ लगनशील, धुन के धनी, पारदर्शी श्री चंचलमल चोरडिया जी ने अपने व्यापक अध्ययन एवं व्यक्तिशः अनुभव के बाद "**आरोग्य आपका**" पुस्तक का जो आलेख तैयार किया है, वह अपने स्वयं के शरीर व व्याधियों को समझने तथा उसके कारण एवं निदान के प्राकृतिक सूत्रों का समावेश अनूठे लेकिन सरल भाषा में अद्वितीय ढंग से करने में जो प्रस्तुति की है प्रशंसनीय है।

आधुनिक युग में एलोपैथिक के चक्र व्यूह में फंसे आम लोगों के लिये जहां यह पुस्तक एक नया संदेश देगी, वहीं स्वस्थ लोगों को निरन्तर स्वस्थ बने रहने के लिये इस पुस्तक से प्राणवान सूत्र का खजाना प्रसाद के रूप में पाठकों को उपलब्ध हो सकेगा। **शरीर व उसकी रोग प्रतिरोधक क्षमता का सुन्दर विवरण प्रस्तुत करने के साथ इस पुस्तक में रोग का विवेचनात्मक ढंग से विश्लेषण करने से इसका महत्व बढ़ गया है।** यह पुस्तक प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं के शरीर को समझने व उसे सुचारू व प्राकृतिक ढंग से संचालित करने की नायब विधियों से अनुप्राणित कर सकेगी।

राजकुमार सिंह भणडारी
संपादक दैनिक प्रतिनिधि

शरीर को आरोग्य पूर्ण रखने के लिए वैसे तो कई उपचार पद्धतियाँ हैं। इनमें प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति भी एक है। यह कुदरत यानी प्रकृति का ही करिश्मा है कि ईश्वर ने मानव शरीर की संरचना कर किसी भी रोग का साध्य शरीर के भीतर ही समाहित कर दिया है। इसे खोजना एक कला विज्ञान एवं एक नजर है। एक सोच भी है, चिन्तन का प्रतिफल है चोरडिया जी की पुस्तक, "**आरोग्य आपका**" जो जन साधारण को स्वास्थ्य के लिए स्वावलम्बी बनाने में सहायक सिद्ध होगी।

रजनीश छंगाणी
ब्यूरो प्रमुख-दैनिक नवज्योति, जोधपुर

गागर में सागर है – आरोग्य आपका– श्री चंचलमल चोरडिया की पुस्तक **आरोग्य आपका अपने आप में एक ऐसी पुस्तक है जो स्वास्थ्य के प्रति आम व्यक्ति की अवधारणा को झकझोर देती है।** आज रोगों को दूर करने के लिये व्यक्ति मंहगे से महंगा इलाज लेता है, अनेक प्रकार के क्लीनिकल परीक्षण करवाता है, इसके बावजूद अपने को पूरी तरह से स्वस्थ नहीं पाता। एक रोग ठीक होता नहीं कि दूसरा उठ खड़ा होता है। यह एक अन्तहीन सिलसिला बनकर व्यक्ति को जीवन पर्यन्त अपने में घेरे रहता है। चोरडियाजी ने चिकित्सक एवं रोगी की मूल भावना और व्यवहार को निकट से देखा है।

सम्पूर्ण पुस्तक में एक सन्देश ही विशेष रूप से उभरकर आया है कि **यदि व्यक्ति स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता दिखाये तो वह बिना दवा के भी स्वस्थ रह सकता है और अपने परिवार को भी स्वस्थ रख सकता है।** रोग से पीछा छूटता है तो औषधियों से भी छुटकारा मिलता है। ऐसा होते ही व्यक्ति पूर्ण स्वास्थ्य को प्राप्त कर लेता है क्योंकि रोग एवं औषधियां व्यक्ति के स्वास्थ्य को खोखला कर डालते हैं।

हमारी यह मानसिकता रही है कि हम स्वस्थ होना तो चाहते है लेकिन होने की दिशा में अपनी क्षमता के अनुरूप कोई ठोस प्रयास करते नजर नहीं आते। **व्यक्ति स्वयं ही अपने आपको स्वस्थ कर सकता है। स्वस्थ रहने की इच्छाशक्ति नहीं होने पर वह बार बार बीमार पड़ता है। श्री चंचलमल चोरडिया ने पुस्तक आरोग्य आपका लिख कर पाठकों को एक ऐसा अनमोल उपहार दिया है जिसके द्वारा स्वयं स्वस्थ रहते हुये परिवार को भी स्वस्थ रखा जा सकता है।**

मोहनकुमार कश्यप
संपादक -निरोगी दुनिया

चोरडिया जी के स्वास्थ्य व उपचार संबंधी अनेक लेखों को पढ़ने का भूत में भी अवसर प्राप्त हुआ। **मानव जीवन और स्वास्थ्य, अध्यात्म और स्वास्थ्य और स्वावलंबी चिकित्सा पद्धतियाँ प्रभावशाली क्यों?** जैसे विषय पर चोरडिया जी के सटीक विचारों से मैं अत्यधिक प्रभावित हुआ हूँ। पुस्तक में सर्वत्र मौलिक, आध्यात्मिक तथा तर्कसंगत प्रस्तुतिकरण छाया हुआ है। चिकित्सा में अहिंसा, भोजन में भावना, शरीर की प्रतिरोधक क्षमता का महत्त्व, आधुनिक चिकित्सा पद्धति की अपूर्णता, स्वास्थ्य हेतु सम्यक् आचरण की आवश्यकता आदि अनगिनत विषयों पर लेखक के सटीक विचार पाठकों को स्वास्थ्य के बारे में नई दिशा अवश्य देंगे।

श्रीकृष्ण मल लोढा
पूर्व न्यायाधिपति, राजस्थान उच्च न्यायालय
पूर्व अध्यक्ष – राज्य आयोग उपभोक्ता संरक्षण

आरोग्य आपका स्वास्थ्य के क्षेत्र में निश्चित ही एक असामान्य सी पुस्तक है। यह असामान्य इसलिये नहीं है कि पुस्तक का स्वरूप, आकार, साज सज्जा आदि कुछ असाधारणता लिये हुये हैं। **यह असामान्य इसलिये है कि एक असाधारण विचार को लेकर पुस्तक सरल प्रस्तुतीकरण के रूप में संजोई गई है। लेखक की यह मान्यता कि स्वस्थ रखने की प्रभावशाली विधि स्वावलंबी होनी ही चाहिये, एक क्रान्तिकारी विचार है। स्वावलम्बी चिकित्सा अर्थात् रोगी व्यक्ति ही इसका प्रयोग करने में सक्षम हो, एक असाधारण परिकल्पना है।** उपचार पद्धतियों को दुरूह और जटिल बनाने का षडयंत्र चल रहा है, सामान्य व्यक्तियों की समझ से दूर रखने के प्रयास निरन्तर चल रहे हैं। ऐसे समय में उपचार पद्धतियों के स्वावलम्बी बनाने का प्रयास निश्चित ही स्तुत्य है। जब चिकित्सा स्वावलम्बी होगी तब वह सरल होगी, सहज होगी; सस्ती होगी और रोगी व्यक्ति समझ बूझकर उनको प्रयोग में ला सकेगा। निश्चित ही ऐसी पद्धतियाँ और उनका उपचार दुष्प्रभावों से मुक्त हो सकेगा।

पेशे से इँजीनियर होते हुए भी पुस्तक के लेखक डॉ चंचलमल चोरडिया ने समर्पित भाव से विभिन्न उपचार विधाओं का विस्तृत अध्ययन किया है। उन्होंने स्वयं अनुभूत प्रयोग किए, अनेकानेक स्वास्थ्य शिविरों में अनुभव लिए और अपने जागृत विवेक के आधार पर इन वैकल्पिक विधाओं को परखा है। अपने इन समस्त अनुभवों को वैज्ञानिकता के आधार पर इस पुस्तक में प्रस्तुत किया है। डॉ. चोरडिया अपने इस चिन्तन के लिए बधाई के पात्र हैं।

वैकल्पिक चिकित्सा विधाओं में लेखक ने अनेक पद्धतियों को जैसे - प्राकृतिक चिकित्सा, स्वर, सुजोक, चुम्बक, रंग, शिवाम्बु, एक्युप्रेशर, योग, ध्यान आदि सभी को सम्मिलित किया है। लगता है उपचार के एक विस्तृत परिदृश्य पर उनकी चेतना कार्यरत रही है। आखिर मनुष्य रोगी क्यों बनता है ? यह वैज्ञानिक सोच आज सर्व मान्य है कि मनुष्य अपनी अप्राकृतिक जीवन-चर्या से व्यर्थ की चिन्ताओं से भय, क्रोध, लालच आदि आवेशों से और नकारात्मक सोच से अपने आपको बीमार बना डालता है। प्रकृति-दत्त जीवनी शक्ति यदि शक्ति सम्पन्न बनी रहे तो शरीर को इन व्याधियों से बचाया जा सकता है। स्वावलम्बी चिकित्सा व्यक्ति की इसी जीवनी शक्ति को बल प्रदान करती है और जीवन को आरोग्यमय बनाती है।

स्वावलम्बी चिकित्सा आज के समय की मांग है। प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकता है। **"आरोग्य आपका" पुस्तक प्रत्येक परिवार की इस आवश्यकता को पूरा करेगी, ऐसा मैं सोचता हूँ।**

श्याम माहेश्वरी
सम्पादक, निरामय जीवन, स्वास्थ्य साधना केन्द्र-जोधपुर

श्रीमान् चंचलमल जी साहब चोरडिया राजस्थान ही नहीं, भारत के सम्पूर्ण क्षेत्र में अहिंसक एवं स्वावलम्बी चिकित्सा के क्षेत्र में एक जाना पहचाना नाम है। पेशे से इंजीनियर होकर भी अपने दिल के दौरे की बीमारी एवं दुर्घटना में हड्डियाँ टूटने पर उन्होंने स्वयं इस चिकित्सा पद्धति के माध्यम से अपना बिना दवा उपचार कर स्वस्थ बने हैं। अतः **इस पुस्तक का आधार उनका अनुभूत ज्ञान है। वे रोगी के इलाज में उसके व्यक्तित्व की समग्रता को महत्त्व देने के हामी हैं। हर मरीज दूसरे से भिन्न होता है। अतः सबको एक ही चिकित्सा पद्धति से इलाज करने के वे हामी नहीं हैं। उनके इलाज सस्ते-सुलभ एवं घरेलू एवं कम खर्चीले हैं।** मेथी, हँसना, तेल, चैतन्य, रंग, खिंचाव, योग, शिवाम्बु, चुंबक, पिरामिड, रेकी, भोजन, पानी, हवा, उपवास जैसे नित्य प्रयोग के साधनों से बड़े-बड़े रोगों का बड़ा सटीक एवं अनुभूत निदान उन्होंने बताया है। एक्युप्रेशर पर उन्होंने काफी बल दिया है। यह निदान स्वयं ही किया जावे, इसके वे हामी हैं। कुल मिलाकर जो चिकित्सा पद्धतियाँ उन्होंने बताई हैं, बड़ी सरल, सटीक एवं प्रभावकारी हैं। यह पुस्तक बहुत उपयोगी है। साधु-संत भी इस पद्धति से बिना दोष लगाये अपनी चिकित्सा खुद कर सकते हैं। चोरडिया जी को इस प्रयत्न पर हार्दिक बधाई।

जसराज चोपड़ा
भूतपूर्व न्यायाधिपति, राजस्थान उच्च न्यायालय, जोधपुर

"आरोग्य आपका" पुस्तक श्री चंचलमल चोरडिया की चिकित्सा के क्षेत्र में अनुपम भेंट है। श्री चोरडिया विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों के धुरंधर ज्ञाता व उनके प्रयोगों द्वारा हजारों अस्वस्थ रोगी व्यक्तियों को रोग मुक्त करने का श्रेय रखते हैं।

कथनी व करनी के अंतर से दूर श्री चोरडिया अपनी जीवन पद्धति में भी अत्यन्त सरल व सटीक, स्पष्टवादी चिकित्सक भी हैं। संयम से जीवन निर्वाह कर निरोग रहने के सर्वोत्तम उपाय संस्कृति के अनुकूल विभिन्न चिकित्सा पद्धति से करने की इस पुस्तक में शिक्षा दीक्षा है।

तनाव मुक्त शरीर, संतुलन की कुछ सरल प्रक्रियाओं व एलोपैथी के जंजाल से हानिकारक न होने देने को चोरडिया के विभिन्न पद्धतियों पर दिए गये सुझाव आज के युग में अत्यन्त सामयिक व लाभकारी हैं। एक्युप्रेशर पद्धति के तो वे विशेषज्ञ हैं ही, परन्तु साथ ही चुंबक, मेथी, हंसना, चैतन्य, तेल, रंग, योग, शिवाम्बू भोजन, पानी, हवा व उपवास के विभिन्न प्रयोगों के साधनों से अत्यन्त कठिन रोगों का निदान अपने अनुभव व विभिन्न प्रयोगों के अध्ययन के पश्चात् इस पुस्तक में ज्यों का त्यों रखा है। श्री चोरडिया का यह प्रयास प्रशंसनीय व सराहनीय है।

यदि कबीर की वाणी में कहूँ तो यही कहूँगा कि कई चिकित्सक व पद्धतियों के प्रयोग में असफलता का पूर्ण अध्ययन कर श्री चोरडिया ने अपने सफल प्रयोगों को चिकित्सा जगत् में उज्ज्वल, धवल व ज्यों का त्यों इस पुस्तक में रखा है, जिसे **ज्यों की त्यों धरदीनी चदरिया से** संबोधित करना ही उचित होगा।

राष्ट्रपिता गांधी जी कहा करते थे कि मैले कपड़े पहनकर भी अच्छी पुस्तकें पढ़नी चाहिये। यह पुस्तक उसी श्रेणी में है। अतः इस पुस्तक के लेखक **चिकित्सा क्षेत्र में तहलका मचाने वाले सफल, सरल चिकित्सक योगी श्री चोरडिया को मेरी ओर से अंतस् की बधाई। राजस्थानी भाषा में कहूं तो अंतसरो बधावो अंगीकार कीजो।**

न्यायमूर्ति गुमानमल लोढ़ा,
भूतपूर्व सांसद व मुख्य न्यायाधीश उच्च न्यायालय
वर्तमान : कार्याध्यक्ष राष्ट्रीय गोवंश आयोग
अध्यक्ष : भारतीय जीव जन्तु कल्याण बोर्ड

श्री चंचलमल चोरडिया द्वारा लिखित आरोग्य आपका पुस्तक का अध्ययन किया। लेखक का प्रयास प्रशंसा योग्य है। वर्तमान युग में जहाँ व्यक्ति अत्यन्त व्यस्त है, उसके पास समय का अभाव है, खान-पान की शुद्धता भी निरन्तर घटती जा रही है और चिंताओं के कारण मानव पीड़ित है। ऐसे समय में चोरडिया की यह पुस्तक बहुत उपयोगी सिद्ध होगी - ऐसी मेरी मान्यता है। **मुझे इस पुस्तक की विशेष बात यह लगी कि इसमें मनुष्य के स्वास्थ्य के साथ अध्यात्म, मनोविज्ञान तथा आधुनिक जीवन शैली को दृष्टि में रख कर शारीरिक रोगों का कारण एवं उपचार करने का व्यावहारिक प्रयास किया गया है।** इसी तरह अन्य चिकित्सा पद्धतियों के तुलनात्मक अध्ययन के साथ लेखक ने अपनी चिकित्सा पद्धति को प्रस्तुत किया है। जिससे पाठकों की अनेक भ्रांतियों का निवारण होता है।

मैं लेखक के इस मत से सहमत हूँ कि **स्वावलम्बी चिकित्सा पद्धतियाँ अधिक वैज्ञानिक एवं प्रभावशाली होती हैं तथा उपचार के लिये सही निदान आवश्यक है।**

मैं इस सारस्वत कार्य के लिये श्री चोरडियाजी को हार्दिक बधाई एवं मंगल कामनाएँ प्रेषित करता हूँ।

प्रो. एल एस राठौड़
कुलपति, जयनारायण विश्वविद्यालय, जोधपुर

'आपका आरोग्य' आपके हाथों में सौंपकर श्री चंचलमल चोरडिया जी ने बड़ा परोपकारी कार्य किया है। स्वाध्यायी, इंजीनियर चोरडिया जी ने इन औषधविहीन चिकित्सा पद्धतियों को पूर्ण रूप से आत्मसात् किया और **सड़क दुर्घटना एवं हृदय रोग से ग्रस्त होने के उपरान्त अपने आरोग्य को अपने उपचार द्वारा संवारा और पूर्ण स्वस्थ हो गये।** आपके ज्ञान और अनुभव की अनमोल उपलब्धियाँ इस पुस्तक के रूप में समर्पित की जा रही हैं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि जन-जन के स्वास्थ्य निर्माण में यह समग्र चिकित्सा पद्धतियों का प्राकृतिकोपचार मंगलदायी सिद्ध होगा। अज्ञानवश अनावश्यक अंग्रेजी औषधियों के अत्यधिक सेवन से होने वाले दुष्प्रभावों से आज का जनमानस मुक्ति पा सकेगा। स्वस्थ प्राकृतिक जीवन जीने की कला सिखाने वाली इस पुस्तक के लेखन के लिये श्री चोरडिया जी को साधुवाद।

डॉ. राम गोपाल (निदेशक)
रक्षा अनुसंधान तथा विकास संगठन, सेना भवन, नई दिल्ली 110011

मानव शरीर की संरचना इतनी उत्कृष्ट है कि कोई भी मानव निर्मित मशीनरी उसका मुकाबला नहीं कर सकती। मानव शरीर में हर अनुकूल प्रतिकूल परिस्थिति में जीवित और स्वस्थ रहने की क्षमता है।

इस पुस्तक के द्वारा चोरडिया जी ने अपनी गत पुस्तकों **'स्वस्थ रहें अथवा रोगी, फैसला आपका"** तथा **'क्या बुद्धिमान व्यक्ति मांसाहारी हो सकता है'** की श्रृंखला में एक और बहुमूल्य कड़ी जोड़ी है।

चंचलमल जी चोरडिया पेशे से एक विद्युत् अभियन्ता (Electrical Engineer) हैं, उस विद्या के मंदिर में जहाँ मुझे उनका शिक्षक होने का अवसर मिला था। एक इंजीनियर से एक महान् प्राकृतिक चिकित्सक बनने की उनकी यात्रा अनूठी रही।

अपने जीवन भर के अर्जित ज्ञान और अनुभवों पर आधारित इस पुस्तक में चोरडिया जी ने स्वावलम्बी एवं अहिंसक चिकित्सा पर जोर दिया और उसे अन्य चिकित्सा पद्धतियों से अधिक वैज्ञानिक और प्रभावशाली बताया है। एक वैज्ञानिक और इंजीनियर होने के कारण उनका दृष्टिकोण हमेशा वैज्ञानिक रहा है।

रोग के मूल कारणों को जाने बिना रोग का पूर्ण निदान नहीं हो सकता। मूल निदान के लिये समग्र दृष्टिकोण (Holisitc approach) की आवश्यकता है जो प्राकृतिक चिकित्सा में ही उपलब्ध है।

चोरडिया जी के विचार में **"वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियों के बारे में बारीकी से जाने बिना उनको नकारना बुद्धिमानी नहीं है।"**

यह पुस्तक स्वास्थ्य के क्षेत्र में एक प्रकाश स्तम्भ का कार्य करेगी।

प्रोफेसर (डॉ.) मुरारी लाल माथुर
भूतपूर्व वाइस चांसलर, जोधपुर विश्वविद्यालय

आज के परिप्रेक्ष्य में जब नई नई चिकित्सा पद्धतियाँ प्रकट हो रही हैं **"आरोग्य आपका"** को पढ़कर आम व्यक्ति भ्रमित होने से बच सकता है। **पुस्तक में प्रदत्त पाठ्य सामग्री बहुत सरल एवं तर्क संगत दृष्टांतों से परिपूर्ण हैं।** पुस्तक प्रत्येक घर में संग्रहणीय हैं।

डॉ. डी.डी. ओझा
विज्ञान रतन विज्ञान भूषण, विज्ञान प्रदीप
मंत्रालय एवं महासागर विकास विभाग, भारत सरकार

शरीर स्वास्थ्य के लिए हमें स्वयं का प्रकृति के साथ संतुलन रखना होगा। भोजन, पानी, हवा एवं इन्द्रियों के माध्यम से शरीर में प्रवेश करने वाले विषयों की सात्विकता एवं शुद्धि का ध्यान रखना होगा। मन में उठने वाले संकल्पों, विकल्पों एवं भावों की सकारात्मकता एवं सात्विकता का ख्याल रखना होगा तथा शरीर से विसर्जित होने वाले मल, मूत्र एवं अन्य विजातीय तत्वों की सहज प्रक्रिया के मार्ग में आने वाले अवरोधों को दूर करना होगा। परिश्रम और आराम, निंद्रा और जागरण, तनाव और रिलेक्सेशन में संतुलन रखना होगा, तभी हम स्वस्थ जीवन जी सकते हैं। प्रस्तुत पुस्तक में ऐसे ही सनातन सिद्धान्तों की चर्चा और चर्या का चित्रण किया गया है। **स्वयं के द्वारा सरल तरीकों से असाध्य एवं संक्रामक रोगों के प्रभावशाली एवं स्थायी उपचारों का वैज्ञानिक, तर्क संगत, अनुभूत विवेचन है चोरडिया जी की पुस्तक "आरोग्य आपका"**

स्वास्थ्य के विषय में आज हजारों पुस्तकें उपलब्ध हैं, परन्तु सहज, सरल, समग्र दृष्टिकोण से परिपूर्ण पुस्तकों का अब भी अभाव है। प्रस्तुत पुस्तक को जितनी बार पढ़ा जायेगा, कुछ न कुछ नयापन लगेगा। ऐसी सुन्दर कृति के लिए चोरडिया जी को साधुवाद। मैं इसे जनकल्याण के लिए एक अनूठा प्रयास समझता हूँ।

प्रोफेसर डॉ. आलम सिंह जी
प्रिंसिपल व डायरेक्टर एकेडेमिक
श्री बाला जी कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग एवं टेक्नोलॉजी, जयपुर

डॉ. चंचलमल चोरड़िया जोधपुर की **"आरोग्य आपका"** कृति पढ़कर दृढ़ विश्वास हुआ कि नियम, संयम से जीवन निर्वाह नीरोग रहने का सर्वोत्तम उपाय है और यदि प्रकृति के विपरीत आचरण किया तो पुनः संतुलन कायम करने के लिए प्राकृतिक वैकल्पिक चिकित्सा पद्धति के माध्यम से पूर्ण नीरोग रहकर शरीर सुख, साधन और आध्यात्मिक आनंद को पाया जा सकता है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में डॉ. चोरडिया ने स्वस्थ जीवन के सिद्धान्तों से प्रारम्भ कर लगभग विविध वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियों का विशद, वैज्ञानिक, विश्लेषण किया है। यथा मुद्रा, स्वर, यिन- यांग, योग, अध्यात्म, एक्युप्रेशर, हास्य, शिवाम्बु, चुम्बक, सूर्य किरण, रंग, खिचाव, संतुलन, ध्यान, तप, भोजन, पानी, हवा आदि।

तनाव मुक्ति और शीघ्र स्वास्थ्य लाभ के लिए शरीर-संतुलन का कुछ सरल प्रक्रियाओं का पुस्तक में सुन्दर वर्णन हुआ है। 'भोजन, स्वास्थ्य का मूल है' एवं इसका विस्तृत वर्णन सात्विक, एवं अहिंसक भोजन की ओर प्रवृत्त करेगा।

सामान्य व्यक्तियों के साथ अहिंसा प्रेमियों, विशिष्टतः साधु साध्वियों के लिए यह ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी है। **स्वावलम्बी चिकित्सा पद्धतियों का यह अनुपम ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा, ऐसा विश्वास है।**

उदयलाल जारोली
(पूर्व प्राचार्य एवं विधि संकायाध्यक्ष)
कार्याध्यक्ष, अ.भा. कृषि गो सेवा संघ, वर्धा जारोली भवन, नीमच (म.प्र.)

किसी कवि ने ठीक ही कहा है –

आरोग्य है आपका,
नहीं किसी के बाप का।

श्री चंचलमल जी चोरडिया कृत **आरोग्य आपका** पुस्तक एक अनमोल निधि है, जो युगों-युगों तक त्रस्त मानव का पथ प्रदर्शन करती रहेगी। **इस कृति में लेखक ने अछूते प्रसंगों को बटोर कर एक जीवंत शैली में अपने अनुभवों के आधार पर बहुत ही सुंदर ढंग से विविध पहलुओं पर प्रकाश डाला है, जो पाठकों को बड़ा ही रुचिकर व उपयोगी सिद्ध होगा।** लेखक का इस कड़ी में यह द्वितीय पुष्प है। श्री चोरडिया जी को कोटि कोटि बधाई व साधुवाद। शुभकामनाओं सहित।

एस.एस. मेहता I.R.S. (Retd.)
अध्यक्ष महावीर इन्टरनेशनल सनसिटी, जोधपुर

पुस्तक चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र मे एक मौलिक तर्क संगत ग्रन्थ है। **स्वास्थ्य, स्वाध्याय एवं स्वावलंबी अहिंसक जीवन शैली का मार्ग दर्शक है** । **"आरोग्य आपका"** । पुस्तक में अच्छी चिकित्सा पद्धतियों के जो मापदण्ड बतलाये गये हैं, प्रत्येक चिकित्सक के लिये चिन्तन योग्य है । ये मापदण्ड ही चिकित्सा पद्धतियों की प्रमाणिकता और वैज्ञानिकता के ठोस आधार बनते हैं।

राग और द्वेष रोग के मूल कारण हैं। धर्म की भाषा में हम उन्हे कर्म बन्धन और पाप का कारण मानते हैं तो स्वास्थ्य की भाषा में ये शारीरिक असंतुलन यानी रोग के मूल कारण होते हैं। पांच इन्द्रियों के विषय विकारों के प्रभाव का चीनी पंच तत्व के सिद्धान्तानुसार तुलनात्मक विवेचन कर चोरडिया जी ने सही निदान हेतु अपनी चिकित्सा पद्धति को सर्वश्रेष्ठ मानने वालों को अनेकान्त दृष्टिकोण से सोचने और समझने का अनुरोध किया है।

ऐसे मापदण्डों पर अनुभूत चिकित्सा पद्धतियों का सहज सरल भाषा में संग्रह है - "आरोग्य आपका"

डॉ. सम्पतसिंह भाण्डावत,
अतिरिक्त महा अधिवक्ता - राजस्थान उच्च न्यायालय
भूतपूर्व अध्यक्ष-अखिल भारतीय श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ
एवं भूतपूर्व प्रान्तपाल-रोटरी डिस्ट्रीक्ट 3050

दवा खाए बिना भी कोई चिकित्सा हो सकती है, यह भले ही हमें अजूबा लगे, किन्तु यह सच है कि ऐसी भी स्वावलम्बी अहिंसात्मक चिकित्सा पद्धतियाँ हैं, जिनमें औषधि का सेवन नहीं होता ; फिर भी उनका प्रभाव रोग - निवारण में अचूक एवं आश्चर्यजनक है । चोरडिया जी ने अपनी दूसरी पुस्तक में ऐसी ही चिकित्सा - पद्धतियों का परिचय दिया हैं। मैंने इनमें से एक्युप्रेशर , चुम्बक एवं मेथी चिकित्सा पद्धतियों का प्रयोग कर पीलिया के कारण कमजोर हुए अपने लीवर में प्रभावी सुधार का अनुभव किया है । पुस्तक में वर्णित चिकित्सा पद्धतियों का महत्त्व तभी अधिक ज्ञात होगा, जब इनका अपने जीवन में प्रयोग किया जायेगा।

पातंजलि योग और स्वास्थ्य, महावीर का स्वास्थ्य-चिन्तन तथा सौर ऊर्जा का मानव कल्याण में योगदान जैसे विषयों का पुस्तक में जिस सुन्दर रीति से तुलनात्मक एवं सटीक शब्दो में विवेचन किया गया है । नियमित योग करने वालों एवं अध्यात्म प्रेमी साधकों के लिये विशेष चिन्तन योग्य एवं उपयोगी है।

डॉ. धर्मचन्द जैन M.A. Phd)
एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, प्रधान संपादक-जिनवाणी

सम्माननीय श्री चंचलमलजी चोरडिया द्वारा लिखित पुस्तक '**आरोग्य आपका**' पुस्तक का अवलोकन किया। पुस्तक में भारतीय चिकित्सा पद्धति का सूक्ष्म विवेचन से विस्तार में वर्णन है । इसके साथ ही हिंसा व अहिंसा के सिद्धान्त पर आधारित जैन दर्शन का तात्विक विवेचन इस पुस्तक में मिलता है। **स्वावलम्बी चिकित्सा पद्धतियाँ अधिक वैज्ञानिक एवं अधिक व्यावहारिक हैं। इस बात पर विद्वान लेखक ने पूरा जोर दिया है।** साथ ही यह समझाया है कि एक्युप्रेशर चिकित्सक रोग का निदान ही नहीं अपितु उपचार करने में भी पूर्णतः सक्षम है। विद्वान् लेखक ने वास्तु विज्ञान एवं ज्योतिष शास्त्र का भी व्यावहारिक अध्ययन किया है तथा तत्संबंधी तथ्यों का भी समावेश इस पुस्तक में किया है।

पं. भोजराज द्विवेदी (सम्पादक-अज्ञात दर्शन)
Charter President International Vastu Association
All India Astrological Board of Journalist (Regd.)

"स्वस्थ रहें या रोगी फैसला आपका" के बाद **"आरोग्य आपका"** पुस्तक में चिकित्सा की विभिन्न पद्धतियों का संक्षिप्त लेकिन सारपूर्ण एवं सरल विवेचन कर लेखख ने स्वास्थ्य जगत में एक नया सन्देश दिया है । प्रथम पुस्तक में स्वास्थ्य एवं रोग के कारणों का विस्तृत विवेचन था तो इस पुस्तक में उसकी क्रियान्विति के सरल एवं प्रभावी उपाय है । मेथी, तेल, चैतन्य, हास्य, मुद्रा, स्वर विज्ञान , रंग, शिवाम्बु, योग आदि महत्वपूर्ण स्वास्थ्य की विधाओं का वर्णन हमारे प्राचीन ग्रन्थों मे मिलता है । सस्ती एवं सुलभ इन चिकित्सा प्रणालियों का पाठक अध्ययन कर विशेष लाभ उठावे एवं रोजमर्रा के जीवन में यह पुस्तक मार्ग दर्शक, बने, यह कामना करता हूँ।

प्रकाश मल चोरडिया(C.A.)
अध्यक्ष
भगवान महावीर अहिंसा प्रचार संघ, चैन्नई

अपने शरीर रूपी मशीन की इन्सान खुद ही नियमित देखभाल करे जिससे वह एक स्वस्थ जीवन जी सके। जो मनुष्य शारीरिक अनुशासन पर जोर देता है, रोग उससे दूर ही रहता है, क्योकि उसका मशीन रूपी शरीर बराबर कार्य करता है।

'स्वावलम्बी चिकित्सा' स्वयं द्वारा स्वयं को स्वस्थ रखने की प्रभावशाली विधि है, जिस पर चोरडिया जी ने जोर देकर प्रत्येक मानव को यह विधि समझाने का अथक प्रयास किया है। 'रोग के उपचार से ज्यादा अच्छा है उसका बचाव' इस बात को उन्होने तर्क संगत ढंग से प्रस्तुत किया है।

एक फौजी होने के नाते मैं खासकर अपने फौजी भाईयो को यह प्रेरणा देना चाहूंगा कि वे इस पुस्तक को स्वयं पढ़े, दूसरों को पढ़ावें एवं स्वस्थ रहने की जो सरल विधियाँ, इसमें बतलायी गई हैं, उनको अपना कर अपना जीव स्वस्थ और सुखी बनायें।

ब्रिगेडियर नरेन्द्र सिंघवी , वी एस एम
अध्यक्ष एवं जोनल चेयरमेन, महावीर इंटरनेशनल, जोधपुर

चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में समग्र स्वास्थ्य की अवधारणा की महत्ता निर्विवाद रूप से स्वीकार की जा चुकी है । इसी प्रकार वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियों ने भी नये आयाम प्रस्तुत किये है। विकासशील देशो में भी उनके महत्व को स्वीकार किया गया है। डॉ. चंचलमल चोरडिया ने स्वास्थ्य के विभिन्न आयामों में शारीरिक पक्ष के अतिरिक्त मन, आध्यात्म आदि को सम्मिलित कर स्वास्थ्य की समग्र दृष्टि से देखने का प्रयास किया है तथा वैकल्पिक चिकित्सा के माध्यम से पूर्ण स्वास्थ्य को प्राप्त करने की दिशा प्रस्तुत की है।

पुस्तक आज के समय की महत्ती आवश्यकता को पूरा करती है और इसी कारण इसे लेखक की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि व देन मानी जा सकती है । पुस्तक जनसाधारण व विशेषज्ञों के लिए उपयोगी होगी, यह मेरा विश्वास है । डॉ चोरडिया को मेरी और से तथा संस्थान की ओर से बधाई।

डॉ. अम्बिका चन्दानी
निदेशक समग्र स्वास्थ्य केन्द्र
E-30, शास्त्रीनगर, जोधपुर

आमुख

जड़ भौतिकी आयुर्विज्ञान ने त्वरित प्रगति और संसाधनों की विपुलता से सामान्य मानव की औसत आयु में तो वृद्धि कर दी, किन्तु विराट विश्व समाज को प्राणान्तक असाध्य रोगों से अभिशप्त कर दिया। जैसे कैंसर के बाद एड्स, हिपेटाइटिस। एनसिफेलाइटिस आदि अगणित कष्ट साध्य रोग उत्पन्न हो गये। इतना ही नहीं सम्पन्नता के नाम पर समृद्धि रोगों की बाढ़ आ गई जैसे मधुमेह, न्यूनाधिक रक्तचाप, हृदयाघात, मस्तिष्कघात, अन्त में अवसाद या विक्षिप्तता। जड़ भौतिकी आयुर्विज्ञान की एक शाखा प्रचण्ड युद्धों का अस्त्र बन गई, जिसे जीवाणु युद्ध कहते हैं। आज सभी एंथ्रेक्स, प्लेग जैसे सर्वग्रासी रोगों के आक्रमणों से संत्रस्त हैं। दार्शनिकों, परम वैज्ञानिकों और मानव अस्मिता चिन्तन करने वाले मनीषियों की मान्यता है कि केवल शरीर के तल पर घटित होने वाला यह जड़ भौतिकी आयुर्विज्ञान अन्ततः भस्मासुर है, जो चाहे युद्ध हो या शान्ति, सम्पन्नता हो या दरिद्रता, सम्पूर्ण मानव समुदाय को विनष्ट या विकृत करने वाला है। इसलिये सभी अब जड़ की अपेक्षा चैतन्य प्राकृतिक जीवन विज्ञान की ओर समग्रता से उन्मुख हो रहे हैं। प्रख्यात आरोग्य शास्त्र के मनीषी, जीवन विज्ञान की विभिन्न प्राकृतिक और चैतन्य चिकित्सा पद्धतियों के निष्णात और अनुभव सिद्ध आचार्य श्री चंचल मल चोरडिया ने विश्व की वर्तमान जड़ भौतिकी विडम्बना को अनुभूत कर हमारे समक्ष अक्षय अमृत का सिंह द्वार इस ग्रंथ के माध्यम से उद्घाटित किया है। इसी चैतन्य प्राकृतिक जीवन विज्ञान को आधुनिक विद्वान होलीस्टिक या पवित्र अहिंसात्मक समग्र चिकित्सा पद्धति की संज्ञा देते हैं।

माननीय चोरडिया जी की धारणा अत्यधिक वैज्ञानिक है। **जब दो मनुष्य एक से नहीं होते, तो दो रोगी एक जैसे कैसे होंगे? फिर एक ही स्थूल दवा सभी रोगियों का उपचार कैसे कर सकती है?** सूक्ष्म विज्ञान यह स्वीकार करता है कि एक व्यक्ति के अंगुलियों के निशान (फिंगर प्रिण्ट) संसार के किसी अन्य व्यक्ति से नहीं मिलते। विश्व में जैसा मेरे मस्तिष्क का एक केश या बाल है वैसा न पहले संसार में किसी के हुआ है और न आगे होगा। पीपल के एक वृक्ष का पता दुनिया के सभी पीपल के पत्तों से भिन्न होता है। जब हमारे शरीर की संरचना इतनी सूक्ष्म और विशिष्ट, अद्वितीय हो तो, फिर एक ही औषधि या विधि से समान रूप से दो रोगियों की चिकित्सा कैसे संभव है? चोरडियाजी की दूसरी धारणा है कि **शरीर का कोई रोग उसके उभार तक सीमित नहीं है। वह सम्पूर्ण शरीर तंत्र से सापेक्षित रूप से जुड़ा होता है। आप रोग का नहीं रोगी का उपचार करते है।** इसी धारणा का अगला महत्वपूर्ण आयाम है चैतन्य चिकित्सा। जब हमारी अन्तर्निहित चेतना की गति में अवरोध आता है, श्वासों की लय में बाधाएं आती है। सूक्ष्म शरीर की विचार तरंगे और संवेदनाएं बाधित होती हैं तो शरीर के तल पर अनेक रोग उभर आते हैं। इस पावन प्राकृतिक जीवन विज्ञान के विशेषज्ञ चोरडियाजी शरीर के भीतर सतत गतिशील कुदरती घड़ी (नेचुरल क्लोक) की व्याख्या करते हैं, जिसके अनुसार विभिन्न अंग, ग्रंथियाँ, कोश, संवेदनाएँ सक्रिय और निष्क्रिय होती है।

आश्चर्य है कि भौतिक वैज्ञानिक सौर ऊर्जा के विशाल संयंत्र निर्मित कर रहे है, मगर इतने स्वाभाविक सहज सत्य को नहीं जानते है कि सूर्यास्त के पश्चात हमारे उदर का अग्नाशय कैसे प्रज्वलित रह कर रात्रि भोजन को पचायेगा?

चोरडिया जी की दृढ़ मान्यता है कि रोग जहां उत्पन्न होता है और जिन परिस्थितियों में पैदा होता है, उसका उपचार उसी स्थान पर निर्मित पदार्थों में समाहित होता है तथा उन परिस्थितियों को बदल कर ही सरलतापूर्वक किया जा सकता है। बिना रोग का मूल कारण दूर किए उससे स्थायी राहत नहीं मिल सकती।

रोग शरीर में पैदा होता हैं। शरीर में विजातीय तत्वों अथवा विकारों के बढ़ने से शरीर की प्रतिरोधक क्षमता कम हो जाने से होता है। अतः जब तक विजातीय तत्वों को न केवल हटाया जाये अपितु भविष्य में बनने से न रोका जाये, तब तक स्थायी स्वास्थ्य प्राप्त नहीं हो सकता। यही स्वावलंबी चिकित्सा का मौलिक आधार है। परावलम्बन बन्धन है। फिर वह चाहे दवा का हो या डाक्टर का। जब तक रोगी स्वयं रोग के कारणों के प्रति सजग नहीं होगा तो स्थायी लाभ कैसे प्राप्त होगा।

परावलंबन से अपेक्षाएं बढ़ती है। सजगता घटती है। स्वविवेक उपेक्षित होता है और जब उनकी पूर्ति न हो तो दुःख, चिंता, तनाव, अशांति होने लगती है, जो रोग के मुख्य कारण होते हैं।

चोरडिया जी के विचारों से आधुनिक विज्ञान अपूर्ण है। सत्यांश पर आधारित है। सच्चे वैज्ञानिक तो राग द्वेष के विजेता वीतरागी ही हो सकते हैं। जिनके सिद्धान्तों को झुठलाया एवं नकारा नहीं जा सकता। पर्याप्ती और प्राणों के संयम की बात ७बतला, आश्रव से बचने एवं संवर-निर्जरा पूर्वक जीवन शैली अपना कर स्वास्थ्य का अध्यात्म के साथ जो तालमेल किया है, वही स्वावलंबी प्रभावशाली अहिंसात्मक चिकित्सा का राजमार्ग है। महावीर के सिद्धान्तों का स्वास्थ्य के संबन्ध में प्रस्तुतिकरण जिस तर्क पूर्ण ढ़ग से किया गया है, वह सभी अहिंसा प्रेमियों के लिए विशेष चिन्तनीय एवं आचरणीय है।

आरोग्य शास्त्र में तन, मन और चित्त तीनों का एक साथ उपचार होता है, अर्थात् समग्रता से विचार किया जाता है। शरीर की प्रतिकारात्मक शक्ति कम न हो, कर्म बन्धनों से आत्मा विकारी न बने, इस बात को प्राथमिकता दी जाती है जबकि रोग शास्त्र में रोग के मूल कारणों की अपेक्षा, उससे पड़ने वाले प्रभावों को शांत करने का प्रयास किया जाता है, जिससे रोगी को तुरन्त राहत कैसे मिले, मुख्य ध्येय होता है, भले ही उसके दुष्प्रभाव होते हों। आरोग्य शास्त्र पर आधारित है-"स्वावलंबी अहिंसक उपचार" और रोग शास्त्र पर आधारित होती है-"अहिंसा की उपेक्षा करने वाली परावलंबी चिकित्सा पद्धतियाँ।" प्रस्तुत पुस्तक में आरोग्य और रोग शास्त्र के सिद्धान्तों के गुण दोषों का विवेचन करके स्वस्थ रहने का निर्णय स्वविवेक पर छोड़ चोरडिया जी ने अपने उदारवादी दृष्टिकोण का परिचय दिया है।

प्रस्तुत पुस्तक में वैसे तो प्रत्येक अध्याय चिन्तनीय और आचरणीय है । परन्तु एक्युप्रेशर, शिवाम्बु और चुम्बक जैसी विश्व भर में प्रचलति चिकित्सा पद्धतियों को जिस सार रूप में प्रस्तुत् किया है, वह उनके अनुभूतिपूर्ण प्रयोगों का ही परिणाम है। **हृदय, मधुमेह, दमा और मेरूदण्ड के रोगों का जिस सरल ढँग से उपचार बतलाया है, वह चोरडिया जी के रोग के मूल कारणों की पकड़ कि स्पष्ट झलक है । इसी कारण वे आत्म विश्वास के साथ स्वावलंबी अहिंसक चिकित्सा पद्धतियो का वर्तमान में प्रचलित अन्य चिकित्सा पद्धतियों से भी अधिक प्रभावशाली मानते हैं।**

चोरडिया जी के विचारों से यम, नियम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि की उपेक्षा के कारण आत्मा को परमात्मा बनाने की सामर्थ्य रखने वाली पातंजलि योग साधना आजकल मात्र शरीर का व्यायाम और उपचार तक सीमित हो गयी है। यह योग का अवमूल्यन है। पातंजलि अष्टांग योग की क्रमिक साधना ही सच्ची योगाभ्यास होता है

ध्यान के संबंध में चोरडिया जी कि मान्यता है कि बिना यम, नियम के पालन ध्यान भी आज फैशन का रूप लेता जा रहा है।शारीरिक रोगों के आंशिक उपचार तक सीमित हो रहा है । **आज ध्यान कराया जाता है, ध्यान किया जाता है, परन्तु वास्तव में बहुत कम साधकों के ध्यान होता है। ध्यान कोई पोशाक नहीं है कि जब चाहे पहन ले और जब चाहें उतार कर फैंक दें। वास्तविक ध्यान का परिणाम होता है -कषायों की मंदता, आत्म विकारों की कमी, समत्व की प्राप्ति एवं आत्म विकास में उत्तरोत्तर विकास।**

इस ग्रंथ में चोरडियाजी ने सैकड़ों चिकित्सा शिविरों में हजारो रोगियों पर ही नहीं, बल्कि स्वयं पर सतत् अनुभूत चिकित्सा प्रयोगो की व्याख्या की है, जिसका परिणाम अति विस्तृत है, एक्युप्रेशर, सुजोक, चुम्बक, रंग, रश्मि, शिवाम्बु स्वरोदय, योग और ध्यान तक।

विगत दो दशकों में आपने जोधपुर और पश्चिमी राजस्थान में भारत और विश्व के विख्यात वैकल्पिक चिकित्सकों को आमंत्रित कर अनेक शिविर आयोजित करवाये। **हम चोरडियाजी को पश्चिमी राजस्थान में अहिंसक स्वावलम्बी प्राकृतिक चिकित्सा के प्रचार प्रसार का पुरोधा मानते है** । आपके ही अथक समर्पित प्रयास से ऐसे विशेषज्ञ देश के सीमान्त मरु भूमि पर पधारे। प्रायः सभी विशेषज्ञ आचार्य चोरडिया जी के आवास पर ही ठहरते। प्रत्येक शिविर कार्यक्रम में चोरडिया जी उनके साथ अग्रगण्य सहभागी के रूप में रहते। मरु प्रदेश में प्रसार के चरमोत्कर्ष के पश्चात अब चोरडिया जी स्वयं देश विदेशो मे ऐसे महा सम्मेलनों एवं शिविरों में विशेषज्ञ के रूप में आमंत्रित किये जा रहे है। अहिंसक चिकित्सा पद्धतियो के राष्ट्रीय स्तर के सर्वोच्च पुरस्कारों, मानद उपाधियों और शीर्ष अलंकरणों से आपको सम्मानित किया गया। आपका निवास एक विशाल पुस्तकालय है और वैकल्पिक उपकरझणो का सर्वोत्तम संग्रहालय। आपके विशाल भवन एवं व्यवसाय स्थल की छत पर पिरामिड निर्मित है। मन्दिर के गुम्बद की भाति जिसमें रंग चिकित्सा की सुदीर्घ पट्टिकाएं है। आप स्वयं विभिन्न बोतलों बर्तनों में रंग रश्मि से विशेष जल

एवं तेल बनाते हैं। इस बहु आयामी उपक्रम से आप निःशुल्क उपचार करते हैं।

जादू वही जो सिर पर चढ़ कर बोले। चोरडिया जी ने अपने जीवन की दो खतरनाक घटनाओं में वैकल्पिक चिकित्साओं का प्रयोग किया। एक ट्रक दुर्घटना में आप बुरी तरह जख्मी हो गये, चेहरे के नीचे छब्बीस टांके लगे मगर प्रारम्भिक उपचार के चन्द दिनों बाद ही अस्पताल छोड़ दिया। गंभीर घाव को प्राकृतिक चिकित्सा से ही उपचारित किया। जाहिर है कि परिवार और मित्रजनों ने घोर विरोध किया। मगर उनके जख्म भरने और स्वस्थ होने की द्रुत प्रक्रिया से सभी चमत्कृत हो गये। आज टांकों के निशान तक नहीं हैं, जैसे सुपर फाइन प्लास्टिक सर्जरी की गई हो।

आपको चन्द मास पूर्व हृदय घात हुआ। आत्मीयजनों ने आपको शहर के अस्पताल में आई. सी. सी. यू. में भर्ती कराया। मगर प्रारम्भिक जांच के पश्चात आप अस्पताल छोड़ कर घर आ गये। मेथी, पिरामिड और श्वास चिकित्सा से आप स्वस्थ हो गये।

मधुमेह, दमा, स्लीप डिस्क आदि असाध्य रोगों से पीड़ित अनेक रोगी बहुत ही अल्प समय में आपके परामर्श के अनुसार उपचार कर दवाओं की दासता एवं अपने रोगों से मुक्त हुए हैं। ऐसे कई प्रयोग आप नियमित रूप से करते हैं। उपर्युक्त घटनाओं का उल्लेख इसलिये किया गया कि सभी चिकित्सा पद्धतियों का प्रयोग स्वयं अपने पर करते हैं। इस ग्रंथ में आपने उन प्रयोगों का वर्णन किया है जो, आपने सैकड़ों उपचारों में अनुभूत किये है। पूरा तरह जांचा परखा है। चोरडियाजी के अनेक आलेख प्रमुख राष्ट्रीय पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। आपने पिछले बीस वर्षों में हजारों पैम्पलेट आलेखपत्र, शोध लेख लोगों में बांटे और डाक से भेजे हैं। **प्रस्तुत पुस्तक को आप प्रारम्भ से अन्त तक जितनी बार पढेंगे, आपको स्वास्थ्य के बारे में मौलिक चिन्तन के साथ - साथ अपनी समस्याओं का सरल समाधान मिलेगा। पुस्तक में चोरडिया जी ने गागर में सागर भरने जैसा कठोर पुरुषार्थ किया है। स्वास्थ्य के नाम पर भ्रामक विज्ञापनों एवं मिथ्या मान्यताओं से ग्रसित मानव के लिए यह पुस्तक अन्धेरे में दीपक का कार्य करेगी।**

हीरे की पहचान करने वाला जौहरी होता है और पत्थर समझ दुरूपयोग करने वाला मूर्ख। हम स्वयं ईमानदारी पूर्वक निर्णय करें, हम अमूल्य मानव जीवन का उपयोग कैसे कर रहे हैं? ऐसे ही प्रश्नों का समाधान मिलेगा आपको इस पुस्तक में।

बहुश्रुत बहुपठित एवं बहुआयामी अहिंसक चिकित्सा विधाओं के अनुभव सिद्ध आचार्य चंचल मल जी चोरडिया का यह ग्रंथ सत्यान्वेषण है, महात्मा गांधी के मेरे सत्य के प्रयोग की भांति ।

लक्ष्मीकान्त जोशी
प्रबुद्ध चिन्तक-साहित्यकार एवं सम्पादक दैनिक प्रतिनिधि

किया। आपके सुप्रयासों से आज आपका व्यवसाय राजस्थान भर में **चोरडिया इलेक्ट्रिकल्स** के नाम से ख्याति प्राप्त प्रतिष्ठान है। आपने अमेरिका, यूरोप के अनेक देशों की यात्राएँ भी कीं।

आपका प्रयास स्वास्थ्य के मूल भूत सिद्धान्तों का सरल भाषा में प्रस्तुतिकरण कर जनसाधारण के लिए उपयोगी बनाना है। चिकित्सा के क्षेत्र में होने वाली हिंसा को रोकने हेतु **स्वावलम्बी अहिंसात्मक चिकित्सा पद्धतियों की शोध एवं प्रचार-प्रसार में आप प्रयत्नशील हैं।** जोधपुर में देश के सुविख्यात चिकित्सा के प्रशिक्षकों द्वारा एक्युप्रेशर, चुम्बक, सूर्य किरण, रंग, शिवाम्बु, ध्यान, दूरस्थ, डाउजिंग, रत्न, पिरामिड, सुजोक एक्युप्रेशर, वास्तुशास्त्र सम्बन्धी प्रशिक्षण शिविरों को आयोजित करवाकर सारे राजस्थान में अहिंसात्मक चिकित्सा पद्धतियों की प्रभावशीलता से जनसाधारण को परिचित कराने में आपने अभूतपूर्व योगदान दिया। आपने अहिंसात्मक चिकित्सा पद्धतियों द्वारा स्वयं पर दुर्घटनाओं तथा रोगावस्था से मुक्ति हेतु सफल उपचार किया है। आपकी स्पष्ट मान्यता है कि **जिस चिकित्सा पद्धति में उपचार प्रभावशाली न हों, दवाई जीवन की आवश्यकता बन जाए, वह निदान और उपचार सही नहीं हो सकता, भले ही उसको भ्रामक, लुभावने विज्ञापनों द्वारा कितना भी वैज्ञानिक और प्रभावशाली प्रचारित क्यों न किया जाता हो। आत्मविश्वास के साथ आप रोगी की शंकाओं का सम्यक् समाधान करते हैं, जिससे रोगी का आत्मविश्वास जागृत हो जाता है। आपका प्रयास रोगी को उसकी क्षमताओं से परिचित करवाकर स्वयं के द्वारा उपचार हेतु प्रेरित करने का होता है। उपचार में रोगी की भागीदारी को आप सर्वाधिक महत्व देते हैं।**

आप स्वयं राष्ट्र के विख्यात अहिंसात्मक चिकित्सा पद्धतियों के विशेषज्ञ एवं प्रशिक्षक हैं तथा विभिन्न असाध्य समझे जाने वाले रोगों का सरल एवं सफल उपचार करते हैं। देश के विभिन्न भागों में प्रशिक्षण एवं उपचार शिविर आयोजित कर तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी वार्ताओं द्वारा आप अहिंसात्मक चिकित्सा के प्रचार-प्रसार में पूर्ण रूपेण समर्पित हैं तथा इस हेतु आपकी हजार से अधिक वार्ताएँ आयोजित हो चुकी हैं। आपके इस कार्य हेतु 31,000 रूपये के नकद आचार्य हस्ती अहिंसा पुरस्कार से आपको जलगांव (महाराष्ट्र) में सम्मानित किया गया। इंडियन सोसायटी फार हैल्थ एनवायरमेंट, एज्युकेशन एण्ड रिसर्च संस्था द्वारा ईशर 1999 से भी सम्मानित हो चुके हैं। इंडियन बोर्ड आफ एलटरनेटिव मेडिसिन कलकत्ता एवं नेशनल कांग्रेस आफ हैल्थ एण्ड स्प्रीच्युल साइंस के राष्ट्रीय सम्मेलनों में आपको स्वर्ण पदक से, कोंसिल आफ एलटरनेटिव सिस्टम आफ मेडिसन वेस्ट बंगाल के एक दीक्षान्त समारोह में सुश्रुत तथा पुनः अन्य दीक्षान्त समारोह में आप राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित हुए हैं। एक्युमेगनेट हीलिंग एसोशियेशन इन्दौर द्वारा जैम आफ पिरामिड, इंडियन एकेडमी आफ एक्युप्रेशर साइन्स, इन्दौर द्वारा एक्युप्रेशर रत्न, एल्टरनेटिव थेरेपी फोर हैल्थ इंदौर द्वारा प्रिन्स आफ एक्युप्रेशर से आपको सम्मानित किया जा चुका है।

आप पश्चिमी राजस्थान अकाल राहत हेतु कार्यरत प्राणी मित्र संस्थान के कार्याध्यक्ष, श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ तथा महावीर इण्टरनेशनल जोधपुर के भूतपूर्व अध्यक्ष, एम बी एम इंजीनियरिंग कालेज एलुमिनी एसोसियेशन तथा नेत्रहीन विकास संस्थान के संरक्षक, कल्याणमल चंचलमल चोरडिया ट्रस्ट के प्रमुख संस्थापक ट्रस्टी, इंडियन

वेजीटेरियन सोसायटी - चेन्नई, वर्ल्ड टेलीथेरेपी एसोशियेशन कलकत्ता, वाटर आफ लाइफ फाउण्डेशन मुम्बई, ब्यूटी विदाउट, क्रूयल्टी - पूना, सम्यक् ज्ञान प्रचारक मण्डल - जयपुर, जीतयशा फाउण्डेशन - कलकत्ता, गांधी मूक एवं बधिर विद्यालय, निराश्रित बच्चों को आश्रय देने वाले नव जीवन संस्थान, बाल शोभागृह , महावीर विकलांग समिति, पशु क्रूरता निवारण समिति, पीपुल्स फार एनीमल, चक्षु सेवा समिति, जैन रिलीफ सोसायटी, जैसी अनेक स्वयंसेवी संस्थाओं के आप न केवल आजीवन सदस्य ही है, अपितु विभिन्न पदों का सक्रियता पूर्वक दायित्व निर्वाह भी कर रहे है । वैकल्पिक चिकित्सा के राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में आपने न केवल भाग ही लिया अपितु अपने अकाट्य तर्कपूर्ण प्रस्तुतीकरण द्वारा चिकित्सा के क्षेत्र में होने वाली अनावश्यक हिंसा को अनुचित बतला कर, स्वावलम्बी चिकित्साओं के प्रचार-प्रसार में अपूर्व योगदान दिया है ।

आपका व्यक्तित्व परम सात्त्विक, समर्पित , विनम्र, सतत प्रयोगधर्मी एवं रचनाशील है । जिस व्यक्ति का ध्येय निष्काम एवं विराट् होता है, वह उतना ही धुनी होता है । चोरडिया जी निष्काम कर्म योगी तथा स्थित प्रज्ञ की सीमा तक धुनी है । आपके अनन्य आत्मीय आतिथ्य एवं विलक्षण गुण ग्राहकता के कारण राष्ट्र के अनेक महान वैकल्पिक चिकित्सक आपकी पुत्री के विवाहोत्सव में पधारे । मगर चोरडिया जी ने इसे भी सुखद संयोग मान कर वैवाहिक उत्सवों की प्रक्रिया के दौरान एक विराट् उपचार शिविर आयोजित कर दिया । अपने स्वजनों मित्रों को यही समझाया कि विवाह तो सहज सम्पन्न हो जायेगा, मगर इतने गुणीजन एक साथ कब पधारेंगे ? यह धुन की पराकाष्ठा थी । आपका चिन्तन पूर्णतः वैज्ञानिक, सनातन सत्य पर आधारित पूर्वाग्रहों से रहित, अनेकान्त एवं समन्वय दृष्टिकोण, दृढ मनोबल एवं स्पष्ट सम्यक् तर्कों पर आधारित होता है । **मेरा जो सच्चा** के स्थान पर **सच्चा जो सबका** उसका मूल आधार होता है । समय का प्राथमिकता के आधार पर अधिकाधिक उपयोग कैसे किया जाये, उस हेतु जन साधारण के लिये आपका समय प्रबन्धन अनुकरणीय है । इसी विशेषता के कारण विभिन्न संस्थाओ में प्रमुख और महत्वपूर्ण पदाधिकारी के रूप में अपने दायित्वो का सजगता एवं विवेक पूर्वक निर्वाह करने के बावजूद अत्यधिक व्यस्त होते हुए भी आप सदैव तनावमुक्त एवं कर्म के बोझ से अपने आपको परेशान अनुभव नहीं करते । आप जहाँ कहीं जाते हैं , समयानुकूल अपने प्रचार-प्रसार सामग्री का वितरण एवं प्रेरणा द्वारा जन साधारण को सद् प्रवृत्तियों से जोड़ने हेतु प्रयत्नशील रहते हैं । यहाँ तक कि श्मशान जैसे स्थान पर भी वैराग्यप्रद भजनों द्वारा वियोग के प्रसंगो पर मानव जीवन की क्षण भंगुरता का एहसास करवा शोक संतृप्त परिवारों को सांत्वना पहुँचाने में अहं भूमिका निभाते हैं । कार्य में बदलाव लाकर मानसिक थकावट को दूर कर विश्राम के नाम पर समय को व्यर्थ बर्बाद करने के बजाय सदुपयोग करने से ही आप अधिक कार्य कर सकते हैं । वास्तव में आपकी कार्य शैली चलती फिरती संस्था के समान है । आपकी प्रेरणा से हजारों व्यक्ति मांसाहार छोड़ शाकाहारी , दुर्व्यसनों को छोड़ निर्व्यसनी एवं असाध्य रोगों में दवाओं और चिकित्सको की पराधीनता छोड़ स्वावलम्बी , रोगमुक्त , स्वस्थ एवं सात्त्विक जीवन जीने लगे है ।

स्व-कथन

स्वावलंबी चिकित्सा अधिक वैज्ञानिक – स्वयं द्वारा, स्वयं को स्वस्थ रखने की प्रभावशाली विधियाँ है, उपचार की अच्छी पद्धतियाँ हैं । अच्छी चिकित्सा पद्धति के लिए आवश्यक होता है, रोग के मूल कारणों का सही निदान, तुरन्त दुष्प्रभावों से रहित स्थायी उपचार। जो पद्धति सहज, सरल, सस्ती, स्वावलंबी एवं अहिंसक होने के साथ-साथ, शरीर, मन, वाणी, भाव और आत्मा के विकारों को कम करने में सक्षम हो, जिन चिकित्सा पद्धतियों में करणीय-अकरणीय, भक्ष्य - अभक्ष्य, अहिंसा-हिंसा, न्याय-अन्याय, वर्जित-अवर्जित का विवेक हो, वे ही चिकित्सा पद्धतियां अपने आपको वैज्ञानिक एवं सर्व श्रेष्ठ होने का दावा कर सकती हैं। प्रस्तुत पुस्तक में स्वास्थ्य के संबंध में उपर्युक्त मापदण्डों के आधार पर ही अधिकांश कथन किया गया है । स्वावलंबन एवं अहिंसक उपायों की तरफ विशेष ध्यान दिया गया है।

जब से मानव सभ्यता का विकास हुआ, तभी से स्वास्थ्य वैज्ञानिक, चिकित्सक तथा चिंतक इस प्रयास में व्यस्त हैं कि मानव रोग मुक्त जीवन कैसे जी सके ? यथार्थता यह है कि, इतनी प्रगति के बावजूद भी आज रोग और रोगियों की संख्या में उत्तरोतर वृद्धि होती जा रही है। मानव शरीर के लिये अति आवश्यक कोशिकाओं, रक्त, वीर्य, अस्थि, मज्जा आदि किसी भी शारीरिक अवयव का आज तक प्रयोगशालाओं में निर्माण नहीं हो सका है।

दुनियाँ में चेतनाशील प्राणियों में मानव का प्रतिशत तो एक प्रतिशत से भी कम होता है । बाकी 99 प्रतिशत जीव अनादि काल से सहज जीवन जी रहे हैं, जिन्हें किसी भी प्रकार की चिकित्सा पद्धति का, न तो कोई ज्ञान होता है और न अनुभवी चिकित्सकों का सान्निध्य ही मिलता है। **क्या वे रोगी नहीं होते ? वे पुनः कैसे स्वस्थ होते हैं ? दूसरी तरफ स्वच्छ वातावरण में रहने वाले, पौष्टिक आहार का सेवन करने वाले, शुद्ध निर्मल मिनरल वाटर पीने वाले भी रोगी हो जाते हैं। आखिर क्यों ? इस पर बिना किसी पूर्वाग्रह के स्वतंत्र एवं निष्पक्ष सम्यक् चिन्तन आवश्यक है।**

मानव शरीर दुनिया की सर्वश्रेष्ठ मशीनरी है जो पांचों इन्द्रियों और मन जैसी अमूल्य सम्पदाओं से न केवल परिपूर्ण ही होता है अपितु, उसके सारे अंग - उपांग पूर्ण तालमेल एवं आपसी सहयोग एवं समन्वय से अपना अपना कार्य करते हैं। **यदि शरीर के किसी भी भाग में कोई तीक्ष्ण कांटा, सुई अथवा पिन चुभ जाए तो उस समय न तो आँख को अच्छे से अच्छा दृश्य देखना अच्छा लगता है और न, कानों को मन पसन्द गीत सुनना। यहां तक दुनिया भर में चक्कर लगाने वाला हमारा चंचल मन क्षण मात्र के लिए अपना ध्यान वहां केन्द्रित कर देता है। जिस शरीर में इतना तालमेल और अनुशासन हो, क्या उस शरीर में कोई अकेला नामधारी रोग उत्पन्न हो सकता**

हैं? मानव शरीर अपने आप में परिपूर्ण है। इसमें अपने आपको स्वस्थ रखने की पूर्ण क्षमता होती है।

शरीर में हजारों रोग होते हैं , परन्तु अधिकांश चिकित्सा पद्धतियाँ आज निदान करते समय उनकी उपेक्षा कर मुख्य रोग को ही प्रधानता देती हैं। जनतंत्र में सहयोगियों को अलग किये बिना जिस प्रकार नेता को नहीं हटाया जा सकता, सेना को जीते बिना सेनापति को कैद नहीं किया जा सकता, ठीक उसी प्रकार सहयोगी रोगों की उपेक्षा कर शरीर को पूर्ण रूप से रोग मुक्त नहीं रखा जा सकता। यह सनातन सत्य है तथा उसको नकारने एवं उपेक्षा करने वाली चिकित्सा आंशिक, अधूरी एवं अस्थायी ही होती है। यह रोगों एवं लक्षणों के नाम से उपचार करने वाली पद्धतियों के प्रशंसक स्वास्थ्य प्रेमियों के लिए चुनोती भरा चिन्तन का प्रश्न है तथा स्वास्थ्य के संबंध में हमारे पूर्वाग्रहों से ग्रसित मान्यताओं पर पुनर्विचार करने हेतु प्रेरित करता है।

हमारे शरीर में स्वयं को स्वस्थ रखने की क्षमता होती है। अनुभवी चिकित्सक एवं अच्छी से अच्छी दवा शरीर को अपना उपचार स्वयं करने की प्राकृतिक विधि में सहायक मात्र होते हैं। शरीर के सहयोग के बिना सारे उपचार निष्क्रिय हो जाते हैं।

प्रत्येक मनुष्य स्वस्थ रहना चाहता है, परन्तु चाहने मात्र से तो स्वास्थ्य नहीं मिलता। उपचार से पूर्व रोगी को यह जानना और समझना आवश्यक है कि रोग क्या है ? रोग कब और क्यों होता है? उसके प्रत्यक्ष परोक्ष कारण क्या क्या हो सकते हैं? रोग के सहायक एवं विरोधी तत्त्व क्या हैं? व्यक्ति रोग तो स्वयं पैदा करता है, परन्तु दवा और डाक्टर से ठीक करवाना चाहता है। क्या उसका श्वास अन्य व्यक्ति ले सकता है? क्या उसका खाया हुआ भोजन दूसरा व्यक्ति पाचन कर सकता है ? प्रकृति का सनातन सिद्धान्त है कि जहाँ समस्या होती है, उसका समाधान उसी स्थान पर होता है। अत: जो रोग शरीर में पैदा होते हैं, उनका उपचार शरीर में अवश्य होना चाहिये। यही स्वावलम्बी चिकित्सा का मूल सूत्र है। अत: जो चिकित्सा पद्धतियाँ जितनी ज्यादा स्वावलम्बी होंगी, रोगी की उसमें उतनी ही अधिक सजगता, भागीदारी होगी एवं सम्यक् पुरुषार्थ होने से वे पद्धतियाँ उतनी ही अधिक प्रभावशाली होंगी।

अधिकांश व्यक्ति रोग होने में स्वयं की गलती स्वीकार नहीं करते। इसी कारण रोग के कारणों को समझे बिना, निदान के बारे में अपनी शंकाओं का समाधान प्राप्त किये बिना, डाक्टरों के पास पड़ने वाली भीड़ के अन्धानुकरण के कारण, चिकित्सा से भविष्य में पड़ने वाले दुष्प्रभावों की उपेक्षा करते हुए, अपने आपको डाक्टरों की प्रयोगशाला बनाते प्राय: संकोच नहीं करते। दवाओं के अनावश्यक सेवन से शरीर की रोग प्रतिरोधक शक्ति क्षीण होने लगती हैं। रोग के जितने मानसिक और भावात्मक कारणों के साथ साथ प्रकृति के विरुद्ध खान-पान , रहन-सहन, आचार-विचार से संबंधित कारण स्वयं को ज्ञात होते हैं, उनको रोगी पूर्णत: अभिव्यक्त नहीं कर सकता। जितने कारण अभिव्यक्त कर सकता है, वे सारे के सारे यंत्रों एवम् पेथालोजिकल परीक्षणों की पकड़ में सदैव नहीं आते। अत: निदान

प्रायः अधूरा ही होता है। जब निदान ही अधूरा हो, जिसमें रोग के मूल कारणों की उपेक्षा हो तो, ऐसे उपचार कैसे स्थायी हो सकते हैं? आज उपचार किया जाता है, परन्तु वास्तव में होता नहीं। मात्र पीड़ा में राहत मिलना अथवा रोग के बाह्य कारणों का दब जाना, रोग का सम्पूर्ण उपचार नहीं माना जा सकता।

हमे चिन्तन करना होगा कि जो शरीर अपनी कोशिकाएँ रक्त, मांस, मज्जा, हड्डियाँ, चर्बी, वीर्य आदि अवयवों का निर्माण स्वयं करता है, जिसे आधुनिक विकसित स्वास्थ्य विज्ञान पूरी कोशिश के बावजूद अभी तक नहीं बना सका। ऐसे स्वचालित, स्वनिर्मित, स्वनियन्त्रित शरीर में स्वयं के रोग को दूर करने की क्षमता न हों, यह कैसे संभव है?

शरीर का विवेक पूर्ण एवं सजगता के साथ उपयोग करने की विधि स्वावलम्बी जीवन की आधारशिला होती है। मानव की क्षमता, समझ और विवेक जागृत करना उसका उद्देश्य होता है। उपचार में रोगी की भागीदारी मुख्य होती है। अतः रोगी उपचार से पड़ने वाले प्रभावों के प्रति अधिक सजग रहता है, जिससे दुष्प्रभावों की सम्भावना प्रायः नहीं रहती। ये उपचार बाल-वृद्ध, शिक्षित-अशिक्षित, गरीब अमीर, शरीर विज्ञान की विस्तृत जानकारी न रखने वाला साधारण व्यक्ति भी आत्म विश्वास से स्वयं कर सकता हैं। पुस्तक का उद्देश्य जनसाधारण में फैली भ्रामक धारणाओं को दूर कर स्वयं की असीम क्षमताओं के प्रति स्वयं का आत्म विश्वास पैदा करना है ताकि मानव को विश्वास हो सके कि– "स्वावलंबी चिकित्सा पद्धतियाँ अधिक वैज्ञानिक एवं प्रभावशाली होती हैं।"

चिकित्सा हेतु हिंसा को प्रोत्साहन अनुचित – आधुनिक स्वास्थ्य विज्ञान की जानकारी हेतु करोड़ों जानवरों का प्रति वर्ष विच्छेदन किया जाता है। दवाइयों के निर्माण और उनके परीक्षण हेतु जीव जन्तुओं पर निर्दयता, क्रूरता पूर्वक यातनाएँ दी जाती हैं। किसी को दुःख देकर सुख और शांति कैसे मिल सकती है? जो प्राण हम दे नहीं सकते, उनको अपने स्वार्थ हेतु लेने का हमे अधिकार किसने दे दिया? यह तो पशुता एवम् अनैतिकता का लक्षण है। हिंसा, क्रूरता, निर्दयता, अथवा अन्य विधि द्वारा किसी जीव को स्वयं कष्ट पहुंचाना अथवा ऐसा कृत्य करने वालों को प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से सहयोग देना बुरा है, उसके चाहे जो कारण रहे हों। **"जैसा करेंगे वैसा फल मिलेगा," यह कर्म का सनातन सिद्धान्त है। प्रकृति के न्याय में देर हो सकती है, परन्तु अन्धेर नहीं** । परन्तु अहिंसा का प्रचार प्रसार करने एवं उपदेश देने वाले अनेक संत भी चिकित्सा के क्षेत्र में होने वाली हिंसा का प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष मूक समर्थन करते आज संकोच नहीं करते। चिकित्सा में अहिंसा न केवल उपेक्षित एवं गौण होती जा रही है, अपितु हिंसा को आवश्यक बतलाने का प्रयास किया जा रहा है। पुस्तक में प्रभावशाली उपचार हेतु हिंसा की आवश्यकता को पूर्ण रूप से नकारा गया है। **उपचार में हिंसा कर्जा चुकाने के लिये ऊंचे ब्याज पर कर्जा लेने के समान नासमझी है।**

उपभोगता एवं सुविधावादी जीवन पद्धति तथा स्वार्थपरक चिन्तन शैली ने मानव को शारीरिक और मानसिक रूप से रुग्ण बना दिया है। दर्द सहनशक्ति से परे होता जा रहा है। येन-केन-प्रकारेण तुरन्त राहत समय की मांग है। साथ ही बहुत से अहिंसा प्रेमियों को न चाहते हुये भी विवशता पूर्वक रोगोपचार कराते समय प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से हिंसा में भागीदार होना पड़ रहा है । आज का मानव भाषणों, लेखों, तर्कों के बजाय उपचार में तुरन्त राहत को सर्वाधिक प्राथमिकता देता है। अतः पुस्तक में ऐसी जीवन शैली एवं उपचारों की चर्चा की गई है जो मानव को अहिंसक जीवन जीते हुए तुरन्त रोग मुक्त रख सके तथा यदि किसी कारणवश भूल एवं असजगता से रोग पैदा हो भी गया हो तो, उससें तुरन्त राहत और दुष्प्रभाव से रहित उपचार करने में सक्षम हो।

उपचार हेतु चिकित्सा के मूल सिद्धान्तों को प्राथमिकता आवश्यक—आजकल अन्य चिकित्सा पद्धतियों से जुड़े चिकित्सक अपने मूल सिद्धान्तों से हटकर आधुनिक चिकित्सा के निदान को आधार मानकर प्रायः उपचार करते हैं। उनमें स्वयं की अधिकांश चिकित्सा के प्रति आत्म विश्वास की कमी स्पष्ट प्रतीत होती है। भूतकाल में आयुर्वेदाचार्य नाड़ी देख कर रोग का सही निदान कर देते थें। उनको सही एवं शुद्ध देशी जड़ी बूटियों का ज्ञान और पहचान थी। दवा बनाते समय वे उपयोगी मंत्रों का उच्चारण करते थे, जिससे दवा का प्रभाव कई गुणा बढ़ जाता था । परन्तु आज आयुर्वेद चिकित्सक कैसे निदान करते हैं? और उपचार हेतु दवा देते हैं, हम सबको विदित है। आजकल तो आयुर्वेद दवाओं का निर्माण भी कारखानों में होना प्रारम्भ हो गया है एवं उनका परीक्षण जानवरों पर होने से उनका प्रभाव सीमित हो रहा है । अतः वर्तमान आयुर्वेद चिकित्सा न तो पूर्ण रूप से अहिंसक है और न अत्यधिक प्रभावशाली। योग का भी आजकल योगा के रूप में प्रचलन बहुत चल रहा है। परन्तु पातंजलि के अष्टांग योग में से यम, नियम, धारणा, प्रत्याहार, ध्यान और समाधि की उपेक्षा कर योगा के आसन और प्राणायाम की विभिन्न विधियों तक सीमित होने से उससे आंशिक लाभ ही प्राप्त हो सकते हैं।

अधिकांश एक्युप्रेशर चिकित्सक भी अपने सिद्धान्तों के अनुसार न तो रोगों का निदान ही करते हैं और न उपचार। आधुनिक चिकित्सा के निदान को आधार मानकर ही प्रायः नामधारी रोगों का उपचार करते हैं। सहयोगी रोगों की उपेक्षा करने से उपचार अस्थायी और आंशिक प्रभावशाली एवं अधिक समय लेता है, जबकि हथेली और पगथली में सभी दर्दस्थ प्रतिवेदन बिन्दुओं पर उपचार करने से सारे शरीर, मन, और मस्तिष्क के विकारों को जल्दी दूर किया जा सकता है और उपचार से असाध्य एवं संक्रामक रोग जल्दी ठीक हो सकते हैं।

मौलिक और वैज्ञानिक चिकित्सा के मापदण्ड — अन्य चिकित्सकों द्वारा आधुनिक चिकित्सा को अधिक महत्त्व देने से, उनका प्रयास सदैव अपने उपचारों को प्रमाणिक और वैज्ञानिक बतलाने के लिये उनके मापदण्डों को प्राथमिकता देनी पड़ती है। उपचार के परिणामों को आधुनिक परीक्षणों से सत्यापित करना आवश्यक होता है। जबकि अच्छी चिकित्सा का मापदण्ड तो स्थायी एवं प्रभावशाली परिणाम ही होते हैं। आधुनिक चिकित्सा जहाँ भौतिक परिणामों तक आधारित होती है वहीं स्वावलंबी चिकित्सा प्रकृति के सनातन सिद्धान्तों पर आधारित

होने से अधिक प्रभावशाली होती है, परन्तु उसके लिये उसके अनुरूप निदान, उपचार और परहेज अथवा आचरण आवश्यक होता है । पानी पीने से प्यास बुझती है, अग्नि का स्पर्श करने से जलाती है आदि ऐसे सनातन सिद्धान्त हैं, जिनके लिये परिणामों को प्रमाणित करने के लिये आंकड़ों के संकलन की आवश्यकता नहीं होती । उसी प्रकार जो उपचार दुष्प्रभावों से रहित है और तुरन्त राहत देते हैं, उनको संकलित आंकड़ों के अभाव में स्वीकार न करना, हमारी पूर्वग्रसित मान्यताओं का प्रभाव हो सकता है । विज्ञान का सोच नहीं हो सकता। विज्ञान हानि-लाभ का विश्लेषण करता है । आधुनिक दवाओं के प्रभावों का बढ़ा चढ़ा कर विज्ञापन किया जाता है, परन्तु उससे पड़ने वाले दुष्प्रभावों की उपेक्षा की जाती है, ऐसा सोच और तरिका अपने आपको ही मौलिक एवं वैज्ञानिक एवं अन्य चिकित्सा पद्धतियों को अवैज्ञानिक अथवा वैकल्पिक बतलाने का दावा कैसे कर सकता है ? परन्तु हमारी असजगता, भ्रामक विज्ञापनों से प्रभावित हमारे अविवेक, मिथ्या चिन्तन के कारण आज ऐसा ही हो रहा है।

मौलिक चिकित्सा कौनसी ? स्वावलंबी या परावलम्बी । सहज अथवा दुर्लभ । सरल अथवा कठिन, सस्ती अथवा महँगी । प्रकृति के सनातन सिद्धान्तों पर आधारित प्राकृतिक या नित्य बदलते मापदण्डो वाली अप्राकृतिक । अहिंसक अथवा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हिंसा, निर्दयता, क्रूरता को बढ़ावा देने वाली । दुष्प्रभावों से रहित अथवा दुष्प्रभावों वाली । शरीर की प्रतीकारात्मक क्षमता बढ़ाने वाली या कम करने वाली । रोग का स्थायी उपचार करने वाली अथवा राहत पहुंचाने वाली । सारे शरीर को एक इकाई मानकर उपचार करने वाली अथवा शरीर का टुकडों टुकडो के सिद्धान्त पर उपचार करने वाली । उपर्युक्त मापदण्डों के आधार पर हम स्वयं निर्णय करें कि कौनसी चिकित्सा मौलिक और कौन सी वैकल्पिक ? मौलिकता का मापदण्ड भ्रामक विज्ञापन अथवा संख्याबल नहीं होता । करोड़ों व्यक्तियो के कहने से दो और दो पांच नही हो जाते । दो और दो तो चार ही होते हैं । अतः स्वावलंबी चिकित्सा पद्धति मौलिक चिकित्सा पद्धति है , वैकल्पिक चिकित्सा पद्धति नहीं है ।

पुस्तक में संकलित छोटे-छोटे सिद्धान्तों का आचरण कर सजग व्यक्ति स्वयं को स्वस्थ रख सकता है , भले ही उसको स्वास्थ्य विज्ञान एवं शरीर के आंतरिक भागों की विस्तृत जानकारी न भी हो । जिसका मैने स्वयं जीवन की घटित विभिन्न दुर्घटनाओं, हृदयाघात जैसे घातक रोग एवं अन्य रोगों से तुरन्त राहत पाकर सुखद अनुभव किया है । अपनी क्षमताओं से परिचित न होने तथा सही मार्ग दर्शन न मिलने के कारण आज जनसाधारण स्वास्थ्य के प्रति परावलंबी बनता जा रहा है । चिकित्सा के प्रति सजगता एवं सही चिन्तन न होने से अन्धानुकरण हो रहा है । ऐसी परिस्थिति में आपका आरोग्य जनसाधारण के लिये अंधेरे में दीपक का कार्य करेगा। उनमें स्वावलंबी चिकित्सा पद्धतियों के प्रति फैली आशंकाओं का निवारण होगा तथा उपचार में स्वयं की भागीदारी और सजगता बढ़ेगी जिससे उपचार के चमत्कारी परिणाम तुरन्त प्राप्त होने लगेंगे। स्वयं की भागीदारी एवं सजगता न होने से अन्य चिकित्सा पद्धतियों का पूर्ण लाभ जल्दी ही मिलता। ऐसे रोगी परिणाम शीघ्र न मिलने के कारण कभी कभी स्वावलंबी चिकित्सा पद्धतियों के निन्दक बन जायें तो भी आश्चर्य नहीं। प्रत्येक रोगी को समयावधि की अल्पता

के कारण उपचार संबंधी विस्तृत तथ्यों की विस्तृत जानकारी देना भी संभव नहीं होता और न रोगी रोग से परेशान होने के कारण सच्चाई को जानना, समझना और सुनना तथा स्वयं कुछ करना ही चाहता है। जब स्वावलंबी चिकित्सा स्वयं देखा देखी परावलंबी चिकित्सा पद्धतियों के सिद्धान्तों पर कार्य करने लगती है, तो रोगी को अपेक्षित लाभ कैसे मिल सकता है?

उपचार सस्ता और सरल होने से न तो परामर्शदाताओं को अपेक्षित अर्थ उपार्जन करवा सकता है और न दवा कंपनियों की भांति महंगे विज्ञापनों द्वारा प्रचार प्रसार ही संभव होता है। अपने प्रशिक्षण शिविरों एवं टेलीफोन द्वारा रोगियों का मार्ग दर्शन करते समय ऐसी पुस्तक का अभाव अनुभव हो रहा था। अत: गत वर्ष मैंने **"स्वस्थ रहें अथवा रोगी : फैसला आपका"** एवं भोजन के संबंध में **"क्या बुद्धिमान व्यक्ति मांसाहारी हो सकता है"**? का प्रकाशन करवाया, जिसको पाठकों ने बहुत पसन्द किया। उसी शृंखला में **"आरोग्य आपका"** प्रकाशित करते हुये अपार हर्ष की अनुभूति हो रही है।

सहज एवं प्रभावशाली उपचारों का उपहार - "आरोग्य आपका" पुस्तक में चर्चित अधिकांश उपचार हमारे घर में प्राय: उपलब्ध होते हैं और बालक-वृद्ध, शिक्षित-अशिक्षित, परिचित - अपरिचित, सिद्धान्तों की साधारण सी जानकारी के पश्चात् स्वयं कर सकते हैं। उन्ही सरल उपायों की चर्चा पुस्तक में की गयी है। **जैसे स्विच चालू करने की कला जानने वाला बिजली के उपकरणों का उपयोग आसानी से कर सकता है। उसे यह जानने की आवश्यकता नहीं होती कि बिजली का आविष्कार किसने, कब और कहाँ किया? बिजलीघर से बिजली कैसे आती है ? कितना वोल्टेज, करेन्ट और फ्रिक्वेन्सी है? मात्र स्विच ओन करने की कला जानने वाला उपलब्ध बिजली का उपयोग कर सकता है। विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों की ऐसी साधारण जानकारी से न केवल अपने आपको स्वस्थ ही रख सकता है, अपितु असाध्य से असाध्य रोगों का बिना किसी दुष्प्रभाव प्रभावशाली ढंग से उपचार भी कर सकता है।**

जिस प्रकार रोग के असंख्य कारण हो सकते हैं, ठीक उसी प्रकार उसके उपचार के भी अनेक कारण हो सकते हैं। परन्तु पुस्तक में उन्ही स्वावलंबी चिकित्सा से संबंधित तथ्यों की प्राथमिकता के आधार पर चर्चा की गयी है, जो न केवल सहज, सरल, सस्ते, अहिंसक भी हैं, अपितु बहुत प्रभावशाली भी हैं। जिसका मैंने स्वयं अपना एवं हमारे उपचार केन्द्रों से मार्ग दर्शन पाकर, रोगियों को, बिना किसी दुष्प्रभाव शीघ्र स्वास्थ्य लाभ पहुंचाने सुखद अनुभव किया है।

यद्यपि मैंने चर्चित विषयों के अलावा रेकी, ध्यान, डाउजिंग, विविध योगासन, पिरामिड रत्न एवं दूरस्थ चिकित्सा का भी प्रशिक्षण एवं अध्ययन किया है, परन्तु उसका मैंने स्वयं पर अथवा मुझसे मार्ग दर्शन पाने वाले रोगियों पर अपेक्षाकृत कम प्रयोग किया, अत: उन विषयों पर अधिकार पूर्वक अभिव्यक्ति करने हेतु मैं अपने आपको सक्षम नहीं मानता। शुभ भावना संकल्प, मौन, प्रार्थना, सम्मोहन, ध्वनि, मंत्र चिकित्सा, ज्योतिष, वास्तु,

स्पर्श, मर्दन, प्राकृतिक, मालिश इत्यादि जैसी अनेक चिकित्सा पद्धतियां भी स्वावलम्बी अहिंसात्मक उपचार की श्रेणी में आती है। इच्छुक पाठक उनसे संबंधित अनुभवी चिकित्सकों से प्रशिक्षण प्राप्त कर लाभ उठा सकते हैं। मेरा उन पर पूर्ण विश्वास है। मैंने उनका कुछ कुछ अध्ययन एवं अनुभव भी किया, परन्तु विधिवत् प्रशिक्षण न ले सकने के कारण उनका पुस्तक में उल्लेख नहीं किया।

अत: उनके चिकित्सकों तथा उनसे लाभ उठाकर स्वास्थ्य लाभ करने और करवाने वालों को पुस्तक में अभाव सा प्रतीत हो सकता है, जिसके लिये वे पाठक मुझे क्षमा करेंगे।

किसी बात को बिना सोचे समझे स्वीकार करना यदि मूर्खता है तो अनुभूत सत्य को बिना सम्यक् चिन्तन एवं तर्क की कसौटी पर कसे बिना, प्रचार-प्रसार के अभाव में पूर्वग्रसित गलत धारणाओं के कारण अस्वीकार करने वालों को कैसे बुद्धिमान कहा जा सकता है? जिस प्रकार रत्न की पहचान डॉक्टर, वकील, नेता अथवा सेनापति नहीं कर सकता, उसके लिये जौहरी की दृष्टि चाहिए। ठीक उसी प्रकार शरीर की अनन्त क्षमताओं को समझने के लिये सम्यक् ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक् आचरण आवश्यक होता है। पुस्तक का अध्ययन करते समय पाठक कृपया उन मापदण्डों का अवश्य ध्यान रखें, ऐसी अपेक्षा है। पुस्तक में जो जो बातें आपको उपयोगी लगें, उनको स्वविवेक एवं सजगता के साथ आचरण में लाकर दीर्घ काल तक स्वस्थ जीवन जीने का प्रयास करें और यदि रोग ग्रस्त हैं तो रोग मुक्त हो सकें ऐसी मंगल भावना करता हूँ। पुस्तक पाठकों में अहिंसा और स्वावलम्बन के प्रति तनिक भी आस्था पैदा कर सकेगी तो मै अपने प्रयास को सफल मानूंगा।

पुस्तक में चर्चित उपयोगी अथवा अनुपयोगी पदार्थों के चयन की विधि, मस्तिष्क शोधन प्रक्रिया, सौर ऊर्जा का मानव कल्याण में योगदान, पातंजलि योग एवं महावीर का स्वास्थ्य दर्शन, शारीरिक संतुलन की कला, यिन-यांग का सिद्धान्त, जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं का सम्यक् उपयोग, स्वर और स्वास्थ्य, शिवाम्बु, एक्युप्रेशर, चैतन्य, हास्य एवं मेथी चिकित्सा आदि ऐसे विषय हैं, जो स्वास्थ्य प्रेमियों के लिये प्रकाश स्तम्भ का कार्य करेंगे, ऐसा दृढ विश्वास है। पंच महाभूत तत्त्व एवं मुद्रा विज्ञान, चीनी पंच तत्त्व एवं सुजोक बियोल मेरेडियन द्वारा अंगों में प्राण ऊर्जा का संतुलन जैसे विशाल विषयों का इस छोटी पुस्तक में पूर्ण विवेचन करना कठिन है। अत: पुस्तक में सामान्य जानकारी ही दी गयी है। विषय के महत्त्व एवं उपचार की प्रभावशीलता के कारण ही संकेत रूप में इनको सम्मिलित किया गया है। इस कमी के लिये पाठक मुझे क्षमा करेंगे। मै अपने आपको अत्यधिक भाग्यशाली मानता हूँ कि मुझे ऐसे सरल उपचार के तरीकों का परोपकारी गुरुओं की कृपा से ज्ञान प्राप्त हुआ। मैं आभारी हूँ उन गुरुजनों का, जिन्होंने मुझे आत्मीयता से ऐसे ज्ञान का प्रशिक्षण दिया। मेरी शंकाओं का समाधान किया और मुझे तर्क सम्मत सम्यक् परामर्श दिया। विशेष रूप से श्री विपिन भाई शाह, कान्ति भाई शाह, जितेन जी भट्ट, स्वर्गीय डॉ. जी के ठक्कर, श्री देवेन्द्र वोरा, डॉ ई डब्लू पार्क, सुरेश भाई सराफ, श्रीमती मायाबेन पंजाबी, श्री हीरा रतन माणक डॉ. अजीत मेहता, डॉ. अत्तर सिंह, निरोगी दुनिया के सम्पादक मोहन कुमार जी कश्यप, श्री

धर्मानन्दजी, आचार्य केशवदेवजी , डॉ. ओमप्रकाश जी आनन्द एवं श्री भोजराजजी द्विवेदी आदि जिनका मेरे पर उपकार है। आज उस ज्ञान को जनहितार्थ प्रकाशित कर रहा हूँ। मुझे पूर्ण विश्वास है कि पाठकगण बिना किसी पूर्वाग्रह के पुस्तक को प्रारम्भ से अन्त तक पढ़कर, अपने विचारों एवं समीक्षा से मेरा मार्ग दर्शन करेंगे। जो जो बाते आपको उपयोगी लगें, उसका न केवल स्वयं लाभ उठायेंगे अपितु अपने सम्पर्क में आने वालों तक भी पहुंचायेंगे, ऐसी अपेक्षा है। मै आभारी हूँ , मेरे स्वर्गीय माता पिता एवं स्वर्गीय आचार्य श्री हस्तिमल जी महाराज तथा अन्य पूज्य संतों एवं गुरुजनों का जिन्होने मेरे जीवन में सद् संस्कारों का रोपण किया । मै आभारी हूँ मेरी धर्मपत्नी रतन चोरडिया एवं पुत्र अशोक चोरडिया तथा परिवार के अन्य सदस्यों का जिन्होने पारिवारिक दायित्वों से आंशिक मुक्त कर अहिंसात्मक चिकित्सा पद्धतियों का प्रशिक्षण, प्रचार, प्रसार हेतु मुझे सहयोग दिया।

पुस्तक का आमुख लिखने के लिए प्रोफेसर लक्ष्मीकान्त जी जोशी एवं आवश्यक मार्ग दर्शन हेतु श्रद्धेय प्रमोद मुनि जी, श्रद्धेय ललित प्रभ एवं चन्द्र प्रभ सागर जी, श्रद्धेय प्रवीण ऋषि जी, श्रद्धेय प्रेम मुनिजी एवं जितेश मुनिजी, श्रद्धेय कनक नन्दी जी आदि संत मुनियों का जिन्होने समय-समय पर अहिंसात्मक चिकित्सा पद्धतियों पर अध्ययन एवं कार्य करने हेतु न केवल प्रेरणा दी अपितु मेरा मार्ग दर्शन भी किया। मै आभारी हूँ श्री जितेन्द्र जी जोशी का जिन्होंने कम्प्यूटर की सेवाओं में तथा श्री धर्मचंद जी जैन तथा प्रकाश जी सालेचा का जिन्होंने प्रूफ देखने में मुझे सहयोग दिया। **दुनियाँ भर में कार्यरत स्वावलंबी अहिंसात्मक ढंग से चिकित्सा के क्षेत्र में कार्यरत चिकित्सकों, विशेष रूप से मेरे सहयोगी चिकित्सकों, प्रेरकों, वैज्ञानिकों, आचार्य महाप्रज्ञ जैसे साधु संतों आदि का जो राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में अपने अनुभव और विचार व्यक्त कर अथवा स्वास्थ्य संबंधी पत्र पत्रिकाओं या पुस्तकों द्वारा अपने विचारों को जन जन तक पहुंचाने में अहं भूमिका निभा रहे हैं, का भी आभारी हूँ , जिनको पढ़ कर एवं सुनकर मुझे सम्यक् मार्ग दर्शन मिला एवं मेरी स्वावलंबी चिकित्सा के प्रति शंकाओं का समाधान हुआ।** पुस्तक में चर्चित, उन्हीं विषयों का संकलन है, जिनका प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष चिंतन एवं अनुभव करने का मुझे सुखद संयोग मिला। **'सच्चा और अच्छा जो न केवल मेरा अपितु सभी का ।**

सबका मंगल हो, सबका कल्याण हो, सभी शांत, प्रसन्न, स्वस्थ एवं रोग मुक्त हों।

"सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःखमाप्नुयात्॥"

ऐसी मंगल भावना के साथ

चंचलमल चोरडिया
चोरडिया भवन, जालोरीगेट के बाहर,
जोधपुर 342 003, *फोन: निवास* 621454, 437689

स्वस्थ जीवन क्या है ?

जीवन क्या है ?

जन्म और मृत्यु के बीच की अवस्था का नाम जीवन है । जीवन को समझने से पूर्व जन्म और मृत्यु के कारणो को समझना आवश्यक होता है । जिसके कारण हमारा जीव विभिन्न योनियों में भ्रमण करता है । जन्म और मृत्यु क्यों ? कब ? कैसे और कहाँ होती है ? उसका संचालन और नियन्त्रण कौन और कैसे करता है ? सभी की जीवन शैली, प्रज्ञा, सोच, विवेक , भावना , संस्कार, प्राथमिकताएँ, उद्देश्य, आवश्यकताएँ आयुष्य और मृत्यु का कारण और ढंग एक-सा क्यों नहीं होता ? मृत्यु के पश्चात् अच्छे से अच्छे चिकित्सक का प्रयास और जीवन दायिनी समझी जाने वाली दवाईयाँ क्यों प्रभावहीन हो जाती हैं ? मृत्यु के पश्चात् मृत शरीर के कलेवर को क्यों जलाया. दफनाया अथवा अन्य किसी विधि द्वारा समाप्त किया जाता है ?

प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं से प्रश्न करना चाहिए कि - **"मैं कौन हूँ ? मैं कहाँ से आया हूँ ? मुझे मानव जन्म क्यों और कैसे मिला ? मानव जीवन में भी सभी को एक - जैसी परिस्थितियाँ और वातावरण क्यों नहीं मिलते ? सभी की आयु एक जैसी क्यों नही होती ? किसी की बुद्धि, मन, इन्द्रियों और शरीर का पूर्ण विकास होता है तो कुछ जन्म से ही अविकसित, असन्तुलित, विकलांग अथवा अस्वस्थ क्यों होते हैं ? जन्म के साथ परिवार, समाज, धर्म और संस्कृति, परिस्थितियाँ , कार्यक्षेत्र तथा जीवन को प्रभावित करने वाले विभिन्न प्रसंगों का संयोग अथवा वियोग क्यों मिलता है ?** जीवन चलाना तो प्रायः सभी योनि के जीव जानते हैं । परन्तु जीवन को सार्थक कैसे बनाना, यह केवल मानव जीवन में ही संभव होता है । सृष्टि में मानव ही एक ऐसा प्राणी है जिसको पाँचों इन्द्रियों के साथ मन, मस्तिष्क, चेतना और विवेक की सर्वोच्च अवस्था प्राप्त होती है, जिसमें जीवन का सर्वाधिक विकास सम्भव होता है । मानव इसी कारण सम्यक् चिन्तन कर अपनी क्षमताओं को पहचान, उसके अनुरूप जीवन का लक्ष्य बना जीवन जी सकता है ।

मानव जीवन अमूल्य है । वस्तु जितनी मूल्यवान होती है, उसका उपयोग उसके अनुरूप करने वाला ही सच्चा ज्ञानी होता है । लाखों रुपए मासिक वेतन पाने वाले कारखाने के किसी मेनेजर को झाड़ू लगाने का कार्य लेने वाले को व्यावहारिक जगत में हम बुद्धिमान नहीं कहते । चाय की जो प्याली दो-तीन रुपए में मिलती है, उसके लिए हजार रुपए देने वाला ना-समझ होता है । पागलखाने में बन्द व्यक्ति ही पागल नहीं होता, अपितु वे सभी व्यक्ति

बुद्धिमानों की श्रेणी में नहीं आते जो जानते हैं कि अमुक प्रवृत्ति उनके स्वास्थ्य अथवा जीवन के लिए हानिकारक है, फिर भी उनसे नहीं बचते और जो यह जानते हैं कि अमुक प्रवृत्तियों से शांति मिलती है, तनाव दूर होता है, निर्भयता आती है, स्वास्थ्य अच्छा रहता है, फिर भी उनकी उपेक्षा करते हैं। **हमें चिन्तन करना होगा कि मानव जीवन के रूप में प्राप्त हम अपनी ऐसी अमूल्य क्षमताओं का छोटे-मोटे कम उपयोगी, अप्राथमिक, अनावश्यक कार्यों में दुरुपयोग और अपव्यय तो नहीं कर रहे हैं?** मानव योनि को व्यर्थ में ही बर्बाद तो नहीं कर रहे हैं, ताकि भविष्य में अपनी मूर्खता पर पछताना पड़े? **जब तक अपनी क्षमताओं का सही उपयोग नहीं होगा, दुःख और रोग के कारणों को नहीं समझा जाएगा तब तक हमारा जीवन अमर्यादित, अनियन्त्रित, लक्ष्य-हीन, स्वच्छन्द, असंयमित होने से स्थायी स्वास्थ्य प्राप्त नहीं कर सकता।**

स्वास्थ्य क्या है?

स्वास्थ्य के मूल सिद्धान्तों का अध्ययन करने से पूर्व तथा स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले विभिन्न तथ्यों की चर्चा करने से पूर्व स्वास्थ्य क्या होता है और रोग किन-किन कारणों से हो सकते हैं? उनको जानना और समझना आवश्यक है –ताकि स्वास्थ्य के अनुरूप जीवनशैली अपनायी जा सके और रोग के कारणों से यथा-सम्भव बचा जा सके। मृत्यु के लिए सौ सर्पों के काटने की आवश्यकता नहीं होती। एक सर्प का काटा व्यक्ति भी कभी कभी मर सकता है। ठीक उसी प्रकार **कभी-कभी बहुत छोटी लगने वाली हमारी गलती अथवा उपेक्षावृत्ति भी भविष्य में रोग का बहुत बड़ा कारण बन जीवन की प्रसन्नता-आनन्द सदैव के लिए समाप्त कर देती है।**

स्वस्थ कौन?

स्वस्थ का मतलब होता है रोग-मुक्त जीवन। स्वस्थता तन, मन और आत्मोत्साह के समन्वय का नाम है। जब शरीर, मन, इन्द्रियाँ और आत्मा ताल-से ताल मिला कर सन्तुलन से कार्य करते हैं, तब ही अच्छा स्वास्थ्य कहलाता है अर्थात् शरीर की समस्त प्रणालियाँ एवं सभी अवयव स्वतन्त्रापूर्वक अपना-अपना कार्य करें, किसी के भी कार्य में, किसी भी प्रकार का अवरोध, आलस्य अथवा निष्क्रियता न हो तथा न उनको चलाने हेतु किसी बाह्य दवा अथवा उपकरणों की आवश्यकता पड़े। मन और पाँचों इन्द्रियाँ सशक्त हो। स्मरण शक्ति अच्छी हो। क्षमताओं का ज्ञान हो। विवेक जागृत हो। लक्ष्य सही और विकासोन्मुख हो तथा जीवन में स्थायी आनन्द, शान्ति, प्रसन्नता बढ़ाने वाला हो, न कि तनाव, चिन्ता, निराशा, भय, अनैतिकता, हिंसा, झूठ, चोरी, व्यभिचार, तृष्णा आदि दुःख के कारणों को बढ़ाने वाला। **प्राथमिकताएं सही हो एवम् उसके अनुरूप संयमित, नियमित, नियन्त्रित जीवन चर्या हो। आवश्यक**

की क्रियान्विति और अनावश्यक की उपेक्षा का स्वविवेक हो। मन का चिन्तन और आचरण सम्यक् एवं संयमित हो। मन में बेचैनी न हो। इन्द्रियों की विषय-विकारों में आसक्ति न हो। समस्त प्रवृत्तियाँ सहज और स्वाभाविक हो, अस्वाभाविक न हो अर्थात् जिसका पाचन और श्वसन बराबर हो, नियमित हो, सन्तुलित हो। अनुपयोगी अनावश्यक विजातीय तत्त्वों का शरीर से विसर्जन सही हो। भूख प्राकृतिक लगती हो। निद्रा स्वाभाविक आती हो। पसीना गन्ध-हीन हो। त्वचा मुलायम हो, बदन गठीला हो। सीधी कमर, खिला हुआ चेहरा और आँखों में तेज हो। नाड़ी, मज्जा, अस्थि, प्रजनन, लासिका, रक्त परिभ्रमण आदि तन्त्र शक्तिशाली हो तथा अपना कार्य पूर्ण क्षमता से करने में सक्षम हो। जो निस्पृही तथा निरंहकारी हो। जो आत्म-विश्वासी, दृढ़ मनोबली, सहनशील, धैर्यवान, निर्भय, साहसी और जीवन के प्रति उत्साही हो। जिसके सभी कार्य समय पर होते हों तथा जीवन नियमबद्ध हो। वास्तव में पूर्ण स्वस्थता के मापदण्ड तो यही हैं। जितने-जितने अंशों में उपरोक्त तथ्यों की प्राप्ति होती है उसी अनुपात में व्यक्ति स्वस्थ होता है। इसके विपरीत स्थिति पैदा होने पर अपने आपको स्वस्थ मानना अथवा स्वस्थ बनाने का दावा करना न्याय-संगत नहीं माना जा सकता। प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं की स्थिति पर अवश्य चिन्तन करना चाहिए। जो-जो बातें उसके स्वयं के नियन्त्रण में होती है, उसके अनुरूप अपनी जीवनशैली बनाने का प्रयास करना चाहिए।

परन्तु आज स्वास्थ्य का परामर्श देते समय अथवा रोग की अवस्था में निदान करते समय प्रायः कोई भी चिकित्सक अथवा स्वास्थ्य विशेषज्ञ व्यक्ति के स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले उपरोक्त प्रभावों का समग्रता से विश्लेषण नहीं करते।

सत्य की पूर्णतः अभिव्यक्ति नहीं की जा सकती। वह तो व्यक्ति के स्वयं की अनुभूति का विषय होता है। जो भी देखा जाता है, सुना जाता है, यन्त्रों अथवा परीक्षणों से पता लगाया जाता है वह सत्यांश ही होता है। ऐसा अधूरा निदान और परामर्श कैसे शत-प्रतिषत सत्य और पूर्ण हो सकता है, अपने आपको स्वस्थ रखने की कामना रखने वालों से सम्यक् चिन्तन की अपेक्षा रखता है। अतः स्वस्थ रहने हेतु व्यक्ति के स्वयं की सजगता, विवेक, बुद्धि, स्वावलम्बन जीवन पद्धति तथा स्वयं की स्वयं द्वारा नियमित समीक्षा, पूर्ण स्वस्थता की प्राप्ति के लिए अनिवार्य होती है। पराधीन अथवा दूसरों पर आश्रित रहने वाला व्यक्ति स्थायी स्वास्थ्य को प्राप्त नहीं कर सकता है।

स्वस्थ जीवन के लिए स्वयं की सजगता जरूरी

एक व्यक्ति ने अपने पड़ौसी अथवा स्नेही परिजन को कहा- "कृपया आप मेरे घर की सुरक्षा का ख्याल रखना।" पड़ौसी अथवा परिजन ने उसके अनुरोध का कारण पूछा-"आप अपने मकान की सुरक्षा का भार हम

पर क्यों डाल रहे हो? क्या आप घर से बाहर कहीं जा रहे हैं?" व्यक्ति ने कहा - "नहीं," और सहज भाव से उत्तर दिया - "मैं घर में ही निद्रा ले रहा हूँ। मेरी निद्रा में बाधा उत्पन्न नहीं हो, इसी कारण आपके सहयोग की अपेक्षा है।" क्या ऐसे व्यक्ति की बात पड़ौसी अथवा परिजन हमेशा के लिए स्वीकार करेगें? क्या ऐसे व्यक्ति को हम असजग, आलसी अथवा निष्क्रिय तो नहीं कहते? अपने स्वास्थ्य के सम्बन्ध में आज अधिकांश व्यक्तियों की स्थिति लगभग ऐसी ही है।

आज चिकित्सा करवाते समय उपचार की प्रासंगिकता के बारे में प्रायः रोगी तनिक भी चिन्तन मनन नहीं करते। चिकित्सक से अपनी शंकाओं और उपचार से पड़ने वाले दुष्प्रभावों के बारे में स्पष्टीकरण नहीं लेते। रोग का कारण जाने बिना उपचार प्रारम्भ करवा देते हैं। आज यह दवा, कल दूसरी, परसों तीसरी दवा । आज यह चिकित्सक, कल दूसरा चिकित्सक, परसों अन्य चिकित्सक कभी यह अस्पताल, कभी दूसरा अस्पताल तो कभी अन्य अस्पताल। आज एक चिकित्सा पद्धति । चन्द रोज बाद दूसरी चिकित्सा पद्धति और अगर रोग मुक्त न हो तो न जाने कितनी कितनी चिकित्सा पद्धतियाँ बदलते संकोच नहीं करते। स्वयं की असजगता, अविवेक और सही चिन्तन न होने से हमारा सोच लुभावने विज्ञाप्नों, डाक्टरों के पास पड़ने वाली भीड़ से प्रभावित होता है। हम असहाय, हताश बन चिकित्सकों की प्रयोगशाला बनते तनिक भी संकोच नहीं करते। आज अधिकांश असाध्य एवं संक्रामक रोगों का एक मुख्य कारण, प्रारम्भिक अवस्था में गलत उपचार से पड़ने वाले दुष्प्रभाव होते हैं, जिसकी तरफ शायद ही किसी का ध्यान जा रहा है। **स्वास्थ्य मंत्रालय द्वारा चलाये जा रहे रोग नियन्त्रक कार्यक्रम से पड़ने वाले दुष्प्रभाव की निष्पक्ष समीक्षा आवश्यक है। आज विदेशों में जबरदस्ती दवा पिलाने और इंजेक्शन लगाने के आन्दोलन, उनसे पड़ने वाले दुष्प्रभावों की क्षति पूर्ति के कारण बंद हो रहे हैं। सरकारी अनदेखी के कारण हमारे यहाँ वे ही राष्ट्रीय कार्यक्रमों के रूप में सरकारी संरक्षण में नागरिकों की दुष्प्रभावों के प्रति असजगता के कारण तीव्र गति से चल रहे हैं।**

क्या हमारा श्वास अन्य व्यक्ति ले सकता है? क्या हमारा भोजन अन्य कोई पचा सकता है? क्या दूसरों के खाने से और पानी पीने से हमारी भूख अथवा प्यास शान्त हो सकती है? दूसरों की आंखों से हम नहीं देख सकते, दूसरों के कानों से हम नहीं सुन सकते, दूसरों के पैरों से हम नहीं चल सकते। अपने स्वयं की गतिविधियों के संचालन, नियन्त्रण आदि से जितने हम स्वयं परिचित होते हैं, उतना प्रायः दूसरा व्यक्ति परिचित हो नहीं सकता। हम क्यों तनाव-ग्रस्त, चिन्तित, निराश भयभीत हैं? उनका सही विश्लेषण अन्य व्यक्ति अथवा यन्त्र नहीं कर सकता। हम स्वयं अपने खान-पान, रहन-सहन, आचार-विचार और गलत जीवन-चर्या के अप्राकृतिक तरीकों से रोगों को आमन्त्रित करते हैं, परन्तु दवा और डाक्टर से पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्ति की कामना रखते हैं। कितना भ्रम है? **डाक्टर एवं**

दवा मात्र सहयोगी की भूमिका निभा सकते हैं, परन्तु जब तक हमारा शरीर उस सहयोग को स्वीकार नहीं करेगा, तब तक अच्छे से अच्छी दवा तथा बड़े से बड़ा चिकित्सक हमें पूर्ण स्वस्थ नहीं बना सकता। मात्र आंशिक राहत पहुँचा सकता है। स्वास्थ्य को बनाए रखने में स्वयं की सजगता, सम्यक् चिन्तन और सम्यक् पुरुषार्थ की सर्वाधिक आवश्यकता होती है। मानसिक असन्तुलन अथवा रोग का आभास होने की स्थिति में रोगी को पिछले 48 घंटों की अपनी गतिविधियों की समीक्षा करनी चाहिए। हमें स्वयं ही अपनी गलती का पता चल जायेगा, जिसके कारण रोग का प्रारम्भ हुआ है। रोग की प्रारम्भिक अवस्था में हमें जो संकेत मिलते हैं, उनकी समीक्षा करें तथा भोजन, पानी, हवा के ग्रहण करने में होने वाली भूलों को सुधारने हेतु आवश्यक संशोधन करें, कारण मालूम पड़ते ही समाधान ढूँढना अथवा उपचार सरल हो जाएगा। स्वस्थ रहने की कामना रखने वालों को प्रति-दिन् अपने स्वास्थ्य की समीक्षा करनी चाहिए।

जीवन में सहजता जरूरी

मानव शरीर की तुलना दुनिया के सर्वश्रेष्ठ स्वचालित यंत्रों से की जा सकती है। **स्वचालित यन्त्रों के साथ जितनी कम छेड़-छाड़ की जाए उतना अच्छा होता है।** मनुष्य के अलावा अधिकांश चेतनाशील प्राणी सहज जीवन जीने के कारण अपेक्षाकृत कम रोग-ग्रस्त होते हैं। उन्हें अपने शरीर का विशेष ज्ञान भी नहीं होता। रोजाना दाँतुन न करने के बावजूद उनके दाँत मनुष्य की भांति जल्दी खराब नहीं होते । उन्हें देखने के लिए चश्में की आवश्यकता नहीं होती। **नवजात बालक भी सहज जीवन जीता है। उसकी अधिकांश शारीरिक बाह्य क्रियाएँ स्वाभाविक और प्राकृतिक होती है। उससे भी हम स्वस्थ रहने की काफी बाते सीख सकते हैं।** उसमें किसी के प्रति न राग होता है और न द्वेष, इसी कारण बच्चा सभी को प्यारा लगता है। वह जब श्वास लेता है तो उसका पेट पूरा फूलता है अर्थात् वह गहरा और पूरा श्वास लेता है। यदि हम भी बच्चे की भांति सदैव गहरा और पूर्ण श्वास लेना प्रारम्भ कर दें तो अनेकों स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं का स्वत: समाधान हो जायेगा। बच्चा जब सोता है तो सिर्फ सोता ही है। निश्चिन्त होकर सोता है, परन्तु कुछ लोग निद्रा में भी कुछ न कुछ चिन्तन करते रहते हैं। बच्चा कहीं नहीं जा सकता। चल-फिर नहीं सकता। फिर उसका पाचन कैसे होता है? उसका विकास इतना जल्दी क्यों और कैसे होता है? आखिर वह क्या व्यायाम करता है? हम प्राय: देखते है बच्चा अपने पैरों को चलाता है, उसका पाचन और मल -मूत्र विसर्जन तन्त्र

स्वास्थ्य के लिए हमारे शरीर में समाधान हैं, प्रकृति में समाधान हैं, वातावरण में समाधान हैं। भोजन, पानी और हवा के सम्यक् उपयोग और विसर्जन में समाधान हैं। समाधान भरे पड़े हैं, परन्तु उस व्यक्ति के लिए कोई समाधान नहीं है, जिसमें अविवेक और अज्ञान भरा पड़ा है।

ठीक से कार्य करता है। यदि हम भी नियमित रूप से ऐसा व्यायाम करना प्रारम्भ कर दें तो हम पाचन सम्बन्धी काफी रोगों से बच जाऐंगे। पैरों में ऊर्जा का प्रवाह बराबर होने से घुटनों और पैरों सम्बन्धी अन्य रोगों की सम्भावना नहीं रहेगी। बच्चा झूठ नहीं बोलता। यदि हम भी सत्य का आचरण करें तो जीवन में निर्भयता आ सकती है। अनैतिकता, मायावृत्ति, छल-कपट, अहं स्वत: समाप्त हो जाता है, जो मानसिक रोगों का मुख्य कारण है। इन सभी बातों की शिक्षा बच्चे को कहां से मिलती है? **यदि हम भी प्रकृति के साथ सहज जीवन जीना प्रारम्भ कर दें और शरीर के साथ अनावश्यक छेड़-छाड़ न करें तो हमारा स्वास्थ्य हमारे अनुकूल होगा तथा किसी कारणवश रोग होने की अवस्था में भी हम पुन: जल्दी स्वस्थ हो सकेंगे। हम स्वयं अपनी प्राथमिकताओं का चयन करे -"स्वस्थ बने या रोगी"**

स्वस्थता हेतु जीवन में हल्कापन अनिवार्य

सरलता, लघुता, हल्कापन स्वास्थ्य का प्रथम लक्षण है। अस्वस्थता से पूर्व हमें शरीर में भारीपन का अनुभव होने लगता है। बैचेनी और अटपटा लगने लगता है। जैसे ही शरीर हल्का अनुभव करने लगता है, हम स्वस्थता का अनुभव करने लगते हैं। जब हमारे संस्कारों और वृत्तियों में निष्कपटता आने लगती हैं, हम अपने आपको निर्भय, तनाव मुक्त और हल्का अनुभव करने लगते हैं। **भारीपन क्यों, कब और कैसे आता है? उसके समझे बिना तथा उन कारणों से बचे बिना हल्केपन की प्राप्ति कठिन होती है।**

हम जो कार्य करते हैं उसका उतना भार नहीं होता, जितना भार होता है उस कार्य की स्मृति अथवा कल्पना का। वर्तमान का क्षण बहुत पवित्र होता है। अत: यदि भूत की स्मृति और भविष्य की कल्पना न की जाये तो मानसिक असंतुलन के दोषों से सहज ही बचा जा सकता है कहा भी है–**"भूत सपना है, भविष्य कल्पना है, और वर्तमान अपना है।"** दु:ख की स्मृति और कल्पना का अनावश्यक चिंतन भी मानसिक भारीपन का प्रमुख कारण होता है। अत: यदि वर्तमान में सहज जीना सीख लें तो हमारी अनेक समस्याओं का समाधान सहज संभव हो जाता है।

सच्चा वैज्ञानिक कौन ?

एक ही मिट्टी, पानी, हवा, धूप और परिश्रम के बावजूद पास-पास विकसित होने वाले गन्ने में इतना मिठास और नीम में इतना कड़वापन क्यों? कारण स्पष्ट है, हम अपनी क्षमताओं से पूर्णतया परिचित नहीं हैं। जिसने उसको समझा, सदुपयोग किया उसने हमारे सामने सम्यक् चिन्तन करने की प्रेरणा अवश्य प्रस्तुत की। आधुनिक स्वास्थ्य वैज्ञानिक शरीर के सूक्ष्मतम भाग का यन्त्रों और रासायनिक परीक्षणों द्वारा निरीक्षण और परीक्षण कर शरीर की गतिविधियों को समझने और समझाने का प्रयास कर रहे हैं, परन्तु आत्मा अरूपी है, निराकारी है, जिसको देखना सम्भव नहीं। **आत्मा में अनन्त शक्तियाँ हैं, जो उसकी शुद्धावस्था में प्रकट होती हैं। जब आत्मा पूर्ण शुद्ध हो जाती है**

तो, उसमें सृष्टि की समस्त प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष घटनाएँ दर्पण की भांति प्रतिबिम्बित होने लगती हैं । आत्मा परमात्मा बन जाती है। ऐसी अवस्था को वीतराग अवस्था अथवा केवल ज्ञान की स्थिति कहते हैं। जहां सारा अज्ञान दूर हो जाता है, केवल ज्ञान ही शेष रहता है। सम्पूर्ण आत्मानुभूति की अवस्था में आज की भौतिक जानकारी तो होती ही है, परन्तु उससे भी आगे ब्रह्माण्ड के भूत, भविष्य एवं वर्तमान की सूक्ष्मतम एवं सम्पूर्ण जानकारी भी होती है। वे ही वास्तव में सच्चे एवं बड़े वैज्ञानिक होते हैं, और उनका कथन ही वैज्ञानिक होता है, वे सत्य के प्रेरणा स्रोत होते हैं। उनका उपदेश न केवल भौतिक उपलब्धियों तक ही सीमित होता है, अपितु जीवन के परम लक्ष्य तक का मार्ग दर्शन करता है। उसमें नर से नारायण, आत्मा को परमात्मा बनाने की क्षमता होती है। मानसिक और आत्मिक स्वास्थ्य, शांति और समाधि के लिए ऐसे महापुरुषों के निर्देशानुसार विवेक पूर्ण जीवन चर्या आवश्यक होती है। उसके विपरीत आचरण कर शरीर को स्वस्थ रखने की कल्पना शारीरिक रोगों से भले ही क्षणिक आंशिक राहत दिला दे, अन्ततोगत्वा हानिकारक होती है, भविष्य के लिये कष्टदायक हो सकती है।

क्या स्वास्थ्य हेतु शरीर विज्ञान का ज्ञान आवश्यक है ?

प्रश्न खड़ा होता है कि बिना शरीर विज्ञान की विशेष अथवा पूर्ण जानकारी के क्या स्वस्थ नहीं रहा जा सकता ? क्या मात्र साधारण, सरल परन्तु आवश्यक जानकारी, मूल सैद्धान्तिक नियमों का पालन कर हम स्वस्थ जीवन नहीं जी सकते ? क्या अनुभवी चिकित्सक एवं दूसरों के रोगों का उपचार करने वाले स्वास्थ्य विशेषज्ञ शरीर की विशेष जानकारी के बावजूद बीमार नहीं होते ? जिस प्रकार बिजली का बटन चालू करते ही बल्ब से हमें प्रकाश मिलने लगता है। पंखा चालू हो जाता है अथवा अन्य बिजली के उपकरणों का हम उपयोग कर सकते हैं। बटन चालू करने की प्रक्रिया बहुत ही सरल और सहज होती है, जिसे जनसाधारण आसानी से सीख सकता है। बटन चालू करने से पूर्व बिजली घर से बिजली के उपयोग करने की स्वीकृति रोजाना नहीं लेनी पड़ती है। बिजली का उपयोग करने वालों को यह जानने की आवश्यकता नहीं होती कि बिजली का आविष्कार किसने किया ? कब किया ? कैसे किया ? उसको यह जानने की भी आवश्यकता नहीं होती कि बिजली का प्रवाह कैसे होता है ? मात्र चालू करने की सरलतम विधि जानने वाले उपलब्ध विद्युत ऊर्जा का लाभ उठाने लग जाते है। बटन चालू करने की विधि के साथ बिजली के उपकरण का प्लक से सम्बन्ध जोड़ना, बिजली के नंगे तारों को न छूना, फ्यूज बदलने जैसी सामान्य जानकारी रखने वाला बिजली का अधिकाधिक उपयोग कर सकता है।

मोटर कार चलाने वाले चालक को प्रायः कार के समस्त पुर्जों की विस्तृत जानकारी नहीं होती । मात्र उसे कुछ मुख्य बातों की जानकारी, प्रशिक्षण और सावधानी रखनी पड़ती है। जैसे वाहन के चक्के में हवा का दबाव बराबर

"जिस स्तर का रोग होता है, उसी स्तर पर किया गया उपचार प्रभावशाली एवं स्थायी होता है।"

रखना, पेट्रोल अथवा काम में आने वाले अन्य ईंधन का ख्याल रखना, गाड़ी की गति का नियन्त्रण, कहाँ पर कितना रखना तथा ब्रेक का उपयोग कहाँ, कब और कैसे करना आदि की सामान्य जानकारी से मोटर कार का उपयोग कर सकता है ठीक उसी प्रकार शारीरिक अवयवों की सम्पूर्ण जानकारी के अभाव में भी आवश्यक मूलभूत चन्द सिद्धान्तों और नियमों जैसे-जीवन के लिए आवश्यक भोजन, पानी, हवा, धूप का प्रयोग कब, कहाँ और कैसे करना, प्रकृति के अनुकूल दिनचर्या और रात्रि चर्या, व्यायाम, आराम, स्वाध्याय, ध्यान, मौन की साधना कब और कैसे करना तथा सन्तुलन कैसे बनाये रखना और सन्तुलन बिगाड़ने वाली बातों से कैसे बचना आदि का पालन कर कोई भी स्वस्थ जीवन जी सकता है ?सारांश यह है कि **जनसाधारण को मात्र इतनी जानकारी हो जाए कि शरीर में असन्तुलन क्यों और कैसे बिगड़ता है ? शरीर की प्रतिकारात्मक शक्ति क्यों और कैसे कम होती है ? उससे कैसे बचा जा सकता है ? शरीर की प्रतिकारात्मक शक्ति को कैसे बढ़ाया जा सकता है ? शरीर, मन, और आत्मा के विकारों को कैसे दूर किया जा सकता है ? मात्र इतनी जानकारी रखने वाला और उसके अनुरूप आचरण करने वाला आसानी से स्वस्थ जीवन जी सकता है।**

स्वावलम्बी चिकित्साओं की विशेषताएं

- सहज, सरल, सस्ती, सनातन, स्थायी।
- दुष्प्रभावों की संभावनायें नघण्य।
- पूर्ण अहिंसक।
- निदान में अप्रत्यक्ष रोगों की उपेक्षा नहीं।
- शरीर विज्ञान की विस्तृत जानकारी आवश्यक नहीं।
- प्रभावशाली एवं पूर्णतः वैज्ञानिक।
- उपचार का प्रभाव शरीर, मन और आत्मा पर।
- साधन, साध्य एवं सामग्री पवित्र।
- आधि-व्याधि और उपाधि के संतुलन से समाधि की प्राप्ति।

स्वास्थ्य-प्राप्ति में अवरोधक बातें

रोग क्यों ?

स्वस्थता के मापदण्ड जानने के पश्चात् , चाहते हुए भी हम स्वस्थ क्यों नहीं होते ? अतः उन सभी कारणों की जानकारी आवश्यक है, जो हमें रोगी बनाने में सहायक बनते हैं। रोग होने के अनेक कारण होते हैं। जैसे पूर्व जन्म के संचित असाता वेदनीय कर्मों का उदय, पैतृक संस्कार और वंशानुगत रोग, आकस्मिक दुर्घटनाएँ, आस-पास का बाह्य प्रदूषित वातावरण, मौसम का परिवर्तन एवं उसके प्रतिकूल आचरण, पारिवारिक जिम्मेदारियाँ, सामाजिक कुरीतियों का पालन, स्वास्थ्य विरोधी सरकारी नीतियाँ, कानून, सुविधाएँ, प्रोत्साहन, स्वास्थ्य को बिगाड़ने वाले रुढ़िवादी धार्मिक अनुष्ठानें का पालन, जीवन निर्वाह हेतु स्वास्थ्य विरोधी व्यावसायिक वातावरण, आर्थिक कठिनाईयाँ, अपव्यय, बदनामी, प्राकृतिक आपदाओं का प्रकोप, असंयम, दुर्व्यसनों का सेवन, अकरणीय पाश्विक वृत्तियाँ, मिलावट एवं रासायनिक खाद और कीटनाशक दवाईयों से प्रभावित उपलब्ध आहार सामग्री, असाध्य एवं संक्रामक रोगों के प्रति प्रारम्भ में रखी गई उपेक्षावृत्ति, अनावश्यक दवाओं का सेवन तथा शारीरिक परीक्षण, इलैक्ट्रोनिक किरणों (एक्स रे, टी.वी., सोनोग्राफी, कम्प्यूटर, सी.टी. स्केनिंग, मोबाइल फोन एवं अन्य प्रकार की आणविक तरंगों) का दुष्प्रभाव, प्राण ऊर्जा का दुरुपयोग या अपव्यय , आराम, निद्रा, विश्राम का अभाव, क्षमता के प्रतिकूल श्रम करना, मल-मूत्र को रोकना, अति भोजन, अति निद्रा, शरीर में रोग प्रतीकारात्मक शक्ति का क्षीण होना, गलत अथवा अधूरे उपचार तथा दवाओं का दुष्प्रभाव, वृद्धावस्था के कारण इन्द्रियों का शिथिल हो जाना। प्रमाद, आलस्य, अविवेक, अशुभ चिन्तन, आवेग, अज्ञान, असजगता, हिंसक, मायावी, अनैतिक जीवन शैली, जिससे सदैव तनावग्रस्त एवं भयभीत रहने की परिस्थितियाँ बनना आदि रोगों के मुख्य कारण होते हैं। कुछ कारण तो हमारे नियन्त्रण में होते हैं कुछ कारण नहीं। फिर भी हमारी आत्मा में अनन्त शक्ति होने से यदि सजगता और स्वविवेक पूर्ण जीवन शैली अपनायी जावे तो रोग के जो कारण हमारे नियन्त्रण में नहीं हैं, उनके प्रभाव को भी कम किया जा सकता है। **जीवन में सभी को सदैव सभी प्रकार की अनुकूलताएँ प्रायः नहीं मिलती। प्रतिकूल परिस्थितियों को स्वस्थ चिन्तन, मनन एवं सम्यक् आचरण द्वारा अपने अनुकूल बनाया जा सकता है, यही स्वास्थ्य का मूल सिद्धान्त और स्वस्थ जीवन की आधारशिला होती है।** हमारा चिन्तन और आचरण जितना-जितना सम्यक् होगा, उतने-उतने हम स्वस्थ होते जायेंगे।

जीवन की गलत प्राथमिकताएँ

मानव जीवन का उद्देश्य क्या है? खाना-पीना, मौज-शौक करना और सो जाना और दूसरे दिन प्रातः उठकर पुनः उन्हीं कार्यों में लग जाना। यह सभी कार्य तो पशु भी करते हैं। ऐसे जीवन जीने वाले मनुष्य और पशु में क्या अन्तर? मानव में चेतना का सर्वाधिक विकास होने के कारण एक विशेषता होती हैं कि वह जानता भी है और समझता भी है कि वह क्या कर रहा है? क्यों कर रहा है? क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए ? मानव में ही चिन्तन, मनन की अपूर्व क्षमता, बुद्धि तथा विवेक होता है। जिससे भूत की भूलों का सुधार और भविष्य के सुखद जीवन की कल्पना एवं सम्यक् पुरुषार्थ कर सकता है । अतः मानव से ही अपनी क्षमताओं के अनुरूप सही उद्देश्य एवं लक्ष्य के प्रति आगे बढ़ने की अपेक्षा रखी जा सकती है। मानव और पशु जीवन में अन्तर तो होना ही चाहिए। मानव प्राणी मात्र के लिए उपयोगी होते हुए अपने जीवन का सम्पूर्ण विकास कैसे कर सके? यही मानव जीवन की सफलता का सच्चा मापदण्ड है।

जिन्दगी क्षण-प्रतिक्षण बीत रही है। मनुष्य जीवन में हमें अनन्त शक्तियाँ सहज रूप से प्राप्त होती है, परन्तु अज्ञानवश हम उनका सदुपयोग नहीं कर पाते। अपने जीवन के लक्ष्य के प्रति हम कितने सजग और सक्रिय हैं जिसका प्रत्येक मानव को सम्यक् चिन्तन करना चाहिए।

आभूषण की डिब्बी का तभी तक महत्त्व होता है, जब तक उसमें बहुमूल्य आभूषण होते हैं। बटुए (पर्स) का मूल्य उसमें रखे पैसों के आधार पर होता है। ठीक उसी प्रकार मानव शरीर का मूल्य तभी तक होता है, जब तक उसमें आत्मा होती है। जिस प्रकार आभूषण से शून्य डिब्बी और रुपयों के बिना बटुए का विशेष मूल्य नहीं होता और जो व्यक्ति आभूषणों और रुपयों से ज्यादा डिब्बी और बटुए को महत्त्व देता है, उसे बुद्धिमान नहीं समझा जाता। समझदार व्यक्ति पर्स और डिब्बी दोनों क़ा ख्याल रखता है, परन्तु सुरक्षा हेतु ज्यादा आभूषणों और रुपयों को महत्त्व देता है तथा उनकी अनुपस्थिति में डिब्बी और बटुए की उपेक्षा करते हुए भी संकोच नहीं करता। उसकी प्राथमिकता आभूषण और रुपयों की होती है। ठीक उसी प्रकार समझदार ज्ञानी व्यक्ति की सर्वोच्च प्राथमिकता शरीर को स्वस्थ रखने के साथ-साथ आत्मा को विकारों से मुक्त करने की होती है। अतः शरीर को स्वस्थ रखने के लिए आत्मा की उपेक्षा नहीं करता। उसको विकारी नहीं बनाता। उसका प्रथम प्रयास तो आत्मा को विकारों से मुक्त बनाने का ही होता है। कभी-कभी आत्मोत्थान हेतु शरीर की उपेक्षा करते हुए भी संकोच नहीं करता। आध्यात्मिक जीवन

"सोते को जगाया जा सकता है, परन्तु जो आधुनिकता के नाम पर अन्धानुकरण करते हैं एवं भ्रामक विज्ञापनों को ही चिकित्सा का वैज्ञानिक आधार मान, अपने, चिन्तन तर्क, गवेषणा को सुसुप्त किये हुये हैं, उनकों स्वयं के प्रति भी कैसे ईमानदार समझा जाये ?

जीने वालों का ऐसा ही दृष्टिकोण होता है।

सही सोच का अभाव

सम्यक् चिन्तन के अभाव में कभी-कभी व्यक्ति का सोच, मायावी विज्ञापनों, भीड़, तत्कालिक लाभ, बाह्य चकाचौन्ध से प्रभावित हो सकता है। परिणामस्वरूप व्यक्ति अपने लक्ष्य का सही निर्धारण नहीं कर पाता। ऐसी अवस्था में व्यक्ति अपनी क्षमताओं और प्राथमिकताओं से भी प्रायः परिचित नहीं होता। सही जानकारी के अभाव में या आंशिक जानकारी के कारण व्यक्ति कभी-कभी गलत को सही और सही को गलत मानने की भूल कर सकता है। उसकी प्राथमिकताएँ स्वयं के भविष्य के लिए उपयोगी होने के बजाय हानिकारक हो सकती है। फलतः उसका भविष्य तनावग्रस्त दुःखी, अस्वस्थ अथवा संक्षिप्त में कहें तो अन्धकारमय बन जाता है।

वाणी के दुरुपयोग से भी जो शरीर में अव्यवस्था और असंतुलन होता है। उसका प्रारम्भिक प्रभाव मानसिक रोगों पर होता है। वाणी को सुनकर हंसना, मुस्कराना, डाँटना, चेहरे का रूप बदलना उसका द्योतक होता है। परन्तु अधिकांश चिकित्सक और रोगी तथा उनके परिजन आन्तरिक मानसिक रोगों को तो रोग मानते तक नहीं । तब उनके उपचार एवं निवारण के बारे में सोचने का तो प्रश्न ही नहीं होता। परन्तु दुर्घटना, पैतृक, जन्म जात रोगों को छोड़ अधिकांश रोगों का कारण नकारात्मक भावों से प्रारम्भ होता है और जब तक सम्यक् चिन्तन द्वारा उसे बदला नहीं जाता तब तक दीर्घकालीन स्थायी स्वास्थ्य की प्राप्ति संभव नहीं होती। **रोग का कारण जब तक बना रहेगा रोग होने की संभावना बनी रहती है।**

असंयमित जीवन शैली

प्रत्येक व्यक्ति जीवन पर्यन्त स्वस्थ एवं सुखी रहना चाहता है। स्वस्थ रहना जीव की स्वाभाविक सम्पदा है। आत्मा का स्वभाव भी है। कोई भी व्यक्ति रोगी बनना नहीं चाहता। परन्तु चाहने मात्र से तो स्वास्थ्य, शान्ति और समाधि नहीं मिल सकती। स्वस्थ रहने की कामना रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति को उन सभी कारणों से बचना चाहिए जो उनका स्वास्थ्य बिगाड़ते हैं। हमे मानव जीवन में पर्याप्तियों के रूप में आहार , शरीर, इन्द्रियाँ , श्वास लेने की शक्ति, वाणी के रूप में भाषा और मन आदि ऊर्जा के जो मूल स्रोत प्राप्त हुए हैं, उनका उपयोग करते समय हमें संयम रखना चाहिए। उनकी क्षमताओं का अधिक से अधिक सम्यक् उपयोग करना चाहिए। परन्तु कभी भी अनावश्यक दुरुपयोग नहीं करना चाहिए। साथ में वर्तमान में उपस्थित उन कारणों को दूर करने के लिए सम्यक् पुरुषार्थ करना चाहिए, जिसके कारण व्यक्ति रोगी अथवा विकारों से ग्रस्त बना हुआ है। सुखी जीवन के लिए सिर्फ शरीर का होना ही काफी नहीं होता, अपितु शरीर का स्वस्थ, नीरोग और बलवान होना भी आवश्यक है। **अनेक व्यक्ति बाह्य रूप**

से बलिष्ठ, पहलवान जैसे दिखने के बावजूद कभी कभी असाध्य रोगों से पीड़ित पाए जाते हैं, जबकि इसके विपरीत कभी -कभी बाह्य दृष्टि से दुबले-पतले दिखने वाले कुछ व्यक्ति मोटे-ताजे दिखने वाले व्यक्तियों की अपेक्षा ज्यादा मनोबली, आत्मबली और स्वस्थ हो सकते हैं।

अपनी आदतों की दासता के कारण हम अप्राकृतिक जीवनशैली की बुराईयों को जानते, मानते, स्वीकारते हुए भी छोड़ना नहीं चाहते। हमारी असजगता, अविवेक, उदासीनता, निष्क्रियता, स्वच्छन्दता, अनियमितता, अज्ञानता, सम्यक् आचरण के प्रति उपेक्षावृति, हानिकारक प्रवृत्तियों के प्रति लगाव, अनुमोदन या तटस्थता अर्थात् जैसा चलता है चलने दें, यह मनोवृत्ति अस्वस्थता का मुख्य कारण होती है। अत: **स्वस्थ रहने की कामना करने वालों को अपनी जीवन-चर्या का निर्वाह करते समय अपनी क्षमताओं का सजगता, स्वविवेक, संयम और सन्तुलन के साथ सम्यक् पालन करना चाहिए।**

शरीर की स्वाभाविक विसर्जन क्रियाओं में अवरोध

शारीरिक रोग होने का एक कारण यह भी है कि सहज रूप से शरीर में उत्पन्न होने वाले वेगों को जबरदस्ती या आलस्य वश रोकना, जैसे-मल, मूत्र, छींक, डकार, गुदा की वायु, निद्रा, प्यास, आंसू, वमन, उबासी इत्यादि को रोकना।

जब तक शरीर में विजातीय तत्त्वों के निष्कासन में सहयोगी अंग सशक्त रहते हैं, सही रूप में कार्य करते हैं, रोग होने की संभावना कम रहती है। परन्तु **जब विजातीय तत्त्वों के विसर्जन की क्रिया शिथिल पड़ जाती है या उसमें अवरोध आ जाता है तो शरीर में विकार संग्रहित होने लगते हैं। शरीर की अस्वस्थता का कारण यह विकार बन जाता है। परिणाम स्वरूप रक्त प्रवाह और चेतना का प्रवाह बराबर नहीं होता तथा उसका परिणाम होता है -रोग।**

"शरीर, मन और आत्मा के बारे में अधिकांश व्यक्तियों को प्रायः जानने सोचने समझने की जिज्ञासा ही नहीं होती। क्या गलत और क्या ठीक ? क्या उचित और क्या अनुचित ? क्या करणीय तथा क्या अकरणीय ? क्या प्राथमिक अथवा अति आवश्यक और क्या साधारण अथवा अनावश्यक ? प्रकट होने वाले प्रत्येक रोग के लक्षण का कारण एवं मूल क्या ? क्यों ? कब ? कितना ? जानने का प्रयास करें। समस्या अथवा रोग का पता लग जाएगा। शरीर क्या स्वीकार करता है, और क्या नहीं, समझ में आ जाएगा।"

स्वास्थ्य हेतु शरीर को प्राथमिकताक्यों ?

बिना कारण कार्य नहीं होता

आधुनिक वैज्ञानिकों द्वारा मान्य सर्वसम्मत वैज्ञानिक सिद्धान्त है कि बिना कारण कोई कार्य नहीं होता। प्रत्येक कार्य अथवा घटना के पीछे प्रत्यक्ष या परोक्ष कुछ न कुछ कारण अवश्य होते हैं। बिना कारण कुछ भी घटित नहीं हो सकता। हमें जो मनुष्य की योनि के साथ में संयोग-वियोग, सुख-दुःख, अनुकूलताएँ - प्रतिकूलताएँ मिलती हैं, उसके पीछे हमारे पूर्व संचित कर्मों का प्रभाव होता है। **यदि अच्छे का फल अच्छा और बुरे का फल बुरा न मिले तो प्रकृति की सारी व्यवस्थाएँ ही डगमगा जाती है।**

पुनर्जन्म को न मानने वाले दर्शन मृत्यु के साथ ही जीवन की समाप्ति मानते हैं। परन्तु जीव की विभिन्न योनियाँ और एक ही योनि में जैसे-मानव योनि में प्रत्येक व्यक्ति के विकास, परिस्थितियों, संयोग-वियोग, अनुकूलता प्रतिकूलता, सुख-दुःख, स्वस्थ-रोग का जितना सूक्ष्म एवं तार्किक विश्लेषण कर्म सिद्धान्त में मिलता है, उतना तर्क संगत अन्यत्र नहीं मिलता। जब तक आत्मा अपने शुद्ध स्वरुप को प्राप्त नहीं हो जाती, तब तक जन्म मरण से मुक्त नहीं हो सकती तथा इस लोक की विभिन्न योनियों में अपने कर्मों के अनुसार जीव परिभ्रमण करता रहता है। इसीलिये प्रत्येक आत्म-दर्शन में विश्वास रखने वालों का अंतिम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति ही होता है। अतः पूर्व जन्म पर श्रद्धा एवं कर्मों के परिणामों को जानना, समझना जरूरी है। इस जीवन के भूतकाल अथवा पूर्व जन्म में किए गए शुभ या अशुभ कर्मों का परिणाम मिले बिना नहीं रहता। परिणामों के आधार पर उत्पन्न समस्याओं के मूल कारणों का सही पता लगाया जा सकता है। उन्हें समझा जा सकता है। साथ ही भविष्य में सजगता और सद् विवेक पूर्वक जीवन जीते हुए उन कारणों से सहज बचा जा सकता है। जो रोग का कारण होते हैं उन कारणों को दूर करने का सम्यक् पुरुषार्थ किया जा सकता है। यही स्वास्थ्य का राजमार्ग है। अतः आत्मा को समझे बिना तथा उसकी उपेक्षा करने से हम पूर्ण रूप से रोग मुक्त जीवन नहीं जी सकते।

आत्मा को समझे बिना उसका मूल्य और महत्त्व कैसे पता लग सकता है? जीवन में उसकी उपेक्षा होना सम्भव है। आत्मा के विकार, मन, बुद्धि और वाणी को कैसे प्रभावित करते हैं? हमारे स्वास्थ्य को क्यों और कैसे बिगाड़ते हैं? आसानी से समझ में नहीं आ सकते। रोग के कारण बने रहने से पूर्ण स्वास्थ्य की भावना मात्र कल्पना बन कर

रह जाती है। **जिस प्रकार पेड़ की जड़ को सींचे बिना, मात्र फूल पत्ते को पानी पिलाने से वृक्ष सुरक्षित नहीं रह सकता, ठीक उसी प्रकार आत्मा को शुद्ध, पवित्र, विकार-मुक्त किए बिना शरीर, मन और मस्तिष्क स्वस्थ नहीं रह सकते। रोग की उत्पत्ति का मूल कारण आत्मा में कर्मों के विकार ही होते हैं। संचित कर्मों के अनुरूप व्यक्ति को शरीर, मन, बुद्धि, परिवार, समाज, क्षेत्र, पद, प्रतिष्ठा और भौतिक साधनों की उपलब्धि होती है। रोग की अभिव्यक्ति भी पहले भावों अथवा विचारों में होती है। तत्पश्चात् मन में, उसके बाद शरीर के अन्दर एवं अन्त में बाह्य लक्षणों के रूप में प्रकट होती है।** व्यक्ति के हाथ में तो मात्र सम्यक् पुरुषार्थ करना ही होता है। परन्तु सभी पुरुषार्थ करने वालों को एक जैसा परिणाम क्यों नहीं मिलता? उसके पीछे पूर्व संचित कर्मों का ही प्रभाव होता है।

दुःख - रोग का मूल

जीवन में सुख-दुःख आते जाते रहते हैं। दुःख के कारण व्यक्ति में चिन्ता, तनाव, निराशा, भय, अधीरता, नकारात्मक सोच, चिड़चिड़ापन, घबराहट आदि संवेदनाओं के लक्षण प्रकट होने लगते हैं। परिणाम स्वरूप शरीर को ऊर्जा देने वाले ऊर्जा चक्र तथा हारमोन्स बनाने वाली अन्तःस्रावी ग्रन्थियों की कार्य-प्रणाली एवं अन्य अवयव बनाने वाली शारीरिक क्रियाएँ अस्त-व्यस्त होने लगती हैं। श्वसन-तन्त्र, पाचन-तन्त्र, नाड़ी-तन्त्र, अस्थि-तन्त्र, रक्त परिभ्रमण-तन्त्र, विजातीय तत्त्वों के विसर्जन में सहयोगी अंगों की कार्य प्रणाली आदि प्रभावित होने लगती है। शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता क्षीण होने लगती है। नवीन कोशिकाओं का सर्जन घट जाता है। फलतः शरीर में आवश्यक अवयवों का निर्माण बराबर नहीं हो पाता। प्राण ऊर्जा का प्रवाह असन्तुलित होने लगता है, जिससे कुछ अंग आवश्यकता से ज्यादा सक्रिय हो जाते हैं तो इसके विपरीत कुछ अंगों की सक्रियता घटने लग जाती है अथवा वे निष्क्रिय होने लगते हैं। **शरीर में सभी अंगों का आपसी तालमेल बिगड़ने लगता है तथा सभी अंग लयबद्ध ढंग से कार्य नहीं करते - यही तो रोग होता है।** परन्तु आज के चिकित्सकों के पास दुःख के इन कारणों को दूर करने की कोई दवा और उपचार नहीं है। अतः रोग के मूल कारण की उपेक्षा कर व्यक्ति को स्वस्थ रखने अथवा करने का दावा कितना अव्यावहारिक, अपूर्ण और अविश्वसनीय है, जिस पर प्रत्येक स्वास्थ्य प्रेमी को सम्यक् चिन्तन करना चाहिए। **चिकित्सा के क्षेत्र में लम्बे चौड़े दावों के बावजूद दुःख जो रोग का मूल है, तनाव, भय, निराशा, घबराहट आदि जो रोग के कारणों के जनक हैं, उनको मांपने, समझने और दूर करने का सर्वमान्य उपाय तक का पता नहीं। ऐसे उपचार का लक्ष्य रोग में राहत दिलाने तक ही सीमित होता है-पूर्ण स्वस्थता का नहीं हो सकता।**

दुःख का मूल-राग और द्वेष

दुःख का कारण है नाशवान वस्तुएँ जिनका निश्चित वियोग होने वाला है, उनके प्रति बन्धन, आकर्षण अथवा राग भाव। बन्धन मुख्यतः तीन प्रकार का होता है। प्रथम अपने शरीर के प्रति, दूसरा स्नेही परिजन जिन्हें हम

अपना समझ रहे हैं। तीसरा धन, सम्पदा, पद, प्रतिष्ठा, वस्तुएँ जिन्हें हमने स्थायी रूप से अपना मान लिया है। हमारा समस्त प्रयास इन तीनों की अनुकूलताओं को सदैव बनाएँ रखने का होता है। हमारी सदैव यही भावना और कामना रहती है कि हमारा शरीर सदैव स्वस्थ, सुन्दर, शक्तिशाली और रोगमुक्त रहे। परिजनों का वियोग न हो। वे सदैव स्वस्थ रहें तथा धन, वैभव, पद, प्रतिष्ठा में उत्तरोत्तर अभिवृद्धि हो। **हम सदैव यही भावना रखते हैं कि जैसा मै चाहता हूँ वैसा ही हो। जो मैं नहीं चाहता, जो हमारे प्रतिकूल है, वैसा हमारे जीवन में घटित न हो। परन्तु प्रायः जैसा हम चाहते हैं, वैसा हमेशा होता नहीं। जैसा होता है वह हमेशा अच्छा लगता नहीं। जो हमें अच्छा लगता है, प्रायः सदैव रहता नहीं। ऐसा प्रकृति का सनातन नियम है।** अधिकांश व्यक्तियों के जीवन में रोग, वियोग, वृद्धावस्था और मृत्यु का दुःख प्रायः आता ही है।

दुःख का मूल होता है-राग और द्वेष का होना। **प्रियजनों के संयोग में सुख का अनुभव करने वाला, उनके वियोग में दुःखी हुए बिना नहीं रह सकता। अनुकूलताओं में हर्षित होने वालों, खुशियाँ मनाने वालों को प्रतिकूलताओं के दुःख में व्याकुल होना स्वाभाविक होता है। लाभ, मान, प्रतिष्ठा में झूमनेवाला, हानि तथा पद, प्रतिष्ठा के चले जाने पर परेशान हुए बिना नहीं रह सकता। वियोग, प्रतिकूलता और हानि में जो निमित्त बनेंगे, उनके प्रति समभाव रखने वाला, वियोग एवं प्रतिकूलताओं को सहजता से सहन करने के कारण अपेक्षाकृत कम दुःखी होगा। दुःख के कारण स्वयं में खोजेगा।**

राग और द्वेष न करना, समभाव में रहना, व्यक्ति के स्वयं के नियन्त्रण में होता है। अतः जो समभाव में रहता है वह अपेक्षाकृत कम भयभीत, तनावग्रस्त, अधीर, निराश अथवा रोग-ग्रस्त होगा अर्थात् स्वस्थ जीवन जीने वाला होगा। जितनी ज्यादा समता,उतनी ज्यादा शान्ति और समाधि का अनुभव करेगा। अतः अस्वस्थता का एक मुख्य कारण हमारा राग, द्वेष के प्रति अलग-अलग दृष्टिकोण का होना है। जिस प्रकार रंगीन चश्मा पहने व्यक्ति को सभी पदार्थ उसी रंग के दिखाई देते हैं, वास्तविक रंग में नहीं दिखाई देते, ठीक उसी प्रकार जब तक राग-द्वेष का भाव रहेगा तब तक व्यक्ति सभी परिस्थितियों, वातावरण रिश्तों,अनुकूलताओं और प्रतिकूलताओं का आंकलन सही ढंग से नहीं कर सकता है। जिसका परिणाम होता है—कभी-कभी बिना कारण दुःख, चिन्ता, तनाव भय आदि। **अतः स्वस्थ जीवन जीने हेतु हमें समता, सन्तुलन का पालन करना होगा तथा विषमता और असन्तुलन पैदा करने वाले कारणों से यथा संभव बचना होगा।** जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति तो प्रायः जन साधारण के लिये संभव हो सकती है, परन्तु संतोष के अभाव में तृष्णा के कारण सभी कामनाओं की पूर्ति लगभग असम्भव होती है। कामनाओं की पूर्ति न होना भी दुःख का दूसरा मूल कारण होता है। अतः हम यथासंभव अनावश्यक कामनाओं से बचें। सम्यक् पुरुषार्थ से जो कुछ उपलब्ध है, उसका सदुपयोग कर प्रसन्न रहें।

शक्ति का स्रोत : चेतना का विकास

चेतना के दो स्तर होते हैं—सुप्त और जागृत। जब अन्तर्मन और ज्ञान केन्द्र सुसुप्त होते हैं तब हम सब कुछ होकर भी कुछ नहीं होते हैं। परन्तु जब अन्तर्मन और ज्ञान केन्द्र जागृत होते हैं तब हमारी प्रतिभा, शक्ति और समृद्धि का मार्ग प्रशस्त हो जाता है और जीवन की सार्थकता मन की शान्ति और तनाव मुक्ति फलित होती है। ये ही तो अच्छे स्वास्थ्य के मापदण्ड होते हैं।

चेतना द्वारा मानव मन में निहित विसर्जन शक्ति को नियन्त्रित कर सर्जन शक्ति को बढ़ाया जा सकता है। जब तक व्यक्ति चेतना द्वारा अपने शरीर की शुद्धि व शक्ति के वास्तविक स्वरूप को पुनर्जीवित नहीं करता, तब तक वह भय, अशान्ति और तनाव जैसे रोग के मूल कारणों से अपने आपको सुरक्षित नहीं रख सकता।

चेतन और अचेतन के बीच की भेद रेखा का नाम चेतना है। मनुष्य और अन्य प्राणियों में भी भेद रेखा होती है, उसका कारण होता है,चेतना के विकास का स्तर। चेतना के विकास में कर्मों की भूमिका होती है। जितने जितने कर्मों के बन्धन कम होते हैं, उतना उतना चेतना का विकास भी होता जाता है।

अस्तित्व और जीवन के बोध हेतु विवेक आवश्यक

हमारे जीवन में दो स्थितियाँ है– प्रथम हमारा अस्तित्व अर्थात आत्मा की उपस्थिति और दूसरा है जीवन । प्राय: हम आत्मा को भूल सारे जीवन को जानने और समझने का प्रयास करते हैं। **जन्म और मृत्यु के कारणों को न तो जानते हैं और न अनेकान्त दृष्टि से उसको समझने और मानने के लिए अपने पूर्वाग्रहों के कारण मानसिक रूप से तैयार भी होते हैं।** आहार, इन्द्रिय, श्वासोच्छवास, भाषा और मन आदि पर्याप्तियों के रूप में जो ऊर्जा के स्रोत मिले हैं, वे कैसे कार्य करते हैं? क्या आत्मा आहार करती है? आत्मा आहार नहीं करती, तो क्या शरीर आहार करता है? शरीर भी आहार नहीं करता, यदि ऐसा होता तो मृत्यु के बाद भी शरीर आहार करता। परन्तु **जब आत्मा और शरीर के बीच कोई सम्बन्ध होता है तब ही ऊर्जा के सारे स्रोत-पर्याप्तियाँ कार्य कर सकते हैं।**

आत्मा नहीं बोलती। शरीर भी नहीं बोलता। बोलता है दोनों के बीच का सम्बन्ध। सम्बन्ध है तभी तक जीवन की सारी वृत्तियाँ होती है। **शरीर और अस्तित्व की भिन्नता का बोध ही विवेक होता है। विवेक से हम जीवन के लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं. सुसुप्त शक्ति कोई कार्य नही करती, बिल्कुल निष्क्रिय होती है । शक्ति का जागृत होना एक बात है और उसका सही दिशा में प्रवाहित होना दूसरी बात। लक्ष्य और स्वास्थ्य के अनुरूप अथवा उसके विपरीत यह हमारे स्वविवेक पर ही निर्भर करता है। पद्धतियाँ अनेक हो सकती है परन्तु जिस आलम्बन**

से मन शांत हो, मन की पवित्रता में वृद्धि हो और सहजता से हम अपने अच्छे स्वास्थ्य के लक्ष्य को शीघ्रता से प्राप्त कर सकें, उसी पद्धति को अपनाया जा सकता है। प्रत्येक व्यक्ति की रुचि, ग्रहण करने की क्षमता, भावना, शरीर की संरचना और सामर्थ्य, परिस्थितियाँ आदि अलग-अलग होते हैं, जिनका चयन स्वविवेक से ही किया जा सकता हैं।

स्वास्थ्य हेतु समग्र दृष्टिकोण आवश्यक

सृष्टि में दो तत्त्व मुख्य होते हैं। पहला जीव यानी चेतना अथवा आत्मा तथा दूसरा अजीव यानी जड़। जो चेतना - युक्त होता है, प्राणवान होता है- उसको चेतन अथवा जीव और जो चेतना अथवा प्राणों से शून्य होता है वह अजीव, अचेतन, जड़ आदि नामों से पहचाना जाता है। जीव कभी अजीव नहीं हो सकता और अजीव कभी जीव नहीं हो सकता। जीव अविनाशी होता है, मात्र उसका स्वरूप बदलता है, जबकि जिसका नाश होता है, वह जड़ अथवा अजीव ही होता है। आत्मा चेतना-युक्त है, अजर-अमर होती है। परन्तु शरीर का एक दिन अन्त होता है। **शरीर का चेतन-आत्मा के साथ संयोग ही जीवन है और वियोग मृत्यु है। मृत्यु के पश्चात् शरीर, मन और इन्द्रियों की भांति आत्मा का अन्त नहीं होता। जिस प्रकार पुराना कपड़ा छोड़ कर नया कपड़ा पहना जाता है, ठीक उसी प्रकार भी जब तक उसके साथ उस योनि की आयु की सत्ता रहती है, तब तक आत्मा मानव शरीर में रहती है उसके पश्चात् पुराना शरीर छोड़ कर अन्य योनियों में कर्मों की स्थिति के अनुसार नवीन शरीर धारण कर लेती है। जन्म और मृत्यु के द्वारा केवल शरीर बदला जाता है, आत्मा का कभी अन्त नहीं होता।**

चन्द दिनों के लिए जब कभी हम बाहर प्रवास पर जाते हैं, तब जाने से पूर्व हम अपनी यात्रा और प्रवास हेतु आवश्यकताओं का पूर्ण सजगता से ख्याल रखते हैं। सभी व्यवस्थाएँ करते हैं ताकि हमारी यात्रा और प्रवास सुखद हो, परन्तु कितना आश्चर्य कि मृत्यु के पश्चात् अपने स्वयं के जीव की विभिन्न योनियों में यात्रा और प्रवास को सुखदायी बनाने की तरफ प्रायः अधिकांश व्यक्तियों का ध्यान क्यों नहीं जाता ?

आत्मा और शरीर का सम्बन्ध

जैसा कि बतलाया गया है कि आत्मा और शरीर अलग-अलग है। जब तक दोनों साथ-साथ में होते हैं, तभी तक स्वास्थ्य की समस्या होती है। दोनों के अलग होते ही शरीर की सारी गतिविधियाँ स्वतः समाप्त हो जाती हैं। शरीर की समस्त गतिविधियों के संचालन करने वाली चेतना **(प्राण) और प्राण ऊर्जा भी दोनों से अलग होती है, जिसका निर्माण आत्मा और शरीर के सहयोग से होता है। बिना आत्मा अथवा शरीर प्राण और प्राण ऊर्जा का अस्तित्व नहीं होता।** प्राण और प्राण ऊर्जा को भी प्रायः जनसाधारण एक ही समझते हैं, परन्तु दोनों अलग-अलग होते

हैं। ऊर्जा तो जड़ है, जबकि प्राण में चेतना होती है। गुब्बारे में हवा भरने से उसमें प्राण नहीं आ जाते और न हवा निकालने से गुब्बारे के प्राण चले जाते हैं। ऊर्जा शरीर में बाहर से भीतर आती है या शरीर में श्वसन की प्रक्रिया से बनती है। जबकि प्राण शरीर में जन्म से विद्यमान होता है। प्राण अपने आप में शाश्वत होता है, जबकि प्राण ऊर्जा को श्वास का आलम्बन आवश्यक होता है। अतः प्राण कहें या चेतना, शरीर में आत्मा के ही अंश होते हैं तथा आत्मा शरीर में जिस शक्ति से निश्चित आयुष्य तक ठहरी हुई रहती है, उस शक्ति को प्राण ऊर्जा कहा जा सकता है। उदाहरण के लिए जैसे कोई व्यक्ति मोटर कार चला रहा है तो कार की तुलना तो शरीर से की जा सकती है और जो पेट्रोल के रूप में ईंधन रूपी ऊर्जा इंजिन को बराबर मिलती रहती है उसकी तुलना प्राण ऊर्जा से। जो कार चालक है, उसकी तुलना आत्मा से की जा सकती है। अर्थात् बिना चालक और पेट्रोल के कार नहीं चल सकती। ठीक उसी प्रकार बिना प्राण (आत्मा) और प्राण ऊर्जा के जीवन रूपी गाड़ी नहीं चल सकती। जिसमें प्राण होता है, वही प्राणवन्त होता है। जब किसी की मृत्यु हो जाती है तो, प्रायः हम यही कहते हैं कि व्यक्ति के प्राण निकल गये। यह नहीं कहते कि प्राण ऊर्जा निकल गई। **प्राण की उपस्थिति में ही जीव प्राणी कहलाता है। प्राण हमारी आत्मा**

और स्थूल शरीर के बीच सेतु का काम करते हैं। यानी जैसे बीज का प्राण संकेत प्राण के रूप में होता है।

आते हैं मिल जाते हैं। आयुष्य प्राण के रूप में आत्मा के साथ किसी योनि में सीमित अवधि में रहने की ऊर्जा प्राप्त होती है। श्वसन उस ऊर्जा के प्रवाह को संचालित और नियन्त्रित करता है। जिस प्रकार पेट्रोल समाप्त होते ही कार रुक जाती है, ठीक उसी प्रकार आयुष्य प्राण के समाप्त होते ही जीवन का अन्त हो जाता है। जब तक आयुष्य प्राण रहता है तब तक आँख, नाक, कान, मुँह, स्पर्श आदि पाँचों इन्द्रियाँ और मन तथा वाणी भी अपनी-अपनी प्राण ऊर्जाओं के अनुसार शरीर की गतिविधियों एवं प्रवृत्तियों के संचालन में सहयोग देते हैं। **जिस प्रकार बिजली से प्रकाश, गर्मी, वाहन आदि उपकरणों के माध्यम से अलग-अलग ऊर्जाएँ निर्मित होती है, ठीक उसी प्रकार आयुष्य प्राण और श्वसन प्राण के सहयोग से आँख में देखने, कान में सुनने, नाक में सुगन्ध लेने, जीभ में बोलने, मुँह में आहार करने, शरीर में स्पर्श ज्ञान की ऊर्जा उत्पन्न होती है। यदि हमारी कोई इन्द्रिय अथवा मन की प्राण ऊर्जा क्षीण हो जाती है तो व्यक्ति की वह इन्द्रिय अथवा मन निष्क्रिय हो जाता है। बाकी सभी इन्द्रियाँ अपना कार्य बराबर करती रहती है, परन्तु आयुष्य प्राण के बिना जीवन एक क्षण भी नहीं चल सकता।**

स्वास्थ्य हेतु शरीर, मन और आत्मा का तालमेल जरूरी

आत्मा अथवा उस चैतन्य के प्रति सजगता यानी आरोग्य के प्रति सजगता और उसका विस्मरण अर्थात् रोगों को निमन्त्रण। चैतन्य का मतलब आन्तरिक सजगता। यह वह चिकित्सक है जो सभी में उपस्थित है। हमारी

सारी शारीरिक, एवं मानसिक क्रियाओं का संचालन कर्ता यही तत्त्व है। हम जो आहार करते हैं उसका सप्त धातुओं में परिवर्तन इसी चैतन्य शक्ति द्वारा संपादित होता है। सच्चा चिकित्सक तो चैतन्य ही है। अत: अन्त: प्रेरणा की उपेक्षा न करें। चैतन्य को विकारों से मुक्त करें।

शारीरिक ऊर्जा मिलती है भोजन, पानी, हवा, सूर्य का प्रकाश, व्यायाम, आराम तथा इनसे सम्बन्धित अन्य स्वास्थ्य वर्धक साधनों से। **मानसिक ऊर्जा का संग्रह होता है मन कि स्थिरता से, अर्थात् मौन, एकाग्रता एवं ध्यान से। आत्मिक ऊर्जा मिलती है अशुभ कर्मों की निर्जरा से।** इन सभी के लिए आवश्यक होता है सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन, सम्यक् आचरण और सम्यक् तप । आज बुद्धि, तर्क एवं ज्ञान के क्षेत्र में काफी विकास हुआ है, परन्तु उसका प्रयोग अधिकांश तया भौतिक अथवा जो नाशवान है उसी के लिए हो रहा है। उसमें स्वयं की आत्मा के विकास की शक्ति नहीं। **आत्मा की उपेक्षा करने वाला ज्ञान, बुद्धि विवेक सम्यक् नहीं कहा जा सकता।** ठीक उसी प्रकार हमारी सोच और दृष्टिकोण काफी व्यापक हुई है, परन्तु उसमें आत्म दृष्टि न होने से उस दर्शन को सम्यक् दर्शन नहीं कहा जा सकता। प्रत्येक व्यक्ति आचरण और पुरुषार्थ तो करता ही है परन्तु उसका पुरुषार्थ उसकी क्षमता एवं प्राथमिकतानुसार न होने से सम्यक् पुरुषार्थ नहीं कहा जा सकता। **जब तक ज्ञान, दर्शन और चारित्र अथवा आचरण सम्यक् और मानव जीवन के सही लक्ष्य के अनुरूप नहीं होगा, हमारा जीवन स्थायी रूप से स्वस्थ, सुखी और सफल नहीं हो सकता।**

स्वस्थ जीवन जीने के लिए शरीर, मन और आत्मा, तीनों की स्वस्थता आवश्यक होती है। तीनों एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। तीनों के विकारों को दूर कर तथा सन्तुलित रख आपसी तालमेल द्वारा ही स्थायी स्वास्थ्य को जीया जा सकता है। अत: स्वास्थ्य की चर्चा करते समय जहाँ एक-तरफ हमें यह समझना आवश्यक है कि शरीर, मन और आत्मा का सम्बन्ध क्या है? किसका कितना महत्त्व है? दूसरी तरफ जीवन की मूलभूत आवश्यक ऊर्जा स्रोतों का सम्यक् उपयोग करना होता है तथा दुरुपयोग अथवा अपव्यय रोकना पड़ता है।

आत्म-शुद्धि जीवन की सर्वोच्च आवश्यकता

परन्तु आज जीवन शैली का निर्धारण करते समय तथा स्वास्थ्य के सम्बन्ध में परामर्श देते समय प्राय: अधिकांश चिकित्सा पद्धतियों और चिकित्सकों का सोच मात्र शरीर तक ही सीमित होता है । इसमें कोई संदेह नहीं कि हमारी समस्त गतिविधियों के संचालन में शरीर की प्रमुख भूमिका होती है। सभी कार्य और जीवन, शरीर के अस्तित्व के बिना असम्भव होते हैं। शरीर की अनुपस्थिति में, मन, बुद्धि और वाणी का भी अस्तित्व नहीं होता। फिर भी आत्मा की उपेक्षा कर मात्र शरीर का ख्याल करने का मतलब **कार में पेट्रोल डाल, चालक को भूखा रखने के समान बुद्धिहीनता ही समझना चाहिए। ऐसी कार में निर्विघ्न यात्रा सम्भव नहीं हो सकती। अत: जीवन-यापन करते**

समय हम ऐसी प्रवृत्तियों से यथा -सम्भव बचे, जिससे आत्मा अपवित्र और विकारग्रस्त बनती हो। आत्मा को शुद्ध, पवित्र एवं विकारों से मुक्त रखना हमारे जीवन की सर्वोच्च प्राथमिकता होनी चाहिए। उसका एक मात्र उपाय है - अशुभ कर्मों के बन्धनों से मुक्त जीवनचर्या जीना। आत्म-दर्शन, आत्म-निरीक्षण, आत्मोत्थान की नियमित समीक्षा करना। **अध्यात्म योगी ऐसा ही जीवन जीने से अपेक्षाकृत अधिक स्वस्थ होते हैं। प्रतिकूलताएँ, वियोग, अभाव, परीषह, कष्ट, दुःख आदि परिस्थितियों में भी मस्त एवं प्रसन्नचित्त रहते हैं। यही सुखी एवं स्वस्थ जीवन की सच्ची आधारशिला है तथा ऐसी सोच ही स्वास्थ्य का सच्चा सम्यक् ज्ञान एवं सम्यक् दृष्टिकोण होता हैं।**

आत्मा की उपेक्षा अनुचित

किसी तालाब को खाली करने के लिए आवश्यक है कि तालाब में पहले आते हुए पानी को रोका जाए। उसके पश्चात् तालाब में जो पानी है, उसको पम्प या अन्य विधि द्वारा खाली करना अथवा पानी को सुखाना। ठीक उसी प्रकार आत्मा को शुद्ध, पवित्र बनाने के लिए आवश्यक है कि मानव जीवन में ऐसी प्रवृत्तियों से यथा-सम्भव बचें, जो अशुभ कर्मों के बन्ध का हेतु बन आत्मा को कर्मों से विकारी बनाती है। साथ ही साथ आत्मा पर पहले से जो कर्मों का आवरण है, उसको दूर करने के लिये अनुभवी, निस्पृही, समत्व की साधना में लीन आध्यात्मिक साधकों के मार्गदर्शन में सम्यक् पुरुषार्थ करना चाहिए तथा आत्मा को परमात्मा बनाने का लक्ष्य सार्थक करना चाहिए। **जब तक कर्जा नहीं उतरता व्यापारी ऋण-मुक्त नहीं हो सकता। ठीक उसी प्रकार कर्मों को दूर किये बिना, आत्मा शुद्ध, बुद्ध, मुक्त नहीं बन सकती। ऐसी साधना मनुष्य योनि में ही सम्भव होती है।** महावीर के दर्शन में गुणस्थान स्वरूप के आधार पर आत्मा के विकास की चौदह क्रमिक स्थितियों का विस्तृत विवेचन मिलता है, जिसका सम्यक् आचरण आवश्यक होता है।

मुक्त आत्मा ही परमात्मा स्वरूप होती है। यही स्थायी सम्पूर्ण स्वास्थ्य की अवस्था होती है। आत्म-साधना के लिए शरीर का स्वस्थ होना भी आवश्यक है। अतः **पुस्तक में शरीर को स्वस्थ रखने हेतु ऐसे अहिंसक उपायों की ही विस्तृत चर्चा की गई, जिससे आत्मा विकारी न बने।**

स्वास्थ्य हेतु शरीर को प्राथमिकता क्यों?

स्वस्थ जीवन जीने के लिए शरीर को महत्व देने का प्रथम कारण तो यह है कि रोग से पड़ने वाले प्रभावों का निरीक्षण, परीक्षण, अभिव्यक्ति एवं कष्ट का अनुभव शरीर से ही होता है। अतः जनसाधारण की प्राथमिकता भी पहले शरीर को रोग-मुक्त, कष्ट-मुक्त करने की होती है। दूसरी बात आज उपचार के नाम पर जितने भी साधन उपलब्ध हैं और जो प्रचलन में हैं उनका सम्बन्ध प्रायः भौतिक पदार्थों से ही होता है। भौतिक पदार्थ जड़ शरीर को ही प्रभावित कर सकते हैं. विज्ञान का अत्यधिक विकास हो जाने के बावजूद मानव आज तक भौतिक पदार्थों से शरीर में बनने वाले

किसी भी अवयव का निर्माण नहीं कर सका। पृथ्वी, पानी, अग्नि और वायु में चेतना के अस्तित्व का अनुभव नहीं कर सका, जिनका तीर्थंकरों एवं केवल ज्ञानियों ने अपने ज्ञान द्वारा विस्तृत विवेचन किया है। जो आधुनिक वैज्ञानिकों के लिए शोध का विषय है। मानव ने आज अधिकांश विकास, खोज और उपलब्धियाँ भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में ही अर्जित की है। मानव जड़ पदार्थों का निर्माण ही अपनी इच्छानुसार कर सकता है। चेतन तत्वों का निर्माण या नियन्त्रण एकरूपता के आधार पर अपनी इच्छानुसार उससे सम्भव नहीं हो सका। भले ही आज के वैज्ञानिक टेस्ट ट्यूब बच्चों के जन्म के दावों का बहुत प्रचार करते हों। अत: आधुनिक चिकित्सा पद्धतियों का लाभ जड़ शरीर को ही मिल सकता है। अत: आधुनिक युग में स्वास्थ्य की समस्त कल्पना और सोच मात्र शरीर तक ही सीमित होती है। कोई भी स्वास्थ्य विशेषज्ञ ज्योतिष एवं हस्त रेखा विशेषज्ञों की भांति मनुष्य जीवन के भविष्य में घटित होने वाली घटनाओं और आयुष्य की भविष्यवाणी नहीं कर सकता। आत्मा को विकार-मुक्त करने का मार्ग आध्यात्मिक साधना के रूप में पहचाना जाता है। आत्मा अरुपी है तथा उस पर पड़ने वाले प्रभाव अनुभूति का विषय होने है, जो ज्ञान के क्षयोपशम के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति में अलग-अलग होता है। उसको आज के वैज्ञानिक मापदण्डों के अनुसार न तो भौतिक यन्त्रों से सही मांपा जा सकता है, न दिखाया जा सकता है और न उन अनुभूत परीक्षणों के परिणामों का संकलन ही सम्भव होता है। अनुभूति और परिणामों की विविधता के कारण रोगोपचार के लिए निश्चित प्रक्रिया एवं विधि प्रस्तावित करना भी सम्भव नहीं हो सकता।

मन, वाणी, भावों का अस्तित्व भी प्रत्यक्ष नहीं दिखाया जा सकता। मन और वाणी का योग भी शरीर के अस्तित्व के बिना असम्भव होता है। मन और वाणी के निर्माण हेतु जो पुद्गलों की आवश्यकता होती है, उसका आकर्षण भी शरीर के द्वारा ही होता है। हमारे सामने प्रत्यक्ष अस्तित्व तो शरीर का ही होता है। **शरीर का हमारी चेतना से इतना गहरा सम्बन्ध होता है कि शरीर के अणु-अणु में चेतना व्याप्त होती है। चेतना के बिना शरीर की प्रवृत्तियाँ असम्भव होती है और शरीर के बिना चेतना की अभिव्यक्ति भी नहीं हो सकती। अत: अभिव्यक्ति का सबसे मुख्य साधन शरीर ही होता है। परिणामस्वरूप जो आदेश हम शरीर को देते हैं, वह मात्र शरीर को ही नहीं अपितु वे निर्देश हमारी चेतना को भी मिलते हैं। चेतना उस निर्देश को स्वीकार करती है तथा उसके अनुरूप शरीर को प्रवृत्ति करने हेतु प्रेरित करती है।**

इस प्रकार हमारे समस्त क्रियाकलाप, प्रवृत्तियाँ बाह्य रूप से शरीर पर ही आश्रित होते हैं तथा शरीर के अस्तित्व में आने के बाद ही प्रारम्भ होते हैं। शरीर आत्मा के वाहन का कार्य करता है। खराब वाहन से जीवन के लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया जा सकता। **शरीर मोटर कार की भाँति मानव द्वारा निर्मित यन्त्र नहीं है, जिसके पुर्जे आसानी से बदले जा सके, क्योंकि भौतिक साधनों द्वारा शरीर को खराब होने के पश्चात् छोड़ना ही पड़ता है। अत: जब तक जीवन है, शरीर की सुरक्षा और स्वस्थता आवश्यक होती है, जिससे जीवन यात्रा को निर्विघ्न चलाते हुये सही**

लक्ष्य को प्राप्त किया जा सके। अत: उपचार की प्रचलित चिकित्सा पद्धतियों का आधार शरीर तक ही सीमित होता है और शरीर से ही मन, वाणी, भावों के माध्यम से ही आत्मा को प्रभावित किया जाता है। यद्यपि स्वास्थ्य प्राप्ति का सही क्रम तो आत्मा से शरीर ही होता है। अत: प्रचलित चिकित्सा पद्धतियों और आध्यात्मिक साधना के समन्वय से ही हम स्थायी स्वास्थ्य प्राप्त कर सकते हैं। जब तक जीवन है और मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो जाती, शरीर और आत्मा में से किसी की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

मानव शरीर की चंद विशेषताएं

सुपर कम्प्यूटर जैसा मानव मस्तिष्क
सर्वश्रेष्ठ केमरे के समान मानव की आँखे
सदैव चलने वाले पम्प के समान मानव हृदय
रासायनिक कारखानें के समान मानव का आमाशय एवं पेट
अच्छी संचार व्यवस्था के समान मानव का नाड़ी तंत्र
अच्छी सफाई व्यवस्था के समान मानव की लिम्फ प्रणाली
गुर्दे जैसा शुद्धीकरण यंत्र
सभी अंगों में आपसी समन्वय, सहयोग, तालमेल और अनुशासन
अच्छे प्रशासक के समान अन्तस्रावी ग्रन्थियों की कार्य प्रणाली

स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कुछ प्रमुख सिद्धान्त

प्रकृति से प्रभावित मानव जीवन

चेतनाशील प्राणी सदैव संतुलन बनाये रखने की चेष्टा करते हैं। ब्रह्माण्ड में उपस्थित सभी ग्रह नक्षत्र एवं अन्य ऊर्जाओं से चेतनाशील प्राणी का सीधा संबंध होता है। जब व्यक्ति जन्म लेकर प्रथम स्वतंत्र श्वास लेता है, उस समय उस दिन एवं उस स्थान पर सौर मण्डल से कैसी तरंगे बालक तक पहुंचती हैं, उसका उस बालक के भविष्य से गहरा संबंध होता है अथवा यों कहिये कि व्यक्ति के जैसे कर्म होते हैं, उसी के अनुरूप उन ग्रह नक्षत्रों के तरंगों आदि का प्रभाव बालक के जन्म समय की स्थिति बनाता है।

ब्रह्माण्ड में सभी ग्रह नक्षत्र घूमते हुये अपनी तरंगे निरन्तर फेंकते रहते हैं। जिनका हमारे स्वास्थ्य, वातावरण आकस्मिक घटना से गहरा संबंध होता है। युद्ध, राष्ट्रीय संकट, आकस्मिक दुर्घटनाएँ, राष्ट्रीय स्तर पर व्यापक रूप से फैलने वाले रोग, छूत की बीमारियाँ आदि समस्याएँ आज भी रहस्यमय बनी हुई हैं।

मनुष्य चाहे अथवा नहीं चाहे, इस विशाल ब्रह्माण्ड में उसे असंख्य जीवों तथा पदार्थों के बीच जीना पड़ता है। व्यक्ति में होने वाले प्रतिक्षण बदलाव तथा उसके द्वारा होने वाली गतिविधियों का सम्बन्ध न केवल स्वयं की आत्म स्थिति पर ही निर्भर होता है, अपितु सृष्टि के सनातन नियमों और कानूनों द्वारा प्रभावित होता हैं।

प्रकृति का संचालन निश्चित नियमों और सिद्धान्तों के आधार पर होता हैं। प्रकृति के कानून सनातन होते हैं। किसी की दुआ, इच्छा, कामना अथवा अभिशाप उन्हें बदल नहीं सकते। इसी कारण सूर्योदय का समय प्रत्येक स्थान पर पूर्व निश्चित होता है। वहाँ मानव की मनमानी नहीं चलती। प्रत्येक प्राणी ब्रह्माण्ड का सूक्ष्म रूप होता है। अतः जो घटनाएँ ब्रह्माण्ड में घटित होती है, उसका प्रभाव प्राणी पर भी पड़ता है। जो निर्माण, विनाश, संचालन और नियन्त्रण के सिद्धान्त ब्रह्माण्ड पर लागू होते हैं, प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से मानव पर भी लागू होते हैं।

व्यक्ति का स्वास्थ्य न केवल उसकी व्यक्तिगत जीवनशैली पर ही निर्भर करता है, अपितु उन सभी ऊर्जाओं से भी प्रभावित होता है, जो उसके चारों तरफ कार्य करती हैं। **प्रकृति के साथ अनावश्यक छेड़-छाड़ करने, प्राकृतिक साधनों का अधिकतम दोहन करने से प्रकृति का असन्तुलन बढ़ता है, जिसका परिणाम हमें भूकम्प, ज्वालामुखी, अतिवृष्टि, तूफान, बाढ़, अकाल आदि के रूप में भुगतना पड़ता है। इसी प्रकार जब मानव की जीवनशैली अप्राकृतिक हो जाती है** तो, शारीरिक सन्तुलन बिगड़ जाता है। रोग प्रतिकारात्मक शक्ति कम होने लगती है और हम रोगी बनने लगते हैं। अतः उन सनातन सिद्धान्तों को जानना और समझना आवश्यक है, जो प्राणी जगत पर समान रूप से लागू होते हैं। ऐसे कुछ सरल सिद्धान्तों की सामान्य संक्षिप्त जानकारी मात्र ही पुस्तक में दी जा रही है।

पंच महाभूत का सिद्धान्त

भारतीय प्राचीन चिकित्सा पद्धति के अनुसार संसार के सभी चल अचल पदार्थों की संरचना में आकाश, वायु, अग्नि, पानी और मिट्टी अर्थात् पृथ्वी आदि पंच महाभूत तत्वों की अहं भूमिका होती है। तुलसी दास जी ने भी कहा है – **"क्षिति जल पावक गगन समीरा पंच रचित यह उद्यम शरीरा।"** उनकी इस मान्यतानुसार शरीर के निर्माण, संचालन, नियन्त्रण का प्रमुख आधार भी ये पंच महाभूत होते हैं। पंच तत्त्वों के सहयोग से ही अधिकांश गतिविधियाँ होती हैं। आयुर्वेद, प्राकृतिक चिकित्सा, ज्योतिष एवं वास्तु शास्त्र आदि में शारीरिक रोगों का एक प्रमुख कारण इन पांच तत्त्वों का प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष कारणों से असंतुलन माना गया है।

प्रत्येक व्यक्ति में इन पांचों तत्त्वों का अलग-अलग अनुपात होता हैं। किसी में कोई तत्त्व अधिक होता हैं तो, किसी अन्य में दूसरा तत्त्व अधिक होता है। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार समस्त ग्रहों का प्रभाव व्यक्ति में पंच तत्त्वों की भिन्नता के अनुसार अलग-अलग होता है। इसी कारण दो जुड़वा भाई अथवा बहनों का स्वभाव, चरित्र और जीवन एक जैसा नहीं होता।

शरीर में पंच तत्त्व का प्रभाव द्रव्य, क्षेत्र , काल और भावों के अनुसार बदलता रहता है। हमेशा एक जैसा नहीं रहता। कभी कोई तत्त्व प्रभावी होता है तो थोड़े समय पश्चात् अन्य तत्व। प्रत्येक तत्त्व के तरंगों की गति, उनके स्वाद, सुगन्ध, स्पर्श आदि की संवेदनाएँ और अभिव्यक्ति अलग-अलग होती हैं। वैसे प्रत्येक तत्त्व का संबंध सारे शरीर, मन और मस्तिष्क से होता है। फिर भी वे शरीर की विभिन्न क्रियाओं, अंगों, अवयवों, संवेदनाओं को अलग-अलग ढंग से प्रभावित करते हैं।

मनुष्य शरीर के प्रत्येक भाग में ये पाँचों तत्त्व होते हैं। फिर भी अलग-अलग भागों में इन पाँचों तत्त्वों का अनुपात अलग-अलग होता है। उसी के अनुरूप प्रत्येक अंग अवयव अलग-अलग, अपना-अपना कार्य करते हैं। अपनी-अपनी जिम्मेदारियाँ निभाते हुए कुछ स्वभाविक तो कुछ व्यक्ति की इच्छानुसार प्रवृत्ति करने में सहयोग करते हैं। शरीर में इन पंच तत्त्वों के अनुरूप अवयव बनते हैं और अन्य गतिविधियाँ होती है। पंच तत्त्वों के आवश्यक अनुपात के असंतुलन से रोग और संतुलन से आरोग्य की प्राप्ति होती है।

पृथ्वी तत्त्व

पृथ्वी ठोस होती है। अतः **शरीर में जो ठोस पदार्थ होते हैं, वे पृथ्वी तत्त्व से अधिक प्रभावित होते हैं। जैसे हड्डियाँ, मांस पेशियाँ, त्वचा, नाखून, बाल इत्यादि।** पांचों तत्त्वों में पृथ्वी तत्त्व सबसे भारी होता है। पृथ्वी सभी को आधार देती है। शरीर में पैर उठते-बैठते, चलते-फिरते प्रायः शरीर को आश्रय देते हैं। शरीर का भार वहन करते हैं। पगथली से लेकर गुदा तक पृथ्वी तत्त्व शरीर में अपेक्षाकृत अधिक सक्रिय होता है। अतः पैर सम्बन्धी रोगों में प्रायः पृथ्वी तत्त्व के असन्तुलन की संभावनाएँ अधिक रहती है। साथ ही पृथ्वी तत्त्व की कमी से शरीर में दुर्बलता, कमजोरी, झुरियाँ पड़ना आदि हो जाते हैं, परन्तु **इसके बढ़ने से मोटापा हो जाता है।**

पृथ्वी तत्त्व के असंतुलन से शरीर में जड़ता बढ़ती है। किसी कार्य में एकाग्रता नहीं रहती तथा निर्णय लेने की क्षमता कम विकसित होती है। पृथ्वी तत्त्व घ्राणेन्द्रिय के प्रति अधिक संवेदनशील होता है। जिनकी घ्राणेन्द्रिय सक्रिय होती है, उनमें पृथ्वी तत्त्व का अनुपात अपेक्षाकृत अधिक होता है। मन में दया, कोमलता का भाव, जोखिम उठाने की क्षमता, मस्तिष्क में भारीपन आदि का पृथ्वी तत्त्व से संबंध होता है।

प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा आहार में सुधार और मिट्टी के उपचार द्वारा पृथ्वी तत्त्व के असंतुलन को दूर किया जाता है।

जल तत्त्व

जल तत्त्व पृथ्वी तत्त्व से हल्का और तरल होता है। अतः धरती पर जल रहता है। पृथ्वी ही उसका आधार होती है। उसका बहाव सदैव नीचे की तरफ होता है। **शरीर में गुदा से नाभि तक के भाग में जल तत्त्व की अधिकता होती है। शरीर में जितने तरल पदार्थ होते हैं, जैसे-रक्त, वीर्य, लासिका, मल, मूत्र, कफ, थूक, पसीना, मज्जा आदि का संबन्ध जल तत्त्व से अधिक होता है।**

जल तत्त्व की कमी से शरीर में शुष्कता, त्वचा सम्बन्धी रोग, बालों का समय से पूर्व सफेद होना, प्यास अधिक लगना जैसे लक्षण प्रकट होने लगते हैं। जबकि जल तत्त्व की अधिकता से कफ का बढ़ना, पसीना ज्यादा आना, पेशाब अधिक लगना आदि स्थितियाँ बनती है। शरीर में जल तत्त्व की अधिकता वाले अधिक भावुक और आसक्ति रखने वाले होते हैं। आलस्य और निद्रा की अधिकता रहती है एवं कठिन कार्य करने में अपनी मानसिकता देरी से बना पाते हैं।

जल तत्त्व के असंतुलन से व्यक्ति में आलस्य बढ़ने लगता है। कठोर, परिश्रम वाले कार्यों के करने में कठिनाई अनुभव होती है। स्वभाव में रुखापन होने लगता है। गहरी निद्रा नहीं आती। बात-बात में आवेग आने

लगते हैं। जल तत्त्व की अधिकता वाले रसनेन्द्रिय के प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं। खाने पीने की चीजों के बारे में जल्दी प्रतिक्रिया करते हैं। शुद्ध जल के सेवन, सब्जियों, फलों के रस और अन्य तरल पदार्थों के सेवन से शरीर में जल तत्त्व की पूर्ति होती है।

प्राकृतिक चिकित्सक पानी का अलग-अलग प्रकार से शरीर में उपयोग करवा कर, उषापान, वाष्प स्नान, टब बाथ, एनिमा, नेति एवं अन्य जल सम्बन्धी क्रियाओं द्वारा जल तत्त्व को संतुलित करते हैं।

अग्नि तत्त्व

अग्नि एक ऊर्जा है, जिसका गुण है उष्णता। अग्नि जल से भी हल्की होती है और उसका स्वभाव ऊपर की तरफ उठना होता है। शरीर में नाभि से हृदय तक के भाग में इस तत्त्व की अधिकता होती है। नाभि का क्षेत्र जल तत्त्व और अग्नि तत्त्व के प्रभाव में रहता है । शरीर की उष्णता, जोश, उत्तेजना, स्फूर्ति आदि अग्नि तत्त्व से विशेष सम्बन्धित होते हैं।

अग्नि तत्त्व के असंतुलन से भूख और प्यास बराबर नहीं लगती। स्वभाव में चिड़चिड़ापन, शारीरिक ताकत में बदलाव, आंखों का तेज कम होने लगता है। पाचन बराबर नहीं होता। मस्तिष्क, सूर्य केन्द्र एवं प्रजनन संबंधी रोगों की संभावना बढ़ जाती है। चर्म रोग, जोड़ों का दर्द होने लगता है। धूप सेवन से शरीर में अग्नि तत्त्व की पूर्ति होती है। अग्नि तत्त्व की अधिकता से बुखार आना, शरीर में जलन होना, पित्त बढ़ना, भूख और प्यास ज्यादा लगना, क्रोध अधिक आना, भोग की इच्छा होना आदि लक्षण प्रकट होने लगते हैं। अग्नि तत्त्व का संबंध हमारी चक्षु इन्द्रिय से अधिक होता है। अग्नि तत्त्व की अधिकता वालों की दृष्टि बड़ी पैनी होती है। व्यायाम, धूप स्नान एवं सूर्य प्राणायाम से अग्नि तत्त्व बढ़ता है। जबकि आराम, निद्रा और चन्द्र प्राणायाम से अग्नि तत्त्व कम होता है।

वायु तत्त्व

वायु अग्नि से भी हल्की होती है। अतः अग्नि से ऊपर वाले शरीर के भागों में इसकी अधिकता होती है। शरीर में हृदय से कंठ तक वायु अपेक्षाकृत अधिक होती है। प्रायः वायु अस्थिर होती है। **अतः शरीर में हलन-चलन, संकोचन, फैलने वाली गतिविधियों में इसकी प्रभावी भूमिका होती है।** वायु तत्त्व की अधिकता वाले व्यक्ति स्पर्शेन्द्रिय के प्रति विशेष संवेदनशील होते हैं।

वायु तत्त्व के आवश्यक अनुपात में कमी होने से सम्बन्धित अंगों का हलन-चलन, श्वसन, रक्त प्रवाह, लासिका प्रवाह तथा शरीर में गतिशील अंगों में रोग होने की संभावना रहती है। शरीर में कम्पन अथवा खिंचाव भी हो सकता है। चिंता और भय लगने लगता है। फेंफड़ें, हृदय, गुर्दे आदि अंग विशेष प्रभावित होते हैं। वायु

का अवरोध बढ़ने से गंठिया हो सकता है।

सही ढंग से पूरा, गहरा, दीर्घ श्वांस अथवा प्राणायाम से शरीर में वायु तत्त्व की पूर्ति होती है।

आकाश तत्त्व

आकाश खाली होता है। सभी को स्थान देता है। अतः शरीर में जहाँ-जहाँ रिक्तता होती है, वे भाग आकाश तत्त्व से सम्बन्धित होते हैं। **आकाश तत्त्व की अधिकता वालों की श्रोत्रेन्द्रिय अधिक संवेदनशील होती है। वे प्रत्येक बात को अधिक ध्यान से सुनते हैं। आकाश तत्त्व चारों तत्त्वों को स्थान देता है। हमारे शरीर में पाँचों इन्द्रियों (आंख, कान, नाक, जीभ, स्पर्श) के माध्यम से जो ग्रहण किया जाता है, उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप जो कुछ होता है, उसका सम्बन्ध आकाश तत्त्व से होता है।** जैसे काम, क्रोध, मोह, लोभ, लज्जा इत्यादि। आकाश को निहारने, खुले आकाश में उठने, बैठने, चलने, फिरने, सोने अथवा उपवास करने से इस तत्त्व की पूर्ति होती है।

पंच तत्त्वों का शारीरिक अवयवों एवं प्रवृत्तियों से संबंध

शरीर में प्रत्येक अवयव किसी न किसी पंच महाभूत तत्त्व से संबंधित होता है। जिसकी संक्षिप्त जानकारी नीचे दी जा रही है।

पृथ्वी तत्त्व - अस्थि, त्वचा, मांसपेशियाँ, नाखून, शरीर के बाल

जल तत्त्व - रक्त, वीर्य, मल, मूत्र, मज्जा, पसीना, कफ, लार

अग्नि तत्त्व - निद्रा, भूख, प्यास, आलस्य, शरीर का तेज, क्रोध, पाचन रस, शरीर का तापक्रम

वायु तत्त्व - धारण करना, फेंकना, सिकोड़ना, फैलाना, चलना, बोलना, चिन्तन, मनन, स्पर्श ज्ञान

आकाश तत्त्व - काम, क्रोध, मोह, लोभ, लज्जा, खालीपन, दुःख, चिंता, निर्विकल्पता

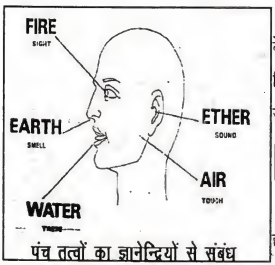

चित्र नं. 1

दुष्प्रवृत्तियों, शारीरिक आवश्यकताओं और रोग संबंधी अवयवों के असंतुलन को संबंधित महाभूत तत्त्व को संतुलित कर आसानी से दूर किया जा सकता है। जिससे व्यक्ति रोग मुक्त, सजग बन सुखी जीवन जीते हुये अपने उच्चतम लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है।

पंच तत्त्वों का ज्ञानेन्द्रियों से संबंध

प्रत्येक तत्त्व का किसी न किसी ज्ञानेन्द्रिय से विशेष संबंध होता है। बिना खाली स्थान ध्वनि की तरंगों का प्रवाह नहीं हो सकता, हमारे कान कार्य नहीं कर सकते। अतः कान यानि श्रवण शक्ति,

आकाश तत्त्व से सीधी संबंधित होती है। बिना वायु स्पर्श ज्ञान नहीं हो सकता। स्पर्श ज्ञान हेतु त्वचा का महत्व होता है। अत: स्पर्शेन्द्रिय एवं त्वचा का संबंध वायु तत्त्व से होता है। दृष्टि और नेत्र का संबंध अग्नि तत्व से होता है। यदि जीभ में शुष्कता आ जाये तो स्वाद की पहचान नहीं होती। अत: जीभ का संबंध जल तत्त्व से होता है। पृथ्वी अलग-अलग गंध वाले पदार्थों का निर्माण करती है। अत: घ्राणेन्द्रिय और नाक उससे संबंधित होते हैं।

ग्रहों एवं राशियों का पंच तत्त्वों से संबंध

पंच तत्त्व मौलिक तत्त्व होते हैं। अत: वे किसी न किसी रूप में हमारी जीवन शैली को प्रभावित करते हैं। सारा ज्योतिष शास्त्र ग्रह, नक्षत्रों एवं राशियों की स्थिति पर आधारित होता है। उनकी शोध के आधार पर पंच तत्त्वों पर पड़ने वाले ग्रहों और राशियों के संबंधों एवं प्रभावों का तुलनात्मक अध्ययन हुआ। निम्न तालिका में पंच तत्त्वों से विशेष संबंधित ग्रहों और राशियों का विवरण दिया गया है।

तत्त्व	संबंधित राशियाँ	संबंधित ग्रह
पृथ्वी	वृष, कन्या, मकर	बुद्ध
जल -	कर्क, वृश्चिक, मीन	चंद्र एवं शुक्र
अग्नि -	मेष, सिंह, धनु	सूर्य एवं मंगल
वायु -	मिथुन, तुला, कुम्भ	शनि
आकाश	—	गुरू

तत्त्वों का स्वाद और त्रिदोषों से संबंध

शरीर में अलग अलग रसों के उत्पादन में अलग-अलग तत्त्वों की भूमिका होती है। इन रसों का शरीर में उपस्थित दोषों को घटाने अथवा बढ़ाने में भी योगदान होता है। अत: आवश्यकतानुसार यदि इन रसों का सेवन किया जाये तो, पंच तत्व और दोषों को संतुलित किया जा सकता है। नीचे तालिका में विभिन्न रसों का पंच तत्त्वों एवं दोषों संबंध दर्शाया गया हैं।

रस/स्वाद	रसों के उत्पादन में सहयोगी महाभूत तत्त्व	रस की अधिकता से होने वाले शरीर के दोष	रस की कमी से बढ़ने वाले दोष
1. मधुर	जल, पृथ्वी	वात, पित्त	कफ

2. अम्ल (खट्टा)	पृथ्वी, अग्नि	वात	पित्त, कफ
3. लवण	जल, अग्नि	वात	पित्त, कफ
4. कड़वा	वायु , अग्नि	कफ	वात् , पित्त
5. कषैला	वायु, पृथ्वी	पित्त, कफ	वात
6. तीखा	वायु , जल	पित्त, कफ	वात

पंच तत्त्व से प्रभावित वास्तु और स्वास्थ्य

धरती पर किये जाने वाले किसी भी निर्माण में पंच महाभूत तत्वों का बहुत प्रभाव पड़ता है। इन पंच तत्त्वों से उत्पन्न अलग अलग प्रकार की ऊर्जाओं का उस क्षेत्र में रहने वाले अथवा कार्य करने वालों की गतिविधियों, क्षमताओं एवं स्वास्थ्य पर हितकारी अथवा अहितकारी प्रभाव पड़ता है। आवास के प्रत्येक भाग में अलग अलग प्रकार की ऊर्जाओं का उनके प्रवाह के अनुरूप अलग अलग प्रभाव होता है। अग्नि कोण में अग्नि तत्त्व और वायु कोण में वायु का बाहुल्य होता है। इन पंच मूलभूत तत्त्वों के सूक्ष्म और अदृश्य रूप से पड़ने वाले प्रत्यक्ष परोक्ष प्रभावों को आवश्यकतानुसार नियन्त्रित किया जा सकता है।

अत: प्रकृति के पंच तत्त्वों की व्यवस्था को बिना बिगाड़े अर्थात वास्तु दोषों से रहित आवास एवं कार्य स्थल हो तो उसमें रहने वालों को आनन्द, सुख, प्रसन्नता, स्वास्थ्य एवं इच्छित लक्ष्य की प्राप्ति आसानी से होती है। इसके विपरीत यदि उसकी उपेक्षा की गई, उनका सही उपयोग न किया गया, तालमेल और सामन्जस्य बराबर न रखा गया तो उसमें रहने वाले दु:खी, चिन्तित, तनाव ग्रस्त, भयभीत एवं अस्वस्थ होते हैं।

जिस मकान में प्रात:कालीन सूर्य किरणों का प्रवेश नहीं होता, शुद्ध प्राण वायु के आवागमन में अवरोध आता है, वहां रोग होने की अधिक संभावना रहती है।

अत: कभी कभी वास्तुदोष से भी वहां रहने वालों के पंच तत्त्व का असंतुलन हो सकता है। जितना जितना असंतुलन, आवश्यकता से कम ऊर्जाओं की उपलब्धता होती है, उतना अधिक रोग होने की संभावनाएँ बढ़ जाती है। असंतुलन के अलग-अलग कारण मिलने से असंतुलन शरीर की निर्धारित सीमाओं से परे हो सकता है।

वास्तु के अनुसार बने आवास में प्रत्येक क्षेत्र में ऐसी तरंगों की बाहुल्यता होती है, जिससे स्वाभाविक रूप से रसोइघर में बना खाना अधिक स्वास्थ्य वर्धक होता है। भोजन कक्ष में भोजन स्वादिष्ट लगता है, तृप्ती होती है और पाचन अच्छा होता है। शयन कक्ष में गहरी निद्रा आती है। अध्ययन कक्ष में पढने में अच्छा मन लगता है। स्वाध्याय,

ध्यान एवं पूजा कक्ष में एकाग्रता जल्दी आती है। कहने का आशय यही है कि वहां रहने वालों को अपने इच्छित लक्ष्य की प्राप्ति सरलता से हो जाती है। अधिक जानकारी के लिए अनुभवी वास्तु विशेषज्ञ से सम्पर्क किया जा सकता है।

पगथली की आकृति प्रतिबिम्बित करती है-शरीर में पंच तत्त्वों की स्थिति

हमारे शरीर का सारा भार पगथली पर पड़ता है। अतः शरीर की बनावट का एवं उसमें उपस्थित पंच तत्वों

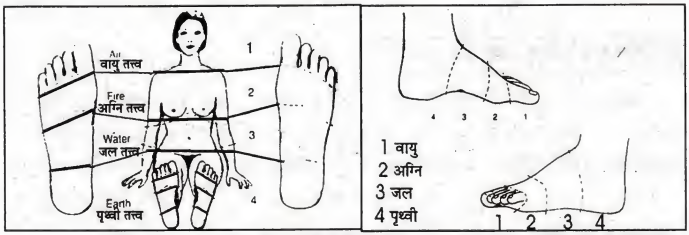

पगथली में चार तत्त्वों की स्थिति (चित्र नं. २ व ३)

का भी उससे अवश्य संबंध होना चाहिये। मां के गर्भ में आने से लगाकर मृत्यु तक हमारे जैसे संस्कार, वृत्तियाँ, सोच, आचरण, जीवनशैली आदि होती है, उसी के अनुरूप हमारे व्यक्तित्व का विकास होता है एवं वे सभी हमारे पगथली पर प्रकट होने वाले लक्षणों के द्वारा प्रतिबिन्बित होते हैं। गर्भावस्था में हम अपनी माता की गतिविधियों से अधिक प्रभावित होते हैं। अज्ञानवश अथवा जिन घटनाओं को हम भूल जाते हैं, परन्तु जो हमे अभी भी प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से हमारी प्राण ऊर्जा को असंतुलित करती है, उसके प्रवाह में अवरोध पैदा करती है, वे सारे लक्षण पगथली में अंकित होते हैं। किसी भी तत्व के असंतुलन से पगथली के संबन्धित भाग में परिवर्तन होने लगता है। **पगथली में उभरने वाली प्रत्येक रेखा, त्वचा के रंग और तंतुओं की अवस्था में बदलाव, त्वचा की स्निग्धता एवं रूक्षता में परिवर्तन, फैलाव अथवा संकोचन, सूजन अथवा सलवटें पगथली में उससे संबन्धित तत्वों के असंतुलन का प्रतीक होती है। शरीर में घटित होने वाली प्रत्येक घटना का उस पर प्रभाव पड़ता है। प्रमुख घटनाओं के लक्षण स्थायी होते हैं। पगथली की आकृति उसी का दर्पण के समान होती है।**

व्यक्ति कैसे चलता है। उस समय उसकी शारीरिक, मानसिक और भावात्मक स्थिति पगथली से मालूम की जा सकती है। आकाश तत्व की पगथली में कोई विशेष स्थिति नहीं होती है। जबकि बाकी चारों तत्वों की स्थिति चित्रानुसार होती है। **अमेरिकन डॉ. ए.वी.आई. ग्रिनवर्ग ने एक्यूप्रेशर की फुट रिफ्लेक्सोलोजी के अनुसार पगथली में शरीर के अंगों, उपांगों एवं अवयवों आदि का बाकी चार तत्वों के साथ संबंधों का अध्ययन किया तथा**

अलग-अलग प्रकार के लक्षणों से पड़ने वाले प्रभावों की शोध की। जिसके आधार पर पगथली को देखने मात्र से व्यक्ति के वर्तमान एवं भूत की शारीरिक स्थिति का स्वतंत्र रूप से निदान किया जा सकता है। प्रभावित अंगों में उपचार कर रोग से मुक्ति मिल सकती है। जिज्ञासु व्यक्ति अनुभवी प्रशिक्षक से प्रशिक्षण प्राप्त कर चन्द दिनों में निदान परीक्षण एवं उपचार करने की विधि में दक्षता प्राप्त कर सकता है।

पंच तत्त्वों को संतुलित करने का प्रभावशाली उपाय : हस्त मुद्राएं

शरीर में हथेली प्रमुख सक्रिय भाग

शरीर में सक्रिय अंगों में हाथ भी प्रमुख है। हथेली में एक विशेष प्रकार की प्राण ऊर्जा अथवा शक्ति का प्रवाह निरन्तर होता रहता है। इसी कारण शरीर के किसी भाग में दुःख, दर्द, पीड़ा होने पर सहज ही हाथ वहाँ चला जाता है। अंगुलियों में अपेक्षाकृत संवेदनशीलता अधिक होती है। इसी कारण अंगुलियों से ही नाड़ी की गति को देखा जाता है। जिससे मस्तिष्क में नब्ज की कार्यविधि का संदेश शीघ्र ही पहुंचता है। रेकी चिकित्सा में हथेली का ही उपयोग होता है। रत्न चिकित्सा में विभिन्न प्रकार के नगीने अंगूठी के माध्यम से हाथ की अंगुलियों में ही पहने जाते हैं। जिनकी तरंगों के प्रभाव से शरीर को स्वस्थ रखा जा सकता है। एक्यूप्रेशर चिकित्सा में हथेली में सारे शरीर के संवेदन बिन्दु होते हैं। सुजोक बायल मेरेडियन के सिद्धान्तानुसार अंगुलियों से ही शरीर के विभिन्न अंगों में प्राण ऊर्जा के प्रवाह को नियन्त्रित और संतुलित किया जा सकता है। अनुभवी हस्त रेखा विशेषज्ञ हथेली देख कर व्यक्ति के वर्तमान, भूत और भविष्य की महत्वपूर्ण घटनाओं को बतला सकते हैं। कहने का आशय यही है कि **हाथ, हथेली और अंगुलियों का मनुष्य की जीवन शैली से सीधा सम्बन्ध होता है। इसी प्रकार हस्त योग मुद्राओं द्वारा पंच तत्त्वों को सरलता से संतुलित किया जा सकता है। ये मुद्राएँ शरीर में चेतना के शक्ति केन्द्रों में रिमोट कण्ट्रोल के समान स्वास्थ्य रक्षा और रोग निवारण करने में प्रभावशाली कार्य करती है। जिससे मानव भौतिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति की तरफ अग्रसर होता है।**

प्रचलित मान्यता के अनुसार
चित्र नं. 4

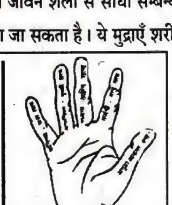

तर्क संगत मान्यता के अनुसार
चित्र नं. 5

मुद्रा विज्ञान–हाथ की पाँचों अंगुलियों का सम्बन्ध पंच महाभूत तत्त्वों से होता है। प्रत्येक अंगुली अलग-अलग तत्त्व का प्रतिनिधित्व करती है। जैसे कनिष्ठिका :- जल तत्त्व से, अनामिका पृथ्वी तत्त्व से, मध्यमा अग्नि तत्त्व से, तर्जनी वायु तत्त्व से और अंगूठा आकाश तत्त्व से। परन्तु बहुत से योगी अंगूठे को अग्नि और मध्यमा को आकाश तत्त्व का प्रतीक मानते हैं। परन्तु ऐसा इसलिए

उचित नहीं लगता क्योंकि आकाश तत्त्व ही सभी तत्त्वों को आश्रय देता है, उसके सहयोग के बिना किसी भी तत्त्व का अस्तित्त्व नहीं रहता। ठीक उसी प्रकार अंगूठे से ही अन्य सभी अंगुलियों का स्पर्श हो सकता है, मध्यमा से नहीं। दूसरी बात मस्तिष्क में आकाश तत्त्व की प्रधानता होती है। अंगूठा मस्तिष्क का प्रतिनिधित्व करता है। एक्यूप्रेशर में मस्तिष्क के रोगों का उपचार अंगूठे से ही किया जाता है।

मुद्रा विज्ञान के अनुसार हमारी अंगुलियाँ ऊर्जा का नियमित स्रोत होने के साथ साथ एन्टीना का कार्य करती है। शरीर में पंच तत्त्वों की घट्ट-बढ़त से व्याधियाँ होती हैं। **अंगुलियों को मिलाने, दबाने, स्पर्श करने, मरोड़ने तथा विशेष आकृति कुछ समय तक बनाए रखने से तत्त्वों में परिवर्तन किया जा सकता है। उसका स्नायु मण्डल और यौगिक चक्रों पर भी गहरा प्रभाव पड़ता है। अंगुलियों को अनावश्यक मरोड़ने एवं चटखने से शक्ति का अपव्यय होता है।**

अंगूठे को तर्जनी, मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका के मूल में लगाने से उस अंगुलि से सम्बन्धित तत्त्व की वृद्धि होती है। अंगुलियों के प्रथम पौर में स्पर्श करने से तत्त्व सन्तुलित होता है तथा इन अंगुलियों को अंगूठे के मूल पर स्पर्श कर अंगूठे से दबाने से उस तत्त्व की कमी होती है। इस प्रकार विभिन्न मुद्राओं के माध्यम से पंच तत्त्वों को इच्छानुसार घटाया अथवा बढ़ाकर सन्तुलित किया जा सकता है।

मुद्राओं के सामान्य नियम

मुद्राओं का अभ्यास बालक, वृद्ध, स्त्री, पुरुष सभी कर सकते हैं। मुद्राओं को चलते-फिरते, सोते-जागते, उठते-बैठते जब चाहें कर सकते हैं। परन्तु शान्त एकान्त स्थान पर एकाग्रचित से मुद्राएँ करने पर विशेष लाभ होता है। अपनी-अपनी आवश्यकताओं के अनुसार सही मुद्राओं का अभ्यास करने से चमत्कारिक लाभ होता है।

नियमित और निश्चित् समय पर प्राणायाम के पश्चात् ध्यान के आसन में बैठ एकाग्र चित्त से दोनों हाथों में करने से तुरन्त लाभ होता है। कुछ विशेष मुद्राओं को छोड़ मुद्राएँ किसी भी अवस्था में की जा सकती है। रोग के समय लेटे-बैठे, चलते-फिरते अथवा बातचीत करते हुए मुद्राएँ की जा सकती हैं। अधिकांश मुद्राएँ कम-से-कम एक घड़ी अर्थात् 48 मिनट लगातार करनी चाहिए। जिससे उसका अपेक्षित लाभ प्राप्त हो सके।

रोग से सम्बन्धित मुद्राएँ रोग दूर होने के समय तक ही करनी चाहिए। परन्तु अन्य मुद्राएँ स्वेच्छानुसार जितनी अधिक की जाती हैं, उतना अधिक लाभ मिलता है। रोग जितना पुराना होता है, उसके उपचार में उतना ही अधिक समय लग सकता है। फिर भी अंशकालीन मुद्रा प्रयोग स्नायुमण्डल के केन्द्रों और मुख्य ऊर्जा चक्रों में प्रभावशाली कंपन उत्पन्न करने में सहायक होती है।

बांयें हाथ से जो मुद्रा की जाती है, उसका प्रभाव दाहिने अंगों पर विशेष पड़ता है और दांयें हाथ से जो मुद्राएँ की जाती हैं, उसका प्रभाव बायें भाग के अंगों पर विशेष पड़ता है। शरीर के आवश्यकतानुसार एक के बाद एक मुद्रा की जा सकती है। मुद्राएँ यथासम्भव दोनों हाथों से करनी चाहिए। मुद्रा करते समय अंगुलियों का स्पर्श हल्का और सहज होना चाहिए तथा जो अंगुलियाँ मुद्रा बनाने में काम नहीं आती, उन्हें सीधा ही रखना चाहिए। अन्य उपचारों के साथ भी मुद्राओं का उपयोग बिना किसी दुष्प्रभाव किया जा सकता है।

चन्द प्रमुख मुद्राएँ

हथेली की अंगुलियों और अंगूठे की विविध स्थितियों से अलग-अलग मुद्राएँ बनती हैं। प्रत्येक मुद्रा का प्रभाव अलग-अलग होता है और इन मुद्राओं से शरीर में उपस्थित पंच महाभूत तत्त्व प्रभावित होते हैं। अतः अलग-अलग मुद्राओं द्वारा उन्हें सन्तुलित रख स्वस्थ रहा जा सकता है।

वैसे मुद्राएँ कभी भी किसी भी आसन में की जा सकती है, परन्तु स्वस्थ व्यक्ति को वज्रासन अथवा पद्मासन में ही करना चाहिये। परन्तु रोगी सोते सोते भी कर सकता है। मुद्रा एक हाथ में अथवा दोनों हाथो में की जा सकती हैं। **मुद्राओं के नियमित अभ्यास से शरीर की ऊर्जा बढ़ती है। रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है।**

कुछ मुद्राएँ रोग की अवस्था में ही की जाती है, तो पंच तत्त्वों को सम करने वाली ऊर्जाएं कभी भी की जा सकती है। यहाँ पर चन्द विशेष मुद्राओं की सामान्य उपयोगी जानकारी ही दी जा रही है। जिज्ञासु व्यक्ति मुद्रा विशेषज्ञों से सम्पर्क कर मुद्रा विज्ञान को सरलता से अनुभूत कर अपने आपको स्वस्थ रख सकते हैं। कुछ मुद्राएँ तत्काल अपना प्रभाव डालती है। जैसे अपान वायु और शून्य मुद्रा। कुछ मुद्राएं दीर्घकालिक होती है, जो लम्बे समय के अभ्यास के पश्चात अपना स्थायी प्रभाव प्रकट करती है।

ज्ञान मुद्रा

अंगुष्ठ व तर्जनी के ऊपरी पौर को स्पर्श करने से जहाँ हल्का सा नाड़ी स्पन्दन अनुभव हो, ज्ञान मुद्रा बनती है। हाथ की अलग अलग स्थिति रखने से ज्ञान मुद्राओं का अलग-अलग प्रभाव पड़ता है, जिन्हे अलग-अलग प्रवृत्तियाँ करते समय आवश्यकतानुसार किया जा सकता है।

चित्र नं. 6

लाभ - ज्ञान मुद्रा से मस्तिष्क संबंधी रोग, आलस्य, घबराहट, चिड़चिड़ापन, क्रोध, निराशा, तनाव, अनिद्रा, बैचेनी, ज्ञान तन्तु के विकार दूर होते हैं तथा स्मरण शक्ति बढ़ती है। इस मुद्रा से आभा मण्डल आकर्षक बनता है और आत्म विकार दूर होते हैं।

ज्ञान मुद्रा अधिक से अधिक समय तक की जा सकती है। हस्त रेखा विज्ञान की दृष्टि से ज्ञान मुद्रा करने से जीवन रेखा तथा बुद्ध ग्रह संबंधी दोष दूर होते हैं तथा अविकसित शुक्र पर्वत का भी विकास संभव होता है।

जब ज्ञान मुद्रा में दोनों हथेलियाँ कन्धे के बराबर सामने की तरफ होती हैं तो, व्यक्ति में निर्भयता आने से उस मुद्रा को अभय मुद्रा कहते हैं।

जब दायाँ हाथ हृदय के पास और बायाँ घुटने के ऊपर रख जब ज्ञान मुद्रा की जाती है तो उसे योग मुद्रा" अथवा **"वैराग्य मुद्रा"** कहते हैं। भगवान गौतम की अधिकांश मूर्तियाँ इस आसन में ही देखने को मिलती है।

वायु मुद्रा

अंगुष्ठ से तर्जनी को दबाने से वायु मुद्रा बनती है जो शरीर में वायु के बढ़ने से होने वाले रोगों का शमन करती है, जैसे शरीर का कम्पन्न, जोड़ों का दर्द, गंठिया, रीढ की हड्डी संबंधी दर्द, वात रोग, लकवा आदि के समय करने से रोगों में राहत मिलती है।

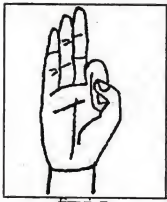

चित्र नं. 7

मुंह टेढ़ा पड़ जाने, गर्दन की जकड़न होने तथा गर्दन संबंधी अन्य रोगों में वायु मुद्रा का प्रयोग लाभ दायक होता है। वायु मुद्रा करने से हाथ के मध्य में वात नाड़ी में बन्ध लग जाता है। वात जन्य गर्दन के दर्द में वायु मुद्रा लगाने के बाद हाथ की कलाई को दायां- बांया घुमाने से वात नाड़ी में खट-खट की ध्वनि होती है, जो उस कलाई को दूसरे हाथ से पकड़ कर वात नाड़ी पर अंगूठे से हल्का दबाव देते हुए, गोलाकार दाहिने बांये थोड़ी देर घुमाने के पश्चात बंद हो जाती है। उसके साथ ही गर्दन के दर्द में आराम होने लगता है। यदि जकड़न और दर्द गर्दन के बांयी तरफ हो तो बांयी कलाई को घुमाना चाहिये और यदि गर्दन के दाहिनी तरफ दर्द हो तो दाहिनी कलाई को घुमाना चाहिये। परन्तु पूरी गर्दन में दर्द हो तो दोनों कलाईयों को एक के बाद एक घुमाना चाहिये। इसी प्रक्रिया से मुंह का टेढ़ापन भी ठीक हो जाता हैं।

आकाश मुद्रा

अंगुष्ठ के ऊपरी पौर को मध्यमा के ऊपरी पौर से स्पर्श करने से आकाश मुद्रा बनती है। इससे अग्नि तत्व सन्तुलित होता है। **हड्डियां मजबूत होती है। मुख का तेज और कान्ति सुधरती है। विचार क्षमता बढती है, मानसिक संकीर्णता कम होती है। हृदय रोग में भी यह मुद्रा प्रभावकारी होती है।** हस्त रेखा विज्ञान की दृष्टि से शनि ग्रह से संबंध रखने वाले रोगों में यह मुद्रा लाभकारी होती हैं।

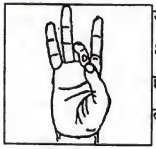

चित्र नं. 8

शून्य मुद्रा

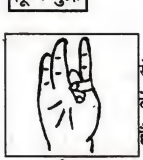

चित्र नं. 9

अंगुष्ठ से मध्यमा को दबा कर बाकी अंगुलियाँ सीधी रखने से बनती है। इस मुद्रा से शरीर में मणिपुर चक्र से विशुद्ध चक्र तक के सभी चक्र प्रभावित होते हैं। **बहरापन, कान के रोग, हिचकी, गूंगापन, सिर दर्द, विचार शून्यता दूर होती है। काम वासना नियन्त्रित होती है। मूत्रावरोध दूर होता है।**

पृथ्वी मुद्रा -

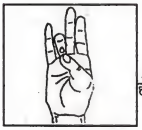

चित्र नं. 10

अंगुष्ठ को अनामिका के ऊपरी पौर से स्पर्श से यह मुद्रा बनती है। पृथ्वी तत्त्व सन्तुलित होने से **शरीर की ताकत और पैरों की शक्ति बढ़ती है।**

सूर्य मुद्रा

चित्र नं. 11

अनामिका के ऊपरी पौर को अँगूठे के मूल पर रख कर अंगूठे से दबाने पर यह मुद्रा बनती है । इस मुद्रा से मोटापा व भारीपन घटता है। मानसिक तनाव में कमी आती है।

जल मुद्रा (वरूण मुद्रा)

चित्र नं. 12

अंगुष्ठ का **कनिष्ठिका** के ऊपरी पौर पर स्पर्श करने से यह मुद्रा बनती है। कनिष्ठिका जो शरीर में जल तत्त्व का सन्तुलन करती है। जल तत्त्व की कमी से होने वाले रोगों में जैसे - **मांसपेशियों में खिचांव, चर्म रोग, शरीर में रुक्षता आदि ठीक होते हैं। रक्त शुद्धि और त्वचा में स्निग्धता लाने के लिये वरुण मुद्रा लाभदायक होती हैं।**

प्राण मुद्रा -

चित्र नं. 13

कनिष्ठिका और अनामिका के ऊपरी पौर को अंगुठे के ऊपरी पौर से स्पर्श करने से यह मुद्रा बनती है, जो जल और पृथ्वी तत्व को शरीर में सन्तुलन करने में सहयोग करती है।

इस मुद्रा से चेतना शक्ति जागृत होती है। शरीर की प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है। भूख प्यास सहन हो जाती है। रक्त संचार सुधरता है. आंखों के रोगों में राहत मिलती है।

हस्त रेखा विज्ञान के अनुसार सूर्य की अंगुलि अनामिका समस्त प्राणशक्ति का केन्द्र मानी जाती है। बुद्ध की अंगुलि कनिष्ठिका युवा शक्ति का प्रतिनिधित्व करती है। अत: इस मुद्रा के अभ्यास से शरीर में प्राण शक्ति का संचार तेज होता है। रक्त संचार ठीक होने से रक्त नलिकाओं का अवरोध दूर होता है। साधक को भूख प्यास की तीव्रता नहीं सताती।

अपान मुद्रा

मध्यमा और अनामिका अंगुली के सिरे को अंगूठे के सिरे से स्पर्श करने से बनती है। इस मुद्रा से शरीर से विभिन्न प्रकार के विजातीय तत्त्वों की विसर्जन क्रिया नियमित होती है, ताकि अनावश्यक, अनुपयोगी पदार्थ सरलता पूर्वक शरीर से बाहर निकल जाते है।

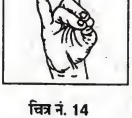

चित्र नं. 14

इससे पेट में वायु का नियन्त्रण होने से पेट संबंधी वात रोगों में विशेष लाभ होता है। इस मुद्रा से मूत्राशय की कार्य प्रणाली सुधरती है। कब्ज और बवासीर में यह मुद्रा विशेष लाभ दायक होती है। यह मुद्रा दांतों को भी स्वस्थ रखती है। इस मुद्रा से पसीना नियमित ढंग से आने लगता है। शरीर में प्राण और अपान वायु संतुलित होती है।

अपान वायु मुद्रा

इस मुद्रा को मृत संजीवनी मुद्रा भी कहते हैं। तर्जनी को अंगुष्ठ के मूल से स्पर्श कर अंगूठे का अग्रभाग मध्यमा और अनामिका के ऊपरी पौर से स्पर्श करने व कनिष्ठिका को सीधी रखने से बनती है। **इस मुद्रा से हृदयघात, हृदय रोग, हृदय की कमजोरी धड़कन, प्राण ऊर्जा की कमी, उच्च रक्त चाप, सिर दर्द, बेचैनी, पेट की गैस, घबराहट दूर होती है।** दिल का दौरा पड़ने पर यह मुद्रा इंजेक्शन के समान तुरन्त प्रभाव दिखलाती है। हृदय के रोगियों को सीढ़िया चढ़ते समय यदि श्वास फूलता हो तो सीढ़िया चढ़ने से पूर्व 10-15 मिनट इस मुद्रा को करने से

चित्र नं. 15

श्वांस नहीं फूलता।

जलोदर नाशक मुद्रा

चित्र नं. 16

कनिष्ठिका को पहले अंगूठे की जड़ में लगा कर फिर अंगूठे से कनिष्ठिका को दबाने से जलोदर नाशक मुद्रा बनती है । इस मुद्रा से शरीर में जल की वृद्धि से होने वाले रोग ठीक होते है। शरीर के विजातीय द्रव्य बाहर निकलने लगते है, जिससे शरीर निर्मल बनता है, पसीना आने लगता है, मूत्रावरोध ठीक होता है।

शंख मुद्रा

चित्र नं. 17

बांयें हाथ के अंगूठे को दायें हाथ की मुट्ठी में बन्द कर बांयें हाथ की तर्जनी को दाहिने हाथ के अँगूठे से मिला, बाकी तीनों अंगुलियों को मुट्ठी के ऊपर रखने से शंख मुद्रा बनती है।

इस मुद्रा से वाणी संबंधी रोग जैसे तुतलाना, आवाज में भारीपन गले के रोग और थायरायड संबंधी रोगों में विशेष लाभ होता है। भूख अच्छी लगती है । वज्रासन में बैठकर यह मुद्रा करने से अधिक प्रभावकारी हो जाती है। हृदय के पास इस मुद्रा को हथेलियाँ रख कर करने से हृदय रोग में शीघ्र लाभ होता है। रक्त चाप कम होने लगता है।

लिंग मुद्रा

चित्र नं. 18

दोनों हाथों की अंगुलियों को आपस में फंसा कर दायें अंगूठे को ऊपर खड़ा रखने से यह मुद्रा बनती है। इस मुद्रा से शरीर में गर्मी बढ़ती है। मोटापा कम होता है। कफ, नजला, जुकाम, खांसी, सर्दी संबंधी रोगों, फेंफड़ों के रोग, निम्न रक्त चाप आदि में कमी होती है। इस मुद्रा से शरीर मे मौसम परिवर्तन से होने वाले सर्दी जन्य रोगों की प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है।

संयमित, नियमित, परिमित, स्व अनुशासित एवं स्वनियंत्रित स्वावलंबी और सात्विक जीवन शैली ही स्वस्थ जीवन की प्राकृतिक विधि होती है।

स्वर विज्ञान एवं स्वास्थ्य

सृष्टि की रचना में सूर्य और चन्द्र का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। हमारा जीवन अन्य ग्रहों की अपेक्षा सूर्य और चन्द्र से अधिक प्रभावित होता है। उसी के कारण दिन-रात होते हैं तथा जलवायु बदलती रहती है। समुद्र में ज्वार भी सूर्य एवं चन्द्र के कारण आता हैं। हमारे शरीर में भी लगभग दो तिहाई भाग पानी होता है। सूर्य और चन्द्र के गुणों में बहुत विपरीतता होती है। एक गर्मी का तो दूसरा ठण्डक का स्रोत माना जाता है। सर्दी और गर्मी सभी चेतनाशील प्राणियों को बहुत प्रभावित करते हैं। शरीर का तापक्रम 98.4 डिग्री फारेहनाइट निश्चित होता है और उसमें बदलाव होते ही रोग होने की संभावना होने लगती है।

मनुष्य के शरीर में भी सूर्य और चन्द्र की स्थिति शरीरस्थ नाड़ियों में मानी गई है। मूलधारा चक्र से सहस्रार चक्र तक शरीर में 72000 नाड़ियों का हमारे पौराणिक ग्रन्थों में उल्लेख मिलता है। **स्वर विज्ञान :- सूर्य, चन्द्र आदि ग्रहों को शरीर में स्थित इन सूक्ष्म नाड़ियों की सहायता से अनुकूल बनाने का विज्ञान है।**

स्वर क्या है ?

नासिका द्वारा श्वास के अन्दर जाने और बाहर निकलते समय जो अव्यक्त ध्वनि होती है, उसी को स्वर कहते हैं।

नाड़ियाँ क्या है ?

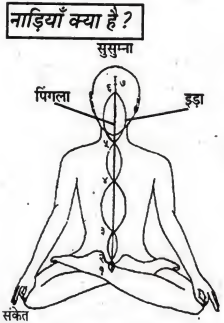

संकेत
१. मूलाधार २. स्वाधिष्ठान ३. मणिपुर ४. अनाहत
५. विशुद्धि ६. आज्ञा ७. सहस्रार

शरीर की प्रमुख नाड़ियाँ एवं ऊर्जा चक्र (चित्र नं. 19)

नाड़ियाँ चेतनाशील प्राणियों के शरीर में वे मार्ग हैं, जिनमें से होकर प्राण ऊर्जा शरीर के विभिन्न भागों तक प्रवाहित होती है। हमारे शरीर में तीन मुख्य नाड़ियाँ होती है। ये तीनों नाड़ियाँ मूलधारा चक्र से सहस्रार चक्र तक मुख्य रूप से चलती है। इनके नाम ईडा, पिंगला और सुषुम्ना हैं। इन नाड़ियों का सम्बन्ध स्थूल शरीर से नहीं होता। अतः आधुनिक यंत्रों, एक्स-रे, सोनोग्राफी आदि यंत्रों से अभी तक उनको प्रत्यक्ष देखना संभव नहीं हो सका है। जिन स्थानों पर ईडा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियाँ आपस में मिलती है, उनके संगम स्थल को शरीर में ऊर्जा चक्र अथवा शक्ति केन्द्र कहते हैं।

ईडा और पिंगला नाड़ी तथः दोनों नथूनों से प्रवाहित होने वाली श्वास के बीच सीधा संबन्ध होता है। सुषुम्ना के बायीं तरफ ईडा और दाहिनी तरफ पिंगला नाड़ी होती है। ये दोनों नाड़ियाँ मूलधारा चक्र से बायें-दाहिने होकर अपना क्रम परिवर्तित करती हुई सीधे ऊपर की तरफ चित्र में दर्शाए अनुसार बढ़ती है। प्रत्येक चक्र पर एक दूसरे को काटती हुई आगे नाक के नथूनों तक पहुंचती हैं। उनके इस परस्पर सम्बन्ध के कारण ही व्यक्ति नासिका के श्वांस प्रवाहों को प्रभावित करके अत्यन्त सूक्ष्म स्तर पर ईडा और पिंगला नाड़ी में संतुलन स्थापित कर सकता है।

श्वसन में दोनों नथूनों की भूमिका

जन्म से मृत्यु तक हमारे श्वसन की क्रिया निरन्तर चलती रहती है। यह क्रिया दोनों नथूनों से एक ही समय समान रूप से प्रायः नहीं होती। श्वास कभी बांये नथुने से, तो कभी दाहिने नथुने से चलता है। कभी-कभी थोड़े समय के लिए दोनों नथुने से समान रूप से चलता है।

बांयें नथूने में जब श्वास की प्रक्रिया होती है तो उसे ईडा नाड़ी में चलना, दाहिने नथूने में जब श्वास की प्रक्रिया मुख्य होती है तो उसे पिंगला नाड़ी में चलना तथा जब श्वास दोनों नथूने में समान रूप से चलता है तो उस अवस्था को सुषुम्ना नाड़ी में चलना कहते हैं। एक नथूने को दबाकर दूसरे नथूने के द्वारा श्वास बाहर निकालने पर यह स्पष्ट अनुभव किया जा सकता है कि एक नथूने से जितना सरलतापूर्वक श्वास चलता है उतना, उसी समय प्रायः दूसरे नथूने से नहीं चलता। जुकाम आदि न होने पर भी मानों दूसरा नथूना प्रायः बन्द है, ऐसा अनुभव होता है। जिस समय जिस नथूने से श्वास सरलतापूर्वक चलता है, उस समय उसी नथूने से सम्बन्धित नाड़ी में श्वास का चलना कहा जाता है तथा उस समय अव्यक्त स्वर को उसी नाड़ी के नाम से पहिचाना जाता है। अतः ईडा नाड़ी के चलने पर ईडा स्वर, पिंगला नाड़ी के चलने पर पिंगला स्वर और सुषुम्ना से श्वसन होने पर सुषुम्ना स्वर प्रभावी होता है।

ईडा और पिंगला श्वास प्रवाहों का सम्बन्ध अनुकंपी (सिम्पेथेटिक) और परानुकम्पी (पेरासिम्पेथेटिक) स्नायु संस्थान से होता है, जो शरीर के विभिन्न क्रिया कलापों का नियन्त्रण और संचालन करते हुए उन्हें परस्पर संतुलित बनाए रखती है। ईडा और पिंगला दोनों स्वरों का कार्य क्षेत्र कुछ समानताओं के बावजूद अलग-अलग होता है। ईडा का संबंध ज्ञानवाही धाराओं, मानसिक क्रिया कलापों से होता है। पिंगला का संबंध क्रियाओं से अधिक होता है। अर्थात् इडा शक्ति का आन्तरिक रूप होती है जबकि पिंगला शक्ति का बाह्य रूप तथा सुषुम्ना केन्द्रीय शक्ति होती है, तथा उसका संबंध केन्द्रीय नाड़ी संस्थान (Central Nervous System) से होता है। **जब पिंगला स्वर प्रभावी होता है, उस समय शरीर की बाह्य क्रियाएँ सुगमता से होने लगती है। शारीरिक ऊर्जा दिन के समान सजग, सक्रिय और जागृत होने लगती है। अतः पिंगला नाड़ी को सूर्य नाड़ी एवं उसके स्वर को सूर्य स्वर भी कहते हैं। परन्तु जब ईडा स्वर सक्रिय होता है तो, उस समय शारीरिक शक्तियाँ सुषुप्त अवस्था में विश्राम कर रही होती है। अतः आन्तरिक कार्यों हेतु**

अधिक ऊर्जा उपलब्ध होने से मानसिक सजगता बढ़ जाती है। चन्द्रमा से मन और मस्तिष्क अधिक प्रभावित होता है। क्योंकि चन्द्रमा को मन का मालिक भी कहते हैं। अतः ईडा नाड़ी को चन्द्र नाड़ी और उसके स्वर को चन्द्र स्वर भी कहते हैं। चन्द्र नाड़ी शीतल प्रधान होती है, जबकि सूर्य नाड़ी उष्ण प्रधान। सुषुम्ना दोनों के बीच संतुलन रखती है।

सूर्य स्वर – मस्तिष्क के बायें भाग एवं शरीर में मस्तिष्क के नीचे के दाहिने भाग को नियन्त्रित करता है, जबकि चन्द्र स्वर मस्तिष्क के दाहिने भाग एवं मस्तिष्क के नीचे शरीर के बायें भाग से संबंधित अंगों, उपांगों में अधिक प्रभावकारी होता है। **जो स्वर ज्यादा चलता है, शरीर में उससे संबंधित भाग को अधिक ऊर्जा मिलती है तथा बाकी बचे दूसरे भागों को अपेक्षित ऊर्जा नहीं मिलती। अतः जो अंग कमजोर होता है, उससे संबंधित स्वर को चलाने से रोग में शीघ्र लाभ होता है।**

स्वस्थ मनुष्य का स्वर प्रकृति के निश्चित नियमों के अनुसार चला करता है। उनका अनियमित प्रकृति के विरुद्ध चलना शारीरिक और मानसिक रोगों के आगमन और भावी अमंगल का सूचक होता है। ऐसी स्थिति में स्वरों को निश्चित और व्यवस्थित ढंग से चलाने के अभ्यास से अनिष्ट और रोगों से न केवल रोकथाम होती होती है, अपितु उनका उपचार भी किया जा सकता है।

शरीर में कुछ भी गड़बड़ होते ही गलत स्वर चलने लग जाता है। नियमित रूप से सही स्वर अपने निर्धारित समयानुसार तब तक नहीं चलने लगता, जब तक शरीर पूर्ण रूप से रोग मुक्त नहीं हो जाता।

स्वर नियन्त्रण स्वास्थ्य का मूलाधार

स्वर विज्ञान भारत के ऋषि मुनियों की अद्भुत खोज है। उन्होंने मानव शरीर की प्रत्येक क्रिया-प्रतिक्रिया का सूक्ष्मता से अध्ययन किया, देखा, परखा तथा श्वास-निःश्वास की गति, शक्ति, सामर्थ्य के सम्बन्ध में आश्चर्य चकित कर देने वाली जो जानकारी हमें दी उसके अनुसार मात्र स्वरों को आवश्यकतानुसार संचालित, नियन्त्रित करके जीवन की सभी समस्याओं का समाधान पाया जा सकता है। जिसका विस्तृत विवेचन **"शिव स्वरोदय शास्त्र"** में किया गया है। जिसमें युग पुरुष शिवजी ने स्वयं पार्वती को स्वर के प्रभावों से परिचित कराया।

प्रकृति ने हमें अपने आपको स्वस्थ और सुखी रहने के लिए सभी साधन और सुविधाएँ उपलब्ध करा रखी है, परन्तु हम प्रायः प्रकृति की भाषा और संकेतों को समझने का प्रयास नहीं करते। हमारे नाक में दो नथूने क्यों? यदि इनका कार्य मात्र श्वसन ही होता तो एक छिद्र से भी कार्य चल सकता है। दोनों में हमेशा एक साथ बराबर श्वास निःश्वास की प्रक्रिया क्यों नहीं होती? कभी एक नथूने में श्वास का प्रवाह सक्रिय होता है तो, कभी दूसरे में क्यों?

क्या हमारी गतिविधियों और श्वास का आपस में तालमेल होता है ? हमारी क्षमता का पूरा उपयोग क्यों नहीं होता ? कभी-कभी कार्य करने में मन लग जाता है तो, कभी बहुत प्रयास करने के बावजूद हमारा मन क्यों नहीं लगता ? ऐसी समस्त समस्याओं का समाधान स्वर विज्ञान में मिलता है। शरीर की बनावट में प्रत्येक भाग का कुछ न कुछ महत्व अवश्य होता है। कोई भी भाग अनुपयोगी अथवा पूर्णतया व्यर्थ नहीं होता।

स्वरों का प्रभाव

स्वरों और मुख्य नाड़ियों का आपस में एक दूसरे से सीधा सम्बन्ध होता है। ये व्यक्ति के सकारात्मक और नकारात्मक भावों का प्रतिनिधित्व करती है जो, उसके भौतिक अस्तित्व से सम्बन्धित होते हैं। उनके सम्यक् संतुलन से ही शरीर के ऊर्जा चक्र जागृत और सजग रहते हैं। अन्तःश्रावी ग्रन्थियाँ क्रियाशील होती है।

चन्द्र नाड़ी और सूर्य नाड़ी में प्राण वायु का प्रवाह नियमित रूप से बदलता रहता है। सामान्य परिस्थितियों में यह परिवर्तन प्रायः प्रति घंटे के लगभग अन्तराल में होता है, परन्तु ऐसा ही होना अनिवार्य नहीं होता। यह परिवर्तन हमारी शारीरिक और मानसिक स्थिति पर निर्भर करता है। **जब हम अन्तर्मुखी होते हैं, उस समय प्रायः चन्द्र स्वर तथा जब हम बाह्य प्रवृत्तियों में सक्रिय होते हैं तो सूर्य स्वर अधिक प्रभावी होता है। यदि चन्द्र स्वर की सक्रियता के समय हम शारीरिक श्रम के कार्य करें तो उस कार्य में प्रायः मन नहीं लगता। उस समय मन अन्य कुछ सोचने लग जाता है। ऐसी स्थिति में यदि मानसिक कार्य करें तो, बिना किसी कठिनाई के वे कार्य सरलता से हो जाते है। ठीक उसी प्रकार जब सूर्य स्वर चल रहा हों और उस समय यदि हम मानसिक कार्य करते हैं तो उस कार्य में मन नहीं लगता। एकाग्रता नहीं आती। इसके बावजूद भी जबरदस्ती कार्य करते हैं तो, सिर दर्द होने लगता है।** कभी-कभी सही स्वर चलने के कारण मानसिक कार्य बिना किसी प्रयास के होते चले जाते हैं तो, कभी-कभी शारीरिक कार्य भी पूर्ण रुचि और उत्साह के साथ होते हैं।

यदि सही स्वर में सही कार्य किया जाए तो हमें प्रत्येक कार्य में अपेक्षित सफलता सरलता से प्राप्त हो सकती है। जैसे अधिकांश शारीरिक श्रम वाले साहसिक कार्य जिसमें अधिक ऊर्जा की आवश्यकता होती है, सूर्य स्वर में ही करना अधिक लाभदायक होता है। सूर्य स्वर में व्यक्ति की शारीरिक कार्य क्षमता बढ़ती है। ठीक उसी प्रकार जब चन्द्र स्वर चलता है, उस समय व्यक्ति में चिन्तन, मनन और विचार करने की क्षमता बढ़ती है।

स्वर द्वारा ताप संतुलन :-

जब चन्द्र स्वर चलता है तो शरीर में गर्मी का प्रभाव घटने लगता है। अतः गर्मी सम्बन्धित रोगों एवं बुखार के समय चन्द्र स्वर को चलाया जाये तो बुखार शीघ्र ठीक हो सकता है। ठीक इसी प्रकार भूख के समय जठराग्नि,

भोग के समय कामाग्नि और क्रोध, उत्तेजना के समय प्रायः मानसिक गर्मी अधिक होती है। अतः ऐसे समय चन्द्र स्वर को सक्रिय रखा जावे तो उन पर सहजता से नियन्त्रण पाया जा सकता है।

शरीर में होने वाले जैविक रासायनिक परिवर्तन जो कभी शान्त और स्थिर होते हैं तो कभी तीव्र और उग्र भी होते हैं। जब शरीर में तापीय असंतुलन होता है तो शरीर में रोग होने लगते हैं। अतः यह प्रत्येक व्यक्ति के स्वविवेक पर निर्भर करता है कि उसके शरीर में कितना तापीय असंतुलन है और उसके अनुरूप अपने स्वरों का संचालन कर अपने आपको स्वस्थ रखें। **जब दोनों स्वर बराबर चलते हैं, शरीर की आवश्यकता के अनुरूप चलते हैं, तब ही व्यक्ति स्वस्थ रहता है।**

दिन में सूर्य के प्रकाश और गर्मी के कारण प्रायः शरीर में भी गर्मी अधिक रहती है। अतः सूर्य स्वर से सम्बन्धित कार्य करने के अलावा जितना ज्यादा चन्द्र स्वर सक्रिय होगा उतना स्वास्थ्य अच्छा होता है। इसी प्रकार रात्रि में दिन की अपेक्षा ठण्डक ज्यादा रहती है। चांदनी रात्रि में इसका प्रभाव और अधिक बढ़ जाता है। श्रम की कमी अथवा निद्रा के कारण भी शरीर में निष्क्रियता रहती है। अतः उसको संतुलित रखने के लिए सूर्य स्वर को अधिक चलाना चाहिए। इसी कारण **जिन व्यक्तियों के दिन में चन्द्र स्वर और रात में सूर्य स्वर स्वभाविक रूप से अधिक चलता है वे मानव दीर्घायु होते हैं।**

चन्द्र और सूर्य नाड़ी का असन्तुलन ही थकावट, चिंता तथा अन्य रोगों को जन्म देता है। अतः दोनों का संतुलन और सामन्जस्य स्वस्थता हेतु अनिवार्य हैं। चन्द्र नाड़ी का मार्ग निवृत्ति का मार्ग है, परन्तु उस पर चलने से पूर्व सम्यक् सकारात्मक सोच आवश्यक है। इसी कारण पातंजली योग और कर्म निर्जरा के भेदों में ध्यान से पूर्व स्वाध्याय की साधना पर जोर दिया गया है। स्वाध्याय के अभाव में नकारात्मक निवृत्ति का मार्ग हानिकारक और भटकाने वाला हो सकता है। आध्यात्मिक साधकों को चन्द्र नाड़ी की क्रियाशीलता का विशेष ध्यान रखना चाहिये।

लम्बे समय तक रात्रि में लगातार चन्द्र स्वर चलना और दिन में सूर्य स्वर चलना, रोगी की अशुभ स्थिति का सूचक होता है और उसकी आयुष्य चन्द मास ही शेष रहती है।

सूर्य नाड़ी का कार्य प्रवृत्ति का मार्ग है। यह वह मार्ग है जहां अन्तर्जगत गौण होता है। व्यक्ति अपने व्यक्तिगत लाभ तथा महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति हेतु कठिन परिश्रम करता है। कामनाओं और वासनाओं की पूर्ति हेतु प्रयत्नशील होता है। इसमें चेतना अत्यधिक बहिर्मुखी होती है। अतः ऐसे व्यक्ति आध्यात्मिक पथ पर सफलता पूर्वक आगे नहीं बढ़ पाते।

चन्द्र और सूर्यनाड़ी के क्रमशः प्रवाहित होते रहने के कारण ही व्यक्ति उच्च सजगता में प्रवेश नहीं कर पाता। जब तक ये क्रियाशील रहती है, योगाभ्यास में अधिक प्रगति नहीं हो सकती। जिस क्षण ये दोनों शांत होकर सुषुम्ना

के केन्द्र बिन्दु पर आ जाती है, तभी सुषुम्ना की शक्ति जागृत होती है और वहीं से अन्तर्मुखी ध्यान का प्रारम्भ होता है।

सुषुम्ना

चन्द्र और सूर्य नाड़ी में जब श्वांस का प्रवाह शांत हो जाता है तो सुषुम्ना में प्रवाहित होने लगता है। इस अवस्था में व्यक्ति की सुप्त शक्तियां सुव्यवस्थित रूप से जागृत होने लगती है। अतः वह समय अन्तर्मुखी साधना हेतु सर्वाधिक उपर्युक्त होता है। व्यक्ति में अहं समाप्त होने लगता है। अहं और आत्मज्ञान उसी प्रकार एक साथ नहीं रहते, जैसे दिन के प्रकाश में अन्धेरे का अस्तित्व नहीं रहता। अपने अहंकार को न्यूनतम करने का सबसे उत्तम उपाय सूर्य नाड़ी और चन्द्र नाड़ी के प्रवाह को संतुलित करना है। जिससे हमारे शरीर, मन और भावनायें कार्य के नये एवं परिष्कृत स्तरों में व्यवस्थित होने लगती है। चन्द्र और सूर्य नाड़ी का असंतुलन जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित करता है। जीवन में सक्रियता व निष्क्रियता में, इच्छा व अनिच्छा में, सुसुप्ति और जागृति में, पसन्द और नापसन्द में, प्रयत्न और प्रयत्नहीनता में, पुरुषार्थ और पुरुषार्थ हीनता में विजय और पराजय में, चिन्तन और निश्चिन्तता में तथा स्वछन्दता और अनुशासन में दृष्टिगोचर होता है।

ध्यान कब करें?

जब चन्द्र नाड़ी से सूर्य नाड़ी में प्रवाह बदलता है तो इस परिवर्तन के समय एक साम्य, अथवा संतुलन की अवस्था आती है। उस समय प्राण ऊर्जा सुषुम्ना नाड़ी से प्रवाहित होती है अर्थात् यों कहना चाहिये कि सुषुम्ना स्वर चलने लगता है। यह साम्य अवस्था मात्र थोड़ी देर के लिए ही होती है। यह समय ध्यान के लिए सर्वोत्तम होता है। ध्यान की सफलता के लिए प्राण ऊर्जा का सुषुम्ना में प्रवाह आवश्यक है। **इस परिस्थिति में व्यक्ति न तो शारीरिक रूप से अत्यधिक क्रियाशील होता है और न ही मानसिक रूप से विचारों से अति विक्षिप्त।** प्राणायाम एवं अन्य विधियों द्वारा इस अवस्था को अपनी इच्छानुसार प्राप्त किया जा सकता है। यही कारण है कि योग साधना में प्राणायाम को इतना महत्व दिया जाता है। प्राणायाम ध्यान हेतु ठोस आधार बनाता है। कपाल भाति प्राणायाम करने से सुषुम्ना स्वर शीघ्र चलने लगता है।

शरीर में रोग के अनुकूल दवा बनाने की क्षमता होती है और यदि उन क्षमताओं को बिना किसी बाह्य दवा और आलम्बन विकसित कर दिया जाता है तो उपचार अधिक प्रभावशाली, स्थायीएवं भविष्य में पड़ने वाले दुष्प्रभावों से रहित होता है।

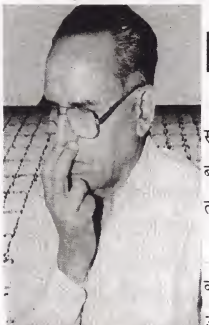

चित्र नं. 20

स्वरों की पहचान

नथूने के पास अपनी अंगुलियां रख श्वसन क्रिया का अनुभव करें। जिस समय जिस नथूने से श्वास प्रवाह होता है, उस समय उस स्वर की प्रमुखता होती है। बांयें नथूने से श्वास चलने पर चन्द्र स्वर, दाहिने नथूने से श्वास चलने पर सूर्य स्वर तथा दोनों नथूने से श्वास चलने की स्थिति को सुषुम्ना स्वर का चलना कहते हैं।

स्वर को पहचानने का दूसरा तरीका है कि हम बारी-बारी से एक नथूना बंद कर दूसरे नथूने सें श्वास लें और छोड़ें। जिस नथूने से श्वसन सरलता से होता है, उस समय उससे सम्बन्धित स्वर प्रभावी होता है।

स्वर बदलने के नियम :-

अस्वभाविक अथवा प्रवृत्ति की आवश्यकता के विपरीत स्वर शरीर में अस्वस्थता का सूचक होता है। निम्न विधियों द्वारा स्वर को सरलतापूर्वक कृत्रिम ढंग से बदला जा सकता है, ताकि हमें जैसा कार्य करना हो उसके अनुरूप स्वर का संचालन कर प्रत्येक कार्य को सम्यक् प्रकार से पूर्ण क्षमता के साथ कर सकें।

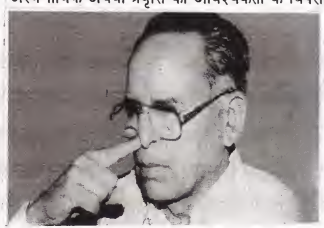

चित्र नं. 21

1. जो स्वर चलता हो, उस नथून को अंगुलि से या अन्य किसी विधि द्वारा थोड़ी देर तक दबाये रखने से, विपरीत इच्छित स्वर चलने लगता है।

2. चालू स्वर वाले नथूने से पूरा श्वास ग्रहण कर, बन्द नथूने से श्वास छोड़ने की क्रिया बार-बार करने से बन्द स्वर चलने लगता है।

3. जो स्वर चालू करना हो, शरीर में उसके विपरीत भाग की तरफ करवट लेकर सोने तथा सिर को जमीन से थोड़ा ऊपर रखने से इच्छित स्वर चलने लगता है।

4. जिस तरफ का स्वर बंद करना हो उस तरफ की बगल में दबाव देने से चालू स्वर बंद हो जाता है तथा

इसके विपरीत दूसरा स्वर चलने लगता है।

5. जो स्वर बंद करना हो, उसी तरफ के पैरों पर दबाव देकर, थोड़ा झुक कर उसी तरफ खड़ा रहने से, उस तरफ का स्वर बन्द हो जाता है।

6. जो स्वर बंद करना हो, उधर गर्दन को घुमाकर ठोडी पर रखने से कुछ मिनटों में वह स्वर बन्द हो जाता है।

7. घी अथवा शहद जो भी बराबर पाचन हो सके, पीने से चालू स्वर तुरन्त बन्द हो जाता है। परन्तु साधारण अवस्था में दूध या अन्य तरल पदार्थ पीने से भी स्वर बदली हो जाता है।

8. चलित स्वर में स्वच्छ रुई डालकर नथूने में अवरोध उत्पन्न करने से स्वर बदल जाता है।

9. कपाल-भाति और नाड़ी शोधन प्राणायाम से सुषुम्ना स्वर चलने लगता है।

निरन्तर चलते हुए सूर्य या चन्द्र स्वर के बदलने के सारे उपाय करने पर भी यदि स्वर न बदले तो रोग असाध्य होता है तथा उस व्यक्ति की मृत्यु समीप होती है। मृत्यु के उक्त लक्षण होने पर भी स्वर परिवर्तन का निरन्तर अभ्यास किया जाय तो मृत्यु को कुछ समय के लिए टाला जा सकता है।

वैसे तो शरीर में चन्द्र स्वर और सूर्य स्वर चलने की अवधि व्यक्ति की जीवनशैली और साधना पद्धति पर निर्भर करती है। परन्तु जनसाधारण में चन्द्र स्वर और सूर्य स्वर 24 घंटों में बराबर चलना अच्छे स्वास्थ्य का सूचक होता है। दोनों स्वरों में जितना ज्यादा असंतुलन होता है उतना ही व्यक्ति अस्वस्थ अथवा रोगी होता है। संक्रामक और असाध्य रोगों में यह अन्तर काफी बढ़ जाता है। लम्बे समय तक एक ही स्वर चलने पर व्यक्ति की मृत्यु शीघ्र होने की संभावना रहती है। अतः **सजगता पूर्वक स्वर चलने की अवधि को समान कर असाध्य एवं संक्रामक रोगों से मुक्ति पाई जा सकती है। सजगता का मतलब जो स्वर कम चलता है उसको कृत्रिम तरिकों से अधिकाधिक चलाने का प्रयास किया जाए तथा जो स्वर ज्यादा चलता है, उसको कम चलाया जाये। कार्यों के अनुरूप स्वर का नियन्त्रण और संचालन किया जाये।**

चिकित्सा में स्वरों की प्रयोग विधी :-

1. गर्मी सम्बन्धी रोग :–गर्मी, प्यास, बुखार, पीत्त सम्बन्धी रोगों में चन्द्र स्वर चलाने से शरीर में शीतलता बढ़ती है, जिससे गर्मी से उत्पन्न असंतुलन दूर हो जाता है।

2. कफ सम्बन्धी रोग:–सर्दी, जुकाम, खांसी, दमा आदि कफ सम्बन्धी रोगों में सूर्य स्वर अधिकाधिक चलाने

से शरीर में गर्मी बढ़ती है। सर्दी का प्रभाव दूर होता है।

3. आकस्मिक रोग:—जब रोग का कारण समझ में न आये और रोग की असहनीय स्थिति हो, ऐसे समय रोग का उपद्रव होते ही जो स्वर चल रहा है उसको बन्द कर विपरीत स्वर चलाने से तुरन्त राहत मिलती है।

प्रत्येक व्यक्ति को स्वर में होने वाले परिवर्तनों का नियमित आंकलन और समीक्षा करनी चाहिये। दिन-रात 12 घंटे चन्द्र और 12 घंटे सूर्य स्वर चलना संतुलित स्वास्थ्य का सूचक होता है।

यदि एक स्वर ज्यादा और दूसरा स्वर कम चले तो शरीर में असंतुलन की स्थिति बनने से रोग होने की संभावना रहती है। हम स्वर के अनुकूल जितनी ज्यादा प्रवृत्तियां करेंगे, उतनी अपनी क्षमताओं का अधिकाधिक लाभ अर्जित कर सकेंगे।

स्वरोदय विज्ञान के अनुसार व्यक्ति प्रातः निद्रा त्यागते समय अपना स्वर देखें। जो स्वर चल रहा है, धरती पर पहले वही पैर रखे। बाहर अथवा यात्रा में जाते समय पहले वह पैर आगे बढ़ावे, जिस तरफ का स्वर चल रहा है। **साक्षात्कार के समय इस प्रकार बैठे की साक्षात्कार लेने वाला व्यक्ति बन्द स्वर की तरफ हो, तो सभी कार्यों में इच्छित सफलता अवश्य मिलती है।**

पंचमहाभूतों का स्वर पर प्रभाव :-

पंच महाभूत तत्त्व (आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी) तथा ज्योतिष के नवग्रह की स्थिति का भी हमारे स्वर से प्रत्यक्ष-परोक्ष सम्बन्ध होता है। शरीर में प्रत्येक समय अलग-अलग तत्त्वों की सक्रियता होती है। शरीर की रसायनिक संरचना में भी पृथ्वी और जल तत्त्व का अनुपात अन्य तत्त्वों से अधिक होता है। सारी दवाईयां प्रायः इन्हीं दो तत्त्वों का प्रतिनिधित्व करती है। अतः जब शरीर में पृथ्वी तत्त्व प्रभावी होता है, उस समय किया गया उपचार सर्वाधिक प्रभावशाली होता है। उससे कम जल तत्त्व की सक्रियता पर प्रभाव पड़ता है।

शरीर में किस समय कौनसा तत्त्व प्रभावी होता है, उनको निम्न प्रयोगों द्वारा मालूम किया जा सकता है।

विधि नं. 1 दोनों कान, दोनों आंखें, दोनों नथूने और मुंह बंद करने के पश्चात्—

(a) यदि **पीला रंग** दिखाई दे तो उस समय शरीर में **पृथ्वी तत्त्व** प्रभावी होता है।

(b) यदि **सफेद रंग** दिखाई दे तो उस समय शरीर में **जल तत्त्व** प्रभावी होता है।

(c) यदि **लाल रंग** दिखाई दे तो उस समय शरीर में **अग्नि तत्त्व** प्रभावी होता है।

(d) यदि **काला रंग** दिखाई दे तो उस समय शरीर में **वायु तत्त्व** प्रभावी होता है।

(e) यदि मिश्रीत (अलग-अलग) रंग दिखाई दे तो उस समय शरीर में **आकाश तत्त्व** प्रभावी होता है।

विधी नं. 2

(a) जब मुख का स्वाद **मधुर** हो, उस समय **पृथ्वी तत्त्व** सक्रिय होता है।

(b) जब मुख का स्वाद **कसैला** हो, उस समय **जल तत्त्व** सक्रिय होता है।

(c) जब मुख का स्वाद **तीखा** हो, उस समय **अग्नि तत्त्व** सक्रिय होता है।

(d) जब मुख का स्वाद **खट्टा** हो, उस समय **वायु तत्त्व** सक्रिय होता है।

(e) जब मुख का स्वाद **कड़वा** हो, उस समय **आकाश तत्त्व** सक्रिय होता है।

विधि नं. 3

स्वच्छ दर्पण पर मुंह से श्वांस छोड़ने पर (फूंक मारने पर) जो आकृति बनती है, वे उस समय शरीर में प्रभावी तत्त्व को इंगित करती है।

(a) यदि मुंह से निकलने वाली वाष्प से चौकोर आकार बनता हो तो-पृथ्वी तत्त्व की प्रधानता

(b) यदि मुंह से निकलने वाली वाष्प से त्रिकोण आकार बनता हो तो- अग्नि तत्त्व की प्रधानता

(c) यदि मुंह से निकलने वाली वाष्प से अर्द्ध चंद्राकार आकार बनता हो तो- जल तत्त्व की प्रधानता

(d) यदि मुंह से निकलने वाली वाष्प से वृताकार (गोल) आकार बनता हो तो- वायु तत्त्व की प्रधानता

(e) यदि मुंह से निकलने वाली वाष्प से मिश्रीत आकार बनता हो तो- आकाश तत्त्व की प्रधानता

जिज्ञासु व्यक्ति अनुभवी स्वरशास्त्री से स्वरोदय विज्ञान का अवश्य गहन अध्ययन करें। क्योंकि स्वर विज्ञान से न केवल रोगों से बचा जा सकता है, अपितु प्रकृति के अदृश्य रहस्यों का भी पता लगाया जा सकता है। मानव देह में स्वरोदय एक ऐसी आश्चर्यजनक, सरल, स्वावलम्बी, प्रभावशाली, बिना किसी खर्च वाली चमत्कारी प्रणाली होती है, जिसका ज्ञान और सम्यक् पालना होने पर किसी भी सांसारिक कार्यों में असफलता की प्रायः संभावना नहीं रहती। स्वर विज्ञान के अनुसार प्रवृत्ति करने से साक्षात्कार में सफलता, भविष्य में घटित होने वाली घटनाओं का पूर्वाभास, सामने वाले व्यक्ति के अन्तरभावों को सहजता से समझा जा सकता है। जिससे प्रतिदिन उपस्थित होने वाली प्रतिकूल परिस्थितियों से सहज बचा जा सकता है। अज्ञानवश स्वरोदय की जानकारी के अभाव से ही हम हमारी क्षमताओं से अनभिज्ञ होते हैं। रोगी बनते हैं तथा अपने कार्यों में असफल होते हैं। स्वरोदय विज्ञान प्रत्यक्ष फलदायक है, जिसको ठीक-ठीक लिपीबद्ध करना संभव नहीं। केवल जनसाधारण के उपयोग की कुछ मुख्य सैद्धान्तिक बातों की आंशिक और संक्षिप्त जानकारी ही यहां दी गई हैं।

पातंजलि योग और स्वास्थ्य

योग क्या है ?

योग शब्द 'युज्' धातु से बना हैं। जिसका शाब्दिक अर्थ है जुड़ना मिलना। जब व्यक्ति अपनी आत्मा से जुड़ जाता है तथा उससे साक्षात्कार कर लेता है तो वह स्वयं को नर से नारायण और आत्मा को परमात्मा बना देता है। **योग सुखी जीवन जीने की सरल एवं प्रभावशाली श्रेष्ठ विधि है। जिसके द्वारा मनुष्य का शरीर पूर्ण स्वस्थ, इन्द्रियों में अपार शक्ति, मन में अपूर्व आनन्द, बुद्धि में सम्यक् ज्ञान एवं भावों में कषायों की मंदता और सजगता आती है, वही सच्चा योग होता है। योग साधना से मनुष्य जन्म-मृत्यु के बन्धनों से मुक्त हो सकता है। योग द्वारा शरीर से रोग, इन्द्रियों से थकावट और कमजोरी, मन से चिंता, भय, तनाव, आवेगों से अपने आपको मुक्त रखा जा सकता है।** वर्तमान में प्रचलित योग का मुख्य आधार पातंजलि द्वारा निर्धारित अष्टांग योग साधना है। पातंजलि ने यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार ध्यान और समाधि के द्वारा योग के आठ अंगों का क्रमानुसार निर्देश किया है। जिसकी सम्यक् विधि से क्रियान्विति करने पर मनुष्य अपने परम लक्ष्य मोक्ष तक को प्राप्त कर सकता है। योग की सारी साधना व्यक्ति के स्वयं के सम्यक् पुरुषार्थ पर ही निर्भर करती है। जो मानव की सम्यक् जीवन शैली का ही रूप होता है। **योग शरीर को विशेष प्रकार से मोड़ना अथवा घुमाना मात्र व्यायाम ही नहीं है, अपितु मन, वचन और काया का सम्यक् संयम, तालमेल और संतुलन ही सच्चा योग होता है। वास्तव में योग सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन और सम्यक् आचरण की उत्कृष्ट साधना है। जिससे शरीर, मन और आत्मा ताल से ताल मिलाकर कार्य करते हैं। तीनों के विकारों से लड़ने की प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है तथा तीनों निर्विकारी बनते हैं। यही मनुष्य जीवन का ध्येय होता है।**

यम

यम का मतलब होता है निग्रह अर्थात् छोड़ना। **हम जीवन में क्या छोड़ें? क्यों छोड़ें? हमारे जीवन को जो विकारी बनाते हैं, पतित बनाते हैं, जीवन के लिए जो अकरणीय हैं, उनको छोड़ें बिना जीवन का विकास हो नहीं सकता। पातंजलि ने ऐसे पांच यमों को योग की आधारशिला माना है। ये पांच यम हैं हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन या व्यभिचार तथा परिग्रह का त्याग।** मनुष्य की सारी प्रवृत्तियाँ तीन करण द्वारा होती है। जैसे स्वयं किसी कार्य को करना, दूसरों से किसी कार्य को करवाना तथा तीसरा किसी कार्य करने वालों की अनुमोदना या प्रशंसा करना।

उसके साथ तीन में से कोई न कोई योग अवश्य होता है। ये तीन योग हैं, मन का योग, वचन का योग और काया का योग। जैसे किसी कार्य को मन से करना, वाणी से करना, काया से करना। अन्य से करवाना अथवा कार्य करने वालों की मन, वाणी या काया से अनुमोदना करना, सहयोग देना। बिना करण और योग के कार्य हो नहीं सकता। किसी प्रवृत्ति के लिए कम से कम तीन करण और तीन योग में से एक करण और एक योग का होना अनिवार्य होता है। **सच्चा साधक इन पाँचों यमों का पूर्ण रूप से तीन करण और तीन योग से जीवन भर पालन करता है। उसके लिए संकल्प बद्ध होता है।** अतः उनके व्रतों को महाव्रत कहते हैं। जैसे- जीवन पर्यन्त मन, वचन और काया से किसी जीव को न तो स्वयं कष्ट पहुंचाना, न किसी अन्य व्यक्ति से कष्ट पहुंचाने में सहयोगी बनना और न प्रत्यक्ष परोक्ष रूप से किसी भी चेतनाशील प्राणी को कष्ट पहुंचाने वाले को प्रोत्साहित करना, अच्छा न मानना ही हिंसा का पूर्णतः त्याग होता है। **हिंसा-अहिंसा को जानने के लिए जीव क्या है? अजीव क्या है, का जानना, समझना आवश्यक है? उसके बिना पूर्ण अहिंसा का पालन कैसे संभव हो सकता है? परन्तु आज के मानव ने हिंसा को मात्र मानव तक सीमित कर दिया है। स्वार्थवश अन्य जीवों को कष्ट पहुंचाते उन्हें तनिक भी संकोच नहीं होता। वनस्पति और पानी में भी आधुनिक विज्ञान ने जीव माना है परन्तु उनका दुरुपयोग करते प्रायः अधिकांश अहिंसक कहलाने वाले मानव तनिक भी नहीं हिचकिचाते।** पृथ्वी, वायु और अग्नि में भी जीव होते हैं। अतः उनका कैसे उपयोग किया जाये, जानना और समझना आवश्यक है। आज पर्यावरण की सारी समस्याओं का कारण उनके प्रति हमारा अज्ञान और अविवेक ही हैं। हिंसा का मतलब किसी जीव को कष्ट पहुँचाना, प्रताड़ित करना, मारना आदि। दुःख देने से दुःख मिलता है। यह प्रकृति का सनातन सिद्धान्त हैं। हिंसा दो प्रकार की होती है। प्रथम द्रव्य हिंसा तथा दूसरी भाव हिंसा। वर्तमान में मात्र द्रव्य हिंसा तक ही हमारा सोच प्रायः सीमित होता जा रहा है। परन्तु द्रव्य हिंसा की जड़ भाव हिंसा ही होती है। जिसके मूल कारण होते हैं आसक्ति , अनैतिकता, अनावश्यक कामनाएँ, धर्म के नाम पर साम्प्रदायिक उन्माद, जातिवाद, प्रान्तवाद, राष्ट्रवाद की संकीर्ण भावना तथा इन सब के मूल में होता है आध्यात्मिक चेतना का अभाव, स्वछन्द एवं संकीर्ण स्वार्थी मनोवृत्तियाँ। ये ही वे कारण हैं, जो दूसरों के साथ निर्दयता, क्रूरता और दुःख देने जैसी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहित करते हैं, तथा हिंसा को बढ़ावा देते हैं। **रोग भी एक प्रकार का दुःख है। अतः हमें अन्य जीवों को किसी भी प्रकार से प्रत्यक्ष परोक्ष रूप से कष्ट नहीं देना चाहिये। यही स्वास्थ्य अथवा योग साधना की प्रारम्भिक भूमिका होती है।**

मन में जैसा सम्यक् ज्ञान से सोचा समझा हो, आंखों से जैसा जो कुछ देखा हो और कानों से जैसा जो कुछ सुना हो उसे ठीक वैसा ही अभिव्यक्त न करना झूठ कहलाता है और वैसा ही प्रस्तुतिकरण करना सत्य कहलाता है। किसी की वस्तु को बिना पूछे लेना चोरी कहलाता है। समस्त इन्द्रियों के विषय विकारों पर संयम न रखना असंयम कहलाता है और उनका संयम ब्रह्मचर्य होता है। जबकि परिग्रह का मतलब धन, परिवार और अन्य भौतिक वस्तुओं

के प्रति आसक्ति भाव या लगाव होना। अतः योगाभ्यास करने से पूर्व प्रत्येक साधक के लिए इन दुर्गुणों को त्याग कर अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का पालन आवश्यक होता है। जो योग की सफलता की आधारशिला है। बिना नींव के मकान बन नहीं सकता। बिना जड़ के वृक्ष विकसित नहीं हो सकता। ठीक उसी प्रकार यम के पालन के बिना योग का सम्पूर्ण लाभ प्राप्त नहीं हो सकता, मात्र शरीर की कार्य क्षमता बढ़ती है। यमों के पालन की कोई सीमा अथवा अवधि नहीं होती। वे सदैव सभी परिस्थितियों में प्राथमिकता के आधार पर आचरणीय होते हैं। जैन संतों के पांचों यमों के पूर्णतया पालन का संकल्प होता है तथा सच्चे आत्मार्थी साधु आज भी उनका पालन करते देखे जा सकते हैं। जैन साधुओं के आचरणीय पाँच महाव्रत और पातंजलि योग में वर्णित पांच यम पूर्ण रूप से समान हैं।

नियम

नियम अथवा सिद्धान्त जीवन की वे प्रवृत्तियाँ हैं, जो योग के लिए अनिवार्य होती है तथा जो यम के पालन में सहयोग करते हैं। मुख्य नियम भी पांच हैं। शौच अर्थात् शुद्धता, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्राणिधान। शौच का मतलब मन, वाणी और काया की पवित्रता अर्थात् आत्मा की विकारों से शुद्धि। संयोग-वियोग, अनुकूल-प्रतिकूल, लाभ-हानि के प्रसंगों पर सदैव प्रसन्नचित्त रहना, विचलित न होना अर्थात् समभाव रखना ही संतोष कहलाता है। सुख दुःख, सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास जैसे कष्टों को आत्म शुद्धि के लिए सम्यक् दृष्टिकोण से की जाने वाली मन, वचन और काया की साधना को तप कहते हैं। तप का मतलब है, जो आत्मा को तुरन्त पवित्र करे। जिस प्रकार अग्नि में सोना तपाने से उसका मेल दूर हो जाता है, सोना शुद्ध हो जाता है। ठीक उसी प्रकार तप की अग्नि से शरीर की इन्द्रियाँ, मन और आत्मा के विकार भी दूर हो जाते हैं। तप मुख्यतया दो प्रकार का होता है। पहला बाह्य तप जिसके द्वारा पांचों इन्द्रियों और मन की बाह्य अशुभ प्रवृत्तियों को त्यागा जाता है। दूसरा है आन्तरिक तप। जो व्यक्ति को अन्तर्मुखी बनाता है।

स्वयं के द्वारा स्वयं के स्वरूप का सम्यक् चिन्तन, मनन, निरीक्षण, परीक्षण और समीक्षा करना स्वाध्याय कहलाता है। जैसे मैं कौन हूँ? कहाँ से आया हूँ? क्यों आया हूँ? मुझे कहाँ जाना है? मैं कहाँ जाऊंगा? मैं अपने लक्ष्य को कैसे प्राप्त करूँगा? जन्म से पूर्व मेरा क्या अस्तित्व था और मृत्यु के पश्चात् मेरी क्या स्थिति होगी? आत्मा क्या हैं? क्या मैं मात्र शरीर हूँ? मेरे सारे संयोग-वियोग का संचालक कौन है? मेरे जीवन का सही उद्देश्य क्या है? आत्मा और शरीर का क्या संबंध हैं? तन में व्याधि, मन में संकल्प-विकल्प, इच्छा-कामना, स्मृति-विस्मृति आदि का मूल क्या है? सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन और सम्यक् चारित्र आदि का सम्यक् चिन्तन करना स्वाध्याय कहलाता है।

आत्मा की कर्मों से मुक्तावस्था, शुद्धावस्था परमात्मा का स्वरूप होती है। अतः मन, वचन और काया से ऐसी प्रवृत्तियाँ करना जिससे आत्मा परमात्मा बन जाए, ईश्वर प्राणिधान कहलाता है।

यम नियम के पालन से शरीर के अवयव रसायनयुक्त हो जाते हैं। उनमें रोग प्रतिकारात्मक क्षमता बढ़ जाती है तथा मनोबल मजबूत हो जाता है। विकार दूर हो जाते हैं। समभाव की प्राप्ति होने से मन और मस्तिष्क में सन्तुलन हो जाता है। जो स्वास्थ्य की आधार शिला होती है। बिना यम नियम के पालन से योग का आंशिक लाभ ही मिलता है।

यम का सदैव एवं पूर्णता के साथ पालन करना आवश्यक होता है। उसमें किसी प्रकार की छूट नहीं होती परन्तु नियम अथवा मर्यादाओं के पालन में परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन भी हो सकता है। नियम से यम पुष्ट होते हैं।

आसन

यम नियम के पालन से व्यक्ति अपनी क्षमताओं से परिचित हो जाता है। जीवन का सही उद्देश्य समझ में आ जाता है। उसकी प्राथमिकताएँ बदल जाती है। वह अपना अवमूल्यन नहीं करता। उसका मनोबल और आत्मबल बढ़ जाता है। रोग प्रतिरोधक क्षमता और सहनशक्ति बढ़ जाती है।

यम नियम का अपनी क्षमतानुसार अधिकाधिक पालन करने के पश्चात् ही पातंजलि ने अष्टांग योग में आसन को रखा। आसन शरीर की वह स्थिति है, जिससे शरीर बिना किसी बैचेनी के स्थिर रह सके और मन को सुख की प्राप्ति हो। आसन करने से मांस पेशियों में खिंचाव होता है। जिससे उनका विकास होता है। सुस्ती दूर होती है। शरीर में हल्कापन आता है। नाड़ियों की शुद्धि, स्वास्थ्य की वृद्धि एवं तन मन में सक्रियता आती है।

आसन व्यायाम का ही वैज्ञानिक रूप होता है। आसनों से शरीर के ऊर्जा केन्द्र जागृत होते हैं और शरीर में आवश्यक हारमोन्स बनाने वाली अन्तःश्रावी ग्रन्थियाँ बराबर कार्य करने लगती है। आसनों के अलावा प्रायः अन्य कोई ऐसा सरल व्यायाम नहीं होता जिससे शरीर के सभी अंगों की यथोचित कसरत हो सके।

योग साधकों के लिए अन्य व्यायामों की अपेक्षा आसन ही अधिक उपयोगी होते हैं। आसन में, अन्य पहलवानी जैसे, कठिन व्यायामों जितनी ऊर्जा खर्च नहीं होती, जिसकी पूर्ति के लिए अधिक मात्रा में पौष्टिक आहार की आवश्यकता होती है। राजसिक एवं पौष्टिक आहार से इन्द्रियाँ उत्तेजित होती है, वृत्तियाँ राजसिक और तामसिक बनती है। परन्तु योगी के लिए अल्प सीमित और सात्विक आहार लेने का ही विधान होता है। अतः योगियों के लिए आसन ही श्रेष्ठतम व्यायाम होता है।

स्वर्गीय जैनाचार्य आत्मारामजी महाराज के अनुसार आसन वह शारीरिक साधना है, जिसके द्वारा शरीर की समस्त जीवन प्रक्रिया को नियन्त्रित किया जाता है, श्वास-प्रश्वास को बल दिया जाता है। शरीर के रक्तसंचार को सुव्यवस्थित एवं शुद्ध किया जाता है। इस प्रकार शरीर को आलस्य से मुक्त कर साधना के योग्य बनाया जाता है।

आसन से दृढ़ता आती है। नाड़ी तंत्र मजबूत होता है। सभी जैन तीर्थंकरों एवं बुद्ध की मूर्त्तियाँ प्रायः पदमासन में ही मिलती है। भगवान महावीर की सारी साधना अलग-अलग आसनों में हुई। नमाज पढ़ने के लिये तथा जैन धर्म में प्रतिक्रमण की आराधना करते समय विविध आसनों तथा वंदन करते समय विशेष आसनं का विधान होता है। आसन से एकाग्रता बढ़ती है।

नियमित करणीय आसन

वज्रासन

जैसा कि इस आसन का नाम है उसी के अनुरूप **इस आसन से शरीर वज्र की तरह बन जाता है। शरीर की रोग प्रतीकारात्मक क्षमता बढ़ती है। शरीर और मन में विकार उत्पन्न नहीं होते। वीर्य विकार सम्बन्धी रोगों, अनियमित महावारी वाली स्त्रियों को इस आसन से विशेष लाभ होता है।** इस आसन का नियमित अभ्यास करने वालों को मौसम परिवर्तन से होने वाले रोगों एवं एलर्जी संबंधी रोगों तथा छूत की बीमारियां होने की सम्भावनाएं प्रायः नहीं रहती। आजकल युवक और युवतियों में काम विकार पैदा करने वाले दृश्यों को टी.वी., सिनेमा अथवा अन्य माध्यमों द्वारा देखने की प्रवृति अधिक होने से अथवा ऐसा गंदा साहित्य पढ़ने से प्रायः स्वप्न दोष और वीर्य स्खलन आदि रोग होने की संभावनाएं अधिक होती है।

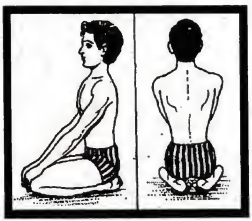

वज्रासन वज्रासन में पृष्ठ भाग की स्थिति

चित्र नं. 22

जिसके प्रभाव से हाथ की अंगुलियों के नाखूनों के नीचे सफेद चन्द्राकार निशान बन जाते है। ऐसे वीर्य विकारों के नियन्त्रण के लिए यह सर्वोत्तम आसन सिद्ध हुआ है। यही एक ऐसा आसन है, जिसे भोजन के बाद भी किया जा सकता है, जिससे पाचन अच्छा होता है। इस आसन को जितना अधिक किया जाता है, उतना ही अधिक लाभ होता है। एड़ी से लगाकर गर्दन तक के रोगों में इस आसन से विशेष लाभ होता है।

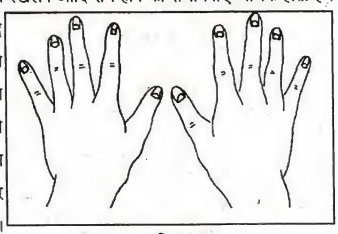

चित्र नं. 23

चित्र नं. 24

गोदुहासन

गोदुहासन में दोनों पंजों के बल बैठा जाता है। इस आसन में जितना अधिक बैठने का अभ्यास किया जाता है, उतना अधिक शरीर एवं मेरु दण्ड का संतुलन बना रहता है। शरीर का संवेदन तंत्र अधिक सक्रिय रहता है। ध्यान में एकाग्रता आती है। भगवान महावीर को इसी आसन में ध्यान करते हुए केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई।

ताडासन से रोग ग्रस्त मांसपेशियों का निदान :-

ताडासन
(चित्र नं.25)

हमारा शरीर मज्जा तंत्र, नाड़ी तंत्र, अस्थि तंत्र आदि अनेक तंत्रों से मिलकर बना होता है। रोग की अवस्था में सभी तंत्रों की कार्य प्रणाली प्रत्यक्ष परोक्ष रूप से कम ज्यादा अवश्य प्रभावित होती है। अतः किसी भी विधि द्वारा यदि किसी भी तंत्र को पूर्णतः स्वस्थ कर लिया जाता है तो, शरीर में असाध्य एवं संक्रामक रोगों की संभावनाएँ समाप्त हो जाती है। कमजोर मांस पेशियों का निदान करने में ताडासन की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

इस आसन में दोनों पंजों के बल जितनी देर खड़ा रहा जा सकता है उतनी देर तक खड़े होकर दोनों हाथों को सिर से ऊपर की तरफ जितना सहन हो सके, खिंचाव दिया जाता है। परिणाम स्वरूप पगथली से लगाकार गर्दन तक सारी मांसपेशियों में तनाव यानि खिंचाव होने लगता है। परिणामस्वरूप, जो-जो मांसपेशियाँ अशक्त अथवा कमजोर होती है, उनमें उपस्थित विकारों के अनुरूप दर्द एवं पीड़ा होने लगती है। जितना अधिक दर्द होता है, उतनी ही वे मांसपेशियाँ विकार ग्रस्त होती है। साधारण अवस्था में उन मांसपेशियों में दर्द की अनुभूति न होने से उनके रोगों का जनसाधारण को प्रायः पता नहीं चलता, परन्तु वे रोग को अप्रत्यक्ष रूप से अवश्य सहयोग करती है। यदि उन पीड़ा ग्रस्त मांसपेशियों का आगे के अध्यायों में बतलाई गई उपचार पद्धतियों द्वारा उपचार कर ठीक कर लिया जाता है तो, शरीर में किसी भी नाम से उपस्थित प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रोग शीघ्र ठीक होने लगता है।

शवासन

चित्र नं. 26

शवासन शरीर के शिथिलीकरण का सरलतम उपाय है । उस अवस्था में मांसपेशियों का हलन-चलन बंद हो जाने से, मांसपेशियों की सूचना मस्तिष्क तक पहुंचाने वाली संवेदन नाड़ी तथा मस्तिष्क से मांसपेशियों को निर्देश लाने वाली क्रियाशील नाड़ी (मोटर नर्व) दोनों का कार्य बंद हो जाता है। अत: शवासन में हम जितना अधिक निष्क्रिय होते हैं, उतना ही अधिक मांसपेशियों को आराम मिलता है।

शारीरिक आवश्यकतानुसार आसनों का विभाजन

आसन वैसे तो अनेक होते हैं। फिर भी इनको मुख्य रूप से तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है।

1. **विश्रामात्मक आसन** - जो शरीर की थकान दूर करते हैं।
2. **ध्यानात्मक आसन** - जो ध्यान के लिए विशेष उपयोगी होते हैं।
3. **व्यायामात्मक आसन** - जो शरीर को स्वस्थ, लचीला और रोग मुक्त करते हैं।

शरीर की स्थिति के अनुसार आसनों को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है।

1. **खड़े-खड़े करने वाले आसन** - इन आसनों में हाथ, पैर और कमर का परिश्रम अधिक होता है।
2. **बैठ कर करने वाले आसन** में पीठ, गर्दन, कंधे अधिक श्रम करते हैं।
3. **लेट कर करने वाले आसन में** पेट, छाती, गले आदि को अधिक श्रम करना पड़ता है।

दैनिक कार्यक्रमों में हमें चिन्तन करना होगा कि किन अंगों को अधिक परिश्रम करना पड़ता है और शरीर के किन भागों को कम श्रम करना पड़ता है। जिन अंगों को अधिक कार्य करना पड़ता है, उन अंगों के लिए व्यायाम की उतनी आवश्यकता नहीं होती जितनी कि जो अंग कम अथवा बिल्कुल कार्य नहीं करते हैं उनके लिए होती हैं।

सही आसनों का चयन आवश्यक

जो अंग कम कार्य करते हैं अथवा अधिक निर्बल होते हैं, उन्हें सतेज एवं पुष्ट करने की विशेष आवश्यकता होती है। **अत: आसन का चयन करते समय इस बात का विवेक रखा जाये कि अधिक कार्य करने वाले को आराम दिया जाए अन्यथा अधिक श्रम की गर्मी से शरीर का वह भाग विकृत हो जायेगा। साथ ही जो भाग कम**

कार्य करते हैं, उनसे श्रम कराया जाये, अन्यथा शरीर का वह भाग निस्तेज, निष्क्रिय, निकम्मा, क्रियाहीन और कमजोर होकर रोगों का घर बन जायेगा।

अनुभवियों का ऐसा निष्कर्ष है कि **कमजोर, वृद्ध और बुद्धिजीवी लोगों को लेटकर किये जाने वाले आसन प्रायः अधिक उपयोगी** होते हैं। जिनके पेट और छाती में निर्बलता होती है, भूख कम लगती है, मल त्याग बराबर नहीं होता, कफ, जुकाम, खांसी आदि की शिकायत बनी रहती है, उन्हें पेट पर दबाव डालने वाले आसन अधिक उपयोगी होते हैं।

कौन से व्यक्ति को कौनसा आसन उपयोगी और लाभकारी होता है, उसका निर्णय करने से पूर्व, उस व्यक्ति की शारीरिक संरचना, स्वभाव, दिनचर्या, स्वास्थ्य, उम्र आदि का निरीक्षण करना आवश्यक होता है। किसी की नसें इतनी कड़ी होती है कि, वे निश्चित सीमा तक ही मुड़ सकती हैं। जबकि कुछ व्यक्तियों का शरीर इतना लचीला होता है कि उसको काफी मोड़ा जा सकता है। **जिन आसनों में शरीर को अधिक मोड़ने की आवश्यकता होती है, वे लचीली शारीरिक संरचना वाले लोगों के लिए ही उपयुक्त हो सकते हैं, परन्तु जिनकी नाड़ियाँ कड़ी एवं कठोर होती हैं, उनके लिए दूसरे आसन ज्यादा हितकर होते हैं।**

कौनसा आसन हमारी शरीर संरचना और आवश्यकता के अनुकूल होता है, उसका अनुभव व्यक्ति की स्वयं की सजगता पर निर्भर करता है। **आसन का प्रयोग करते समय हमें इस बात का सूक्ष्मता से ध्यान रखना चाहिये कि उस आसन का दबाव शरीर के किन-किन अंगों पर कितना-कितना पड़ता है।** दो तीन दिन के प्रयोग के पश्चात् हानि लाभ का अनुभव होने लगता है। उसी के अनुरूप स्वयं के लिए कुछ उपयोगी आसनों का चयन करना चाहिए। **अपने बारे में जितनी जानकारी स्वयं को होती हैं उतनी किसी अन्य को हो नहीं सकती।**

आसन को प्रभावी बनाने वाले तथ्यः-

कोई भी आसन झटके से नहीं करना चाहिए। **किसी भी आसन को करने के पश्चात् उसके विपरीत दिशा में शरीर पर तनाव देने वाले आसन को भी अवश्य करना चाहिए। प्रत्येक आसन के पश्चात् यथा संभव शवासन अवश्य करना चाहिए।**

आसनों के लिए प्रातःकाल का समय ही सर्वश्रेष्ठ होता है। आसन करते समय शरीर पर तंग कपड़े नहीं होने चाहिये, जिससे आसन करते समय शरीर से निकलने वाली गन्दी वायु के बाहर जाने में और उसके स्थान पर नवीन स्वच्छ वायु के स्पर्श में बाधा उपस्थित होती है। आसन ऐसे स्थान पर करना चाहिये जहां वातावरण में आक्सीजन की मात्रा अधिक हों।

आसन अनेक होते हैं और सबकी आवश्यकता अलग-अलग होती है। अतः आसन सम्बन्धी सत्साहित्य का आलम्बन लेकर, अपने अनुकूल चंद नियमित आसनों का चयन कर लेना चाहिये। विशेष परिस्थितियों में अनुभवी योगाचार्य के निर्देशन में कठिन आसन भी सीख कर किये जा सकते हैं।

अंग व्यायाम

जिस प्रकार यदि किसी गतिशील मशीन, वाहन अथवा स्प्रिंग को काम में न लिया जाएं तो उसमें जंग लगने से, भविष्य में उसका हलन चलन प्रभावित हो सकता है। ठीक उसी प्रकार हमारे शरीर में भी ऐसी अनेकों मांसपेशियाँ होती हैं जिसका हलन चलन न होने से उस पर विकार जमा होने की संभावना रहती हैं। अतः यदि उन मांसपेशियों का नियमित रूप से हलन चलन किया जाए तो उनमें विकृति आने की कम संभावना रहती है। **अंग व्यायाम शरीर के प्रत्येक अंग उपांग की मांसपेशियों को जितना संभव हो आगे-पीछे, दांयें-बांयें, ऊपर-नीचे घुमाने, खींचने, दबाने, सिकोड़ने और फैलाने से सम्बन्धित अंग की मांसपेशियाँ सजग और सक्रिय हो जाने से, उस भाग में रक्त परिभ्रमण नियमित होने लगता है। आंख, कान, नाक, मुंह, गला और शरीर के मुख्य जोड़ों के अंग व्यायाम से वहां पर प्राण ऊर्जा का प्रवाह बराबर होने लगता है। अंग व्यायाम को उस अंग की यौगिक क्रियाएं भी कहते**

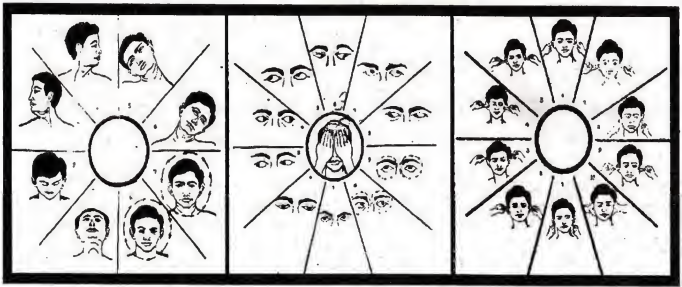

कान, आंख और गर्दन का विभिन्न दिशाओं में तनाव उत्पन्न कर किए जाने वाले अंग व्यायाम (चित्र नं. 27,28,29)

हैं। विभिन्न अंगों के अंग व्यायाम उन्हीं अंगों के स्थानीय कष्टों में विशेष लाभ पहुंचाते हैं। मसाज अथवा मर्दन भी कम गतिशील मांस पेशियों वाले शरीर के भाग में अंग व्यायाम का ही विशेष रूप होता है।

विशेष उपलब्धियों हेतु किए जाने वाले आसनों का सिद्धान्त

आसनों का सिद्धान्त यह है कि एक साधारण स्थिति में लेटना, बैठना या खड़ा होना चाहिए। फिर जिन निष्क्रिय

अंगों को क्रियाशील बनाने हेतु आसन किया जाता है, शरीर के उस भाग को निश्चित सहनीय स्थिति तक धीरे-धीरे तानते हुए ले जाना चाहिए। निश्चित स्थिति में पहुंचकर उस स्थिति में कुछ समय के लिए ठहरना चाहिए। तदुपरान्त धीरे-धीरे पूर्व क्रिया को वापिस लौटाते हुए साधारण स्थिति पर पहुंच जाना चाहिये। साधारण स्थिति में रहकर उसी प्रक्रिया को पुनः पुनः दोहराना चाहिए।

प्राणायाम

शरीर को निश्चित अवधि के लिए आत्मा के रहने योग्य बनाये रहने की क्षमता हेतु जिस तत्त्व की प्रधान भूमिका होती है, उसे प्राण कहते है तथा उसकी ऊर्जा को प्राण ऊर्जा कहते हैं प्राण के आधार पर ही मानव प्राणी कहलाता है । प्राण सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीर के बीच का संबंध सूत्र होता है, जो स्थूल शरीर को सूक्ष्म शरीर से जोड़ता है। प्राण ऊर्जा पंच महाभूत तत्वों (पृथ्वी, पानी, हवा, अग्नि, आकाश) के साथ मिलकर उन्हें उपयोगी बनाती है।

प्राणायाम को प्रभावी बनाने वाले त्रिबंध

ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों के अतियोग अथवा दुरूपयोग से शारीरिक ऊर्जा का अपव्यय होता है। अतः आसन, प्राणायाम के साथ कुछ बंधों के प्रयोग से योगाभ्यास किया जाये तो उसका प्रभाव बहुत अधिक बढ़ जाता हैं। बंध का अर्थ होता है– "बांधना", रोकना या कसना अथवा बंद करना। इसमें शरीर के निश्चित अंगों को बड़ी सतर्कता से संकुचित किया जाता हैं।

सामान्यतः योग में मुख्य बंध तीन होते हैं और चौथा इन तीनों का योग होता हैं।

(1) जालन्धर बंध (2) उड्डियान बंध (3) मूल बंध (4) महा बंध

(चित्र नं.30)

जालन्धर बंध:-ठोड़ी को कंठ कूप में स्पर्श करने से होने वाली शरीर की अवस्था को जालन्धर बंध कहते हैं। इससे गर्दन से गुजरने वाली नाड़ियां नियन्त्रित होती हैं एवं सुषुम्ना स्वर चलने लगता है। कुम्भक कर जालन्धर लगाने से कुम्भक का समय बढ़ाया जा सकता हैं। जालन्धर बंध के समय रेचक और पूरक नहीं करना चाहिये।

जालंधर बंध व्यक्ति को शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक रूप से लाभदायक होता है। इससे मानसिक शिथिलिकरण होता है और चित्त की एकाग्रता बढ़ती है। रक्त चाप और श्वसन नियन्त्रित होता है। थायराइड एवं पेरायायराइड ग्रन्थियाँ बराबर कार्य करने लगती हैं।

(चित्र नं.31)

उड्डियान बंध:-श्वास को बाहर निकाल कर पेट को कमर की तरफ जितना सिकोड़ सकें, बाह्य कुम्भक करने की स्थिति को उड्डियान बंध कहते हैं। यह बंध खाली पेट ही करना चाहिये। **इस क्रिया से आमाशय का सम्पूर्ण भाग स्पंज की भांति निचोड़ा जाता है। जिससे जमा अथवा रूका हुआ रक्त पुन: प्रवाहित होने लगता है। फलत: पेट के सभी अंग सक्रिय होने लगते हैं।**

इस बंध से नाभि केन्द्र, एड्रीनल एवं पेन्क्रियाज ग्रन्थियाँ बराबर कार्य करने लगते हैं।

(चित्र नं.32)

मूल बंध:- मल द्वार को ऊपर की तरफ खींचकर संकुचित करने की शारीरिक स्थिति को मूल बंध कहते हैं। **इस बंध से आंतों और प्रजनन अंगों संबंधी रोगों में लाभ होता हैं। मल-मूत्र के रोगों में भी लाभ होता हैं। यह भूख को बढ़ाता हैं।**

(चित्र नं.33)

महाबंध:-जब तीनों बंध एक साथ किये जाते हैं, शरीर की उस अवस्था को महाबंध कहते हैं। इस हेतु पहले जालन्धर बंध के साथ उड्डियान बंध लगाना चाहिये, उसके पश्चात मूल बंध लगाना चाहिये। श्वास को जितना स्वभाविक गति से रोक सकें, रोकना चाहिये। फिर पहले मूल बंध उसके पश्चात उड्डियान बंध और अंत में जालन्धर बंध से मुक्त होना चाहिये। उसकी अनेक आवृतियाँ की जा सकती हैं। **महाबंध से तीनों बंधों का लाभ एक साथ मिल जाता हैं।**

बहुत से स्थानों का जलवायु विशेष स्वास्थ्यप्रद होता है। उसका कारण वहाँ प्राण तत्त्व की अधिक उपलब्धता होती है। इसके विपरीत जहाँ प्राण तत्त्व का अभाव होता है, वहाँ रोग होने की संभावना रहती है। **जिस वायु में प्राण ज्यादा घुला होता है, उसे प्राण वायु भी कह दिया जाता है।**

प्राण ऊर्जा को व्यक्ति अपने अन्दर प्रचुर मात्रा में भर सकता है तथा जिसके प्रभाव से उत्तम स्वास्थ्य, दीर्घ जीवन, चैतन्यता, स्फूर्ति, कार्य करने की क्षमता, सहन करने की शक्ति, मानसिक विचक्षणता आदि नाना प्रकार की शक्तियाँ प्राप्त की जा सकती है और उस विधि का नाम हैं - प्राणायाम।

प्राणायाम का शाब्दिक अर्थ होता हैं –प्राण का आयाम। आयाम का मतलब वृद्धि करना। प्रत्येक योनि में हमें निश्चित श्वासों के खजाने के अनुसार आयुष्य प्राप्त होती है। यदि उन श्वासों को जल्दी जल्दी अविवेक पूर्ण ढंग से पूर्ण कर दिया जाये तो हम जल्दी ही मृत्यु को प्राप्त कर लेते हैं और यदि उन्हीं श्वासों का अपव्यय न किया जाये, पूर्ण श्वास-प्रश्वास लिया और निकाला जाये तो उन सीमित श्वासों को लेने में हमें अधिक समय लगेगा अर्थात् हमारी आयु, जीवन अथवा दूसरे शब्दों में कहें तो प्राणों की वृद्धि हो जायेगी। **अत: सम्यक् प्रकार से**

आवश्यकतानुसार श्वासोच्छवास प्रक्रिया को श्वासोयाम न कहकर प्राणायाम कहा जाये तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। हमारी श्वास हमारे प्राणों अथवा चेतना को नियन्त्रित करती है। श्वास हमारे आन्तरिक भावों का नियन्त्रण करता है। भाव बदलते ही श्वास की गति बदल जाती है। आवेग के समय श्वास की गति तेज हो जाती है, जबकि शांति का भाव आते ही, श्वास की गति मंद हो जाती है। प्राण अथवा चेतना मन को प्रभावित करते हैं। मन से बुद्धि, बुद्धि से ज्ञान और विवेक तथा ज्ञान और विवेक से आत्मा प्रभावित होती है। प्राणायाम द्वारा मन, बुद्धि, ज्ञान, विवेक विकसित कर आत्मा को परमात्मा बनाया जा सकता है। शरीर का भारीपन, मन और मस्तिष्क के तनाव से श्वसन क्रिया भी प्रभावित हो जाती है। अतः प्राणायाम का उद्देश्य शरीर में प्राण ऊर्जा को उत्प्रेरित, संचालित, नियन्त्रित और संतुलित करना है। **जिस प्रकार बाह्य शरीर की शुद्धि के लिए स्नान की जाती है, उसी प्रकार शरीर की आन्तरिक अवयवों की शुद्धि के लिए प्राणायाम का बहुत महत्त्व होता है। प्राणायाम योग की आत्मा है। जब तक श्वसन क्रिया चालू है, तभी तक हमारा जीवन है। अतः श्वसन की प्रक्रिया को जानना, समझना और उसका ढंग से प्रयोग करना प्रत्येक व्यक्ति के लिए अनिवार्य हैं।**

अधूरी श्वास लेने वालों के फेंफड़े का अधिकांश भाग निष्क्रिय पड़ा रहता है। जिन मकानों की सफाई नहीं होती, उनमें गन्दगी, मकड़ी, मच्छर आदि का प्रकोप होने लगता है। ठीक इसी प्रकार **फेंफड़े के जिस भाग में श्वसन द्वारा शरीर में जाने वाली वायु नहीं पहुंचती, उनमें क्षय, खांसी, जुकाम कफ, दमा आदि रोग होने की संभावना बढ़ जाती है।** अतः हमें ऐसी आदत डालनी चाहिये कि सदैव इस प्रकार श्वास ली जाए कि वायु से पूरे फेंफड़े भर जायें। यह कार्य तेजी अथवा झटके से न हों, अपितु सहज होना चाहिये। धीरे धीरे इस प्रकार श्वास लें, ताकि सीना भरपूर चौड़ा हो जाये। फिर उसी क्रम से धीरे धीरे वायु को बाहर निकाल देना चाहिये। **छाती का कमजोर और कम चौड़ा होना स्वास्थ्य के लिये एक अभिशाप होता है, जिसकी तरफ प्रत्येक व्यक्ति की सजगता आवश्यक है।**

योग शास्त्रों में प्राणायाम के विभिन्न प्रकारों का वर्णन किया गया है। उसमें से चन्द विधियाँ जो हमारे प्रतिदिन के लिए उपयोगी है उनकी संक्षिप्त सैद्धान्तिक जानकारी ही यहां दी जा रही है। जिज्ञासु व्यक्ति अनुभवी योग प्रशिक्षक के सानिध्य में प्राणायाम की विविध पद्धतियों का अवश्य विस्तृत अध्ययन एवं अभ्यास करें, क्योंकि **प्राणायाम से सरल स्वास्थ्य सुरक्षा की दूसरी स्वावलम्बी विधि प्रायः संभव नहीं होती तथा प्राणायाम के अभाव में सम्पूर्ण स्वास्थ्य की कल्पना भी नहीं की जा सकती।**

प्राणायाम की चार अवस्थाएँ

प्राणायाम में श्वास अन्दर खींचने की प्रक्रिया को पूरक, श्वास बाहर निकालने की क्रिया को रेचक तथा श्वास को अन्दर अथवा बाहर रोकने की अवस्था को कुम्भक कहते हैं। प्राणायाम का मूल सिद्धान्त है श्वास धीरे धीरे परन्तु

जितना गहरा लम्बा लिया जा सके लें। श्वास लेते समय पेट पूरा फूल जाना चाहिये। श्वास को जितना ज्यादा देर रोक सकें, अन्दर रोकने का प्रयास करें, ताकि श्वसन द्वारा शरीर में प्रविष्ट प्राण वायु अपना कार्य वापस बाहर निकलने के पूर्व पूर्ण कर सके अर्थात् आक्सीजन का पूरा उपयोग हो सके। श्वास को धीरे धीरे निष्कासित करें। रेचक का समय पूरक से जितना ज्यादा होगा उतना प्राणायाम प्रभावकारी होता है। कुछ **योगियों की ऐसी मान्यता है कि जितना ज्यादा श्वास को अंदर रोक कर रखा जाता है उतनी अधिक शारीरिक शक्ति प्राप्त होती है, परन्तु यदि दिमाग को शांत करना हो तो श्वास को बाहर अधिक रोकने का अभ्यास करना चाहिए।**

नाड़ी शुद्धि प्राणायाम

नाड़ी शुद्धि होने के बाद ही प्राणायाम श्रेष्ठ ढ़ंग से किया जा सकता है। नाड़ी शुद्धि के लिये जो प्राणायाम किया जाता है, उसे अनुलोम विलोम प्राणायाम कहा जाता है। जन साधारण को अनुलोम विलोम प्राणायाम से ही प्राणायाम का प्रारम्भ करना चाहिये। इसमें नासाग्र के किसी एक भाग से श्वास अन्दर लेकर दूसरे छिद्र से बाहर निकाला जाता है। फिर जिस छिद्र से श्वास बाहर निकाला जाता है, उस नासाग्र से पूरक करके दूसरे छिद्र से रेचक किया जाता है। यह एक चक्र होता है । ऐसे अनेकों आवर्तनों का अभ्यास किया जा सकता है। श्वास जितना गहरा और दीर्घ होता है, उतना प्राणायाम अच्छा होता है। जितना कुम्भक कर सकें उतना अभ्यास करें। पूरक से रेचक का समय जितना ज्यादा रख सकें उतना अच्छा और कुम्भक का समय भी कम से कम पूरक का दुगना होना चाहिये, तभी नाड़ी शुद्धि सही ढंग से होती है।

कपाल भाति प्राणायाम

कपाल का मतलब खोपड़ी और भांति अर्थात प्रकाशित करना। इसमें शीघ्रता से पूरक और रेचक किया जाता है। कुम्भक नहीं। यह व्यायाम अत्यन्त परिश्रम पूर्वक करना चाहिये । इससे शरीर की सभी कोशिकाएँ, ज्ञान तन्तु और स्नायु जोर से कम्पित होते हैं।

कपाल भाति प्राणायाम से खोपड़ी, श्वसन तंत्र और नासिका मार्ग स्वच्छ होता है। दमा दूर होता है । बड़ी मात्रा में कार्बनडाई आक्साइड के निष्कासन से रक्त शुद्ध होता है। हृदय की कार्य क्षमता सुधरती है, श्वसन तंत्र, पाचन तंत्र और रक्त परिभ्रमण तंत्र बराबर कार्य करने लगते है।

सूर्य भेदी प्राणायाम

इसमें दाहिने नथूने से श्वास ली जाती है और बांयें नथूने से श्वास निकाली जाती है। इससे शरीर में गर्मी

बढ़ती है, सक्रियता आती है। **सर्दी सम्बन्धी रोगों और सर्दी की मौसम में यह प्राणायाम विशेष प्रभावकारी होता है।**

चन्द्र भेदी प्राणायाम

इसमें बांयें नथूने से पूरक और दाहिने नथूने से रेचक किया जाता है। **गर्मी और पित्त सम्बन्धी रोगों तथा गर्मी की मौसम में यह प्राणायाम बहुत लाभकारी होता है। इससे शरीर की थकान दूर होती है। निद्रा अच्छी आती है। शरीर में शीतलता बढ़ती है, बुखार में शीघ्र आराम मिलता है।**

भ्रामरी प्राणायाम

ध्यानावस्था में बैठ दोनों नेत्र बन्द कर दोनों हाथों की तर्जनी से दोनों कानों के छिद्र बन्द कर दें। होठों को आपस में मिला दें। फिर मन ही मन ओम् का गुंजार करें। दोनों नथूनों से पूरक और रेचक करने वाले ऐसे प्राणायाम को भ्रामरी प्राणायाम कहते हैं।

इस प्राणायाम से मानसिक तनाव, चिंता, क्रोध, निराशा में कमी आती है। स्वर में मधुरता बढ़ती है तथा श्वसन और गले के रोग में लाभ होता है, स्मरण शक्ति ठीक होती है।

प्राणायाम के लाभ

1. फेंफड़े मजबूत होते हैं।
2. रक्त के विकार दूर होते हैं।
3. शरीर का संतुलित और सुडोल विकास होता है।
4. मन में उत्साह एवं मानसिक बल भी बढ़ता है।
5. ध्यान में चित्त लगता है।
6. प्राणायाम से दीर्घ आयु प्राप्त होती है, स्मरण शक्ति बढ़ती है।
7. स्फूर्ति आती है, आलस्य नहीं आता।

शरीर के विभिन्न भागों में उपलब्ध प्राण/वायु

शरीर में प्राण ऊर्जा का प्रवाह मुख्य पांच धाराओं में होता है। प्रत्येक प्राण शरीर के अलग अलग भागों में

अधिक सक्रिय होते हैं तथा उस भाग के स्वास्थ्य का नियन्त्रण करते हैं।

आयुर्वेद के अनुसार प्राण के उसके कार्यों के अनुसार पांच भेद किये गये है। जो प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान नाम से पहचाने जाते हैं। आजकल ये पांचों प्राण शरीर में अलग-अलग प्रकार की वायु के नाम से भी पहचाने जाते हैं।

वायु जीवन की प्रमुख आवश्यकता है। श्वसन द्वारा ली गई वायु शरीर में अलग अलग भागों में जाकर अलग अलग कार्य करती है। हमारे ऋषि मुनियों ने इस प्राण वायु को उसके कार्यों के अनुसार पाँच मुख्य भागों में विभाजित किया है–

प्राण वायु

उदर पटल (Diaphragm) से कंठ तक का क्षेत्र प्राण वायु का है। वास्तव में यह प्राण वह शक्ति है, जिसके द्वारा श्वास नीचे की तरफ खींची जाती है। **इसके असंतुलन से श्वसन नली, वाणी संबंधी अंग, फेंफड़ों, हृदय, भोजन नली तथा इनको क्रियाशील बनाने वाली मांसपेशियों में रोग होने की स्थिति बनने लगती है।** मंद गति से गहरा श्वास लेने से प्राण वायु की पूर्ति होती है।

अपान वायु

अपान वायु का स्थान नाभि के नीचे होता है। **इससे आंतों, प्रजनन अंगों, गुर्दे, मूत्राशय आदि को ऊर्जा मिलती है। जिससे मल मूत्र का विसर्जन बराबर होता रहे।** अपान वायु प्राण ऊर्जा को गुदा द्वार तक खींचने एवं खराब वायु को नाक के द्वारा बाहर फैंकने में भी सहयोग करती है। महिलाओं में मासिक नियन्त्रण और प्रसव के समय, शिशु का बाहर आना अपान वायु के द्वारा ही होता है। अपान मुद्रा से यह वायु संतुलित रहती है।

समान वायु

उदर पटल (Diaphragm) और नाभि का क्षेत्र समान वायु का होता है। **यह पाचन संस्थान के सभी अंगों लीवर, तिल्ली, पेन्क्रियाज, आमाशय और छोटी आंत आदि को नियंत्रित करता है।** यह अपान और प्राण वायु का संतुलन बनाये रखती है। आमाशय तथा उसके रस श्रावों का नियन्त्रण, रक्त संचार संस्थान को क्रियाशील बनाना, भोज्य पदार्थों को शरीर के अनुकूल बनाने में सहयोग करती है। समान वायु-प्राण वायु, और अपान वायु को संतुलित रखती है। अपान वायु मुद्रा से यह संतुलित रहती है।

उदान वायु

उदान वायु गले के ऊपर के अंगों का नियन्त्रण करती है। **आंख, नाक, कान, मुँह और मस्तिष्क इस वायु से नियन्त्रित होते हैं। इसके असंतुलन से पांचों इन्द्रियाँ और मन एवं मस्तिष्क बराबर कार्य नहीं करते।** चिन्तन, मनन और विचार शक्ति क्षीण हो जाती है तथा व्यक्ति, मूर्खता, अथवा पागलपन की प्रवृत्तियाँ करने लगता है। ज्ञान मुद्रा से यह वायु सक्रिय रहती है।

व्यान वायु

व्यान वायु सम्पूर्ण शरीर में रहती है, जिसका कार्य अन्य वायु के कार्य में सहयोग करना होता है। समस्त शरीर की गतिविधियों को नियमित और नियन्त्रित करती है। सभी शारीरिक अंगों तथा उनसे संबंधित मांस पेशियाँ नाड़ी संस्थान और जोड़ों में संतुलन रखती है। शरीर को सीधा लम्बवत् खड़ा रखने में इसी वायु की ऊर्जा विशेष जिम्मेदार होती है।

उपर्युक्त चर्चित प्रत्येक प्रकार के प्राण अथवा वायु के कार्य क्षेत्र के संचालन का शरीर में केन्द्र होता है जिसका ऊर्जा चक्रों से विशेष संबंध होता है। क्योंकि ऊर्जा चक्र स्वयं अलग अलग पंच महाभूत तत्त्वों, रंगों एवं संवेदनाओं से प्रभावित होते हैं। अतः पांचों प्रकार के प्राण भी उनसे प्रभावित होते हैं। संबंधित रंगों का ध्यान करने एवं पंच तत्वों को संतुलित रख पांचों प्रकार की प्राण वायु को भी संतुलित रखा जा सकता है।

विविध प्राणों का ऊर्जा चक्रों, पंच तत्त्वों, रंगों, संवेदनाओं एवं कार्यों का तुलनात्मक विवरण

क्रमांक	प्राण वायु का नाम	शरीर में स्थान	विशेष संबंधित चक्र	विशेष प्रभावित संवेदना	संबंधित तत्त्व	संबंधित रंग	संबंधित कार्य
1	प्राण	हृदय और नासाग्र	हृदय चक्र/ अनाहत चक्र	स्पर्श	वायु	हरा	श्वसन
2	अपान	गुदा	मूलधारा	गंध	पृथ्वी	लाल	निष्कासन
3	समान	नाभि	सूर्य केन्द्र	ज्योति	अग्नि	पीला	पाचन
4	उदान	गला और होठ	विशुद्धि चक्र	श्रवण	आकाश	नीला	निगलना, बोलना चेहरे के भावों की अभिव्यक्ति
5	व्यान	सारा शरीर	आज्ञा चक्र	मानसिक	जल	लाल,नारंगी, गुलाबी	रक्त परिभ्रमण, नाड़ी तंत्र

पांचों प्रकार की वायु अथवा प्राण का संतुलन ही स्वास्थ्य का आधार होता है। जितना अधिक उनमें संतुलन होता है, उसी अनुपात में हम स्वस्थ होते हैं तथा जितना असंतुलन होता है, उतने ही हम रोगी होते हैं।

पांचों प्रकार की वायु के अनुपात में जब असंतुलन और आपसी तालमेल समाप्त हो जाता है तो शरीर के उस संबंधित भाग की कार्य प्रणाली प्रभावित होने लगती है और यदि उसको संतुलित नहीं किया जाये तो रोग ग्रस्त बनने की संभावना रहती है। **वायु के कारण ही निद्रा में खर्राटे, छींक, हिचकी, उबासी, खुजलाना, आंखों की पलके झपकाना, मल द्वार से आवाज के साथ वायु निकलना आदि कार्य होते हैं।** अतः स्वस्थ रहने के लिये उपर्युक्त पाँचों वायु को संतुलित रखना आवश्यक है। जिसको प्राणायाम की विभिन्न विधियों द्वारा सरलता पूर्वक संतुलित रखा जा सकता है। फलतः प्राणायाम वायु संतुलन का आधार होता है। जिसका अभ्यास व्यक्ति को स्वयं ही करना पड़ता है। अन्य व्यक्ति या उपकरण नहीं कर सकता।

प्रत्याहार

शरीर की वह अवस्था जब पाँचों इन्द्रियाँ शान्त हो अपने बाह्य विषयों से मुक्त होकर अन्तर्मुखी हो जाती है, प्रत्याहार कहलाती हैं । इस अवस्था में मन की स्वछन्दता समाप्त हो जाती है। चित्त शान्त रहने लगता है। साधक को अपनी आत्मिक शक्तियों का आभास होने लगता है।

शब्द आया , चला गया, उसके अर्थ पर ध्यान न देना । देखा, अनदेखा कर देना उस पर चिन्तन नहीं करना। **जिस प्रकार पानी बर्फ बनने के पश्चात ही छलनी में टिक सकता है, ठीक उसी प्रकार प्रत्याहार में पांचों इन्द्रियों के विषयों से ध्यान हटा लिया जाता है।** प्रत्याहार को जैनागमों में प्रतिसंलीनता कहते हैं।

धारणा

शांत चित्त को शरीर के किसी स्थान पर एकाग्र करने को धारणा कहते हैं। धारणा ध्यान की प्रारम्भिक अवस्था होती है।

ध्यान

धारणा से चित्त वृत्ति को जिस विषय में लगाया गया हो, उसी विषय में उसे निरन्तर लगाए रखने को ध्यान कहते हैं । मन, वचन और काया की स्थिरता को भी ध्यान कहते हैं। चित्त विक्षेप का त्याग करना ध्यान है, एकाग्र चिन्तन ध्यान होता है।

प्रत्येक इन्द्रिय पर ध्यान का अभ्यास करने से अतीन्द्रिय ज्ञान होने लगता है तथा साधक बाह्य वस्तुओं के

आलंबन से उनके विषयों का आनन्द ले सकता है। अलग-अलग वर्ण, गन्ध, रस, शब्द, स्पर्श पर ध्यान करने से शरीर में उनके अभावों की पूर्ति होने लगती है तथा शरीर शारीरिक, मानसिक एवं भावात्मक रूप से संतुलित होने लगता है अर्थात पूर्ण स्वस्थ एवं रोग मुक्त बन सकता है। रंग चिकित्सा में शरीर में रंगों की कमी को पूरा करने की एक विधि संबंधित रंग का ध्यान कर रोगोपचार की भी होती है। इसी प्रकार **शरीर में कमी वाले शब्द, गंध, रस, स्पर्श का ध्यान करने से उसकी पूर्ति की जा सकती है। ध्वनि चिकित्सा, स्वाद चिकित्सा, गंध चिकित्सा, स्पर्श चिकित्साएँ आदि इसी सिद्धान्त पर कार्य करती है। नासाग्र पर ध्यान करने से साधक का शक्ति केन्द्र (मूलधारा चक्र) , जागृत होने लगता है एवं वृत्तियों का परिष्कार होने लगता है। जैनागमों में भगवान महावीर द्वारा नासाग्र पर ध्यान करने का अनेक स्थानों पर वर्णन मिलता है।**

ध्यान से मन के विकारों का नाश हो जाता है और सात्विक गुणों का विकास होता है। जैन आगमों में चार प्रकार के ध्यान का उल्लेख मिलता है। आर्त्त ध्यान, रौद्र ध्यान, धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान। प्रथम दो ध्यान अशुभ एवं त्याज्य होते हैं। जिस ध्यान में अभावों के चिन्तन से चिन्ता होती है, उस ध्यान को आर्त्तध्यान तथा क्रूर चित्त द्वारा किया गया ध्यान रौद्र ध्यान की श्रेणी में आता है। अंतिम दो ध्यान धर्म ध्यान और शुक्ल शुभ होते हैं। धर्म ध्यान से ध्यानी आत्म स्वभाव में रमण करने लगता है तथा शुक्ल ध्यान से राग एवं द्वेष को जीतने की क्षमता प्राप्त होती है। यह ध्यान आत्मा के शुद्ध स्वरूप की सहज अनुभूति कराता है। अतः इन दो ध्यानों को ही सम्यक् ध्यान कहा जा सकता है। बिना धर्म एवं शुक्ल ध्यान किया जाने वाले ध्यान का आध्यात्मिक दृष्टि से विशेष महत्व नहीं होता। परन्तु आज अधिकांश प्रचलित ध्यान पद्धतियों का उद्देश्य व्यक्ति में तनाव से मुक्ति दिलाने, एवं उसके फलस्वरूप होने वाले स्वास्थ्य लाभ तक ही सीमित हो रहा है, जो मात्र ध्यान की प्रारम्भिक अवस्थाएं ही होती है। **प्रत्येक व्यक्ति वैसे तो सजगता और एकाग्रता से प्रवृत्ति करते समय किसी न किसी ध्यानावस्था में होता ही है। परन्तु योग में ध्यान का मतलब सम्यक ध्यान। अन्तर्मुखी बनने, आत्मा से साक्षात्कार को ही ध्यान समझा जाता है। ध्यान शरीर, मन एवं मस्तिष्क को स्वस्थ रखने का अच्छा माध्यम है। ध्यान से आभा मण्डल शुद्ध होता है, हानिकारक तरंगें दूर होती है।** ध्यान की साधना शांत, एकान्त, स्वच्छ एवं निश्चित स्थान पर निश्चित समय करने से ज्यादा लाभ होता है। ध्यान के लिए मौन आवश्यक होता है । पहले शरीर की स्थिरता, फिर दृढ़ता और धैर्य बिना, ध्यान संभव नहीं हो सकता।

समाधि

जब केवल ध्येय स्वरूप का ही भान रहे, ध्यान की उस अवस्था को समाधि कहते हैं। समाधि ध्यान की चरम सीमा होती है, जिसे कायोत्सर्ग भी कहते हैं। जिसमें शरीर, मन और वाणी की प्रवृत्तियाँ समाप्त हो जाती

है और साधक मुक्त अवस्था को प्राप्त कर लेता है।

समाधि अथवा कायोत्सर्ग में शिथिलिकरण के साथ साथ सजगता, ममत्व का विसर्जन और भेद विज्ञान का चिन्तन आवश्यक होता है। जबकि शवासन में केवल शिथिलिकरण होता है।

अष्टांग योग के प्रथम पांच अंगों अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार को बहिरंग योग तथा अन्तिम तीन धारणा, ध्यान और समाधि को संयम कहा जाता है। यदि बहिरंग योग को विवेक पूर्वक जीवन में उतारा जाये तो मनुष्य में मानवीय गुणों के विकसित होने के साथ-साथ शारीरिक, मानसिक और आत्मिक विकास भी होता है, जो स्वस्थ जीवन का मूलाधार होता है।

पातंजलि योग में यम नियमों द्वारा अन्तः चेतना की सफाई के बाद आसन, प्राणायाम से शरीर बलवान होता है। वहीं प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि से मनोबल और आत्म बल बढ़ता है । जिस प्रकार फूटे हुये घड़े को छिद्र बन्द करने के पश्चात ही पानी से भरा जा सकता है। अच्छी फसल के लिए खेती की जीव जन्तुओं से रक्षा और खाद देने के साथ-साथ, पानी से नियमित सींचन और धूप की भी आश्यकता होती है। **योग साधना ऐसी ही खेती है, जिसे यम-नियम द्वारा हिंसा, झूठ, चोरी, व्यभिचार, लोभ, मलिनता, तृष्णा, आलस्य, अज्ञान अहं जैसे दस प्रकार के दुर्गुणों रूपी हानिकारक आत्मिक विकारों से रक्षा करनी होती है और आसनों का खाद तथा प्राणायाम का पानी देना होता है, तभी संतोषजनक स्वास्थ्य की उपलब्धि होती है।** शरीर आकर्षक और पुष्ट बनता है। शरीर में हल्कापन, कार्य करने का उत्साह बढ़ता है। शरीर की बेटरी चार्ज हो जाती है। चिन्ता, भय , निराशा, अनिद्रा, दुर्बलता, आलस्य आदि दूर होकर व्यक्ति सजग एवम् अप्रमादी बनने लगता है। अपने आपको पहचानने लगता है। आत्मावलोकन करने लगता है। यही तो आत्मा से परमात्मा बनने की कला होती है।

योग का वर्तमान स्वरूपः-

परन्तु आजकल विश्व भर में प्रचलित एवं प्रसारित योगाभ्यास प्रायः आसन और प्राणायाम तक सीमित होता जा रहा है। यम, नियम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि के अभाव में नर से नारायण और आत्मा को परमात्मा बनाने वाली योग साधना मात्र शरीर का व्यायाम बन कर रह गया है। यह योग का अवमूल्यन है, अष्टांग योग की क्रमिक साधना ही सच्चा योग है।

ठीक इसी प्रकार **आज ध्यान भी एक फैशन का रूप लेता जा रहा है। शारीरिक रोगों के उपचार तक सीमित होता जा रहा है। बिना यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार और धारणा के ध्यान साधना स्थायी रूप से फलीभूत नहीं हो सकती। आज ध्यान कराया जाता है, ध्यान किया जाता है, परन्तु वास्तव में बहुत कम व्यक्तियों के**

ही ध्यान होता है। ध्यान में सच्चे आनन्द और शान्ति की अनुभूति होती है। आज ध्यान के नाम से जितनी भी पद्धतियाँ प्रचलित हैं, चाहे वे किसी नाम से हों, ध्यान द्वारा एक बार आत्मा की अनन्त शक्तियों का अनुभव करने वाला, शरीर और आत्मा का भेदज्ञान करने वाला ध्यान, ध्यानी को सांसारिक भौतिक उपलब्धियों में कैसे उलझा सकता है ? जिसका ध्यान की उपलब्धियों के लम्बे चौड़े अनुभव करने वालों को स्पष्टीकरण करना चाहिये। आज ध्यानियों के जीवन में समभाव की प्राप्ति और कषायों की मंदता प्रायः क्यों नहीं बढ़ रही है? उनकी सहनशीलता क्यों घट रही है? साधारण से वियोग और प्रतिकूलताओं में वे अपना संतुलन क्यों गंवा कर विचलित हो जाते हैं? उन्हें प्रसिद्धि की भूख क्यों परेशान कर रही है? उनके जीवन में मायावृत्ति क्यों और कैसे पनप रही है?

ध्यान कोई पोशाक नहीं है कि जब चाहे पहन लें और जब चाहें उतार कर फैक दें। ध्यान का मापदण्ड होता है:– कषायों की मंदता, कामनाओं एवं आत्म-विकारों की कमी, आत्म विकास में उत्तरोत्तर अभिवृद्धि। जिस प्रकार खेती गेहूँ के लिये की जाती है, घास के लिये नहीं। घास तो गेहूँ के साथ स्वतः उपलब्ध हो जाती है। जिस ध्यान से व्यक्ति अन्तर्मुखी न बने वह ध्यान अधूरा ही होता है। रोगों में राहत को ही ध्यान की परिपूर्णता मानना बुद्धिमत्ता पूर्ण नहीं कहा जा सकता । ऐसा प्रयास मात्र घास के लिए खेती करने के समान अपने समय, श्रम और क्षमताओं के अवमूल्यन का ही प्रतीक होता है। ध्यानी अप्रमादी अर्थात् अपने जीवन मूल्यों के प्रति शत प्रतिशत सजग और जागृत होता है। जिस प्रकार अन्धकार और प्रकाश साथ रह नहीं सकता, ठीक उसी प्रकार प्रमाद (असजगता) दूर हुये बिना सच्चा ध्यानी नहीं बना जा सकता।

हमारे मानने अथवा न मानने से सनातन सत्य, असत्य नहीं हो जाता। करोड़ों व्यक्तियों के कहने से दो और दो पाँच नहीं हो जाते। दो और दो तो चार ही होते हैं। पारस को पत्थर कहने से वह पत्थर नहीं हो जाता और पत्थर को पारस मानने से वह पारस नहीं हो जाता। इसी प्रकार पातंजलि योग की सम्पूर्ण साधना ही स्वास्थ्य का पूर्ण आधार होती है।

शरीर की मूलभूत आवश्यकताएँ

शरीर को पोषण करने वाले तत्त्वों का सम्यक् उपयोग आवश्यक

जिस प्रकार अच्छे से अच्छा बीज होते हुये भी अच्छी फसल प्राप्त करने के लिये उसे उचित समय पर बोने के साथ-साथ उपजाऊ मिट्टी, हवा, पानी, धूप की भी आवश्यकता होती है, ठीक उसी प्रकार स्वस्थ रहने के लिये शरीर को पोषण करने वाले हवा, पानी, भोजन, धूप के उचित सेवन की आवश्यकता होती है। उनकी उपेक्षा करने से हम स्वस्थ रहना चाहते हुये तथा उसके लिये निरन्तर प्रयास करने के बावजूद भी अपने आपको पूर्ण स्वस्थ नहीं रख सकते।

स्वस्थ रहने की कामना रखने वालों को स्वास्थ्य के साधारण नियमों का ईमानदारी पूर्वक पालन करना चाहिए? उन्हें चिन्तन करना चाहिए कि भोजन, पानी, हवा, धूप, व्यायाम और आराम कब करें ? क्यों करें ? कहाँ करें? कितना करें ? कैसे करें ? जीवन के लिये अति आवश्यक इन क्रियाओं को निरन्तर करने के बावजूद इनका पूरा लाभ क्यों नहीं मिलता ?

वायु और स्वास्थ्य

यदि किसी भिखारी को लाखों रुपये देने के बदले दस से पन्द्रह मिनट तक श्वास रोकने के लिये कहते हैं तो वह उसके लिये तैयार नहीं होता। ऐसी अमूल्य श्वसन क्रिया हमारे स्वयं के द्वारा जन्म से अनवरत संचालित होती है। परन्तु हम उसका महत्त्व नहीं समझते। क्या हम उस अमूल्य श्वास का उपयोग बराबर कर रहे हैं?

श्वसन क्रिया

श्वसन इतनी स्वाभाविक और सहज क्रिया है कि हमारी असजगता में भी स्वतः चालू रहती है। चाहे हम निद्रा में हों अथवा जागृत अवस्था में हमारी श्वसन क्रिया अविराम गति से निरन्तर चलती रहती है।

दो श्वासों के बीच का समय ही जीवन है। प्रत्येक व्यक्ति के श्वासों की संख्या निश्चित होती हैं। जो व्यक्ति आधा श्वास लेता है वह आधा जीवन ही जीता है। जो सही ढंग से गहरा और पूरा श्वास लेता है, वही पूर्ण जीवन जीता है। अतः जो व्यक्ति जितनी धीमी और दीर्घ श्वास लेता है, उसकी आयु उतनी ही ज्यादा होती है। जितनी तेज, अधूरी और जल्दी जल्दी श्वास लेते हैं, उतनी ही आयुष्य कम होती है। अधूरी श्वास लेने वालों के फेंफड़े

का बहुत सा भाग निष्क्रिय पड़ा रहता है। जिन मकानों की सफाई नहीं होती, उनमें गन्दगी जमा होने लगती है ठीक उसी प्रकार, फेंफड़ों के जिन वायु कोषों में श्वास नहीं पहुँचती वहां फेफड़ों को क्षति पहुँचाने वाले विजातीय तत्व जमा होने लगते हैं और धीरे धीरे बढ़ते बढ़ते वे इतने अधिक बढ़ जाते हैं कि, उनको वहाँ से दूर हटाना आसान नहीं होता। परिणाम स्वरूप श्वसन संबन्धी रोगों से शरीर पीड़ित हो जाता है। अतः श्वसन क्रिया में फेंफड़ों का जितना ज्यादा प्रसारण और संकुचन होता है, श्वसन उतना ही उपयोगी एवं प्रभावशाली होता है। अधिक जीवन शक्ति और शांति का अनुभव होता है। चिन्तन का ढंग बदल जाता है।

प्राणायाम

सम्यक् प्रकार से श्वसन क्रिया को संचालित, नियन्त्रित करने की विधि को प्राणायाम कहते हैं। शरीर का भारीपन एवं मन और मस्तिष्क के तनाव से श्वसन क्रिया भी प्रभावित हो जाती है। प्राणायाम से शरीर में प्राण ऊर्जा उत्प्रेरित, संचारित, नियमित और संतुलित होती है। जिस प्रकार बाह्य शरीर की शुद्धि के लिये स्नान की आवश्यकता होती है, ठीक उसी प्रकार शरीर के आन्तरिक अवयवों के लिये प्राणायाम का बहुत महत्त्व होता हैं।

श्वसन हेतु ऑक्सीजन युक्त प्राण वायु लाभप्रद

प्रत्येक संसारी जीव में श्वासोश्वास नामक ऊर्जा का मूल स्रोत होता है जिसके कारण वह ब्रह्माण्ड से श्वसन योग्य पुद्गलों को आकर्षित करता है। लोक भाषा में हम उन पुद्गलों के प्रवाह एवं निष्कासन को श्वसन क्रिया अथवा प्राण ऊर्जा का प्रवाह कहते हैं। यह प्राण ऊर्जा पंच तत्त्वों के साथ मिलकर उन्हें उपयोगी बनाती है। वायु मण्डल में हवा के अन्दर जो ऑक्सीजन का तत्त्व है, वही प्राण ऊर्जा की क्षमता बढ़ाने में विशेष प्रभावी होता है। इसी कारण लोक भाषा में ऑक्सीजन को प्राण वायु भी कहते हैं। यह ऑक्सीजन जिस वातावरण में ज्यादा होता है, वही वातावरण शरीर के लिए स्वास्थ्यवर्धक होता है। जब शरीर में ऑक्सीजन की मात्रा बहुत कम हो जाती है तो, प्राण ऊर्जा का उत्पादन आवश्यकतानुसार नहीं हो पाता। परिणामस्वरूप शारीरिक क्रियाएँ अपना कार्य बराबर नहीं कर पाती और अंत में एक स्थिति ऐसी आती है, जब श्वासोच्छवास पर्याप्ति (ऊर्जा का स्रोत) समाप्त हो जाती है, तो ऑक्सीजन के रूप में प्राण वायु का आवागमन (आकर्षण) बंद हो जाता है और प्राण ऊर्जा का उत्पादन समाप्त हो जाता है, जिसे मृत्यु कहते हैं।

जब तक शरीर श्वसन द्वारा अधिकाधिक प्राण वायु प्रकृति से ग्रहण करता रहता है, तब तक शरीर स्वस्थ रहता है। शुद्ध वायु में एक चौथाई भाग लगभग ऑक्सीजन का होता है। यदि उसमें कमी हो जाये तो, उसका प्रभाव पाचन क्रिया पर अनिवार्य रूप से पड़ता है तथा जठराग्नि मंद होने लगती है।

आयुर्वेद में वायु का महत्त्व :-

आयुर्वेद के अनुसार कफ, पित्त और वायु का असंतुलन रोग का कारण होता है। शरीर में कफ और पित्त की स्थिति तो अपंग जैसी ही होती है। सारा हलन-चलन, संचालन, वायु के माध्यम से ही होता है। जब हम पूरा, गहरा, धीरे-धीरे श्वास लेते हैं तो शरीर के ज्यादा से ज्यादा अवयवों को प्राण ऊर्जा पहुँचती है। जिससे जो कोशिकाएँ मृत प्रायः हो जाती है पुनर्जीवित होने लगती है। तीव्र श्वास का सम्बन्ध भय, चिन्ता, तनाव आदि आवेगों से होता है, जबकि मंद गति से गहरी श्वास लेने वाला व्यक्ति अपेक्षाकृत शांत, तनाव मुक्त और प्रसन्न रहता है। गहरी श्वास से डायाफ्राम सहित पेट के समस्त अंगों की अच्छी मसाज हो जाती है। गहरी श्वास लेने से मृत कोशिकाओं को पुनर्जीवित करने हेतु ज्यादा प्राण वायु मिलती है। जल्दी-जल्दी श्वास क्रिया करने से शुद्ध वायु ऑक्सीजन अपना पूरा कार्य किए बिना ही पुनः बाहर निकल जाती हैं, जिससे शरीर में उसका पूर्ण उपयोग आवश्यकतानुसार नहीं हो पाता।

ठण्डी जलवायु गहरे श्वास के लिए अनुकूल होती है। तंग कपड़े पहनने और कसी हुई बेल्ट अथवा नाड़ा बांधने से पूर्ण श्वास में बाधा पहुंचती है।

दूसरी बात श्वास कहाँ लें ? जीवन के लिए ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है। जिसका हम श्वास के रूप में वायु के साथ सेवन करते हैं। अतः श्वसन योग्य वायु जितनी स्वच्छ, शुद्ध, ऑक्सीजन युक्त होती है, उतनी ही हमें ऊर्जा अधिक मिलती है। इसके विपरीत अशुद्ध, प्रदुषित वातावरण में श्वास लेने से हमारे स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। प्रातःकाल प्रदूषण की कमी होने के कारण वायुमण्डल में ऑक्सीजन की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक होती है। फेंफड़े, ब्रह्माण्ड से प्राण ऊर्जा ग्रहण करने हेतु अधिकाधिक सजग और सक्रिय होते हैं। अतः प्रातःकाल घूमने, दौड़ने, जोगिंग एवं अन्य फेंफडों के व्यायाम से अधिक लाभ मिलता है। जो व्यक्ति प्रायः देर से निद्रा त्यागते हैं, वे फेंफड़ों की सक्रियता का पूर्ण लाभ नहीं ले पाने के कारण अपेक्षाकृत कम फूर्तीले होते हैं।

जिस स्थान पर ऑक्सीजन का अभाव होता है, उस वातावरण में रोग होने की संभावना अधिक रहती है। जितना कम प्रदूषण उतनी वायु मंडल में ऑक्सीजन की मात्रा अधिक रहती है। पेड़ पौधे ऑक्सीजन के अच्छे स्रोत होते हैं। अतः प्रातःकाल स्वच्छ वातावरण में भ्रमण करने वालों को सहज रूप से प्राण वायु मिल जाती है।

योग शास्त्र में प्राणायाम के विविध प्रकारों का वर्णन मिलता है। अतः जिज्ञासु स्वास्थ्य प्रेमियों को अनुभवी योग प्रशिक्षकों के सान्निध्य में प्राणायाम की विविध पद्धतियों का अवश्य अध्ययन एवं अभ्यास करना चाहिए। **प्राणायाम के समान स्वास्थ्य सुरक्षा की सहज, सरल, स्वावलम्बी, अन्य विधि प्रायः संभव नहीं होती।**

श्वास के प्रति सजगता का विकास

मैं श्वास ले रहा हूँ और छोड़ रहा हूँ, इसका स्पष्ट बोध होना ही श्वास के प्रति सजगता है। श्वास के प्रति सजग होने से हम अपनी चेतना के प्रति सजग होते हैं अर्थात हम स्वयं के प्रति सजग होते हैं। सजगता जीवन की सफलता की प्राथमिक आवश्यकता है। व्यक्ति अपना भला बुरा समझने लगता हैं। पुरुषार्थ सम्यक् और प्राथमिकताओं के अनुरूप होने से व्यक्ति की कार्य क्षमता बढ़ जाती है। प्रमाद कम होने लगता है। शरीर और मन का भारीपन कम होने लगता हैं।

श्वास लेते समय पेट पूरा फूलना चाहिए और श्वास बाहर निकालते समय पेट जितना अन्दर जा सके जाना चाहिए, तभी सम्पूर्ण स्नायु संस्थान में प्राण वायु का प्रवाह संभव होता है अन्यथा नहीं। यदि श्वास उल्टी चलती है तो, शवासन में लेट कर मानसिक चिन्तन के द्वारा श्वास को लेते समय पेट को बाहर करें और निकालते समय सिकोड़ें। जब भी ध्यान में आये सही श्वास - प्रश्वास की आदत डालनी चाहिए। स्वच्छ एवं खुली हवा में अधिकाधिक रहना, घूमना और सोना चाहिए। प्रदूषित वातावरण से अपने आपको यथा संभव बचाना चाहिए। यही श्वास के प्रति हमारी सजगता होती है।

श्वास नाक से ही क्यों लें?

नासिका शरीर का वह अंग है जिसका कार्य श्वास द्वारा ली जाने वाली वायु का फेंफड़े में पहुंचने के पूर्व पर्याप्त शुद्धि, परिमार्जन व शरीर के तापक्रम के अनुरूप बनाना है। ताकि बाह्य वातावरण की गर्म अथवा सर्द हवा फैंफड़ों को किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचा सके। सामान्यतः जो वायु हम श्वास के रूप मे लेते हैं, वह ठण्डी या गर्म, गंदी और रोगाणुओं से परिपूर्ण हो सकती है? उसमें सूक्ष्म धूलकण हो सकते हैं। नथूनों में उपस्थित रोम (बाल) जो एक प्रकार की छलनी का कार्य करते हैं। श्वास नली उन धूल कणों और रोगाणुओं को अन्दर जाने से रोक देती हैं। ये रोम अन्दर की तरफ प्रवाहित वायु की दिशा के विपरीत कंपन करते हैं। अतः वायु के साथ होने वाले दूषित पदार्थ अन्दर नहीं जा पाते।

दूसरी बात नाक में स्थित श्लेषमा झिल्लियाँ (म्यूकस मेम्ब्रेन) होती है। जिससे एक प्रकार का वायु में उपस्थित तरल पदार्थ निकलता है, जो वायु में उपस्थित उन असंख्य रोगाणुओं को भी हटा देता है, जो फेंफड़ों के लिए अति घातक सिद्ध हो सकते हैं। साथ ही उन धूल कणों से भी बचाव करती है, जिनका किसी कारणवश नासिका के रोम में रुकावट नहीं हो पाती। ये झिल्लियाँ श्वास की वायु को आवश्यक शुष्कता-आद्रता भी प्रदान करती है।

तीसरी बात नाक से ही गंध और सुगन्ध की अनुभूति होती है। गंध की अनुभूति हानिकारक वायु को अन्दर

जाने से रोकती है। जैसे ही हमें किसी दुर्गन्ध की अनुभूति होती है—हम तुरन्त श्वास लेना बन्द कर देते हैं और जल्दी से जल्दी वहाँ से दूर होकर ताजी हवा वाले स्थानों में पहुँचने का प्रयास करते हैं।

इसके विपरीत मुँह में न तो बाल होते हैं और न श्लेषमा झिल्लियाँ। जो वायु का परिमार्जन अथवा शुद्धि कर सकें। दूसरा मुँह का छिद्र नाक की अपेक्षा इतना बड़ा होता है कि उसमें वायु बिना रूकावट फेंफड़े तक पहुँच सकती है। तीसरी नाक के माध्यम से फेंफड़ों तक श्वास नली की लम्बाई मुंह से फेंफड़ों की दूरी से ज्यादा होती है। परिणाम स्वरूप नाक से फेंफड़े तक पहुंचते हुये वायु का तापमान शरीर के अनुकूल हो जाता है। परन्तु मुँह से श्वास लेने पर ऐसा कम संभव होता है। अत: जो व्यक्ति मुँह से श्वास लेते हैं, विशेष कर रात में, सवेरे उनका मुँह सूखा हुआ और बदबूदार होता है, जिससे विभिन्न रोगों के होने की संभावना बनी रहती है।

यदि नासिका अवरुद्ध हो जायें या श्लेष्मा झिल्लियों में बहुत सारी अशुद्धियाँ एकत्रित हो जायें जिसके कारण मुंह से श्वास लेना पड़े तो नथूनों की सफाई कर लेनी चाहिए। नियमित रूप से ऐसी सफाई करने से नथूनों में रुकावट उत्पन्न होने की संभावना कम हो जाती हैं।

नेति क्रिया -

श्वास संबंधी रोगों के उपचार हेतु नेति क्रिया सर्वोत्तम विश्वसनीय सहज पद्धति है। नासिका के छिद्रों की तरल पदार्थों से सफाई करने की विधि को नेति क्रिया कहते हैं। नेति करने से विभिन्न अंगों से आंकर नासिका में समाप्त होने वाले स्नायुओं के छोर सक्रिय होते हैं। जिससे मस्तिष्क एवं उन स्नायुओं से जुड़े तंत्रों को लाभ पहुँचता है, जिनकी असक्रियता एलर्जी का प्रमुख कारण होती है। **अत: जिन व्यक्तियों को किसी भी प्रकार की एलर्जी होती है, उनके लिये नेति क्रिया अत्यन्त लाभकारी होती है। नेति क्रिया से आज्ञा चक्र भी सक्रिय होता है।**

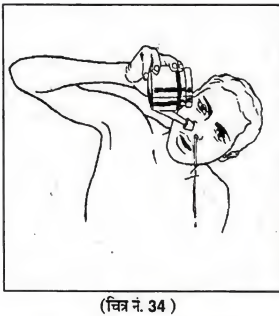

(चित्र नं. 34)

नेति के लिए जल शुद्ध और गुनगुना होना चाहिए। उसमें थोड़ा सा नमक मिला देना चाहिये। नमकीन जल साधारण जल की अपेक्षा नाक की नाजुक रक्त नलिकाओं और श्लेषमा झिल्लियों द्वारा सरलतापूर्वक शोषित नहीं किया जा सकता। जबकि साधारण जल सरलता से शोषित किया जा सकता है। यद्यपि साधारण जल से किसी प्रकार की हानि नहीं होती, फिर भी नाक में पीड़ा और बैचेनी का अनुभव हो सकता है। नेति क्रिया के लिये विशेष प्रकार का नेति का बर्तन मिलता है। नेति लोटे को नमकीन पानी

से भर कर किसी एक नथूने से पानी डालें और दूसरे छिद्र को मस्तिष्क को घूमाकर ऐसा रखें कि वह पानी दूसरे छिद्र से बाहर निकल जाये। फिर यही क्रिया दूसरे नथूने से भी करें। उसके पश्चात् बारी बारी से एक एक नथूने को बन्द कर दूसरे नथूने से जल्दी जल्दी और दबाव के साथ श्वास निकाले। जिससे नासिका मार्ग की सफाई हो जाती है। पानी की अपेक्षा स्वमूत्र से नेति करना बहुत अधिक प्रभावशाली होता है।

प्रातःकाल और सोने से पूर्व नेति क्रिया करने से न केवल नथूनों की सफाई होती है, परन्तु उसके साथ साथ निद्रा अच्छी आती है। आंखों की ज्योति सुधरती है । सिर की गर्मी शान्त होती है। स्मरण शक्ति बढ़ने लगती है । बाल झड़ना बन्द हो जाते हैं और लम्बे समय तक बाल काले बने रहते हैं, ऐसे प्रत्यक्ष परोक्ष अनेक लाभ होते हैं। जल नेति करते समय हमेशा मुँह खोलकर ही श्वास-प्रश्वास की क्रिया करनी चाहिए अन्यथा नासिका में जल ऊपर चढ़ सकता है, जिससे चक्कर आने की संभावना रहती है। जल नेति के पश्चात् कपाल भाति व भस्त्रिका प्राणायाम अवश्य करना चाहिये। जिससे नाक पूर्ण रूप से साफ हो जाये और उसमें एक बूँद भी पानी न रहें।

अप्राकृतिक जीवन शैली का श्वसन पर प्रभाव

प्राचीन समय में मानव आज की अपेक्षा अधिक प्राकृतिक जीवन जीता था। जिससे उसका श्वसन स्वतः सही होता था। उसकी सहज तनाव मुक्त जीवन शैली भी सही श्वसन के अनुकूल थी। उसे आज के मानव की भांति अनावश्यक श्वसन प्रणाली पर बोझ और अवरोध नहीं थोपने पड़ते थे। आधुनिक मानव भय, असंतोष, तनाव, प्रतिद्वन्द्वता, घृणा, प्रदूषण, पर्यावरण और भीड़ भरे अप्राकृतिक वातावरण में जीवन यापन करने के कारण उसे पर्याप्त मात्रा में स्वच्छ शुद्ध, स्वास्थ्य वर्धक ऑक्सीजन युक्त वातावरण नहीं मिलता है। सारे दिन तो वे व्यवसाय के लिए अप्राकृतिक वातावरण अथवा बंद कमरे में रहते हैं और रात्रि में बंद कमरे में सोते हैं। जिसके कारण श्वसन तंत्र बराबर कार्य नहीं करता। परिणाम स्वरूप अधिकांश व्यक्ति धीमे व गहरे श्वास प्रायः नहीं ले पाते। अतः स्वस्थ रहने वालों को वातावरण के अनुकूल रहकर तनाव मुक्त प्रसन्नचित्त मुस्कराते हुये जीवन जीना चाहिये। जब कभी थकान अथवा आवेश आने की संभावना हो सजग होकर सही ढंग से धीमे धीमे श्वास लेने लग जायें तो, तुरन्त लाभ होने लग जाता है

सही निःश्वास का महत्त्व

पूर्ण श्वास लेना जितना आवश्यक है, उतना ही पूरा श्वास निकालना भी आवश्यक है। श्वास के माध्यम से जो ऑक्सीजन के रूप में प्राण वायु हम ग्रहण करते हैं, वह रक्त शुद्ध करने में कार्बन डाई आक्साईड में बदल जाती है। यदि इस दूषित वायु का शरीर से समय पर पूर्ण निष्कासन न हुआ तो शरीर में अनुपयोगी विजातीय तत्त्वों में वृद्धि होने लगती है। जिससे प्राण ऊर्जा के प्रवाह में अवरोध आने के कारण रोग होने की संभावना रहती

प्रातःकाल गहरी श्वसन क्रिया के बाद पूर्ण वेग से श्वास को बाहर निकालते हुए।

(चित्र न. 35)

है। जन साधारण जो प्राणायाम नहीं करते, उन्हें भी प्रातः काल स्वच्छ एवं शुद्ध वातावरण में कम से कम कुछ समय तो गहरी धीमी पूर्ण सजगता पूर्वक अवश्य श्वसन क्रिया करनी चाहिये। साथ ही प्रातः भूखे पेट ही बिना कुछ खाये कुछ बार गहरी श्वास प्रक्रिया करने के बाद कम से कम एक बार मुंह बंद करके पूरे वेग से नाक से जितनी ज्यादा वायु बाहर फेंक सकें, फेंकने का अपनी सामर्थ्य और विवेक अनुसार प्रयास करना चाहिये। ऐसा करने से सारे शरीर में वायु का प्रवाह एक दम तेज हो जाता है और जो विजातीय तत्त्व साधारण रेचक प्रक्रिया से निष्कासित नहीं होते हैं, वे भी बाहर निकल जाते हैं। साथ ही स्वतः पूर्ण वेग से श्वास की पूरक क्रिया होती है, जिससे सारे शरीर में प्राण ऊर्जा का प्रवाह पहुँचने लगता हैं। इस प्रक्रिया द्वारा शरीर में लम्बे समय से जमा अवरोध तथा विजातीय तत्त्व अपना स्थान छोड़ने लगते हैं। जो यह प्रक्रिया न कर सके उन्हे कपाल भाति क्रिया नियमित करनी चाहिये।

जल और स्वास्थ्य

शरीर में जल के कार्य

हवा के पश्चात शरीर में दूसरी सबसे बड़ी आवश्यकता पानी की होती हैं। पानी के बिना जीवन लम्बे समय तक नहीं चल सकता। शरीर में लगभग दो तिहाई भाग पानी का होता है। शरीर के अलग-अलग भागों में पानी की आवश्यकता अलग अलग होती हैं। जब पानी के आवश्यक अनुपात में असंतुलन हो जाता है तो, शारीरिक क्रियाएँ प्रभावित होने लगती है. अतः हमें यह जानना और समझना आवश्यक है कि पानी का उपयोग हम कब और कैसे करें? पानी कितना, कैसा और कब पीये? उसका तापमान कितना हो ? स्वच्छ, शुद्ध, हल्का, छना हुआ शरीर के तापक्रम के अनुकूल पानी जन साधारण के लिए उपयोगी होता है। पानी को जितना धीरे धीरे घूंट घूंट पीये उतना अधिक लाभप्रद होता है। इसी कारण हमारे यहाँ लोकोक्ति प्रसिद्ध है - **"खाना पीओ और पानी खाओ" अर्थात् धीरे धीरे पानी पीओ।**

हमारे शरीर में जल का प्रमुख कार्य भोजन पचाने वाली विभिन्न प्रक्रियाओं में शामिल होना तथा शरीर की संरचना का निर्माण करना होता है। जल शरीर के भीतर विद्यमान गंदगी को पसीने एवं मलमूत्र के माध्यम से बाहर निकालने, शरीर के तापक्रम को नियंत्रित करने तथा शारीरिक शुद्धि के लिए बहुत उपयोगी तथा लाभकारी होता हैं। शरीर में जल की कमी से कब्ज, थकान, ग्रीष्म ऋतु में लू आदि की अधिक संभावना रहती है। जल के कारण ही हमें, छः प्रकार के रसों-मीठा, खट्टा, नमकीन , कड़वा, तीखा और कषैला आदि का अलग-अलग स्वाद अनुभव होता है।

भोजन के तुरन्त बाद पानी पीना हानिकारक

भोजन के तुरन्त पहले पानी पीने से भूख शान्त हो जाती है । बिना भूख भोजन का पाचन बराबर नहीं होता। खाना खाने के पश्चात् आमाशय में लीवर, पित्ताशय, पेन्क्रियाज आदि के श्राव और अम्ल के मिलने से जठराग्नि प्रदीप्त होती है। अत: प्राय: जनसाधारण को पानी पीने की इच्छा होती है। परन्तु पानी पीने से पाचक रस पतले हो जाते हैं, जिसके कारण आमाशय में भोजन का पूर्ण पाचन नहीं हो पाता। फलत: भोजन से जो ऊर्जा मिलनी चाहिए, प्राय: नहीं मिलती। आहार के रूप में ग्रहण किये गये जिन पौष्टिक तत्त्वों से रक्त, वीर्य आदि अवयवों का निर्माण होना चाहिये नहीं हो पाता। अपाच्य भोजन, आमाशय और आंतों में ही पड़ा रहता है, जिससे मंदाग्नि, कब्जी, गैस आदि विभिन्न पाचन संबंधी रोगों के होने की संभावना रहती है। दूसरी तरफ अपाच्य भोजन को मल द्वारा निष्काषित करने के लिये शरीर को व्यर्थ में अधिक ऊर्जा की आवश्यकता होती है। अत: **भोजन के पश्चात् जितनी ज्यादा देर से पानी पीयेंगे उतना पाचन अच्छा होता है। प्राय: भोजन के दो घंटे पश्चात जितनी आवश्यकता हो खूब पानी पीना चाहिए, जिससे शरीर में पानी की कमी न हो।**

प्रारम्भ में जब तक अभ्यास न हो, ठोस भोजन के साथ तरल पदार्थों का भी उपयोग अवश्य करना चाहिये। भोजन के बीच में थोड़ा सा पानी पी सकते हैं, परन्तु वह पानी गुनगुना हो न कि बहुत ठण्डा पेय । खाने के पश्चात् भी आवश्यक हो तो जितना ज्यादा गरम पीने योग्य पानी थोड़ा पी सकते हैं। **भोजन पाचन के पश्चात् पानी पीना पथ्य होता है।** भोजन पाचन से पूर्व एक साथ ज्यादा पानी पीने से आंव की वृद्धि होती है । अपच और कब्ज होता है। जैन साधु और बहुत से श्रावक रात्रि में पानी नहीं पीते। परिणाम स्वरूप सायंकालीन भोजन के तुरन्त पश्चात् उनको पर्याप्त पानी पीना पड़ता है , जिससे उनके पाचन संबंधी रोग होने की संभावना अधिक रहती है। अत: स्वास्थ्य प्रेमी साधकों को सांयकालीन भोजन यथा संभव त्यागना ही उपयुक्त होता है। परन्तु यदि ऐसा संभव न हो और **भोजन के पश्चात् पानी पीना आवश्यक हों तो, जितना गर्म पानी पी सकते हैं, उतना गर्म पानी धीरे-धीरे घूंट-घूंट पीना चाहिए, जिससे आमाशय की गर्मी कम न हो। साथ ही धीरे-धीरे पानी पीने से, पानी के साथ थूक मिल जाने से वह पानी पाचक बन जाता हैं।**

उषापान

प्रात:काल निद्रा से उठने के पश्चात् बिना मुंह धोये अथवा दांतुन या कुल्ला किये रात भर ताम्र पात्र में रखा हुआ अपनी क्षमतानुसार 1 1/4 से 1 1/2 लीटर के लगभग जल पीना चाहिये। **इस क्रिया को उषा पान कहते हैं।** रात भर में नि:श्वास के साथ जीभ पर विजातीय तत्व जमा हो जाते हैं। इसी कारण दिन भर कार्य करने के बावजूद

मुंह मे जितनी बदबू नहीं आती, उतनी निंद्रा में बिना कुछ खाये ही आती है। ये विजातीय तत्त्व जब पानी के साथ

उषापान के बाद पेट को बाँए-दाँए घुमाते हुए

(चित्र नं. ३६)

खाली पेट में पुनः जाते हैं तब औषधि का कार्य करते हैं। **अतः उषापान का पूर्ण लाभ बिना दांतुन पानी पीने से ही मिलता है। उसके पश्चात् टहलने अथवा पेट का हलन-चलन वाला व्यायाम (संकुचन और फैलाना) करने से पेट में आंतें एक दम साफ हो जाती है। जिससे पाचन संबंधी सभी प्रकार के रोगों में शीघ्र राहत मिलती हैं।** पानी पीने का श्रेष्ठतम समय प्रातःकाल भूखे पेट होता है। रात्रि के विश्राम काल में चयापचय क्रिया द्वारा जो विजातीय अनावश्यक तत्त्व शरीर में रात भर में जमा हो जाते हैं, उनका निष्कासन गुर्दे, आंतें, त्वचा अथवा फेंफड़ों द्वारा होता है। अतः उषापान से ये अंग, सक्रिय होकर समस्त विजातीय पदार्थों को बाहर निकालने में सक्रिय हो जाते हैं। जब तक रात भर में एकत्रित विष भली भांति निष्कासित नहीं होता और ऊपर से आहार किया जाये तो विभिन्न प्रकार के रोग होने की संभावना रहती है। उषापान से बवासीर, सूजन, संग्रहणी, ज्वर, उदर रोग, कब्ज, आंत्ररोग, मोटापा, गुर्दे संबंधी रोग, यकृत रोग, नासिका आदि से रक्त स्राव, कमर दर्द, आंख, कान आदि विभिन्न अंगों के रोगों से मुक्ति मिलती है। नेत्र-ज्योति में वृद्धि, बुद्धि निर्मल तथा सिर के बाल जल्दी सफेद नहीं होते आदि अनेक लाभ होते हैं।

जापान के सिकनेश एसोसियेशन द्वारा प्रकाशित एक लेख में इस बात की पुष्टि की गई है। **ऐसे प्रयोग का पूर्ण लाभ तब ही मिलता है जब उपरोक्त विधि से पानी पीने के साथ भोजन के लगभग दो घंटे बाद अथवा आमाशय में भोजन के पाचन के पश्चात् ही पानी पीते हैं।**

उषापान स्वस्थ एवं रोगी दोनों के लिए समान उपयोगी होता है। प्रारम्भ में यदि एक साथ इतना पानी न पी सकें तो, प्रारम्भ में दो गिलास जल से शुरू करें। धीरे धीरे सवा से डेढ़ लीटर तक मात्रा बढावें। इतना ज्यादा पानी एक साथ पीने पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता । सिर्फ प्रथम कुछ दिनों में अधिक पेशाब आ सकता है। यह प्रयोग सस्ता, सुन्दर, स्वावलम्बी और काफी प्रभावशाली होता है।

गर्म पानी औषधि है

ठण्डे पेय तथा फ्रीज में रखा अथवा बर्फ वाला पानी स्वास्थ्य के लिये हानिकारक होता है । स्वस्थ अवस्था में हमारे शरीर का तापक्रम 98.4 डिग्री फारहनाइट यानि 37 डिग्री सेन्टीग्रेड के लगभग होता है। जिस प्रकार बिजली के उपकरण एयर कंडीशनर, कूलर आदि चलाने से बिजली खर्च होती है। उसी प्रकार **ठण्डे पेय पीने अथवा खाने से शरीर को अपना तापक्रम नियन्त्रित रखने के लिये अपनी संचित ऊर्जा व्यर्थ में खर्च करनी पड़ती है। अतः पानी**

यथा संभव शरीर के तापक्रम के आसपास तापक्रम जैसा पीना चाहिये। आजकल सामूहिक भोजों में भोजन के पश्चात आइसक्रीम और ठण्डे पेय पीने का जो प्रचलन है, वह स्वास्थ्य के लिये बहुत हानिकारक होता है।

गर्मी स्वयं एक प्रकार की ऊर्जा है और शारीरिक गतिविधियों में उसका व्यय होता है। अत: जब कभी हम थकान अथवा कमजोरी का अनुभव करते हैं तब गरम पीने योग्य पानी पीने से शरीर में स्फूर्ति आती है। जिन व्यक्तियों को लगातार अधिक बोलने का अर्थात् भाषण अथवा प्रवचन देने का कार्य पड़ता है, जब वे थकान अनुभव करें, तब ऐसा पानी पीने से पुन: ऊर्जा का प्रवाह सक्रिय होता है। लम्बी तपस्या करने वालों के लिये ऐसा पानी विशेष उपयोगी होता है, जिससे शक्ति का संचार होता है। गरम पानी सर्दी संबंधी रोगों में क्षीण ऊर्जा को पुन: प्राप्त करने का सरलतम उपाय होता हैं।

साधारणतया रोजाना पानी को उबालकर पीने से उसमें रोगाणुओं और संक्रामक तत्त्वों की संभावना नहीं रहती। अत: ऐसा पानी स्वास्थ्य के लिये अधिक उपयोगी होता है।

खाली पेट गर्म पानी पीने से अम्लपित्त जनित हृदय की जलन और खट्टी डकारें आना दूर हो जाता है। गर्म जल सुखी खांसी की प्रभावशाली औषधि है। सहनीय एक गिलास गर्म जल में थोड़ा सेंधा नमक डालकर पीने से कफ पतला हो जाता है और अंत में खांसी का वेग बहुत कम हो जाता है । खाली पेट दो गिलास गर्म पानी पीने से मूत्र का अवरोध दूर होता है। जिनके मूत्र पीला अथवा लाल हो, मूत्र नली में जलन हो उनको गर्म जलपान करना चाहिए।

पानी कब न पीना चाहिए ?

चिकनाई वाले पदार्थ अथवा मीठा खाने के तुरन्त बाद पानी पीने से खांसी और गले के रोग होने की संभावना रहती है। धूप में चलकर आने पर अथवा व्यायाम के पश्चात् जब तक पसीना पूरा सूख न जायें पानी नहीं पीना चाहिये, अन्यथा तुरन्त जुकाम होने की संभावना रहती है। चिकित्सकों की दृष्टि से शौच के तुरन्त पश्चात् भी पानी नहीं पीना चाहिये। सोने के लगभग दो घंटे पूर्व तक पानी नहीं पीना चाहिये। विशेषकर ऐसे व्यक्तियों को जिन्हें रात्रि में पेशाब के लिए बार बार उठना पड़ता है। सोते समय पानी पीने से निद्रा में पेशाब की शंका बनी रहने के कारण गहरी निद्रा आने में बाधा पहुंचती है। एक बार निद्रा भंग होने के पश्चात् पुन: निद्रा सरलता से नहीं आती। अत: ऐसे व्यक्तियों को अधिक समय तक सोये रहना पड़ता है। परिणाम स्वरूप प्रात: समय पर जल्दी नहीं उठ पाते।

पानी का उपयोग कैसे करे ?

पानी को छानकर ही प्रयोग करना चाहिए। अगर पानी गंदा हो तो , पीने से पहिले उसको किसी भी विधि

द्वारा फिल्टर करना चाहिए। कठोर पानी पीने योग्य नहीं होता। उबला हुआ पानी स्वास्थ्य के लिये लाभप्रद होता है।

पानी को घूंट घूंट, धीरे धीरे चन्द्र स्वर में पीना चाहिये और शरीर के तापक्रम पर हो जाने के पश्चात पानी को निगलना चाहिए।

प्रत्येक भोजन के 1-1/2 से 2 घंटे पहले पर्याप्त मात्रा में जलपान करना उत्तम रहता है। ऐसा करने से पेट के अन्दर अपचित आहार जो सड़ता रहता है, पानी में पूर्णतया घुल जाता हैं। पाचन संस्थान एवं पाचक रस ग्रन्थियां सबल एवम् स्वस्थ बनती है। इसी प्रकार भोजन के दो घंटे पश्चात् भी पर्याप्त मात्रा में जितनी आवश्यकता हो पानी पीना चाहिये, जिससे शरीर में जल की कमी न हों। पर्याप्त मात्रा में जल पीने से पित्ताशय व गुर्दे की पथरी तथा जोड़ों की सूजन व दर्द ठीक होते हैं। रक्त में मिश्रित विकार धुलकर बाहर निकल जाते हैं।

1. जल से शरीर के अन्दर की गर्मी एवं गंदगी दूर होती है।

2. खड़े-खड़े पानी पीने से गैस, वात विकार, घुटने तथा अन्य जोड़ों का दर्द, दृष्टि दोष,श्रवण विकार होते हैं।

3. थकावट होने अथवा प्यास लगने पर पानी धीरे धीरे घूंट घूंट पीना लाभप्रद होता है।

4. भय, क्रोध, मूर्च्छा, शोक व चोट लग जाने के समय अन्तःश्रावी ग्रन्थियों द्वारा छोड़े गये हानिकारक श्रावों के प्रभाव को कम करने के लिय पानी पीना लाभप्रद होता हैं।

5. लू तथा गर्मी लग जाने पर ठंडा पानी व सर्दी लग जाने पर गर्म पानी पीना चाहिये, उससे शरीर को राहत मिलती है। पानी पीकर गर्मी में बाहर निकलने पर लू लगने की संभावना नहीं रहती।

6. उच्च अम्लता में भी अधिक पानी पीना चाहिए, क्योंकि यह पेट तथा पाचन नली की अन्दर की कोमल सतह को जलन से बचाता है।

7. दिन में दो तीन घंटे के अन्तर पर पानी अवश्य पीना चाहिए, क्योंकि इससे अन्तःश्रावी ग्रन्थियों का स्राव पर्याप्त मात्रा में निकलता रहता है।

8. उपवास के समय पाचन अंगों को भोजन पचाने का कार्य नहीं करना पड़ता । अतः वे शरीर में जमे विजातीय यों को आसानी से निकालना प्रारम्भ कर देते हैं। अधिक पानी पीने से उन तत्वों के निष्कासन में मदद मिलती है।

9. पेट में भारीपन, खट्टी डकारें आना, पेट में जलन तथा अपच आदि का कारण पाचन तंत्र में खराबी होता है। अतः ऐसे समय गरम पानी पीने से पाचन सुधरता है और उपरोक्त रोगों में राहत मिलती है।

10. डायरिया, हैजा व उल्टी, दस्त के समय उबाल कर ठंडा किया हुआ पानी पीना चाहिये, क्योंकि यह पानी

कीटाणु रहित हो जाता है तथा दस्त के कारण शरीर में होने वाली पानी की कमी को रोकता है।

11. गले और नाक में गर्म जल की वाष्प के बफारे लेने से जुकाम और गले संबंधी रोगों में आराम मिलता है

12. पीने वाली अधिकांश दवाईयों में पानी का उपयोग किया जाता हैं।

13. अधिकांश ठोस दवाईयां भी चाहे वे एलोपेथिक की टेबलेट हों अथवा आयुर्वेद या अन्य चिकित्सा पद्धति से संबंधित मुंह में लेने वाली दवाईयों को पानी के माध्यम से सरलता पूर्वक निगला जा सकता हैं।

14. त्रिफला के पानी से आंखे धोने पर आंखों की रोशनी सुधरती.है। रात भर दाणा मेथी में भिगोया पानी पीने से पाचन संबंधी रोग ठीक होते हैं। प्राकृतिक चिकित्सा में शारीरिक शुद्धि के लिये पानी का अलग अलग ढंग से उपयोग किया जाता हैं।

15. विशेष परिस्थितियों के अतिरिक्त स्नान ताजा पानी से ही करना चाहिये। ताजा पानी रक्त संचार को बढ़ाता है। जिससे शरीर में स्फूर्ति और शक्ति बढ़ती है। जबकि गर्म पानी से स्नान करने पर आलस्य एवं शिथिलता बढ़ती हैं।

जल चिकित्सा के अनुभूत प्रयोग

पानी विभिन्न प्रकार की ऊर्जाओं को सरलता से अपने अन्दर समाहित कर लेता है। अत: आजकल विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों में पानी में आवश्यक ऊर्जा संचित कर रोगी को देने से उपचार को प्रभावशाली बनाया जा सकता है।

a. सूर्य किरण और रंग चिकित्सा के अन्तर्गत शरीर में जिस रंग की आवश्यकता होती है, उस रंग की कांच की बोतल या बर्तन में पानी को निश्चित विधि तथा धूप में रखने से पानी में उस रंग के गुण आ जाते हैं। ऐसा पानी पीने से रोगों में राहत मिलती है तथा यदि स्वस्थ व्यक्ति पीये तो रोग होने की संभावना नहीं रहती।

b. पानी को आवश्यकतानुसार चुम्बक पर रखने से उसमें चुम्बकीय ऊर्जा संचित होने लगती है। उस मानी का उपयोग चुम्बकीय चिकित्सक विभिन्न रोगों के उपचार में करते हैं।

c. सूर्य किरण एवं चुम्बक की भांति पिरामिड के अन्दर अथवा पिरामिड समूह के ऊपर पानी रखने से उसमें स्वास्थ्यवर्धक गुण उत्पन्न हो जाते हैं, जिसका सेवन करने से रोगों में राहत मिलती है और स्वस्थ व्यक्ति रोग मुक्त रहता हैं।

d. पानी को रेकी, रत्नों, मंत्रों अथवा आवश्यकतानुसार स्वर तथा विभिन्न रंगों के बिजली के प्रकाश की तरंगों

से भी ऊर्जित किया जा सकता है। जिसके सेवन से असाध्य एवं संक्रामक रोगों का उपचार किया जा सकता है।

e. पानी को जैसे बर्तन अथवा धातु के सम्पर्क में रखा जाता है, उसमें उस धातु के गुण उत्पन्न होने लगते हैं। प्रत्येक धातु का स्वास्थ्य की दृष्टि से अपना अलग-अलग प्रभाव होता हैं।

f. सोने से ऊर्जित जल पीने से श्वसन प्रणाली के रोग, जैसे-दमा, श्वास फूलना , फेंफड़ों संबंधी रोगों, हृदय और मस्तिष्क संबंधी रोगों में लाभ होता हैं।

g. चांदी से पाचन क्रिया के अवयवों जैसे-आमाशय, लीवर, पित्ताशय, आंतों के अनेक रोगों एवं मूत्र प्रणाली के रोगों में आराम मिलता है।

h. तांबे में ऊर्जित जल के सेवन से जोड़ों के रोग , पोलियो, कुष्ठरोग, रक्त चाप, घुटनों का दर्द , मानसिक तनाव आदि में काफी लाभ होता हैं।

उपरोक्त तीनों धातुओं से ऊर्जित निश्चित विधि द्वारा तैयार पेय स्त्री-पुरुष , बच्चों-जवान-वृद्धों सबके लिये शक्तिवर्धक होने से लाभदायक होता है।

भोजन और स्वास्थ्य

भोजन हेतु समग्र दृष्टिकोण आवश्यक

हवा और पानी के पश्चात् शरीर को चलाने के लिये तीसरी मुख्य आवश्यकता भोजन की होती है। भोजन की शरीर के सभी अवयवों के निर्माण में अहं भूमिका होती है। शरीर को ताकत मिलती है । अत: भोजन के बारे में काफी शोध हो रही है. परन्तु **अधिकांश आहार विशेषज्ञों ने शरीर को ताकतवर, शक्तिशाली बनाने हेतु आवश्यक रासायनिक तत्त्व और ऊर्जा को जैसे-प्रोटीन, विटामिन, कार्बोज, लवण, जल, वसा और केलोरीज की मात्रा को तो अत्यधिक महत्त्व दिया। किसी खाद्य पदार्थ में क्या क्या तत्त्व कितनी कितनी मात्रा में होते हैं, उनकी जानकारी से जन साधारण को अवगत कराया। परन्तु भोजन के अवयव कितने सात्विक, अहिंसक , शुद्ध और पवित्र होने चाहिये, उस संबंध में अपेक्षित प्राथमिकता नहीं दी। परिणाम स्वरूप पौष्टिकता के नाम पर आज भक्ष्य-अभक्ष्य, खाद्य-अखाद्य, करणीय-अकरणीय, अहिंसा - हिंसा, न्याय-अन्याय, वर्जित - अवर्जित आदि का विवेक मानव खोता जा रहा हैं।**

अधिकांश आहार गोष्ठियों में भोजन के पोष्टिक तत्त्वों एवं केलोरीज के बारे में ही चर्चा और चिन्तन प्राय: सीमित होता है । भोजन से जीवन क्यों, कितना और कैसे प्रभावित होता है ? प्राय: गौण रहता है । यदि आपको कोई अपने घर भोजन के लिये आमंत्रित करें, अच्छे से अच्छा पोष्टिक भोजन बनावे, परन्तु भोजन खिलाते समय आप पर

व्यंग करे - जैसे क्या आपको जिन्दगी में ऐसा अच्छा भोजन किसी ने कराया ? मुझे आवश्यक कार्य से बाहर जाना है, कृपया आप भोजनालय से भोजन लेकर अपनी क्षुधा पूर्ति कर लेना। यदि ऐसा व्यवहार करें तो भोजन में उपलब्ध पोष्टिक तत्व क्यों प्रभावहीन हो जाते हैं? चिन्तन की आवश्यकता है।

भोजन कब , क्यों, कितना , कैसा और कहाँ करना चाहिए और कब क्यों, कैसा और कहां नहीं करना चाहिये? भोजन कहाँ और कैसे वातावरण और बर्तनों में बनाना चाहिये और खिलाना चाहिए ? दो भोजन के बीच में कितने समय का कम से कम अन्तराल होना चाहिये ? थोड़ा थोड़ा अथवा बार बार क्यों नहीं खाना चाहिए? प्रकृति के अनुरूप भोजन का सर्वश्रेष्ठ अनुकूल समय कौन सा होता है? रात्रि भोजन क्यों नहीं करना चाहिए? भोजन करते समय आसपास का वातावरण, हमारी भूख, आसन, विचार, भावना, मानसिकता, चिन्तन कैसा है? भोजन मौसम और शारीरिक अवस्था के अनुकूल है अथवा नहीं? उसमें क्या क्या और कितने कितने उपयोगी अथवा अनुपयोगी पदार्थ हैं ? जिस उद्देश्य से भोजन किया जा रहा है, उसका कितना प्रतिशत लाभ मिल रहा है? अगर नहीं मिल रहा है, तो क्यों नही मिल रहा है?

भोजन को प्रभावित करने वाले ऐसे अनेकों परमावश्यक तथ्य आहार विशेषज्ञों की चर्चा, चिन्तन और अभिव्यक्ति में प्रायः गौण रहते हैं। रोगी को भोजन संबंधी परामर्श देते समय प्रायः उपेक्षित रहते हैं। जिनका महत्व पोष्टिकता से भी अधिक होता है। जिस प्रकार विष की चंद बूंदें टनों दूध को अपेय बना देती है। एक चिनगारी सारे घास के ढ़ेर को जलाने की क्षमता रखती है। एक सांप के काटने से व्यक्ति मर सकता है। मृत्यु के लिये सो सर्पों के काटने की आवश्यकता नहीं होती। ठीक उसी प्रकार भोजन में उपरोक्त तथ्यों में से किसी भी तथ्य की उपेक्षा भोजन से होने वाले लाभ से वंचित रख सकती हैं।

भारत के नागरिकों का खान-पान, मौसम की विविधता, विभिन्न भौगोलिक, परिस्थितियाँ, पारिवारिक और सामाजिक संरचना में अनेकता तथा रीति - रिवाजों, त्यौहारों, अलग अलग उपासना पद्धतियों का समन्वय होने से एक जैसा भोजन संभव नहीं होता। परन्तु पाश्चात्य संस्कृति में प्रायः इतना बदलाव नहीं होता। हमारी दिनचर्या और जीवन शैली विदेशियों से मेल नहीं खाती। अतः भोजन में उनका अन्धानुकरण स्वास्थ्य के सदैव अनुकूल हो आवश्यक नहीं।

जिस वातावरण और स्थान पर हम रहते हैं, हमारे लिये आवश्यक सभी खाद्य पदार्थों का उत्पादन प्रकृति उस क्षेत्र में करती है। सभी जीव जन्तु वही खाते हैं, जो उनके आसपास उपलब्ध होता है। वे कोई खाद्य पदार्थों का अन्य स्थानों से आयात नहीं करते। अतः जिस मौसम में जो फल, सब्जियाँ और अन्य खाद्य पदार्थ सहज और सरलता से भरपूर मात्रा में उपलब्ध हों, वे सारे पदार्थ प्रायः स्वास्थ्य के अनुकूल होते हैं। प्रकृति के नियम और कानून गरीब और अमीर सबके लिये समान होते हैं। अतः महंगे , बेमौसमी, आयातित खाद्यान्न का सेवन स्वास्थ्य

के लिये सदैव उपयोगी हो , पूर्णत: मिथ्याधारणा है।

जो भोजन सहज रूप से उपलब्ध होता है, उसे शांत भाव से ग्रहण करना चाहिये। भोजन में पौष्टिक तत्त्वों एवं केलोरीज की आवश्यक मात्रा, जितनी ऊर्जा नहीं देती, उससे ज्यादा मानसिक तनाव, भय और चिंता के कारण ऊर्जा का अपव्यय हो जाता है, जो घाटे का सौदा होता है । अधिकांश व्यक्तियों को सावधानी रखते हुए भी वही भोजन लेना पड़ता है जो घर में बनता है । घर में प्रत्येक परिजन के आवश्यकतानुसार प्राय: भोजन नहीं बनता। अत: भोजन करते समय भोजन के अवयवों के बारे में व्यर्थ चिन्तन नहीं करना चाहिये। जिससे व्यर्थ तनाव और चिंता होती है। जो भोजन में उपलब्ध पौष्टिक तत्त्वों की कमी से ज्यादा हानिकारक होती है । अत: उपलब्ध भोजन को शांत भाव से ग्रहण करना अधिक लाभप्रद होता है।

भोजन में प्राथमिकता क्या हो ?

भोजन के संबंध में हमारी प्राथमिकताएँ क्या हो? क्या कभी हमने अपने मनोबल और आत्म बल की क्षमताओं को जानने, समझने तथा अनुभव करने का प्रयास किया? भोजन न केवल शरीर को ताकत देता है, अपितु हमारे विचारों, भावनाओं, चिन्तन तथा जीवन शैली को भी प्रभावित करता है। **जिस प्रकार बिना कपड़े आभूषण से शरीर को सजाने वालों पर दुनिया हँसती हैं । यद्यपि आभूषणों का मूल्य तो कपड़ों (पोशाक) से ज्यादा ही होता है। ठीक उसी प्रकार पौष्टिकता और स्वाद के नाम पर मन और आत्मा को विकारी और कमजोर बनाने वाला भोजन करना अदूरदर्शिता पूर्ण आचरण ही होता है।**

भोजन का पूर्ण चयापचय (Metobolism) *आवश्यक*

भोजन जितना महत्त्वपूर्ण नहीं, उतना उसका सही पाचन जरूरी है। भोजन के पाचन से सर्व प्रथम उसका रस बनता है। उसके पश्चात् रक्त, मांस, चर्बी, हड्डी और अंत में वीर्य बनता है। वीर्य का निर्माण चयापचय की सम्पूर्ण क्रिया होने पर ही संभव है। जिस भोजन से मात्र रक्त, चर्बी अथवा हड्डियों आदि के अवयव बनते हों,

शरीर में सप्त धातुओं के निर्माण का क्रम

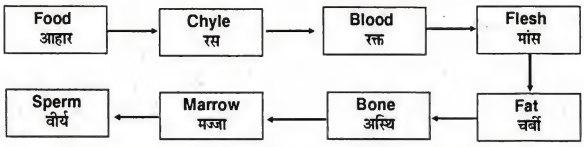

वीर्य नहीं बनता हो, उस भोजन की पाचन क्रिया को पूर्ण एवं संतुलित नहीं कहा जा सकता। साथ ही हमें असंयम पूर्ण जीवन जीते हुए अपने वीर्य का यथा संभव अपव्यय और दुरूपयोग नहीं करना चाहिए। वीर्य का नाश कमजोरी और रोगों का आमन्त्रण है तथा वीर्य की रक्षा स्वस्थ जीवन का राजमार्ग। आप स्वयं चिन्तन करें कि आपकी प्राथमिकता क्या है?

आजकल अधिकांश व्यक्ति प्रायः भोजन शरीर की आवश्यकतानुसार नहीं करते, अपितु मजबूरी और स्वाद की प्राथमिकता के अनुसार करते हैं। भोजन से न केवल स्वाद, अपितु शक्ति भी मिलनी चाहिए। हमें जीने के लिये भोजन करना चाहिये। परन्तु आजकल प्रायः हम भोजन के लिये जीते हैं, ऐसा समझा जावे तो आश्चर्य नहीं। गंदी से गंदी वस्तुओं को खाते समय छान बीन नहीं करते। मात्र उस पर डाली गई सुगन्ध, आकर्षक पेकिंग, मन लुभावने भ्रामक विज्ञापनों से भ्रमित हो स्वाद की लोलुपता के कारण स्वविवेक न होने से ग्रहण करते तनिक भी संकोच नहीं करते। पाचन हो या न हो खाना एक रिवाज बन गया हैं।

इसी कारण आज दुनिया में 80 प्रतिशत से अधिक व्यक्ति खाने का विवेक न होने अथवा ज्यादा खाने से बीमार होते हैं। इसीलिये तो कहा गया है कि "More Dishes More Diseases" **अर्थात् "जितना ज्यादा खाना उतने ज्यादा रोग।" हमारे यहां लोकोक्ति प्रसिद्ध है - "एक समय खाने वाला योगी, दो समय खाने वाला भोगी, तीन समय खाने वाला रोगी तथा उससे ज्यादा खाने वाला महा रोगी।"** हम स्वयं आत्म निरीक्षण करें कि हम कौनसी श्रेणि में हैं। इसी कारण बाह्य रूप से भले ही हम अपने आपको स्वस्थ समझें, हमारे शरीर में परोक्ष रूप से सैंकड़ों रोग होते हैं।

हम भलीभांति जानते हैं कि जिस फुटबाल अथवा हाकी की टीम में यदि गोल रक्षक कमजोर हो, वह टीम मैच तभी जीत सकती हैं, जबकि आगे के खिलाड़ी अधिक मजबूत, सजग, सक्रिय हों, ताकि गोलरक्षक तक फुटबाल कम से कम पहुंचे। ठीक उसी प्रकार यदि हम दांतों का कार्य आमाशय से करवाते हैं, तो आमाशय को भोजन पचाने के लिए अधिक श्रम करना पड़ता है, अधिक पाचक रसों की आवश्यकता होती है। परन्तु शरीर सीमित मात्रा में ही पाचक रस भेजता है। परिणामस्वरूप पाचन बिगड़ने लगता है। अतः स्वास्थ्य प्रेमियों को दांतों का कार्य दांतों से ही करना चाहिए न कि आमाशय से। अर्थात् भोजन को पूर्ण चबा चबा कर ही खाना चाहिए।

बार-बार भोजन करना हानिकारक

हमारे ऋषि मुनियों ने एकासन करने की जो बात कही, उसके पीछे यही उद्देश्य था कि मुँह में जब चाहे कुछ न डाला जाये। जो कुछ खाना हो एक या दो बार ही खाया जाये। ताकि हमारे आमाशय को बाकी समय पूर्ण आराम मिल जाये। जब हम कोई भी पदार्थ मुंह में डालते हैं, चाहें उसकी मात्रा बहुत कम ही क्यों न हो, सारी पाचन व्यवस्था

को सजग और सक्रिय हो कार्य करना पड़ता है। जिस प्रकार किसी रेलवे फाटक पर कार्यरत चौकीदार को चाहे अकेला इंजिन उधर से निकले अथवा राजधानी एक्सप्रेस, फाटक बंद करने की प्रक्रिया में उसे कोई फरक नहीं पड़ता। किसी बस में चाहे एक यात्री हो अथवा पूरी बस भरी हो, बस चालक को कोई अन्तर नहीं पड़ता। पेट्रोल की खपत में भी बहुत ज्यादा अन्तर नही पड़ता। **इसी प्रकार जितनी अधिक बार मुंह में कुछ भी डाला जायेगा उतना पाचन अंगों को अधिक कार्य करना पड़ेगा। परिणामस्वरूप जब हमारा मुख्य भोजन होगा तब वे अपनी पूर्ण क्षमता से कार्य नहीं कर पाते। समय पर अच्छी स्वाभाविक भूख नहीं लगती। भोजन समय की नियमितता नहीं रहती। इसी कारण आज अधिकांश व्यक्तियों का पाचन प्रायः ठीक नहीं होता। जितनी कम बार खाया जायेगा, उतनी भूख अच्छी लगेगी और पाचन अच्छा होगा।** अतः जो मधुमेह अथवा पाचन संबंधी रोगों से पीड़ित हैं, उन्हे तो बार बार कभी नहीं खाना चाहिये। परन्तु आज के आहार विशेषज्ञों का सोच इसके विपरीत पाया गया हैं। रोगी को थोड़ा थोड़ा बार बार खाने के लिये प्रेरित किया जाता है। जिस पर बिना किसी पूर्वाग्रह शोध एवं चिन्तन आवश्यक है, ताकि मधुमेह तथा पाचन रोग जैसी असाध्य बीमारी से रोगी को राहत दिलाई जा सके।

जो व्यक्ति अपनी प्रकृति और मौसम के अनुकूल भोजन करता है, भूख से थोड़ा कम और नियमित समय पर भोजन करता है, वह दीर्घजीवी होता है। **आधुनिक खान-पान के समय की एक और विशेषता है कि जब शरीर श्रम करता है, तब उसे कम आहार दिया जाता है, और जब वह विश्राम की अवस्था में होता है तो उसे अधिक मात्रा में कैलोरीयुक्त आहार दिया जाता है। जैसे दिन का समय जो मेहनत परिश्रम का होता है तब तो हल्का भोजन, नाश्ता, चाय, काफी, ठंडे पेय आदि कम केलोरी वाले आहार करता है और रात्रि में जो विश्राम का समय होता है, प्रायः गरिष्ठ भोजन किया जाता है, जो स्वास्थ्य के मूल सिद्धान्तों के विपरीत होता है।**

भोजन कैसा हो ?

आजकल अप्राकृतिक रासायनिक खाद के उपयोग एवं कीटाणुनाशक औषधियों के अधिक प्रयोग के कारण बाजार में उपलब्ध अधिक खाद्यान्न, फल और सब्जियाँ दूषित हो जाती है । वे शरीर का सम्पूर्ण पोषण नहीं कर सकती बल्कि उसके सेवन से शरीर में विभिन्न प्रकार के विकार उत्पन्न होने की संभावना रहती है। हमारे शरीर में अम्ल क्षार का अनुपात 20:80 है। अतः भोजन में भी यथा संभव 80 प्रतिशत क्षार तत्त्व और 20 प्रतिशत अम्ल तत्त्व होने चाहिए, जिससे शारीरिक अवयवों का सही निर्माण हो सकें।

अतः जिन खाद्य पदार्थो के उत्पादन में रासायनिक खाद, विषैली कीटनाशक दवाओं का उपयोग न किया गया हों, जिसको प्राप्त करने के लिए किसी भी चेतनाशील प्राणी की हत्या न की गई हों अथवा उन पर क्रूरता, अत्याचार और कष्ट नहीं दिये गये हों, जो भोजन अपनी प्राकृतिक अवस्था और स्वरूप में हों या उसकी अवस्था एवं स्वरूप

में कम से कम परिवर्तन हुआ हों, ऐसे अपनी आवश्यकता के अनुरूप पौष्टिक पदार्थों से ओतप्रोत सात्त्विक भोजन को ही सर्व श्रेष्ठ भोजन कहा जा सकता है।

"पशु खाता है केवल पेट भरने के लिए मूर्ख खाता है केवल स्वाद के लिए ।
बुद्धिमान खाता है आरोग्य और शक्ति के लिए सन्त खाता है केवल साधना के लिए।"

हम स्वयं निर्णय करें कि हम कैसा भोजन कर रहे हैं। यदि हम अपने आपको बुद्धिमान समझते हैं, तो भोजन को ग्रहण करने से पूर्व एक क्षण चिन्तन करें क्या भोजन हमारे अनुकूल है? किसी प्राणी के अपवित्र रक्त, मांस और चर्बी की गंदगी तो उसमे नहीं है ? किसी बेगुनाह जीव की हत्या से निर्मित उस जीव की बद दुआएँ की तरंगें भोजन के माध्यम से पेट में जाकर हमारे में हिंसा, क्रूरता, निर्दयता और प्रति हिंसा की ज्वाला तो पैदा नहीं करेगी? अतः भ्रामक विज्ञापनों से प्रभावित हों अखाद्य वस्तु पेट में डालकर अपने पेट को कूड़ा दान न बनायें।

जो भोजन उपर्युक्त तथ्यों के जितना समीप होता है, उसी अनुपात में उसका लाभ अधिक मिल सकता है। क्योंकि भोजन में न केवल पदार्थ का ही महत्त्व होता है, अपितु उसके बनाने के ढंग और बनाने वालों के भावों, शारीरिक स्थिति का भी प्रभाव पड़ता हैं।

भोजन बनाने हेतु सावधानियाँ

जो महिलाएँ मासिक धर्म में होती है, उनका आभामंडल विकृत हो जाता है । उनके सम्पर्क में आने वाले पदार्थ भी विकृत हो जाते हैं। इसी कारण हमारे यहाँ उस अवस्था में महिलाओं को भोजन बनाने और पीने के पानी के संग्रह वाले स्थानों के स्पर्श पर पहले पूर्ण प्रतिबंध था। परन्तु आजकल पाश्चात्य संस्कृति के अन्धानुकरण के परिणाम स्वरूप अज्ञान और विवेक की कमी के कारण पढ़ी लिखी अधिकांश महिलाएं उस नियम का प्रायः पालन नहीं करती। जिससे उनके द्वारा बनाया गया भोजन विकृत हो जाता है। जिस पर वर्तमान वैज्ञानिकों द्वारा किये गये निष्कर्षों के आधार पर सम्यक् चिन्तन और आचरण अनिवार्य है, किन्तु उपेक्षा अनुचित हैं।

दूसरी बात उबालने, मिक्सी में रस निकालने, फ्रीज अथवा कोल्ड स्टोरेज में रखने से खाद्य पदार्थों का प्राकृतिक स्वरूप बदल जाता है और पौष्टिक तत्त्वों में कमी आ जाती है। भोजन बनाते समय भी आजकल स्टील, एलुमिनियम और प्लास्टिक के बर्तनों का प्रयोग अधिक होता है। जिससे भोजन में हानिकारक, रासायनिक पदार्थों के मिश्रित होने की संभावना बढ़ जाती है। ऐसा भोजन शरीर में रोग प्रतिरोधक क्षमता घटाता है।

एलुमीनियम थोड़ी सी गर्मी पाकर गलने लगता हैं और खाद्य पदार्थों के साथ पेट में जब पहुँच जाता है तो, अपाच्य विकार पैदा करता है, जिससे गुर्दे में पथरी और आंतों में खराबी होने की संभावनाएँ बढ़ सकती हैं। अतः यथा संभव एलुमीनियम के बर्तनों का उपभोग खाना बनाने में नहीं करना चाहिए। परन्तु आजकल प्रायः घरों

में कूकर, ओवन आदि एलुमीनियम के ही भोजन बनाने में उपयोग में लिए जाते हैं, जो उचित नहीं है।

इसी कारण हमारे पूर्वज भोजन बनाने में मिट्टी के बर्तनों तथा अपनी क्षमतानुसार चाँदी के बर्तनों का उपयोग खाना खाने में करते थे। इस संबध में विस्तृत जानकारी धातु चिकित्सा (Metal Therapy) करने वाले अनुभवी विशेषज्ञों से परामर्श कर प्राप्त की जा सकती हैं।

भोजन बनाने वालों के भावों का महत्त्व

भोजन बनाने वालों के भावों की तरंगे भी हमारे भोजन को प्रभावित करती है । माता और पत्नी जिस प्रेम से अपने पुत्र एवं पति को खिलाने हेतु भोजन बनाती है, उसमें बाजार में उपलब्ध पौष्टिक पदार्थों से अधिक ऊर्जा और तृप्ति मिलती है। भोजन जिन भावों से बनाया जायेगा, खाने वाले का मन उसी के अनुरूप बन जायेगा । इसीलिये हमारे यहां लोकोक्ति प्रसिद्ध है - **"जैसा अन्न वैसा मन, जैसा मन वैसा चिन्तन। जैसा चिन्तन वैसा विचार। जैसा विचार वैसा स्वभाव। जैसा स्वभाव वैसी वृत्तियाँ और जैसी वृत्तियाँ वैसे संस्कार।"**

खाया हुआ भोजन तीन भागों में विभक्त हो जाता है । स्थूल भाग मल बनता है, मध्यम अंश से शरीर के अवयवों का निर्माण होता है। सूक्ष्म अंश से मन की पुष्टि होती है। जिस प्रकार दही के मन्थन से उसका सूक्ष्म अंश ऊपर आकर मक्खन बन जाता है, जिसको और तपाया जाये तो घी बन जाता है। ठीक उसी प्रकार अन्न के भावांश से मन बनता है। इसी कारण होटल के खाने से पेट तो भर सकता है - परन्तु मन नहीं। पेट भोजन से भर सकता है, परन्तु मन तो भोजन में होने वाले भावों से ही भरता है। जैन आगमों में निर्दोष आहार प्राप्ति के सम्बन्ध में विस्तृत विवेचन मिलता हैं। आध्यात्मिक संतों का आहार कैसा हो? उसे कैसे प्राप्त किया जाए? उसको ग्रहण कैसे किया जाए तथा ग्रहण करते समय कैसा चिन्तन हों? साधुओं को आहार लेते समय जिन 42 दोषों की चर्चा की गई है तथा आहार ग्रहण करते समय जिन 47 दोषों से सावधान रहने का जो निर्देष दिया गया है, निश्चय ही पठनीय, मननीय, चिन्तनीय एवं आचरणीय है। ऐसा आहार ही साधक को शरीर के पोषण के साथ-साथ मन को संयमित, नियन्त्रित एवं पोषण करने वाला होता है। जिज्ञासु पाठक उनका अध्ययन कर अपने आहार को अधिकाधिक सात्विक बनाएं, ऐसा अपेक्षित है। इसी कारण तामसिक भोजन करने वाला तामसिक वृत्तियों वाला होता है। **तामसिक व्यक्ति शरीर के लिए जीता है। उसके लिये बाकी सब बातें गौण होती है। उसके भोजन का उद्देश्य होता है स्वाद और पेट भरना।** परिणाम स्वरूप वह अधिक प्रमादी होता है। राजसिक भोजन से मन और बुद्धि चंचल होती है। राजसिक प्रवृत्ति वाले अत्यधिक महत्वाकांक्षी होते हैं। अतः उन्हें उत्तेजना पैदा करने वाला भोजन अच्छा लगता है। सात्विक भोजन ही संतुलित होने से सर्वश्रेष्ठ होता है । क्योंकि ऐसा भोजन करने से न तो उत्तेजना आती है, न मादकता, न आलस्य और न कमजोरी। परन्तु स्फूर्ति और ताकत प्राप्त होती हैं।

बाजार में उपलब्ध भोजन तथा कारखानों में निर्मित पदार्थों में घर में बने भोजन जैसी पवित्रता, स्वच्छता, विवेक और उच्च भावों का अभाव होने से, उस भोजन से मात्र पेट भरा जा सकता है, परन्तु शरीर में आवश्यक अवयवों का पूर्ण निर्माण प्रायः नहीं होता। अपितु अपाच्य पदार्थों के विसर्जन हेतु शरीर को अधिक ऊर्जा खर्च करनी पड़ती हैं। परन्तु आजकल घर में भोजन बनाने को मजबूरी समझा जाता है और बाहर बने बनाये पदार्थों को खाने का प्रचलन काफी बढ़ गया है, जिससे न केवल स्वास्थ्य बिगड़ता है, अपितु पारिवारिक प्रेम, अपनापन और घनिष्ठता समाप्त हो रही है, जो भारतीय संस्कृति की पवित्र परम्पराओं के लिए घातक है।

भोजन भी दवा है

भोजन में मुख्यरूप से छः स्वाद होते हैं। 1. मीठा 2. खट्टा 3. नमकीन 4. तीखा 5. कड़वा 6. कषैला

अधिकांश व्यक्तियों के भोजन में प्रायः अंतिम दो स्वादों का अभाव होता है। यदि भोजन में इनका समुचित समावेश किया जाये तो मधुर स्वाद का दुष्प्रभाव दूर हो जाता है और पाचन सुधरता है।

प्राकृतिक चिकित्सकों और आहार विशेषज्ञों के दृष्टिकोण से भोजन ही औषधि है। अतः उनकी मान्यता के अनुसार रोगी का उपचार चिकित्सालय की अपेक्षा भोजनालय में होना चाहिये। बड़े बड़े अनुभवी हृदय रोगों के चिकित्सक दवाओं के दुष्प्रभावों के कारण मात्र संतुलित भोजन से हजारों हृदय रोगियों का सफल उपचार करने में सफल हुए हैं। **स्वस्थ होने पर भोजन पोषण के लिये और रोग होने पर रोग को दूर करने के लिए भोजन औषधि का कार्य करता है।**

शरीर के लिए जो अनावश्यक, अपाच्य, अभक्ष्य, अखाद्य पदार्थों का खाना, पेट को कचरा पेटी बनाना है। **गलत आहार जितनी सरलता से गले के नीचे उतर जाता है, उतनी सहजता से उसके अपाच्य तत्त्व, पेट से बाहर नहीं निकल पाते।** इस प्रकार व्यक्ति अज्ञान और अविवेक के कारण स्वयं गलती करता है और रोग को गले लगाता है। साथ ही अपनी लापरवाही के कारण बढ़ते रोगों की उपेक्षा करता है, जब तक कि वे अपना विकराल रूप न धारण कर लें। ऐसे मानव क्या स्वयं के प्रति ईमानदार कहें जा सकते हैं?

भोजन कितना, कैसे और कहाँ खाया जाये ?

भोजन उतना ही करें, जिसका पूर्ण पाचन हो सकें। हम प्रायः जितना खाते हैं, उसके दो तिहाही भाग से हम जीवित रहते हैं। तथा एक तिहाही भाग से चिकित्सक। **पाचन संस्थान शरीर का वह तंत्र है जो आहार को ग्रहण करने, उसका पाचन करने, पाच्य आहार से शरीर के लिए आवश्यक समस्त पोषक तत्त्वों का अवशोषण करने तथा पाचन एवं अवशोषण के उपरान्त जो अनुपयोगी पदार्थ बचते हैं, उन व्यर्थ पदार्थों का मल के रूप में शरीर**

से बाहर निकालने का कार्य करता है। उपर्युक्त कार्यों में यदि कहीं भी अपूर्णता रहती है अथवा अवरोध होता है तो जो भोजन शक्ति वर्धक होना चाहिये, वह स्वास्थ्य के लिये हानिकारक हो जाता है।

पाचन क्रिया का प्रारम्भ मुँह से होता है। भोजन को खूब चबा चबा कर धीरे धीरे खाना चाहिए, ताकि उसमें अधिक से अधिक लार और थूक का मिश्रण हो सकें। ऐसा करने से भोजन का अधिकांश पाचन मुंह में ही हो जाता है। अधिक स्वाद मिलता है, और भोजन से तृप्ति होती है । परन्तु आज तेजी का युग है, प्रत्येक व्यक्ति कम समय और कम श्रम में जीवन की समग्र समस्या का सरलतम समाधान चाहता है। परिणाम स्वरूप भोजन के लिये अधिकांश व्यक्तियों को समय ही नहीं होता है। वे मात्र मजबूरी से खाना खाते हैं । शान्त, प्रसन्नचित, एकाग्रता से मौन पूर्वक खाना नहीं खा सकते। भोजन करते समय सारा ध्यान भोजन में होना चाहिए न कि कुछ देखने, सुनने, पढ़ने अथवा बातचीत करने में। **बोलते रहने से मुँह में लार कम बनती है। फलतः मुँह सूखने लग सकता है। जिससे भोजन के बीच में पानी पीना पड़ता है। भोजन के बीच में पानी पीने से पेट की जठराग्नि शान्त हो जाती हैं और आमाशय में भोजन को पेन्क्रियाज, लीवर, गाल ब्लेडर आदि से मिलने वाले पाचक रस पतले हो जाते हैं। जिससे आमाशय में भोजन का पूर्ण क्षमता से पाचन नहीं हो सकता।**

दूसरी बात भोजन को चबा चबा कर करने से, भोजन में जो शर्करा का अंश होता है, वह प्रचुर मात्रा में थूक में मिलने से मुँह में ही पाचन हो जाता है और पेन्क्रियाज को उस शर्करा को पचाने के लिये ज्यादा इंसुलिन की आवश्यकता नहीं होती। **अतः मधुमेह और पाचन संबंधी अन्य रोगियों के लिये धीरे धीरे पूरा चबाकर भोजन करना सर्वोत्तम औषधि का कार्य करता है।**

तीसरी बात भोजन खड़े-खड़े नहीं करना चाहिए। क्योंकि उससे आमाशय को भोजन पचाने हेतु अधिक श्रम करना पड़ता है। भोजन पालकी आसन में बैठकर करना चाहिए। भोजन करने से पूर्व अपने आराध्य का स्मरण, भोजन को नमस्कार तथा सुपात्र दान की भावना रखनी चाहिए। भोजन को भगवान का प्रसाद समझ कर खाना चाहिए। भोजन समभाव पूर्वक अर्थात बिना किसी प्रतिक्रिया, निंदा अथवा प्रशंसा के करना चाहिए। भोजन का एक कण भी झूठा नहीं डालना चाहिए। **भोजन करने के पश्चात "आरोग्य बोहि लाभं, समाहिवर-मुत्तमं दिन्तु" - अर्थात् गहण किया गया भोजन मुझे आरोग्य, निर्मल बुद्धि एवं सम्यक् श्रद्धा का पात्र बनाये – ऐसा चिन्तन करना चाहिए।** हमारे आसपास जो उपस्थित हों, उन्हें भोजन का निमन्त्रण देकर भोजन करना चाहिए। क्योंकि भूखे को भोजन खिलाकर भोजन करना हमारी संस्कृति है। पूर्व दिशा में शक्ति के स्रोत सूर्य का उदय होता है। अतः पूर्व दिशा की तरफ मुख करके भोजन करने से भोजन की शक्ति बढ़ जाती है। भोजन करते समय सूर्य स्वर चलाना चाहिए, ताकि भोजन का पाचन अच्छा होता है। भोजन में कम से कम पदार्थों का समावेश होना चाहिए। अथवा जिन पदार्थों को आपस में मिलाया जा सकता है, उन्हें मिला देना चाहिए ताकि भोजन करते समय बार-बार स्वाद में परिवर्तन न हों, अथवा एक ही प्रकार के पदार्थ एक साथ खाना चाहिए। फिर दूसरे पदार्थ को खाना चाहिए। **हम अच्छी तरह जानते हैं कि जिस वाहन का गियर बार-बार बदला जाता हैं, उस वाहन को ज्यादा ऊर्जा की आवश्यकता होती है। ठीक उसी प्रकार प्रत्येक कौर में स्वाद बदलने से भोजन के पाचन हेतु अधिक ऊर्जा की आवश्यकता होती है।** भोजन स्वच्छ, प्रदुषण रहित स्थान

पर करना चाहिए। भोजन करने और पानी पीते समय मेरु दण्ड सीधा नहीं होना चाहिए ताकि भोजन आमाशय में धीरे-धीरे पहुंचे।

भोजन में दृष्टि दोष

भोजन खिलाने वाले का सोच नकारात्मक, द्वेषात्मक, घृणात्मक नहीं होना चाहिए। भोजन में स्पर्श दोष की भांति दृष्टि दोष का भी प्रभाव पड़ता है। हमारे पौराणिक ग्रन्थों के अनुसार भोजन पर भूखे, नीच, दरिद्र, पाखण्डी, रोगी आदि की दृष्टि ठीक नहीं होती। उनकी विष दृष्टि भोजन में संक्रमित होने से भोजन अपाच्य बन जाता है। अच्छी या बुरी दृष्टि में कितनी शक्ति होती है, उसको आजकल सम्मोहन विद्या द्वारा प्रमाणित किया जा चुका है। व्यक्तियों की भांति अनेक पशु पक्षियों की दृष्टि भी भोजन के लिए हानिकारक होती है। अतः सर्प, कुत्ते, कौए, चील, मुर्गे आदि जानवरों की दृष्टि से भोजन को दूर रखना चाहिए। विशेषतौर से जब हम भ्रमण करने जायें और हमे खुले वातावरण में भोजन करना पड़े। भूख से थोड़ा कम भोजन करना चाहिए। क्रोध अथवा अन्य किसी प्रकार के आवेग के समय भोजन नहीं करना चाहिए। पेय या भोजन न अधिक गर्म और न अधिक ठण्डा होना चाहिए। शरीर के तापक्रम पर भोजन अधिक लाभप्रद होता है।

उपर्युक्त नियमों का भोजन करते समय जितना अधिकाधिक पालन किया जाता है, उतना भोजन सरस, सुपाच्य और स्वादिष्ट बन जाता है और भोजन से जो हम अपेक्षा करते हैं, उसका हमें पूरा-पूरा लाभ मिलता है।

भोजन के पश्चात् हमारी स्फूर्ति बढ़नी चाहिए। शरीर हल्का लगना चाहिए। भोजन के पश्चात् भारीपन लगना, आलस्य अथवा निद्रा आना दुर्बल पाचन शक्ति के संकेत होते हैं। भोजन के तुरन्त बाद में कठिन परिश्रम कभी नहीं करना चाहिए। क्योंकि उस समय पाचन क्रिया हेतु जो अधिक रक्त संचालन की आवश्यकता आमाशय को होती है, उसमें बाधा उत्पन्न होती है। भोजन के पश्चात् कुछ समय वज्रासन में बैठना, टहलना स्वास्थ्य के लिए और पाचन के लिए लाभप्रद होता है। **भोजन के पश्चात् निद्रा नहीं लेनी चाहिए। भोजन के पश्चात् निद्रा आने का कारण या तो आवश्यकता से अधिक भोजन अथवा ठण्डा, बासी, तामसिक भोजन करना होता है। जिसको पचाने के लिए आमाशय को अधिक ऊर्जा की आवश्यकता होती है। परिणामस्वरूप उस स्थिति में मस्तिष्क को आवश्यकता के अनुरूप ऊर्जा न मिलने से उसकी गतिविधि शिथिल हो जाती है और निद्रा आने लगती है।**

भोजन के अनुकूल हमारी दिनचर्या कैसी हो?

प्रकृति के अनुकूल दिनचर्या आवश्यक

सूर्य प्रतिदिन प्रात: काल उदय होकर सायंकाल ही क्यों अस्त होता है ? निद्रा का समय प्राय: रात्रि में ही क्यों उपयुक्त होता है ? प्रात:काल ही प्राय: अधिकांश व्यक्ति मल-त्याग क्यों करते हैं ? भ्रमण एवम् श्वसन सम्बन्धी व्यायामों अथवा प्राणायाम प्रात: ही क्यों विशेष लाभप्रद होता है ? जैन धर्म में रात्रि भोजन का क्यों निषेध किया गया

है ? मौसम के अनुकूल खान पान और रहन सहन में परिवर्तन क्यों आवश्यक है ? हमारी दिनचर्या एवं रात्रिचर्या के पीछे क्या दृष्टिकोण है ? प्रत्येक व्यक्ति के शरीर में एक जैविक घड़ी होती है, जो शरीर की क्रियाओं को नियन्त्रित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसी कारण ठीक समय पर हमें निद्रा आती है, भूख लगती है, निद्रा खुल जाती है क्या सारी बातों का कोई वैज्ञानिक सोच या आधार है अथवा मात्र हमारी सुविधा या अन्धानुकरण ? **कोई बीज कितना ही अच्छा क्यों न हो, अच्छी उपजाऊ जमीन पर बोया जावे, उचित हवा, पानी धूप होने के बावजूद उचित समय पर न बोने से नहीं उगता। ठीक उसी प्रकार भोजन, पानी, हवा, निद्रा आदि का बराबर ख्याल रखने के बावजूद उचित समय पर सेवन न करने से वे अपेक्षाकृत लाभदायक नहीं होते। राम का नाम सत्य है, परन्तु शुभ प्रसंगों पर भी राम नाम सत्य है कहना अप्रासंगिक समझा जाता है। अत: हमारी दिनचर्या का चयन इस प्रकार करना चाहिये कि शरीर के अंगों की क्षमताओं का अधिकतम उपयोग हो।**

क्या शरीर में सभी अंग चौबीसों घण्टे सक्रिय होते हैं ?

शरीर के सभी अंगों में प्राण ऊर्जा का प्रवाह वैसे तो चौबीसों घंटे होता ही है। परन्तु सभी समय सभी अंगों में एकसा नहीं होता। प्राय: प्रत्येक अंग कुछ निश्चित समय के लिये प्रकृति से अधिकतम प्राण ऊर्जा मिलने से अधिक

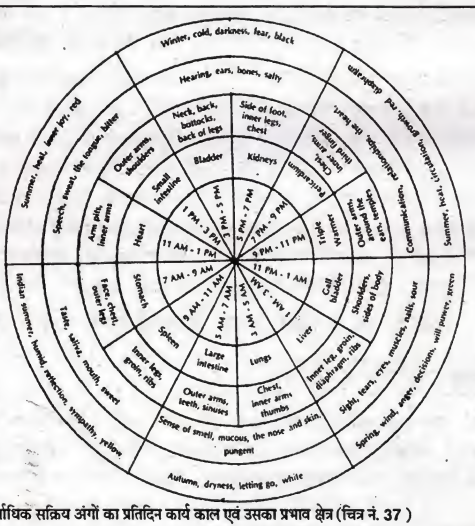

सर्वाधिक सक्रिय अंगों का प्रतिदिन कार्य काल एवं उसका प्रभाव क्षेत्र (चित्र नं. 37)

सक्रिय होते हैं तो, कभी प्रकृति से निम्नतम प्राण ऊर्जा मिलने से अपेक्षाकृत सबसे कम सक्रिय होते हैं। इसी कारण कोई भी रोगी चौबीसों घंटे एक जैसी स्थिति में नहीं रहता। अंगों में प्राण ऊर्जा के प्रवाह का संतुलन ही स्वास्थ्य का सूचक होता है। यदि कोई रोग किसी अंग की असक्रियता से होता है तो, जिस समय उस अंग को प्रकृति से सर्वाधिक प्राण ऊर्जा का प्रवाह होता है, तब रोगी को अपेक्षाकृत आंशिक राहत का अनुभव होता है। उसके विपरीत जब रोग उस अंग की अधिक सक्रियता से होता है तो जब उस अंग में प्राण ऊर्जा का प्रवाह निम्नतम होता है, तब रोगी को अधिक राहत का अनुभव होता है। कभी कभी हम अनुभव करते हैं कि रोगी को निश्चित समय होते ही रोग के लक्षण प्रकट होने लग जाते हैं। ऐसा क्यों होता है? इसका कारण उस समय संबंधित अंग में प्राण ऊर्जा का प्रवाह अधिकतम या निम्नतम होता है।

वैज्ञानिक शोधों का यह निष्कर्ष है कि शरीर में सभी अंगों में सभी समय एक समान ब्रह्माण्ड से प्राण ऊर्जा का प्रवाह नहीं होता। लगभग प्रत्येक प्रमुख अंगों में दो दो घण्टे सर्वाधिक तो उसके ठीक विपरीत समय अर्थात् 12 घंटे पश्चात् निम्नतम प्राण ऊर्जा का प्रवाह उस अंग में होता है। इसी कारण **एक ही लक्षण वाली बीमारियों के अलग अलग समय में प्रकट होने के कारण अलग अलग होते हैं। जैसे किसी व्यक्ति को प्रातःकाल सिर दर्द होता है अथवा चक्कर आता है और किसी अन्य रोगी को दोपहर अथवा रात्रि में सिर दर्द अथवा चक्कर आता हो तो दोनों के कारण अलग-अलग होते हैं। रोग का कारण उससे संबंधित अंग में प्राण ऊर्जा का प्रवाह ज्यादा अथवा कम होता है। इस प्रकार संबंधित रोग ग्रस्त अंग का आसानी से सही निदान किया जा सकता है।**

शारीरिक क्रियाओं का प्रकृति से तालमेल आवश्यक

मनुष्य की दिनचर्या में सभी बाह्य गतिविधियों का प्रारम्भ निद्रा त्याग से और समापन निद्रा आने के साथ होता है। स्वस्थ रहने की कामना रखने वालों को शरीर में कौनसा अंग और क्रियायें कब विशेष सक्रिय रहती है, इस बात की जानकारी आवश्यक होती है, और उसके अनुरूप आचरण करना चाहिये। **हमें चिन्तन करना होगा कि कोई भी शारीरिक अथवा मानसिक क्रिया और कार्य क्यों करें ? कितना करें ? कहाँ करें ? कैसे करें ? इन सबके साथ साथ यह भी आवश्यक है कि वह क्रिया कौन से समय करें ? जैसे भोजन कब करें ? निद्रा कब लें? पानी कब पीयें ? व्यायाम कब करें इत्यादि? प्रकृति के अनुरूप दिनचर्या का निर्धारण और संचालन करने से शारीरिक क्षमताओं का अधिकाधिक उपयोग होता है। हम रोगों से सहज ही बच जाते हैं. यदि अज्ञानतावश रोग ग्रस्त हो भी जावें तो पुनः शीघ्र स्वस्थ बन सकते हैं।**

दुःख इस बात का है कि आज अधिकांश व्यक्तियों की दिनचर्या प्रकृति के अनुरूप नहीं है और न वे इसके प्रभाव एवम् महत्व को समझने का भी प्रयास करते हैं। **अज्ञान, अविवेक , पूर्वाग्रहों, कुतर्कों, मायावी विज्ञापनों, सरकारी और सामाजिक व्यवस्थाओं के अन्धानुकरण के कारण प्रकृति के साथ जनसाधारण का सही सामंजस्य नहीं होता है। परिणाम स्वरूप भोजन के समय नाश्ता और निद्रा के समय जागृत रहने जैसी आदतों को संजोये हुये हैं। हम उनके दुष्प्रभावों से अपरिचित हैं।**

हम यह भूल जाते हैं कि जिसमें प्रकृति के विरुद्ध चलने की ताकत न हो, वह कम से कम उसका सहयोग तो लें। तूफान का सामना करने की क्षमता न हो तो, कम से कम हवा की दिशा में तो चले ताकि कम कठिनाई का अनुभव हो। शरीर में जिस समय जो अंग सर्वाधिक सक्रिय हो, उस समय उस अंग से संबंधित कार्य एवम् क्रियायें करें। दूसरी बात जिस समय किसी अंग में प्रकृति से प्राण ऊर्जा का प्रवाह सर्वाधिक हो , यदि उस समय दूसरे अंगों के कार्य और क्रियायें करेंगे तो संबंधित अंग प्रकृति से प्राप्त अपने हिस्से की विशेष प्राण ऊर्जा (चेतना) से वंचित रह जावेगा। जैसे नगर निगम से पानी के वितरण के समय, जो पानी का संग्रह नहीं करेगा, उसको बाद में पानी की आवश्यकता पड़ने पर पछताना पड़ेगा।

शरीर के प्रमुख अंगों में प्रकृति से सर्वाधिक एवं निम्नतम ऊर्जा के प्रवाह का समय

अंगों का नाम	अंग में ऊर्जा के सर्वाधिक प्रवाह का समय	प्राण ऊर्जा के निम्नतम प्रवाह का समय
1. फेंफड़े (LU)	प्रातः 3 से 5 बजे	दोपहर 3 बजे से 5 बजे
2. बड़ी आंत (LI)	प्रातः 5 से 7 बजे	सांयकाल 5 बजे से 7 बजे
3. आमाशय (ST)	प्रातः 7 से 9 बजे	सांयकाल 7 बजे से 9 बजे
4. तिल्ली (Sp)	प्रातः 9 से 11 बजे	रात्रि 9 से 11 बजे
5. हृदय (H)	प्रातः 11 से 1 बजे	रात्रि 11 से 1 बजे
6. छोटी आंत (SI)	दोपहर 1 से 3 बजे	रात्रि 1 से 3 बजे
7. मूत्राशय (UB)	दोपहर 3 से 5 बजे	रात्रि 3 से 5 बजे
8. गुर्दे (K)	सायंकाल 5 से 7 बजे	प्रातः 5 से 7 बजे
9. पेरीकार्डियन (PC)	रात्रि 7 से 9 बजे	प्रातः 7 से 9 बजे
10. त्रिअग्री (TW)	रात्रि 9 से 11 बजे	दिन में 9 से 11 बजे
11. पित्ताशय (GB)	रात्रि 11 से 1 बजे	दोपहर 11 से 1 बजे
12. लीवर (LIV)	रात्रि 1 से 3 बजे	दोपहर 1 से 3 बजे

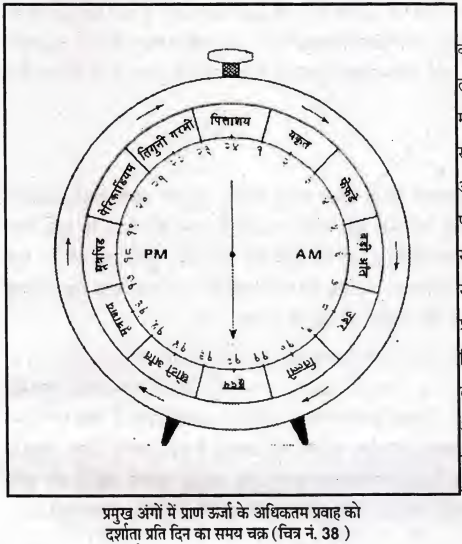

प्रमुख अंगों में प्राण ऊर्जा के अधिकतम प्रवाह को दर्शाता प्रति दिन का समय चक्र (चित्र नं. 38)

उपर्युक्त तालिका दिन एवम् रात को 12-12 घंटों तथा सूर्योदय 6 बजे तथा सूर्यास्त सांयकाल 6 बजे का आधार मानकर बनाई गयी हैं । परन्तु जहाँ दिन रात बराबर नहीं होते वहां पर उसके अनुरूप ऊर्जा प्रवाह के समय में आंशिक परिवर्तन होता है। यद्यपि क्रम तो वही रहता है, फिर भी उस स्थिति में उससे संबंधित आगे अथवा पीछे वाला अंग भी प्रभावित हो सकता है। अतः रोग का सही निदान करने के लिये संबंधित अंगों के लक्षणों के प्रभाव का भी ध्यान रखना आवश्यक होता हैं। तालिका को देखने से दूसरा तथ्य यह सामने आता है कि शरीर में एक ही प्रकार की ऊर्जा का प्रवाह संबंधित यिन - यांग अंगों के जोड़े में 4 घंटे तक अपेक्षाकृत अधिक सक्रिय और ठीक 12 घंटे पश्चात् 4 घंटों तक उनमें प्रकृति से प्राण ऊर्जा का प्रवाह निम्नतम होता है।

निद्रा कब त्यागें ?

प्रातः 3 बजे से प्रातः 5 बजे फेंफड़ों में प्राण ऊर्जा का प्रवाह सर्वाधिक होता है। इसी कारण प्रातः ब्रह्म मुहूर्त में उठकर खुली हवा में घूमने वाले, शुद्ध वायु में प्राणायाम तथा श्वसन का व्यायाम करने वालों के फेंफड़े सशक्त होते हैं। परन्तु दमा के रोगी प्राण ऊर्जा के उस अतिरिक्त प्रवाह को ग्रहण न कर सकने के कारण पिछली रात अधिक परेशान और बेचैन रहते हैं। **प्रातः काल 3 बजे से 5 बजे पीयूष एवं पीनियल ग्रन्थियों से सोमरस निकलता है, जो शरीर की प्रतिकारात्मक शक्ति को बढ़ाता है तथा शरीर के व्यवस्थित विकास हेतु आवश्यक है। इस समय निद्रा लेने पर शारीरिक स्थिरता के कारण सोमरस की धारा गले के नीचे प्रवाहित नहीं हो पाती। इस रस के कारण उस समय मस्तिष्क की स्मरण शक्ति जितनी अच्छी होती है, अन्य समय नहीं होती। ब्रह्म मुहूर्त में उठने वाले छात्र अधिक बुद्धिमान, स्वस्थ, सजग एवं क्रियाशील होते हैं। उनमें आलस्य अपेक्षाकृत कम होता है।**

प्रातः 5 बजे से 7 बजे के बीच के समय में फेंफड़ों के सहयोगी अंग बड़ी आंत में ऊर्जा का विशेष प्रवाह होने से यह अंग अधिक क्रियाशील होता है। इसी कारण मलत्याग के लिए यह सर्वोत्तम समय होता है। जो व्यक्ति उस समय मलत्याग नहीं करते हैं, उनके कब्जी रहने का एक कारण यह भी हो सकता है। इसलिये जो देर तक सोये रहते हैं, उनका पेट प्रायः खराब रहता है।

भोजन कब करें :-

जब हमें स्वाभाविक अच्छी भूख लगे तब ही भोजन करना चाहिए। भूख का संबन्ध हमारी आदत पर निर्भर होता है। जैसी हम आदत डालते हैं, उस समय भूख लगने लग जाती है। अतः हमें भोजन की ऐसी आदत डालनी चाहिए कि जब आमाशय अधिक सक्रिय हो, उस समय हमे तेज भूख लगे। दूसरी बात जब तेज भूख लगे तो कुछ खाकर आमाशय की पूर्ण क्षमता का अपव्यय नहीं करना चाहिये। यदि ऐसा किया गया तो मुख्य भोजन के समय आमाशय भी पाचन के प्रति उदासीन हो जाए तो आश्चर्य नहीं।

प्रातः 7 बजे से 9 बजे तक आमाशय में प्रकृति से प्राण ऊर्जा का सर्वाधिक प्रवाह होने तथा बड़ी आंत की सफाई हो जाने से इस समय पाचन आसानी से हो जाता है। आजकल उस समय अधिकांश व्यक्ति प्रायः भोजन नहीं करते, अपितु नाश्ते का प्रचलन बढ़ गया है। **जितना अच्छा भोजन का पाचन प्रातःकाल में होता है उतना अन्य समय में नहीं होता। प्रातः व्यक्ति अपेक्षाकृत शान्त, तनाव मुक्त, षडयंत्रों तथा उलझनों से मुक्त रहता है। अतः भोजन के समय में भी नियमितता रखी जा सकती है। ऐसे समय किया गया भोजन, अधिक सुपाच्य होता है और अमृत का कार्य करता है । विशेष रूप से मधुमेह का रोग जिसे असाध्य माना जाता है, प्रकृति के समयानुकूल भोजन कर ठीक किया जा सकता है।**

नाश्ता अधूरा आहार होता है और जब हम आंशिक आहार का पाचन आमाशय की सर्वाधिक क्षमता के समय करते हैं तो, जब हमारा मुख्य भोजन होता है, तब आमाशय की पाचन क्षमता इतनी अधिक न होने से उसे अधिक श्रम करना पड़ता है। दूसरी बात प्रातःकाल नाश्ता करने से हमे तेज भूख समय पर नहीं लगती। फलतः ऐसे व्यक्ति प्रायः दोपहर में भोजन करते हैं। आत्मार्थी साधु - संतों, ऋषी मुनियों को तो एक समय ही आहार करना चाहिये। क्योंकि उनको कठोर शारीरिक श्रम की आवश्यकता नहीं होती। दूसरी बात उन्हें गृहस्थों के घरों से मिला आहार लाकर अपनी उदर पूर्ति करनी पड़ती है। संयमित, नियमित, परिमित, स्वावलम्बी जीवन जीने के कारण ऐसे संतों का पाचन तंत्र प्रायः अच्छा होता है। अतः उनके लिये भोजन का समय दूसरा हो तो भी अधिक हानिकारक नहीं होता। परन्तु जो एक समय से ज्यादा भोजन करते हैं, यदि प्राकृतिक नियमों का पालन नहीं करते हैं, तो रोगों के होने की संभावना रहती है। परन्तु गृहस्थ के लिये कम से कम दो समय भोजन की आवश्यकता होती है। अतः **जब दोपहर देर से भोजन करते हैं तो उनका सायंकालीन भोजन प्रायः सूर्यास्त के बाद होता है। क्योंकि दो भोजन के बीच कम से कम 6 से 8 घंटे का अन्तराल आवश्यक होता है। परन्तु सूर्यास्त के पश्चात किया गया भोजन**

स्वास्थ्य के लिय अहितकर होता है। अत: स्वास्थ्य प्रेमियों का प्रात:काल का भोजन आमाशय और पेन्क्रियाज समूह में जब प्राण ऊर्जा का प्रवाह प्रकृति से अधिक हो अवश्य कर लेना चाहिये।

आयुर्वेद के सिद्धान्तानुसार प्रात: 10 बजे तक का समय शरीर में कफ प्रकृति का होता है और दिन में 10 से 2 बजे तक का समय पित्त प्रकृति का होता हैं। अत: हमेशा भोजन कफ प्रकृति में करने के बाद में पित्त प्रकृति का समय होने से पाचन में मदद मिलती है। 10 बजे के पश्चात शरीर की गर्मी बढ़ने के साथ साथ बाह्य सूर्य की गर्मी भी बढ़ती है। प्राय: उस समय तक सभी के निद्रा त्याग देने से शरीर में हलन चलन भी होने लगता है। कफ प्रकृति में भोजन करने से भोजन के तुरन्त पश्चात् इतनी ज्यादा प्यास भी नहीं लगती, जिससे खाने के तुरंत पश्चात् पानी पीने से जो पाचन बिगड़ता है उससे हम सहज बच जाते हैं, भोजन के पश्चात् निद्रा भी नहीं आवेगी। भोजन के पश्चात आलस्य, आराम खराब पाचन क्रिया के सूचक होते हैं। प्रात: भोजन करने से इस कारण पाचन सर्वोत्तम होता है और हम सैकड़ों पाचन संबंधी रोगों से सहज बच जाते हैं।

इसीलिये तो कहा गया है कि —

"सुबह का खाना खुद खाओ, दोपहर का दूसरों को खिलाओ एवं रात्रि का दुश्मन को खिलाओ।"

अर्थात् प्रात: पूरा खाना खाओ, दोपहर में आवश्यकता हो तो हल्का पाच्य खाना खाओ और रात में भिखारी की भांति, कभी मिल जाये तो खा लो अन्यथा अपने आपको संयमित रखो। आज अधिकांश रोगों की जड़ पेट से है। अत: अपने समस्त पूर्वाग्रहों को छोड़ भोजन करने के सही समय का महत्त्व समझना चाहिये।

प्रात: 9 बजे से 11 बजे तक का समय तिल्ली और पेन्क्रियाज का सबसे अधिक सक्रियता का समय होता है, और रात्रि 9 बजे से 11 बजे प्रकृति से इन अंगों को सबसे कम प्राण ऊर्जा मिलती है। ठीक उसी प्रकार सांयकाल 7 बजे से 9 बजे आमाशय में निम्नतम प्राण ऊर्जा का प्रवाह प्रकृति से होता है। अत: प्रात: 9 से 11 बजे शरीर में पेन्क्रियाटिक रस और इन्सुलिन सबसे ज्यादा बनता है। इन रसों का पाचन में विशेष महत्त्व होता हैं। अत: जो मधुमेह अथवा अन्य किसी प्रकार के पाचन रोगों से ग्रस्त होते हैं, उनके भोजन करने के समय में परिवर्तन आवश्यक होता है। **उन्हें जब आमाशय और पेन्क्रियाज सबसे अधिक सक्रिय हों अर्थात् प्रात: 9 बजे के लगभग अवश्य भोजन कर लेना चाहिये तथा सायंकाल 7 बजे से रात्रि 11 बजे के बीच भोजन नहीं करना चाहिये, क्योंकि उस समय प्रकृति से आमाशय और पेन्क्रियाज को निम्नतम प्राण ऊर्जा मिलने से पाचन क्रिया मंद पड़ जाती है।**

रात्रि भोजन क्यों हानिकारक ?

रात्रि भोजन न केवल आमाशय और पेन्क्रियाज में निम्नतम प्राण ऊर्जा का प्रवाह होने के कारण हानिकारक

होता है अपितु निम्न अन्य कारणों से भी हानिकारक होता है।

कीटाणुओं का भोजन पर प्रभाव

सूर्यास्त के पश्चात् बहुत से सूक्ष्म जीव पैदा हो जाते हैं। सूर्य का प्रकाश इन कीटाणुओं को पैदा होने से रोकता हैं। सूर्य के ताप में अनेक विषैले कीटाणु निष्क्रिय बन जाते हैं, जो सूर्यास्त के बाद पुन: सक्रिय होने लगते हैं। प्राय: हम अनुभव करते हैं कि, दिन में 1000 वाट के बल्ब के पास भी सूक्ष्म जीव नहीं आते, जबकि रात में थोड़ी सी रोशनी में भी बल्ब के आसपास मच्छर मंडराने लगते हैं। ये जीव आहार की गन्ध के कारण भोज्य पदार्थों की तरफ आकर्षित होते हैं। वहीं दूसरी तरफ भोजन में भी अनेक सूक्ष्म बेक्टीरियाँ उत्पन्न हो जाते हैं। इनका रंग भोजन के रंग जैसा ही होने से कृत्रिम प्रकाश में हम इन्हें नहीं देख पाते हैं। **कृत्रिम प्रकाश में उजाला तो है, परन्तु वह सूर्य की बराबरी नहीं कर सकता। पूर्ण शाकाहारियों के लिये यह भोजन निश्चित रूप से त्याज्य होता है।** रात्रि में तमस (अँधेरे) के कारण वैसे भी भोजन तामसिक बन जाता हैं। रात्रि भोजन से स्मरण शक्ति कमजोर होने लगती है। व्यक्ति अपनी क्षमताओं को पूर्ण रूपेण विकसित नहीं कर पाता।

रात्रि भोजन और निद्रा

भोजन और शयन के बीच कम से कम चार घंटे का अन्तर आवश्यक होता है। सोने के समय तक भोजन का पूरा पाचन न हों तो भोजन का वह अंश आमाशय में ही पड़ा रहता है और पाचन संबंधी अनेक रोगों को पैदा करने का कारण बनता हैं। अंग्रेजी में एक कहावत है - Early to Bed & Early to rise is the way to be Healthy, Wealthy & Wise अर्थात जल्दी सोने तथा जल्दी उठने से व्यक्ति स्वस्थ, सम्पन्न, समृद्धिशाली और बुद्धिमान होता है। इस दृष्टि से भी जब व्यक्ति देर से भोजन करेगा तो सोवेगा भी देर से और देर से उठेगा। **आज मधुमेह (डाइबीटिज) जैसे अनेक रोगों को पैदा करने में रात्रि - भोजन भी एक मुख्य कारण होता है।**

सूर्य के ताप का शरीर पर प्रभाव

मच्छर रात्रि में ही क्यों प्राय: अधिक काटते हैं ? क्या कभी हमने चिन्तन किया ? सूर्यास्त होने के पश्चात् शरीर की प्रतिरोधक शक्ति कम हो जाती है। ऊर्जा शक्ति की हानि होने से रात्रि में किया गया भोजन कैसे शक्तिवर्धक हो सकता है ?

सूर्य की रोशनी से शरीर में रोग - प्रतिकारक शक्ति बढ़ती है। इसी कारण प्राय: अधिकांश रोगों का प्रकोप रात में बढ़ने लगता है। प्रत्येक बीमारी भी अपेक्षाकृत रात में ज्यादा कष्टदायक होतीं है। इसका मुख्य कारण

रात में सूर्य की गर्मी का अभाव होता है।

जिस प्रकार चूल्हे पर रखी हुई वस्तु को जब अग्नि की गरमी मिलती है तभी वह पकती है, उसी प्रकार हमारे आमाशय में हम जो डालते हैं वह भी पेट की उष्णता (जठराग्नि) के कारण ही पचता है। इसी करण जिसकी जठराग्नि प्रदीप्त होती है उसकी पाचन शक्ति अच्छी मानी जाती है। भोजन करते समय उन सब नियमों का पालन करने का प्रयास किया जाना चाहिये, जिनसे जब तक भोजन का पूर्ण पाचन न हो, पाचन शक्ति मन्द न पड़े। भोजन में शक्ति का माप केलोरीज की उष्णता पर आधारित होता है। पेट में नाभि को कमल की उपमा दी गई है । कमल को भारतीय संस्कृति में निष्कामता, निर्मलता और निर्लिप्तता का प्रतीक कहा गया है। कमल और सूर्य का सम्बन्ध लोक विख्यात है । कमल सूर्योदय के साथ खिलते हैं और सूर्यास्त के साथ उनकी सक्रियता में अन्तर आ जाता है। विशेष रूप से नाभि कमल का पाचन में महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। सूर्यास्त के पश्चात् इसके सक्रिय न होने से रात्रि भोजन का पाचन बराबर नहीं होता।

दिन में प्राणवायु की अधिकता-

सूर्य के प्रकाश में वृक्ष एवं पेड़ पौधे आक्सीजन रूपी प्राणवायु छोड़ते हैं। अतः वायु मंडल में रात्रि की अपेक्षा दिन में ऑक्सीजन की मात्रा अपेक्षाकृत ज्यादा रहती है। जिससे पाचन सरलता से होता है। इसके विपरीत रात में वृक्ष ऑक्सीजन ग्रहण कर स्वास्थ्य के लिये हानिकारक कार्बन डाई आक्साइड छोड़ते हैं। ऐसे वातावरण में श्वास लेने एवं भोजन से आरोग्य बिगड़ता हैं।

रात्रि भोजन एवं आध्यात्म

रात्रि-भोजन में जो हिंसा होती है उसके कारण जप, तप और तीर्थ यात्रा आदि सब व्यर्थ हो जाते हैं। पद्म पुराण-प्रभाव खंड में रात्रि भोजन को नरक का प्रथम द्वार बताया है। **"चत्वारि नरक द्वारं, प्रथमं रात्रि भोजनम्"।** चरक संहिता के अनुसार रात्रि-भोजन दूषित और अम्लीभूत होने से शरीर को बहुत क्षति पहुंचाता हैं।

मार्कण्ड पुराण में तो सूर्यास्त के बाद अन्न को मांस और जल को रक्त जैसा हो जाने की बात बहुत स्पष्ट शब्दों में वर्णित हैं। जिसके भाव निम्न हैं–

अस्तंगते, दिवानाथे, आपो रुधिरमुच्यते। अन्नं मांससमं प्रोक्तं मार्कण्डेय महर्षिणा। गीता के सतरहवें अध्ययन के दसवें श्लोक में कहा गया है - **यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत्। उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम।**

अर्थात् रात में रखा या बनाया हुआ तथा नीरस, दुर्गन्ध युक्त तथा किसी जीव जन्तु के द्वारा स्पर्श किया हुआ

और अपवित्र आहार तामस मनुष्यों को ही प्रिय होता है।

यजुर्वेद आह्निक श्लोक 24-19, के अनुसार रात्रि भोजन को, राक्षसों का भोजन बतलाया गया है। योगवशिष्ठ पूर्वार्ध श्लोक 108, योग शास्त्र प्र. 2 , आदि में भी रात्रि भोजन न करने का स्पष्ट निर्देश दिया गया है। आत्म पुराण अध्याय 33 , श्लोक 43, स्कन्द पुराण - कपोल खोत - श्लोक 24, तथा स्कंध 7 अध्याय 11 , श्लोक 235 में उनका स्पष्ट उल्लेख है।

जो बेटा मां बाप की माला फेरे, प्रणाम करें परन्तु उनकी आज्ञा का पालन न करे तो हम ऐसे पुत्र को क्या कहेंगें? उसी प्रकार हम धर्म ग्रन्थों एवं विज्ञान की बातें करें और अप्राकृतिक जीवन पद्धति अपनाकर स्वस्थ रहना चाहे तो असंभव है।

पाश्चात्त्य अंधानुकरण के कारण रात्रि भोजन की विवशता

रात्रि भोजन के लिये एक तरफ जहां हमारी असजगता एवं उससे पड़ने वाले दुष्प्रभावों की जानकारी का अभाव जिम्मेदार होता है तो, दूसरी तरफ हमारी सामाजिक व सरकारी व्यवस्थाएँ भी उतनी ही जिम्मेदार होती हैं । सामूहिक भोजन का समय निर्धारित करते समय तथा कार्यालयों में भोजनावकाश का समय निर्धारित करते समय स्वास्थ्य के अनुकूल समय पर भोजन करने के समय की पूर्ण उपेक्षा की गयी हैं। जैसी व्यवस्था होगी, उसी के अनुरूप जनसाधारण अपने आपको ढालता है। जब बच्चे प्रात:काल जल्दी पाठशाला जावेंगे और दोपहर बाद घर पहुंचेंगे तो पारिवारिक सदस्य समय पर कैसे भोजन कर सकते हैं? दो भोजन के बीच कम से कम 7-8 घंटों का अन्तर चाहिये। अत: जब सुबह खाना देर से खावेंगे तो रात को खाना स्वत: देरी से खाना पड़ेगा। क्योंकि बिना भूख खाना भी तो उचित नहीं।

दूसरी तरफ आज नाश्ते का प्रचलन बढ़ गया है, जो भोजन के सही समय हमारी भूख को समाप्त कर देता है। अत: जिन लोगों को समय पर खाने की अनुकूलता है, वे भी समय पर नहीं खाते।

तीसरी बात व्यक्ति का भोजन के बारे में जितना संयम रहना चाहिये उतना नहीं है। इसलिये जब चाहा, जो चाहा, जहाँ चाहा, जैसा चाहा पेट में डाल देता है. जिससे सौर मण्डल की दृष्टि से पाचन के लिये जो सर्वश्रेष्ठ समय है उस समय उनको भूख ही नही लगती।

चौथी बात रात्रि के प्रकाश के बारे में सूक्ष्म जीवों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में हमारी मिथ्या धारणाएँ हैं। जिसके फलस्वरूप रात्रि भोजन को आधुनिकता का प्रतीक समझने की भूल हो रही है। सोते हुए कों जगाया जा सकता है, परन्तु जो जागृत व्यक्ति निद्रा का बहाना कर सोये उसको जगाना बहुत मुश्किल है।

दिन में 11 बजे से 1 बजे के बीच हृदय में विशेष प्राण ऊर्जा का प्रवाह होता है। हृदय हमारी संवेदनाओं,

करुणा, दया एवं प्रेम का प्रतीक है। यदि उस समय हम भोजन करते हैं तो, हमारी अधिकांश संवेदनाएं भोजन के स्वाद की तरफ आकर्षित रहती हैं। अत: हृदय प्रकृति से मिलने वाली अपनी प्राण ऊर्जा को पूर्ण रूपेण ग्रहण नहीं कर सकता। 1 बजे से 3 बजे तक छोटी आंत जो हृदय का पूरक अंग है और उसका अन्य कार्यों के साथ एक कार्य आमाशय से पचे हुये भोजन के अवशिष्टों को प्राप्त करना। **अत: हृदय रोगियों को भी दोपहर 11 बजे से 3 बजे के बीच भोजन जहाँ तक संभव हो त्यागना चाहिये। उस समय भोजन करने से हृदय-छोटी आंत अपनी प्राप्त ऊर्जाओं को पूर्ण क्षमताओं से ग्रहण नहीं कर पाते। निर्दयी, हिंसक और क्रूर व्यक्तियों को जिसमें प्रेम, दया, करुणा नहीं होती, क्यों हृदय हीन कहा जाता है ? क्या उनके हृदय नहीं होता ? सही समय पर भोजन न करने के कारण आजकल मानव में संवेदना, करुणा, दया अपेक्षाकृत कम होती जा रही है। घृणा, द्वेष, क्रूरता, हिंसा बढ़ रही है। प्रेम सूख रहा है। छल कपट जन साधारण में बढ़ रहा है। व्यक्ति हृदयहीन बनता जा रहा है।** दूसरों के लिये क्या कहें, वह स्वयं अपने प्रति भी ईमानदार नहीं रह पा रहा है। अपनी क्षमताओं का दुरुपयोग कर रहा है। इसके लिये क्या अच्छा और क्या बुरा का विवेक समाप्त हो रहा है। वह अपनी प्राथमिकताओं के प्रति अपरिचित हो रहा है। आत्म विश्वास घट रहा है। उसका चिन्तन विज्ञापनों पर आधारित परावलम्बी बनता जा रहा है। बढ़ते हुये असमय हृदय रोगों का एक प्रमुख कारण उसकी गलत दिनचर्या का चयन भी है। यदि हम संयममय जीवन जीयें, नियमित और परिमित एक समय ही भोजन करें तो, भोजन के समय में थोड़ा परिवर्तन हो सकता है, परन्तु जो न संयमित है, न जिनका आचरण नियमित और परिमित हैं। उनको स्वस्थ रहने के लिये तो इन नियमों का पालन करना ही चाहिये।

परन्तु आज हमारे दिल और दिमाग में ये बाते नहीं बैठ पा रही है। **हमारे Lunch और Dinner रोगों के मंच बनते जा रहे हैं।** स्वास्थ्य मंत्रालय को पूर्वाग्रह छोड़ इस सत्य को स्वीकार करना चाहिये तथा भोजन के उपयुक्त सर्वोत्तम समय की जानकारी जन साधारण तक पहुंचानी चाहिये। सारी सामाजिक एवं सरकारी व्यवस्थाओं को उसके अनुरूप बदलने की पहल करनी चाहिये। यदि उचित समय पर भोजन न किया जाए तो हमें हमारी पाचन क्रिया को अच्छा रखने के लिये बाह्य साधनों का उपयोग करना पड़ेगा।

दिन चर्या के निर्धारण में स्वास्थ्य की प्राथमिकता अनिवार्य

हमें हमारी जीवनचर्या में स्वास्थ्य के प्रतिकूल संस्कारों को बदलना होगा। **प्रकृति के नियम व्यक्तिगत अनुकूलताओं के आधार पर नहीं बदलते। हमारी जीवन पद्धति के अनुरूप सूर्योदय और सूर्यास्त का समय निश्चित नहीं होता। बुद्धिमान वहीं है जो प्रकृति के अनुरूप अपने आपको ढाल लेता है।**

स्वास्थ्य मंत्रालय का दायित्व है कि वह रात्रि भोजन के दुष्प्रभावों का अध्ययन करें तथा जो वास्तविकता है उसका प्रचार प्रसार कर जनता को स्वास्थ्य प्रदान करने के अपने कर्तव्यों को निभाये। नीति - निर्माताओं से अपेक्षा

है कि रात्रि में सामूहिक भोजों का प्रचलन बंद करें। पाठशालाओं, कार्यालयों, कारखानों में स्वास्थ्य के अनूरूप भोजन के अनुकूल समय पर भोजनावकाश करने के निर्देश दें, पाठ्यक्रमों में बच्चों को रात्रि भोजन के दुष्प्रभावों की जानकारी दी जावे।

कहने का तात्पर्य यह है कि रात्रि भोजन आरोग्य के साथ वैज्ञानिक, आध्यात्मिक, सामाजिक एवं पारिवारिक दृष्टिकोण से अनुपयोगी है। हानिकारक है। प्रकृति के विरुद्ध है। अत: स्वास्थ्य प्रेमियों के लिये त्याज्य है तथा उन्हें यथा सम्भव दिन में ही भोजन करने का प्रयास करना चाहिये।

पाचन तंत्र को आराम हेतु उपवास

परिश्रम के पश्चात शरीर को आराम की आवश्यकता होती है। व्यवसाय जगत में भी सप्ताह में कम से कम एक दिन अवकाश का कानूनी प्रावधान होता है। अवकाश के समय अपूर्ण कार्यों को पूर्ण किया जा सकता है ताकि भविष्य में अधिक उत्साह एवं शक्ति से नियमित कार्यों को किया जा सके।

प्राय: जनसाधारण को जैसे सुपाच्य, पोष्टिक भोजन की आवश्यकता होती है, उसके स्थान पर अधिकांश व्यक्ति स्वाद और भूख वश अपाच्य, स्वास्थ्य के लिये अनुपयोगी, हानिकारक पदार्थों का सेवन करने में पूर्णतया विवेक नहीं रखते। फलत: पाचन तंत्र को उन पदार्थों को पचाने के लिये सदैव क्षमता से अधिक कार्य करना पड़ता है। उनको आराम नहीं मिलता। परिणामस्वरूप उनकी क्षमता क्षीण होने लगती है। पाचन तंत्र में विकार जमा होने लगता है, जिससे रक्त में भी विकार बढ़ जाते हैं।

उपवास में आहार का त्याग करने से आमाशय खाली हो जाता है तथा जठराग्नि के रूप में जो प्राण ऊर्जा आहार को पचाने में कार्य करती है उसका उपयोग पाचन तंत्र की सफाई में लग जाता है, जिससे रक्त भी शुद्ध होने लगता है तथा शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ने लगती है। जैसी कहावत है - **"पेट साफ तो सब रोग माफ"** अत: नियमित कम से कम सप्ताह में एक दिन उपवास करने वालों को पाचन संबंधी रोग होने की अपेक्षाकृत कम संभावनाएँ रहती है। **आहार शरीर को आवश्यक ऊर्जा और गर्मी प्रदान करता है जबकि उपवास शरीर को आरोग्य और शुद्धि प्रदान करता है।** अधिकांश पशु -पक्षी स्व स्फूर्णा से रोग होने पर सर्व प्रथम आहार त्याग करते हैं। रोगावस्था में आहार न करने से रोगी नहीं रोग भूखों मरता है। बीमारी में तो किया गया आहार विशेष रूप से रोगी का नहीं, अपितु रोग का पोषण करता है। अत: नियमित रूप से उपवास करने वाला स्वस्थ तथा पाचन संबंधी रोग के समय आहार का त्याग करने वाला जल्दी स्वस्थ होता हैं।

भोजन से शरीर के विकास तथा संचालन हेतु आवश्यक ऊर्जा मिलती है। अत: यह आवश्यक है कि भोजन

करते समय इन उद्देश्यों की पूर्ति का विशेष ख्याल रखा जाये। यदि इन बातों का ध्यान न रखा जाये तो जो भोजन स्वास्थ्यवर्धक होना चाहिये , स्वास्थ्य भक्षक बन जाता है।

आहार में पौष्टिक तत्त्वों का निश्चय ही बहुत महत्त्व है। अपौष्टिक आहार से स्वास्थ्य बिगड़ता है। परन्तु आहार सम्बन्धी उपलब्ध अधिकांश साहित्यों एवं पुस्तकों में उसकी विस्तृत चर्चा मिलती है। अत: यहां पर उस पक्ष की चर्चा नहीं की गई है। भोजन के रूप में काम लिये जाने वाले पदार्थों का आकार, रंग एवं अभक्ष्य, अखाद्य पदार्थों की जानकारी के लिये लेखक की अन्य पुस्तक **क्या बुद्धिमान मानव मांसाहारी हो सकता है ?** अवश्य पढ़ने का लक्ष्य रखावें।

उपवास का शाब्दिक अर्थ होता है आत्मा के समीप रहने की साधना। यदि आत्मा के समीप रहने की बात समझ में आ जाये तो, उपवास का लाभ कई गुणा बढ़ जाता है। समीप रहने का मतलब आत्म स्वभाव में रमण करना। उससे शरीर का शोधन और रोगाणुओं के शान्त होने के साथ साथ चेतना की शुद्धि और अनुभूति होने लगती है। जिससे भाव, विचार,चिन्तन, मनन, एवं भाषा का भी शोधन होता है। वास्तव में तो यही सच्चा उपवास कहलाता है। खाली भोजन न करना तो लंघन ही कहा जा सकता है, जिससे शरीर का शोधन तो हो सकता है, परन्तु आत्मा का नहीं। अत: उपवास में अधिकाधिक स्वाध्याय, ध्यान, आत्म-चिन्तन, मनन, निरीक्षण एवं स्वदोषों की समीक्षा करनी चाहिए, मन और पांचों इन्द्रियों के अनावश्यक दुरुपयोग को रोक उनका सदुपयोग किया जाय तो आत्म विकार, मानसिक विकार, वाणी के विकार भी शरीर के विकार के साथ दूर हो जाते हैं तथा व्यक्ति पूर्ण रूप से स्वस्थ होने लगता हैं।

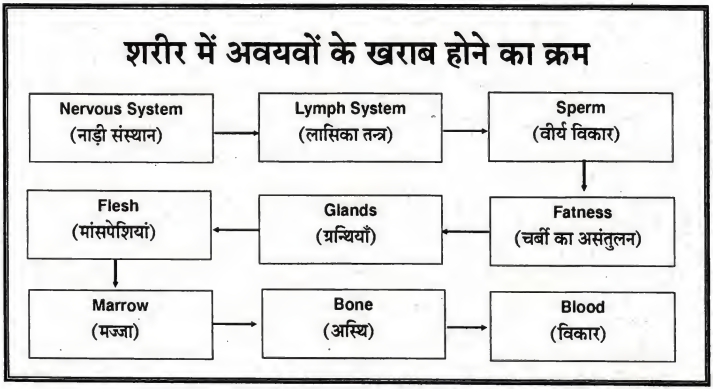

यिन-यांग का सिद्धान्त

विपरीतता में समानता का सिद्धान्त

संसार के सभी गतिशील पदार्थों की परिवर्तनशील अवस्थाओं को तुलनात्मक दृष्टि से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। जो अलग-अलग होते हुये भी एक दूसरे से पूर्ण संबंधित होते हैं। किसी एक की सदैव एक जैसी स्थिति नहीं रहती। दोनों का प्रभाव आपस में बदलता रहता है।

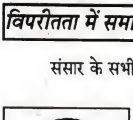

(चित्र नं. 39)

प्रकृति में सभी घटनाक्रमों और गतिविधियों के संचालन में कुछ सनातन नियम और सिद्धान्त होते हैं । प्रत्येक घटना के दो पक्ष होते हैं। प्रत्येक क्रिया के दो आधार होते हैं। वस्तु के दो भाग होते हैं, जिसके आधार पर एक दूसरे की तुलना की जा सकती है। एक के साथ दूसरे का अस्तित्व जुड़ा होता है। प्रारम्भ और अन्त, निर्माण और विनाश , जन्म और मृत्यु के बीच, सारा घटनाक्रम चलता रहता है। जैसे दिन-रात, अन्धेरा-उजाला, आगे-पीछे, ऊपर-नीचे, ठण्डा-गरम, अन्दर-बाहर, बड़ा-छोटा, स्त्री-पुरुष, कोमल-कठोर आदि। दोनों का अस्तित्व साथ साथ होता है। जन्म के बिना मृत्यु का अस्तित्व नहीं होता। दूसरी मंजिल प्रथम मंजिल की अपेक्षा ऊंची होती है जबकि तीसरी मंजिल की अपेक्षा नीची होती है। जोड़े के दोनों भागों की स्थिति बदलती रहती है जैसे अन्धेरा उजाले में , क्रोध-शांति में , कमजोर-बलवान हो जाता है तो कभी-कभी शक्तिशाली कमजोर हो जाता है। प्रकृति के इस सनातन सिद्धान्त को विपरीतता में एकरुपता का सिद्धान्त कहते हैं। चीन में इस सिद्धान्त को यिन - यांग का सिद्धान्त कहते हैं। यिन-यांग को पूर्णतया अलग नहीं किया जा सकता। प्रत्येक यिन के साथ यांग का कुछ अंश और प्रत्येक यांग के साथ यिन का कुछ अंश होता ही है। सृष्टि की सारी गतिविधियों का संचालन और नियन्त्रण यिन - यांग सिद्धान्त द्वारा होता है। पोजेटिव और नेगेटिव तारों को बिजली उत्पादक अथवा वितरक यंत्रों से जोड़ने पर ही उसमें बिजली का प्रवाह संभव होता है। चुम्बक का उत्तरी ध्रुव दक्षिणी ध्रुव के प्रभाव को तथा दक्षिणी ध्रुव - उत्तरी ध्रुव के प्रभाव को नियन्त्रित करता है। चलते हुए वाहनों की गति उनके ब्रेक ही नियन्त्रित रखते हैं। साथ ही यदि ब्रेक पूरी क्षमता से कार्य करें तो, वाहन नहीं चल सकता। इस प्रकार यिन-यांग के बिना कोई प्रवृत्ति, हलन-चलन, परिवर्तन हो नहीं सकता। जब यिन ऊर्जा बढ़ती है तो यांग ऊर्जा घट जाती है और जब यांग बढ़ता है तो यिन उसी अनुपात में कम हो जाता है। संयोग, वियोग में और वियोग, संयोग में बदलते रहते हैं।

वैसे तो सभी प्रकार की ऊर्जाएँ आपस में एक दूसरे पर अपना प्रभाव डालती हैं। फिर भी यिन-यांग एक ही प्रकार की ऊर्जाओं से अधिक संबंधित और प्रभावित होते हैं. इसी कारण यिन-यांग के गुणों में बाह्य रूप से असमानता

अथवा विरोधाभास होते हुए भी काफी समानताएँ होती है। जैसे चुम्बक के दोनों ध्रुव लोहे को आकर्षित करते हैं। पति पत्नी साथ-साथ रहते हैं। दोनों मिलकर परिवार चलाते हैं। सुखद प्रसंगों पर दोनों प्रसन्न और प्रतिकूल प्रसंगों पर दोनों दुःखित होते हैं। दोनों परिवार की सुख सुविधा हेतु प्रयत्नशील रहते हैं। एक उद्देश्य हेतु कार्य करते हुए भी दोनों की संरचना, अस्तित्व, जीवन शैली पूर्ण रूप से एक जैसी नहीं होती। दोनों के सहयोग से ही मानव जैसी कृति का सृजन होता है। अकेला पुरुष अथवा महिला उस कार्य को नहीं कर सकती। दोनों के दायित्व और कर्त्तव्य अलग अलग होते हैं। दोनों के संतुलित तालमेल बिना, सुखी परिवार की कल्पना फलीभूत होना कठिन होती है।

ब्रह्माण्ड की सामान्य अवस्था में यिन-यांग संतुलित रहते हैं, परन्तु असन्तुलन की अवस्था में प्राकृतिक आपदाएँ उत्पन्न होने लगती है। यिन-यांग का संतुलन स्थिर नहीं रहता, परन्तु आपस में बदलता रहता है। दोनों के निश्चित तालमेल और परिवर्तन के कारण ही प्रकृति में निर्माण और विनाश का क्रम चलता रहता है। जब तालमेल पूर्ण रूप से समाप्त हो जाता है तो उस वस्तु का अस्तित्व भी समाप्त हो जाता है।

यिन - यांग के अनुसार शारीरिक अंगों का वर्गीकरण

शरीर में जो भाग सामने, आगे, ऊपर, कोमल अथवा खाली होते हैं, वे भाग तुलनात्मक दृष्टि से यांग से संबंधित होते हैं। इसकी तुलना में जो भाग पीछे, अन्दर, नीचे अथवा ठोस होते हैं, वे अंग यिन से संबधित होते हैं। शरीर में भी इसी आधार पर प्रमुख अंगों को यिन यांग के आधार पर विभाजित किया जा सकता है। जिसका विवरण निम्न प्रकार से हैं।

यिन अंग - फेंफड़ा, हृदय, गुर्दा, लीवर, स्पलीन मस्तिष्क आदि

संबंधित यांग अंग - बड़ी आंत, छोटी आंत, मूत्राशय, पित्ताशय, आमाशय, मेरु दण्ड आदि।

इसी प्रकार शरीर के आगे-पीछे का भाग, बांया - दाहिना, ऊपर-नीचे, हाथ-पैर पर भी यिन यांग का सिद्धान्त लागू होता है। यिन-यांग का आधार तुलनात्मक और समान गुणों अथवा गतिविधियों पर आधारित होता है। यिन और यांग एक ही प्रकार की ऊर्जा से विशेष संबंधित होते हैं। जब तक शरीर में किसी अंगों के जोड़ों के दोनों अंगों में ऊर्जाएं संतुलित होती है तब तक दोनों अंग स्वस्थ रहते हैं। साथ ही शरीर में प्रत्येक अंग, उपांग, अवयव का कोई न कोई अवश्य सहयोगी होता है जो, आवश्यकता पड़ने पर उसके कार्यों में आंशिक सहयोग देता है। **ये अंग पति-पत्नी की भांति एक दूसरे के पूरक होते हैं। अतः किसी एक अंग में रोग होने की अवस्था में उसके सहयोगी अंग पर उसका विशेष प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता।** जब एक अंग अधिक सक्रिय हो जाता है तो, उसका पूरक अंग उसी अनुपात में असक्रिय भी हो सकता है। कभी कभी एक अंग के रोग की अभिव्यक्ति उसके पूरक अंग में भी होने लगती है। **अधिकांश चिकित्सा पद्धतियां प्रायः उसी अंग का उपचार करती हैं, जिनके लक्षण उनके ध्यान में आते हैं।**

परन्तु यदि रोग का कारण उसका पूरक अंग में हो तो बहुत प्रयास करने के बावजूद रोगों से राहत न दिला पाने के कारण उस रोग को असाध्य बतला दिया जाता हैं। जैसे यदि कोई व्यक्ति अपने पत्नी के संक्रामक रोग के कारण तनावग्रस्त हो तो, उस व्यक्ति का तनाव तब तक दूर नहीं किया जा सकता, जब तक उसकी पत्नी रोग मुक्त न होती। पति का उपचार करना विशेष लाभप्रद नहीं होगा।

प्रमुख अँगों की भांति शरीर में प्रत्येक अवयव का भी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष कोई न कोई सहयोगी अवयव होता है, जो रोग ग्रस्त अवस्था में उस अवयव के साथ अपनी मैत्री पूर्ण व्यवहार कर यथा संभव सहयोग करता है।

रोग निदान में यिन-यांग सिद्धान्त की भूमिका

शारीरिक अथवा मानसिक रोगों का एक कारण यिन या यांग में असंतुलन भी होता है। यिन-यांग की जानकारी के अभाव में रोग का सही निदान बहुत कठिन होता है। रोग का प्रारम्भ यांग से होता है। यिन-यांग असन्तुलन द्वारा रोग का निदान करते समय निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहिए। एक समान बाह्य लक्षण होने के बावजूद रोग से सम्बन्धित यिन अथवा यांग में सही अंग की जानकारी आवश्यक होती है। यिन और यांग अंगों के गुणों में समानता होने तथा एक जैसे बाह्य लक्षण प्रकट होने के कारण, यह मालूम करना आवश्यक होता है कि, रोग का मुख्य संबंध यिन अंग से है अथवा यांग अंग से ।

रोग कितना पुराना ?

यदि रोग के लक्षण तेज, उत्तेजक, स्पष्ट हों तो, प्राय: यांग अंग अधिक प्रभावित होता है। परन्तु जब लक्षण साधारण रूप से प्रकट हों तो उसका कारण यिन अंग से अधिक सम्बन्धित होता हैं। अर्थात् तीव्र रोगों में यांग तथा साधारण रोगों में यिन अंग, प्राय: पहले प्रभावित होते हैं। जैसे तेज बुखार में छोटी आंत की गर्मी तथा साधारण बुखार में हृदय की गर्मी घटानी चाहिए।

क्या रोग के लक्षण स्थानीय है?

यदि रोग शरीर के किसी छोटे से भाग में हों तो, प्राय: यांग अंग से सम्बन्धित होता है। परन्तु उसके लक्षण पूरे शरीर में फैले हुए हों तो, प्राय: यिन अंग से सम्बन्धित होता है। जैसे-सूजन शरीर के किसी थोड़े से भाग में हैं अथवा पूरे शरीर में। गर्मी से निकलने वाले लाल चकते पूरे शरीर में हैं अथवा किसी एक भाग में, कंपन पूरे शरीर में है या किसी भाग में।

क्या रोग का लक्षण पूर्व अनुमानित एवं पुनरावृत्ति वाला है ?

यदि रोग निश्चित समय पर हों तो, प्राय: यिन अंग की ऊर्जा से सम्बन्धित होता है, जबकि यदि रोग का कोई निश्चित समय न हो, जब चाहे उपद्रव करने लग जाए तो यांग अंग की ऊर्जा से संबंधित होता है। जैसे - यदि किसी को प्रति दिन निश्चित समय होते ही बुखार अथवा चक्कर आते हैं तो, उसका सम्बन्ध प्राय: यिन ऊर्जा से होता है और यदि कभी सुबह तो कभी दोपहर चक्कर आते हों, कभी चक्कर आए और कभी न आए तो, ऐसे रोगी का सम्बन्ध यांग अंगों से प्राय: होता है।

रोग का अन्तराल कैसा है ?

स्थायी, पुराने, दीर्घकालीन रोगों का सम्बन्ध प्राय: यिन अंगों से तथा थोड़े समय के लिए, तीव्र रोगों का सम्बन्ध यांग अंगों से प्राय: होता है। कोई भी नवीन रोग का प्रारम्भ पहले प्राय: यांग अंगों से होता है।

रोग कहाँ पर है ?

शरीर के बाह्य भाग में जो रोग हों, उनका सम्बन्ध प्राय: यांग अंग से होता है और शरीर के अन्दर जो रोग होते हैं उनका सम्बन्ध यिन अंग से विशेष होता है। जैसे - त्वचा सम्बन्धी रोग यांग से सम्बन्धित होते हैं। शरीर का ऊपरी भाग यांग से तथा नीचे का भाग यिन से सम्बन्धित होता है।

कहने का सारांश यही है कि **चिकित्सा करवाते समय चाहे, उपचार हो अथवा निदान, हमें रोग के कारणों को यिन-यांग के आधार पर विभिन्न दृष्टिकोणों से समझना होगा तथा उनमें किसी भी विधि द्वारा पुन: सन्तुलन कर तालमेल स्थापित करने से उपचार शीघ्र एवं प्रभावशाली हो जाता है।** सभी चिकित्सकों को अपना पूर्वाग्रह छोड़ इस सनातन सत्य को स्वीकार करना चाहिए ताकि रोगी का समग्र दृष्टिकोण से उपचार अथवा निदान किया जा सकता है। एक पक्षीय चिन्तन से बहुआयामी मानव शरीर को समझना असम्भव न भी हो तो कठिन अवश्य होता है। उपचार के बावजूद भी जब मधु मेह, हृदय, अस्थमा आदि रोगों से छुटकारा न मिले तो ऐसी परिस्थितियों में यांग अंगों में गड़बड़ी की अधिक संभावना हो सकती है। **अत: मधुमेह के रोगियों को आमाशय, हृदय रोगियों को छोटी आंत तथा अस्थमा के रोगियों को फेंफड़ों के साथ-साथ, बड़ी आंत को भी ठीक करना चाहिये, जिससे उपचार अत्यधिक प्रभावशाली एवं स्थायी हो सकता हैं।**

"जिन रोगों का प्राय: सही निदान नहीं हो पाता तथा दवा जीवन की आवश्यकता बन जाती है, ऐसे रोगों में संबंधित यिन-यांग अंगों के संतुलन से चमत्कारी परिणाम शीघ्र मिल सकते हैं।

चीनी पंच तत्त्व का सिद्धान्त

चीनी पंच तत्त्व का दृष्टिकोण –

भारतीय पंच महाभूत सिद्धान्त के समान ही एक्यूपंचर /एक्यूप्रेशर वैज्ञानिकों ने शरीर के विभिन्न अंगों का उनके गुण धर्म के आधार पर पंच तत्त्वों से सम्बन्ध स्थापित किया। जो वनस्पति अथवा लकड़ी, अग्नि, पृथ्वी, धातु और जल तत्त्व के नाम से प्रचलित हैं ।

जिन यिन-यांग अंगों के गुण धर्म अग्नि तत्त्व से मिलते-जुलते होते हैं, उन अँगों का वर्गीकरण अग्नि तत्त्व के साथ, जिनके गुणों में पृथ्वी के गुणों की समानता होती है, उनका वर्गीकरण पृथ्वी तत्त्व के साथ, जिनके गुण जल से ज्यादा मिलते हैं, उस जोड़ें को जल तत्त्व के साथ तथा जिनके गुण वनस्पति के समान होते हैं, उनको वनस्पति तत्त्व के साथ तथा जिनके गुण धातु तत्त्व से मिलते है उनका वर्गीकरण धातु तत्त्व के साथ किया जाता है। उनकी मान्यता के अनुसार हृदय और छोटी आँत का सम्बन्ध अग्नि तत्त्व से, फेंफड़े और बड़ी आँत का सम्बन्ध धातु तत्त्व से, गुर्दे और मूत्राशय का जल तत्त्व से, लीवर और गालब्लेडर का लकड़ी तत्त्व से, स्प्लीन और आमाशय पृथ्वी तत्त्व के अंतर्गत वर्गीकृत होते हैं। इन अंगों के अलावा अग्नि तत्त्व के अन्तर्गत शारीरिक क्रियाओं को संचालित करने वाली त्रिअग्नि तथा उसका पूरक पेरीकार्डियन भी होते हैं। पेरीकार्डियन हृदय के चारों तरफ एक सुरक्षा आवरण की भांति होता है। हृदय के संकुचन और फैलाव अर्थात धड़कन को नियन्त्रित करता है। **मस्तिष्क के साथ सभी अंगों के नियन्त्रण एवं संचालन में सहयोग करने के कारण उसे मस्तिष्क का प्रतिनिधि भी कहा जाता है।** त्रि-अग्नि भी कोई भौतिक अंग नहीं होता। परन्तु जो गर्मी हमारे मानसिक संतुलन से विशेष संबंधित होती है, जैसे-कामाग्नि, क्रोधाग्नि, जठराग्नि आदि का नियन्त्रण केन्द्रिय नाड़ी संस्थान के सहयोग से करती है। अत: उसे पेरीकार्डियन का यांग और मेरुदण्ड का प्रतिनिधि भी माना जाता है। अत: यिन-यांग के अनुसार पेरीकार्डियन (यिन) का संबंध मस्तिष्क तथा त्रिअग्नि (यांग) का संबंध मेरुदण्ड से भी होता है।

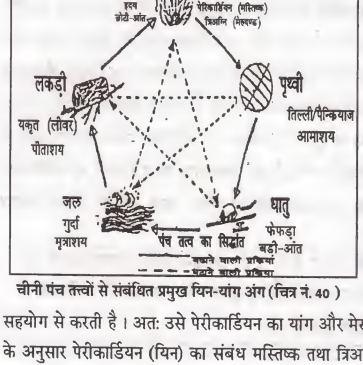

चीनी पंच तत्त्वों से संबंधित प्रमुख यिन-यांग अंग (चित्र नं. 40)

पंच तत्त्वों एवं उनकी ऊर्जाओं से विशेष प्रभावित होने वाले तथ्य

पंच तत्त्व का नाम	लकड़ी/ वनस्पति (Wood)	अग्नि (Fire)		पृथ्वी (Earth)	धातु (Metal)	जल (Water)
संबंधित ऊर्जा	वायु (Wind)	ताप (Heat)	उष्णता/सक्रियता (Hotness)	आद्रता / नमी Humidity	शुष्कता Dryness	ठण्डक (Coldness)
थिन (ठोस) अंग	यकृत/लीवर	हृदय	मस्तिष्क पेरीकार्डियन	तिल्ली (Spleen)	फेंफड़े (Lungs)	गुर्दे (Kidney)
यांग (Hollow) अंग	पित्ताशय/ गालब्लेडर	छोटी आंत	मेरु दण्ड (त्रिअग्नि)	आमाशय	बड़ी आंत	मूत्राशय
जीवन की प्रभावी अवस्था	बाल्यकाल	किशोरावस्था	युवावस्था	मध्यावस्था	वृद्धा अवस्था से पूर्व की अवस्था	वृद्धावस्था
संबंधित रंग	हरा	लाल	केसरिया	पीला	सफेद	नीला/काला
विशेष प्रभावित तंत्र	मज्जा तंत्र	रक्त परिभ्रमण तंत्र	ग्रन्थियां,नाड़ी तंत्र	पाचन/लासिका तंत्र	श्वसन तंत्र	अस्थि तंत्र
अवयव	मांसपेशियाँ	रक्त	चिंतन,मनन स्मृति,कल्पना संवेदना	चर्बी /मोटापा	त्वचा	हड्डियाँ,दाँत
ऊर्जा का गुण	उत्पादक , अस्थिर,मौलिक परिवर्तनशील, हलन - चलन	पूर्ण विकसित करने वाली, उत्तेजक, सक्रियता,जोश, उत्साह	प्रज्ञा,बुद्धि,स्मरण शक्ति ,सोच, विचार,भाव	स्थिरता रखने वाली/ अपरिवर्तनशील	संकुचित करने वाली,अवरोधक	ठोस बनाने वाली,निष्क्रिय बनाने वाली
सकारात्मक दृष्टिकोण	दया,करुणा , सहनशीलता	आनन्द,खुशी आदर	अनुराग	विवेक,सजगता प्रगति के प्रति प्रयत्नशील	धैर्य ,संतोष	आत्म विश्वास निर्भय,सभ्य
नकारात्मक दृष्टिकोण / आवेग	क्रोध असहनशीलता	क्रूरता,घृणा, उतावलापन, अधीरता,घमण्ड	द्वेष	तनाव,व्यर्थ चिन्ता,गलत प्राथमिकताएँ	असंतोष,निराशा, दु:ख,लोभ	भय,मायावी
विचार/चिंतन	मौलिक	कामनाएँ/इच्छाएँ		मिश्रित,प्रवृत्ति के समयानुकूल	पूर्व ग्रसित,स्वार्थी	अनुभव पर आधारित
मौसम	बसंत	गर्मी	तेज गर्मी	वर्षा एवं बदलता मौसम	पतझड़	सर्दी
स्वाद	खट्टा	कड़वा	-	मीठा	चटपटा	नमकीन

Contd .....

गन्ध	खट्टी	जलने की	–	सुगन्ध प्रिय	सड़ी हुई दुर्गन्ध	दुर्गन्ध
इन्द्रिय विषय	दृष्टि	वाणी	संवेदना, अनुभूति	स्वाद	गंध	श्रवण
शरीर से विसर्जित तरल पदार्थ	आंसू	पसीना		थूक	कफ	पेशाब
शरीर से निकलने वाली ध्वनियां	चिल्लाना	हंसना	निद्रा में खरटि भरना	गुनगुनाना, डकार	छींकना, हांफना	जोर-जोर से रोना
असंतुलन से प्रभावित संकेत	नाखून	नाक का अग्र भाग	चेहरा	होठ, मुंह	शरीर के बाल	सिर के बाल
शारीरिक नियन्त्रण	त्वचा का रंग	वाणी एवं सुगन्ध और दुर्गन्ध संबंधी संवेदनाओं का नियन्त्रण		स्वाद का नियन्त्रण	शरीर से निकलने वाली ध्वनियों का नियंत्रण	शरीर से निष्कासित होने वाले अवयवों का नियंत्रण
अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ	थायमस	थायरोइड	पीयूष	पेन्क्रियाज	एड्रीनल	प्रजनन ग्रन्थियाँ
संबंधित इन्द्रियाँ	चक्षु इन्द्रिय (आंख)	जीभ (वाणी)	मन	रसनेन्द्रिय (मुंह)	स्पर्शनेन्द्रिय (त्वचा)	श्रोत्रेन्द्रिय, कान
शरीर की वाहन से तुलना करने पर अंगों के संबंधित कार्य	एक्सीलेटर का कार्य	ईंधन जैसा कार्य	समय पर सही निर्णय लेने का कार्य	वाहन नियन्त्रण	आवश्यक निर्देश देने वाला	ब्रेक
आवेग शांत करने हेतु हथेली की अंगुलियों में मसाज	अन्नामिका (क्रोध)	मध्यमा (मान/भावात्मक)		तनाव (अंगूठा)	दुःख (तर्जनी)	भय (सबसे छोटी अंगुलि)
रक्त संबंधित कार्य	रक्त की आंशिक शुद्धि व संग्रह करना	रक्त परिभ्रमण का नियन्त्रण करना	रक्त में ग्रन्थियों के हारमोन्स मिलाना	लाल एवं सफेद कोशिकाओं का संतुलन रखना	रक्त से विजातीय तत्त्वों को हटाना	बोन मेरों में रक्त का उत्पादन करना, रक्त का शुद्धि करण करना तथा जल का अनुपात संतुलित रखना

तालिका नं. २

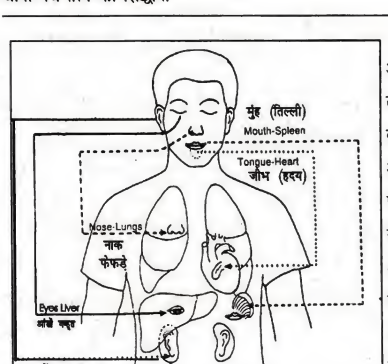

शरीर के प्रमुख यिन अंगों का ज्ञानेन्द्रियों से संबंध (चित्र नं. 41)

शरीर में जब तक इन पांचों तत्त्वों का अनुपात आवश्यकता के अनुरुप संतुलित होता है, तब तक व्यक्ति अपने आपको स्वस्थ अनुभव करता है और जब उनमें असंतुलन हो जाता है तो अस्वस्थ। प्रत्येक तत्त्व का अपना अलग-अलग परिवार होता है, जिनका पाँचों इन्द्रियों के विषयों, जैसे देखना, सुनना, स्वाद, सुगन्ध आदि से अलग-अलग संबंध होता है। प्रत्येक तत्त्व जीवन की अलग अलग अवस्थाओं, मौसम, वातावरण आदि से अलग अलग प्रभावित होते हैं। प्रत्येक तत्त्व का अलग-अलग रंगों, स्वादों, सुगन्धों, अन्तःश्रावी ग्रन्थियों पर अलग-अलग प्रभाव पड़ता है। शरीर के विभिन्न अंग, उपांग, अवयव, शरीर से निष्कासित होने वाले विजातीय द्रव्य, शरीर से निकलने वाली विभिन्न प्रकार की ध्वनियों, शरीर में अलग अलग स्थान पर प्रकट होने वाले लक्षणों के एवं संकेतों के माध्यम से इन तत्त्वों का असंतुलन अभिव्यक्त होता है। तालिका में पंच तत्त्वों से सम्बन्धित तुलनात्मक तथ्यों की कुछ जानकारी दर्शायी गयी है।

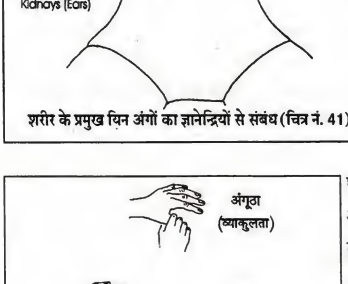

हथेली की अंगुलियों में मसाज कर संवेगों को नियन्त्रण करने की विधि (चित्र नं. 42)

लकड़ी अथवा वनस्पति तत्त्व

तालिका के अनुसार प्रत्येक तत्त्व से संबंधित यिन-यांग अंग एक ही प्रकार की ऊर्जा, अवस्था ,रंग, स्वाद ,सुगन्ध आदि से अधिक प्रभावित होते हैं। जिसके कारण रोग का निदान बहुत ही सरल और सही किया जा सकता है। जैसे बाल्यकाल में वनस्पति तत्त्व अधिक सक्रिय होता है। इसी कारण बच्चे का जितना तीव्र गति

से विकास बाल्यावस्था में होता है, उतना बाद में नहीं होता। **यदि किसी बच्चे का विकास असंतुलित हो तो वनस्पति तत्त्व से संबंधित अंग बराबर कार्य नहीं करते।** वनस्पति तत्त्व की ऊर्जा वायु होती है। वायु से ही हलन चलन होता है। शरीर में मांसपेशियों के कारण हलन चलन संभव होता है। अत: **मांसपेशियों का सम्बन्ध भी वनस्पति तत्त्व से होता है तथा मांसपेशियों संबंधी रोगों में यकृत-पित्ताशय की अहं भूमिका होती है।** अत: जिन्हें हरा रंग अच्छा लगे, प्रिय लगे, अथवा बिल्कुल अच्छा न लगे, बसंत ऋतु आते ही रोग होने की संभावना बढ़ जाये अथवा रोग ग्रस्त अवस्था में बसंत आते ही स्वास्थ्य अच्छा हो जाये तो, वे स्थितियाँ वनस्पति तत्त्व के अंगों अथवा ऊर्जा में असंतुलन का द्योतक होती है। **कोई भी रंग अच्छा लगने का मतलब, संबंधित अंग को उस रंग की आवश्यकता है और अप्रिय लगने का मतलब ,उन अंगों को अपने से संबंधित रंग की आवश्यकता नहीं होती है। प्यासे को पानी और भूखे को भोजन अच्छा लगता है और यदि प्यास और भूख न हों तो, पानी और भोजन अच्छा नहीं लगता। दोनों परिस्थितियाँ असंतुलन की सूचक है। अच्छा लगने पर उस अवयव की कमी के कारण और खराब लगने पर उस अवयव की अधिकता के कारण संबंधित तत्त्व असंतुलित होता हैं।**

इसी प्रकार वनस्पति तत्त्व के अंग खट्टे स्वाद के प्रति, खट्टी सुगन्ध के प्रति, अधिक संवेदनशील होते हैं। इस तत्त्व के असंतुलन से व्यक्ति बात बात में चिल्लाने लगता है , उसको क्रोध अधिक आता है। इस तत्त्व का आंख से सीधा संबंध होता है। अत: **आंखों संबंधी विभिन्न रोगों का मूल वनस्पति तत्त्व से संबंधित अँगों से होता है** । बिना बात आंसू आना, दृष्टि कमजोर होना , रंगों को न पहचान पाना, रात्रि में न दिखना आदि में यकृत-पित्ताशय के असंतुलन भी कारण हो सकता है।

प्राय: बच्चे अधिक जिद्दी होते हैं। उनकी बात न मानी जाए या इच्छा विरुद्ध कार्य किया जाए तो जल्दी क्रोधित हो जाते हैं। जो व्यक्ति क्रोधी, अंहकारी और जिद्दी, स्वभाव के होते है, बात बात में चिल्लाते हैं, क्रोध करते हैं अथवा जिनमें अहंकार (Ego) अधिक होता है, ऐसे व्यक्ति व्यवहार कुशल कम होते हैं। अपने आपकी स्वयं पहचान बनाने हेतु प्रयत्नशील होते हैं। अपने स्वभाव के कारण अपने परिवार तक ही सीमित रहते हैं। परिवार के अन्य सदस्यों अथवा समाज से उनका प्राय: लेना देना नहीं होता। **क्रोध, अहंकार के कारण ऐसे व्यक्तियों के लीवर खराब होने की अधिक आशंका बनी रहती है और वे प्राय: लीवर संबंधी रोगों से ग्रसित होते हैं। इसके विपरीत जिन व्यक्तियों का लीवर खराब होता है अथवा लीवर संबंधी रोग होते हैं, उनका स्वभाव प्राय: चिड़चिड़ा हो जाता है।** क्रोध अधिक आने लगता हैं।

यकृत और पित्ताशय में प्राण ऊर्जा के अधिकतम प्रवाह का समय ऊर्जा चक्र के अनुसार मध्य रात्रि में 11 बजे से 3 बजे के लगभग होता है। मध्यरात्रि में घर अथवा बाहर का वातावरण शांत होता है। यही निद्रा का सर्वोत्तम

समय होता है। निद्रा में ही शरीर में स्थिरता अधिक और हलन चलन अपेक्षाकृत कम होता है। निद्रा में ही लीवर और पित्ताशय प्राकृतिक प्राण ऊर्जा पूर्ण रूप से ग्रहण कर सकते हैं। इसी कारण जो व्यक्ति देर रात तक जागृत रहते हैं, कारखानों अथवा आवश्यक सेवाओं में रात्रिकालीन जिम्मेदारियां निभाते हैं, ऐसे व्यक्तियों को प्रकृति से स्वाभाविक रूप से मिलने वाली प्राण ऊर्जा को ग्रहण न करने के कारण उनका लीवर जल्दी खराब होने की संभावनाएं रहती है। उनका पाचन तंत्र बराबर कार्य नहीं करता और लीवर संबंधी रोग अपेक्षाकृत अधिक होते हैं। **अतः स्वस्थ रहने हेतु रात्रि 11 बजे से 3 बजे के मध्य गहरी निद्रा आवश्यक होती हैं।**

अग्नि तत्त्व -

अग्नि तत्त्व उत्तेजना, जोश, उत्साह का प्रतीक होता है। जितना जोश विद्यार्थी काल में होता है, उतना गृहस्थ जीवन की जिम्मेदारियाँ बढ़ जाने के कारण बाद में प्रायः नहीं होता। अतः उस समय अपेक्षाकृत अग्नि तत्त्व की मुख्यता रहती है। अग्नि लाल होती है और शरीर में रक्त का रंग भी लाल होता है। रक्त का स्वभाव भी गर्म होता है। अतः **रक्त संबंधी रोगों का कारण अग्नि तत्त्व में असंतुलन भी हो सकता है।** तालिका के अनुसार अग्नि तत्त्व से संबंधित अंगों का, लाल रंग, कड़वे स्वाद, जलने की सुगन्ध, गर्मी की मौसम अथवा दोपहर या धूप से, वाणी के विकार एवं पसीने से सीधा संबंध होता है और जब रोग के लक्षण इनसे प्रभावित होते हैं तो, अग्नि तत्त्व से संबंधित अंग हृदय और छोटी आंत उस असंतुलन का कारण हो सकते हैं । जैसे किसी को लाल रंग बहुत अच्छा लगता है,अथवा बिल्कुल अच्छा नहीं लगता है, कड़वा स्वाद बिल्कुल अच्छा न लगना, कहीं कुछ वस्तु जल रही हों तो, तुरन्त पता लग जाना अथवा पास में ही कोई वस्तु जल रही है, उसका मालूम न पड़ना। जैसे:- दूध या सब्जी उबालते समय बर्तन के लग रहा हो, कोइ पदार्थ जल रहा हो तो, बहुत से व्यक्तियों को तुरन्त पता लग जाता है। आसपास में कोई बीड़ी पी रहा हो तो उन्हें बेचेनी अनुभव होने लगती है। जबकि बहुत से व्यक्तियों के पास में ऐसी घटनाएँ होने पर भी उसकी अनुभूति नहीं होती। कुछ व्यक्तियों को बिना परिश्रम किये पसीना आता है, जबकि अन्य व्यक्तियों को खूब परिश्रम और व्यायाम करने, दौड़ने आदि के बावजूद पसीना नहीं आता। दोनों परिस्थितियाँ अग्नि तत्त्व के असंतुलन की द्योतक होती है। **वाणी का अग्नि तत्त्व से सीधा संबंध होता है। जैसे - जल्दी जल्दी बोलना, हकलाना आवश्यकता से भी तेज आवाज से बोलना अथवा जहाँ तेज बोलना हो बहुत धीमी आवाज से बोलना, आवाज का बैठ जाना, ठहाका मारते हँसना, गर्मी आते ही शरीर में रोगों का उत्पात प्रारम्भ हो जाना आदि लक्षण अग्नि तत्त्व में असंतुलन के सूचक होते हैं। अतः ऐसे रोगियों का उपचार करते समय हृदय और छोटी आंत को भी संतुलित करना चाहिए ताकि रोग का उपचार सही और शीघ्र हो सकता है।**

अधिकांश कड़वे स्वाद, अग्नि तत्त्व का पोषण करते हैं। उनके प्रति अत्यधिक रुचि अथवा अरुचि का भाव

अग्नि तत्त्व के असंतुलन को इंगित करता है। इसी कारण **मधुमेह के रोगियों को पाचन हेतु जठराग्नि प्रदीप्त रखने के लिये कड़वे स्वादों वाले पदार्थों को खाने का प्रायः परामर्श दिया जाता है, ताकि शक्कर के सेवन न करने से जो ऊर्जा की कमी होती है , उसकी पूर्ति हो सके।**

अग्नि तत्त्व की ऊर्जा से शरीर में सम्पूर्ण विकास होता है। चेहरे का तेज और आकर्षण में इस तत्त्व की प्रभावी भूमिका होती है। अग्नि तत्त्व का नाड़ी संस्थान से भी सीधा संबंध होता है। अतः **नाड़ी संबंधी रोगों में भी अग्नि तत्त्व के संतुलन से अच्छे परिणाम आते हैं।**

अग्नि तत्त्व का शरीर के रक्त प्रवाह से भी सीधा संबंध होता है। रक्त शरीर में ऊर्जा का प्रमुख स्रोत होता है। **अतः अग्नि तत्त्व के असंतुलन से शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता तथा संवेदनशीलता प्रभावित होती है। शरीर में हारमोन्स के निर्माण, चिन्तन, स्वविवेक, स्मरण शक्ति जीवन शैली आदि अग्नि तत्त्व से अधिक प्रभावित होते हैं। चेहरे की सौम्यता, मुस्कराहट अग्नि तत्त्व के संतुलन का प्रतीक होती है।**

पेरीकार्डियन और त्रिअग्नि अर्थात मस्तिष्क और मेरु दण्ड से नाड़ी तंत्र का भी सीधा संबंध होता है। मानसिक उत्तेजना, जठराग्नि, कामाग्नि के रुप में अग्नि तत्त्व अपना प्रभाव भी दिखलाता है। तनाव, निद्रा अंतःश्रावी ग्रन्थियाँ, संवेदनाओं, चिंतन, मनन, अभिव्यक्ति , विवेक, सजगता बुद्धि आदि इनसे अधिक संबंधित होते हैं। अतः जब उपरोक्त समस्याएँ उत्पन्न होती है तो, पेरीकार्डियन और त्रिअग्नि में असंतुलन की संभावना अपेक्षाकृत अधिक रहती है। विद्यार्थी जीवन में बाल्यकाल के तुरन्त बाद की अवस्था में शरीर के सभी अंगों का पूर्ण विकास होता है। मन में जोश, उत्साह, स्फूर्ति आदि का बाहुल्य रहता है, जीवन पद्धति की दिशा का निर्धारण होता है, उस समय अग्नि तत्त्व अपेक्षाकृत अधिक सक्रिय एवं प्रभावी होता है।

पृथ्वी तत्त्व

पृथ्वी तत्त्व से संबंधित यिन अंग तिल्ली (Spleen) और यांग अंग आमाशय (Stomach) होता है। जीवन की मध्यावस्था में यह तत्त्व अधिक सक्रिय होता है। इस तत्त्व की अधिकता के समय व्यक्ति अपना लक्ष्य निश्चय कर लेता है। उसका व्यवसाय अथवा जीवन शैली प्रायः निश्चित हो जाती है और उसमें अपनी योग्यतानुसार विकास और विस्तार करता है। इसकी ऊर्जा नमी अथवा आद्रता होती है। अतः **शरीर के तरल पदार्थों के संचालन, नियन्त्रण और विसर्जन में इस तत्त्व की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।** वर्षा ऋतु में प्रायः आद्रता अधिक रहती है। अतः इनसे संबंधित अंगों में रोग होने की संभावना अधिक हो जाती है। मौसम के बदलने का मध्य काल भी इन अंगों से अधिक संबंधित होता है। **अतः जो व्यक्ति एलर्जी से, मौसम परिवर्तन के समय अथवा वर्षा ऋतु में प्रायः रोग ग्रस्त हो जाते हैं, उन्हें तिल्ली-आमाशय को संतुलित और सक्रिय रखना चाहिये।**

रसनेन्द्रिय (जीभ) मीठा स्वाद , सुगन्धित पदार्थ, पीला रंग, पाचन और लासिका तंत्र, मोटापा आदि का इस तत्त्व के अंगों से विशेष संबंध होता है। अत: उनके प्रति आकर्षण और घृणा का भाव इस तत्त्व के असंतुलन को दर्शाते हैं। जब यह तत्त्व असंतुलित हो जाता है तो, व्यक्ति बिना कारण तनाव ग्रस्त रहता है। अपने पक्ष की विस्तार से अभिव्यक्ति करना चाहता है। अकेले में गुनगुनाना, डकारें, हिचकी आदि ध्वनियों की अभिव्यक्ति इस तत्त्व में असंतुलन का द्योतक होती है। **पेन्क्रियाज का इस तत्त्व से विशेष संबंध होता है। अत: मधुमेह संबंधी रोग में तिल्ली को सक्रिय करने और आमाशय में पाचन सुधारने से रोग मुक्त सरलता से हुआ जा सकता हैं। आजकल मधु-मेह रोग की अधिकता के कारण जनसाधारण की सुविधा हेतु पृथ्वी तत्त्व के यिन अंग तिल्ली के साथ पेन्क्रियाज को भी रखा जाता है।**

धातु तत्त्व

धातु तत्त्व से संबंधित शरीर में यिन अंग फेंफड़ा (Lungs) और यांग अंग बड़ी आंत होता है। जीवन में प्रारम्भिक वृद्धावस्था में यह तत्त्व अपेक्षाकृत अधिक सक्रिय होने लगता है। इस तत्त्व से व्यक्ति सिकुड़ने लगता है, उसका फैलाव, सीमित होने लगता है। उस अवस्था तक पहुँचते पहुँचते प्राय: उसके अभिभावकों (माता-पिता) का वियोग हो जाता है तथा उसके स्वयं की संताने भी गृहस्थ जीवन प्रारम्भ कर अपने अपने कार्यों में प्राय: लग जाती है। व्यक्ति का यौवन समाप्त हो जाने से उत्साह एवं जोश भी कम पड़ने लगता है । भविष्य की समस्याओं का चिन्तन होने लगता है। संसार की नश्वरता और परिजनों के स्वार्थीपन का आभास होने से वाणी में प्राय: दु:ख की अभिव्यक्ति झलकने लगती है।

धातु तत्त्व का त्वचा, सफेद रंग, दुर्गन्ध, चटपटे स्वाद, शरीर के बालों से विशेष संबंध होता है। **शरीर में श्वसन और मल विसर्जन में विशेष योगदान होता है। त्वचा संबंधी रोगों में इस तत्त्व के संतुलन से शीघ्र राहत एवं मुक्ति मिलती है।**

जल तत्त्व

जल तत्त्व से संबंधित शरीर में यिन अंग गुर्दे और यांग अंग मूत्राशय तथा ऊर्जा ठण्डक होती है। जीवन की अंतिम अवस्था में अर्थात् वृद्धावस्था में शरीर में जल तत्त्व अधिक सक्रिय हो जाता है। काला अथवा नीला रंग, नमकीन स्वाद, दुर्गन्ध, श्रवण शक्ति, सर्दी की मौसम, सिर के बाल, प्रजनन अंग, हड्डियाँ इस तत्त्व से विशेष संबंधित होती है।

इस तत्त्व के असंतुलन से मूत्र संबंधी रोग होने की संभावनाएँ बढ़ जाती है। यदि व्यक्ति में नकारात्मक सोच हों तो, अभिव्यक्ति में भय झलकता है। दु:ख में आंसू जल्दी आने लगते हैं। **ठण्डक ऊर्जा की अधिकता का मतलब**

मात्र शीतलता ही नहीं, अपितु निष्क्रियता भी होता है। सारी इन्द्रियों की क्षमता क्षीण होने लगती हैं।

पानी बर्फ कब बनता है, जब उसमें ठण्डक बढ़ती है । ठीक उसी प्रकार जब शरीर में अग्नि तत्त्व का प्रभाव कम हो जाता है तो व्यक्ति का रक्त भी ठण्डा पड़ जाता है । उसमें उत्साह, जोश समाप्त होने लगता है । परिणाम स्वरूप शरीर में एकत्रित विजातीय तत्त्वों का विसर्जन बराबर नहीं होता । कचरा जब जम जाता है तो, गांठ बन अवरोध पैदा करता है । परिणाम स्वरूप ठण्डक कम करने के बजाय शल्य चिकित्सा द्वारा उस भाग को अलग किया जाना, आज आम बात हो गयी हैं ।

शरीर के किसी अंग अथवा भाग को काटकर फेंक देना समस्या का स्थायी समाधान नहीं होता, परन्तु राहत मात्र होता है। अपनी भूलों, उपेक्षाओं, दवाईयों के दुष्प्रभावों का परिणाम होता है। समय पर सही निदान न होना और गलत उपचार का प्रतिफल है। शरीर की प्रतिरोधक क्षमताओं को क्षीण करने वाली दवाईयों एवं अप्राकृतिक जीवन शैली का प्रतिफल है । प्रमाद एवं आलस्यमय जीवन, शारीरिक श्रम न करने का परिणाम होता है। विजातीय तत्त्वों को शरीर से पूर्णतया विसर्जन न करने का नतीजा है। संक्षेप में कहें तो हमारे अज्ञान एवं असत्य मान्यताओं का परिणाम होता है।

जो गांठ शरीर में बनती है, वह बिखर भी सकती है, घुल भी सकती है, सिकुड़ भी सकती है। आवश्यकता है, रोग के कारण जो तत्त्वों और उससे संबंधित ऊर्जाओं के असंतुलन हो जाता है, उसका पुनः संतुलन करना। जिस प्रक्रिया द्वारा रोग में वृद्धि हुई हो, ठीक उसके विपरीत प्रक्रिया द्वारा, पुनः संतुलन करना। यदि असंतुलन का कारण ठण्डक हो तो ठण्डक को कम करना तथा अग्नि तत्त्व को बढ़ाकर पुनःसंतुलित किया जा सकता है।

असाध्य एवं संक्रामक रोगों में प्रायः जल तत्त्व से संबंधित ठण्डक ऊर्जा के असंतुलन की अधिक संभावना रहती है, जिसको अग्नि तत्त्व की ऊर्जा के साथ साथ अन्य तत्त्वों में आवश्यक परिवर्तन कर संतुलित किया जा सकता है । परिणाम स्वरूप बहुत से रोगों में शल्य चिकित्सा की आवश्यकता नहीं रहती तथा भविष्य में उससे पड़ने वाले दुष्प्रभावों एवं दवाओं की दासता से मुक्ति पाई जा सकती है ।

असाध्य रोगों में जब किसी अंग की क्षमता बहुत कम हो जाती है, तब यदि उस अंग की शुष्क एवं ठण्डक ऊर्जा को कम कर दिया जाये तथा वायु और अग्नि ऊर्जा को बढ़ा दिया जाये तो प्रभावशाली परिणाम होते हैं। अधिकांश शल्य चिकित्साओं का प्रारम्भिक अवस्था में यह सरलतम वैकल्पिक प्रभावशाली तरीका होता है।

पांचों तत्त्वों का प्रभाव शरीर में कभी भी एक जैसा नहीं रहता । कभी कोई तत्त्व अधिक प्रभावी होता है तो, कभी दूसरा तत्त्व ।

पगथली और हथेली में निरन्तर परिवर्तन होने वाली रेखाएँ हों या त्वचा की स्थिति अथवा चेहरे की अभिव्यक्ति हमारी आन्तरिक अवस्था को अभिव्यक्त करती है, परन्तु अज्ञान एवं असजगता के कारण हम उन परिवर्तनों को समझ नहीं पाते। इसी प्रकार कुछ व्यक्ति चेहरे को देख कर तो, कुछ व्यक्ति जीभ, नाखून आंख, होठ कान अथवा शरीर के किसी भाग की आकृति देख, शरीर की आन्तरिक अवस्था का निदान कर देते हैं। ये सारे लक्षण प्रत्येक व्यक्ति में अलग-अलग होते हैं। अत: प्रत्येक व्यक्ति का स्वास्थ्य और रोग की अवस्था एक जैसी नहीं होती। अत: **दो रोगियों के रोग का परिवार कभी भी शतप्रतिशत एक जैसा नहीं हो सकता। सभी को अलग-अलग रंग, स्वाद, गन्ध, स्पर्श प्रिय या अप्रिय क्यों लगते हैं? सभी व्यक्तियों की त्वचा का रंग रूप, आकार, संरचना, लम्बाई, स्वभाव, मोटापा अलग अलग क्यों होता है? कोई मोटा तो कोई दुबला पतला क्यों ? कोई लम्बा तो कोई बोना क्यों ? किसी का चेहरा आकर्षक तो किसी का बदसूरत क्यों? सभी की स्मरण शक्ति, भूख-प्यास, चिंतन, मनन, तर्क और समझ एक जैसी क्यों नहीं होती ?**

जिस प्रकार किसी भी वाहन के प्रत्येक घटक का/प्रमुख घटक से संबंध होता है, उसी प्रकार प्रत्येक अंग से संबधित कुछ शरीर में घटक होते हैं, जो कि गर्भावस्था में विकसित होते हैं तथा उस समूह से जीवन पर्यन्त संबंधित रहते है, जिस प्रकार संतान अपने माता पिता से जीवन भर संबंधित रहता है। उन अवयवों, तंत्रों के असंतुलनों से भी संबंधित अंग प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से विशेष प्रभावित होते हैं।

पंच तत्त्वों में आपसी संबंध

शरीर में पंच तत्त्व की ऊर्जाओं का निरन्तर उत्पादन और क्षय होता रहता है। शरीर में पंच तत्त्वों का उत्पादन और नियन्त्रण अलग-अलग अवस्थाओं में उनका अनुपात, निश्चित सिद्धान्तों पर आधारित होता है। प्रत्येक तत्त्व किसी अन्य तत्त्व की उत्पत्ति में सहायक होता है तथा किसी अन्य तत्त्व को नियन्त्रित करता है। वह तत्त्व स्वयं किसी अन्य तत्त्व द्वारा नियन्त्रित होता हैं।

लकड़ी अथवा वनस्पति की ऊर्जा का कार्य नवीन सृजन की प्रारम्भिक अवस्था से होता है। अग्नि तत्त्व की ऊर्जा नवसृजित वस्तु का क्रमिक विकास में सहयोग देती है। पृथ्वी तत्त्व निश्चित सीमा में होने वाले विस्तार को सीमित करती है, जबकि धातु तत्त्व से क्षय बढ़ने लगता है। जल तत्त्व ऊर्जा का निम्नतम स्तर होता है और इस अवस्था में शरीर की ताकत क्षीण हो जाती है और जब पूर्णतया क्षीण हो जाती है तो मृत्यु हो जाती हैं।

पाँचों तत्त्व चार प्रकार से एक-दूसरे के साथ व्यवहार करते है।

उत्पादक चक्र

संसार में होने वाले सभी परिवर्तनों, जीवों और वनस्पति आदि का व्यक्तिगत, पारिवारिक और सामाजिक क्रमिक विकास, सभ्यता और विज्ञान की प्रगति आदि इस चक्र के नियमानुसार होती है। परस्पर प्रेम और मातृ भाव

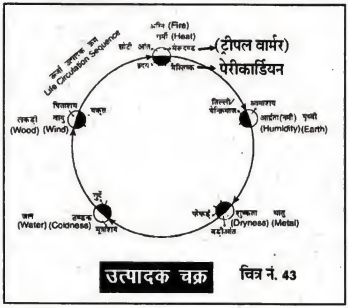

उत्पादक चक्र चित्र नं. 43

से ही माता-सन्तान की परम्परा आदि काल से निरन्तर चल रही है। सभी पुनरावर्तित होने वाली क्रियाएँ इस सिद्धान्त पर ही आधारित होती है। जैसे बसन्त मौसम के बाद ही गर्मी आती है। पतझड़ के पश्चात् ही ठण्डक का आवागमन होता है।

प्रकृति में लकड़ी के जलने से अग्नि अर्थात् गर्मी उत्पन्न होती है। जब आग जलती है तो राख के रूप में मिट्टी अर्थात् पृथ्वी की उत्पत्ति होती है। मिट्टी से धातु निकलता है और जब धातु ठोस और शुष्क हो जाता है तो, पानी उससे अलग हो जाता है। अर्थात् ठण्डक से वाष्प, पानी में बदलता है। पानी से वनस्पति पैदा होती है, जो लकड़ी का मुख्य स्रोत होती है। पुनः लकड़ी के जलने से आग के रूप में यह चक्र चलता रहता है। अग्नि उत्पादन में लकड़ी की अहं भूमिका होती है। अतः लकड़ी अग्नि तत्त्व का मातृ तत्त्व होता है और अग्नि लकड़ी तत्त्व का पुत्र तत्त्व। ठीक उसी प्रकार पृथ्वी - धातु तत्त्व की, धातु - जल तत्त्व की, और जल-वनस्पति (लकड़ी) तत्त्व का मातृ तत्त्व होता है। इसी प्रकार पृथ्वी —अग्नि तत्त्व का, धातु-पृथ्वी तत्त्व का और वनस्पति-जल तत्त्व का पुत्र तत्त्व होता है। जिस प्रकार व्यावहारिक जगत में माता - पुत्र का सम्बन्ध होता है, उसी प्रकार उत्पादक चक्र में तत्त्वों का आपसी सम्बन्ध होता है। मातृ तत्त्व की ऊर्जा बढ़ाने से पुत्र तत्त्व की ऊर्जा बढ़ती है और घटाने से घटती है।

नियन्त्रक चक्र (Subjugating Cycle)

किसी तत्त्व के बढ़ते हुए प्रभाव को तुरन्त रोकना अथवा कम करना आवश्यक होता है। चलते हुए वाहन को दुर्घटना से बचाने के लिए कभी-कभी तुरन्त रोकना आवश्यक होता है।

साधारण परिस्थितियों में वनस्पति पृथ्वी के अन्दर जाकर अपनी जड़े जमा लेती है, इस प्रकार पृथ्वी के फैलाव को नियन्त्रित करती है। पृथ्वी पानी को सोख लेती है और उसके विस्तार को नियन्त्रित करती है। पानी अग्नि को शान्त कर उसके प्रभाव को शीघ्र घटाता है। अग्नि धातु को

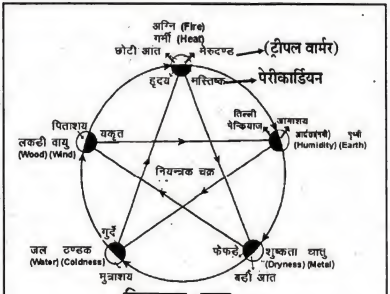

नियन्त्रक चक्र

चित्र नं. 44

गला देती है और धातु लकड़ी को काट देता है। इस प्रकार एक तत्त्व दूसरे तत्त्व पर नियन्त्रण रखता है।

जब शरीर में कोई अंग अधिक क्रियाशील हो जाता है तो उसकी अतिरिक्त ऊर्जा अन्य अंगों के कार्यों में हस्तक्षेप करने लग जाती है। जब तक यह हस्तक्षेप थोड़ा होता है, शरीर उसको स्वीकार कर सहन कर लेता है, परन्तु जब यह हस्तक्षेप अथवा असन्तुलन अधिक होने लगता है, तो रोग होने की सम्भावना रहती है। ऐसी परिस्थिति में इस चक्र के सिद्धान्त द्वारा उनमें सन्तुलन किया जा सकता है। यह चक्र व्यक्ति में प्रतिरोधक क्षमता का प्रतिनिधित्व करता है।

उत्पादक चक्र का कार्य धीमा, क्रमिक और निरन्तर चलता है। अतः उसमें यिन का सिद्धान्त लागू होता है, जबकि नियन्त्रण अधिक तीव्र, प्रभावशाली और शीघ्र होता है, अतः यांग पर आधारित होता है।

विपरीत नियन्त्रक चक्र

विशेष परिस्थितियों में जब नियन्त्रित करने वाले तत्त्व की ऊर्जा बहुत कम होती है तब वह अपने प्रतिद्वन्द्वी तत्त्व पर नियन्त्रण नहीं कर सकता, उलटा उससे हार जाता है। जैसे रेतीले मैदानों में वनस्पति प्रायः अपनी जड़े नहीं जमा सकती। तूफान और बाढ़ के पानी को मिट्टी सोख नहीं सकती। अतः पानी तट की मर्यादा तोड़ देता है। छोटी-सी धातु की पत्ती से यदि पेड़ के तने को काटने का प्रयास किया जाए तो, पत्ती स्वयं टूट जाती है। पानी की चन्द बून्दें धधकती तेज ज्वाला को शान्त करने के बजाय, स्वयं का अस्तित्व समाप्त कर देती है। थोड़ी-सी अग्नि धातु को पिघला नहीं सकती। **अतः तत्त्वों का सन्तुलन करते समय जब तक नियन्त्रण करने वाली ऊर्जा आवश्यकता के अनुरूप न हो तो, अपने प्रतिद्वन्द्वी तत्त्व पर नियन्त्रण नहीं रख सकती।**

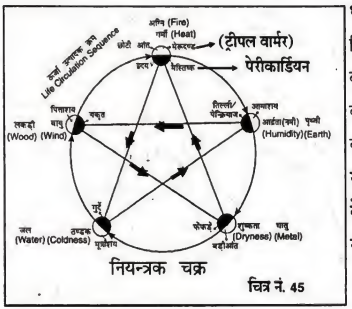

चित्र नं. 45

बचाव चक्र (Anti Creation Cycle)

सम्पूर्ण संसार का संचालन आदान-प्रदान पर चलता है। प्रत्येक व्यक्ति में स्व-अनुशासित सजगता, विवेक, पर-हितकारी भावना होती है। किए हुए उपकारों का बदला चुकाने की प्रायः भावना होती है। माता-पिता का अपनी

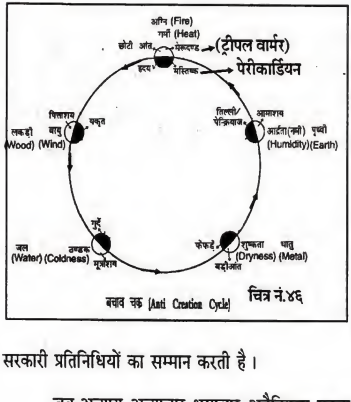

सृजन चक्र (Anti Creation Cycle) चित्र नं.४६

सन्तान के प्रति प्रेम स्वाभाविक होता है, जो उत्पादक चक्र का मुख्य आधार होता है, परन्तु जब बच्चे बड़े एवं गृहस्थ बन जाते हैं तब उनको भी अपने बच्चों से प्रेम होने लगता है। साथ ही उन्हें अपने पर किए गए माता-पिता के उपकारों का एहसास भी होने लगता है। उनकी सेवा करने और आज्ञा पालन का भाव जागृत होता है। यही आदान-प्रदान का सिद्धान्त कहलाता है।

जैसे अच्छी सरकार प्रजा के विकास और सुख -शान्ति का ख्याल रखती है, उसके बदले प्रजा कानून एवं प्रशासनिक व्यवस्था का पालन करती है। कर देती है। सरकारी प्रतिनिधियों का सम्मान करती है।

जब अन्याय, अत्याचार, भ्रष्टाचार, अनैतिकता, क्रूरता, तानाशाही बढ़ती है, समाज में अन्धविश्वास और गलत परम्पराएँ अनियन्त्रित हो जाती है, तब सत्य की वकालात और कानून की रक्षा करने वाले व्यक्ति आगे आकर विरोध करते हैं, भले ही प्रारम्भ में उनको कष्ट सहना पड़ता है, स्वयं का बलिदान करने हेतु तैयार रहना पड़ता है। ऐसी परिस्थितियों और घटनाक्रम में अनियन्त्रक चक्र प्रभावी होता है। यह चक्र व्यक्ति की अन्याय से लड़ने की क्षमता का प्रतीक होता है।

चारों चक्रों का वर्णन करने का उद्देश्य मात्र इतना ही है कि हम स्वविवेक से अपने पंच तत्त्वों का सन्तुलन रख स्वस्थ रह सके। ब्रह्माण्ड में प्रत्येक दृश्यमान वस्तु के अस्तित्व में प्राय: पाँचों तत्त्व होते है, परन्तु उनमें सभी की मात्रा समान नहीं होती। जिस तत्त्व की अधिकता होती है, वस्तु को उसी तत्त्व के अन्तर्गत वर्गीकृत किया जाता है।

पंच तत्त्वों से विभिन्न अंगों का आपसी संबंध

प्रत्येक तत्त्व से सम्बन्धित यिन और यांग अंग होते हैं। सर्व प्रथम उन दोनों में सन्तुलन करना आवश्यक होता है। प्रत्येक यिन-यांग के कुछ कार्यों में तो समानता होती है, परन्तु बहुत से कार्य प्रत्येक अंग के अलग-अलग भी होते हैं। यदि ऐसे कार्यों में सक्रियता अथवा निष्क्रियता आती है तो, यिन अंगों को यिन अंगों से सम्बन्धित तत्त्वों और यांग अंगों को यांग अंगों से संबंधित तत्त्वों में आवश्यकतानुसार घटत-बढ़त कर सन्तुलित किया जा सकता है।

अँग का नाम	मातृ अंग	पुत्र अंग	अंग जिससे नियन्त्रित होता है	अंग जिसे नियंत्रित करता है
यकृत	गुर्दे	हृदय	फेंफड़े	तिल्ली
पित्ताशय	मूत्राशय	छोटी आंत	बड़ी आंत	आमाशय
हृदय	यकृत	तिल्ली	गुर्दे	फेंफड़ें
छोटी आंत	पित्ताशय	आमाशय	मूत्राशय	बड़ी आंत
तिल्ली	हृदय	फेंफड़ें	यकृत	गुर्दे
आमाशय	छोटी आंत	बड़ी आंत	पित्ताशय	मूत्राशय
फेंफड़ें	तिल्ली	गुर्दे	हृदय	यकृत
बड़ी आंत	आमाशय	मूत्राशय	छोटी आंत	पित्ताशय
गुर्दे	फेफड़ें	यकृत	तिल्ली	हृदय
मूत्राशय	बड़ी आंत	पित्ताशय	आमाशय	छोटी आंत

जैसे किसी व्यक्ति का हृदय कमजोर है तो, उसके मातृ यिन अंग लीवर तथा पुत्र यिन अंग तिल्ली की क्षमता बढ़ाने से हृदय शक्तिशाली बन सकता है। हृदय अग्नि तत्त्व से सम्बन्धित होता है और जल तत्त्व उसे शान्त अथवा कमजोर करता है। अर्थात् जिसका हृदय कमजोर होगा, उसके गुर्दो को अधिक क्रियाशील होना पड़ेगा। अतः यदि जल तत्त्व कम हो जाए तो, हृदय की अग्नि ऊर्जा मंद नहीं होगी तथा हृदय बराबर कार्य करने लगेगा।

ठीक उसी प्रकार यदि किसी व्यक्ति को मधुमेह है अर्थात् उसका पेन्क्रियाज कम कार्य कर रहा है। पेन्क्रियाज तिल्ली के समीप होने से **यदि तिल्ली की ऊर्जा किसी विधि द्वारा बढ़ा दी जाए तो, पेन्क्रियाज ताकतवर होने लगेगा और मधुमेह असाध्य रोग नहीं रहेगा।** तिल्ली का मातृ अंग हृदय और पुत्र अंग फेंफड़ा होता हैं। अतः यदि हृदय और फेंफड़ें को अधिक क्रियाशील बना दिया जाये तो तिल्ली/ पेन्क्रियाज अपने आप सशक्त हो जाएंगे।

पंच तत्त्वों से संबंधित शरीर में ऊर्जा मार्ग : मुख्य मेरेडियन

यह पांचों तत्त्व एक दूसरे के निर्माण और विनाश में सहयोग देते हैं। उसी के कारण शरीर में अलग-अलग स्थितियाँ बनती है । इन पाँचों तत्त्वों के स्वयं की भी एक विशेष ऊर्जा होती है, जो निश्चित मार्गों से प्रवाहित होती हैं, जिन्हे मेरेडियन कहते हैं। शरीर में इन मेरेडियन का स्थूल रूप से कोई अस्तित्त्व नहीं होता । अतः एक्स

रे, एम.आर.आई.सी.टी. स्केन, सोनो-ग्राफी आदि परीक्षणों से उनको मालूम नहीं किया जा सकता । परन्तु फिर भी उनके प्रवाह को किर्लियन फोटोग्राफी के माध्यम से देखा जा सकता है।

शरीर में मुख्य रुप से बारह मेरेडियन होती है जो शरीर के दाहिने और बांयें भाग में समान रूप से प्रवाहित होती है तथा प्रमुख अंगों के नाम से पहिचानी जाती है। इसके अलावा दो प्रमुख मेरेडियन और होती है जो शरीर के मध्य भाग में प्रवाहित होती है। आगे की तरफ प्रवाहित होने वाली मेरेडियन शरीर के सामने के भाग में प्रवाहित होने वाली मेरेडियनों की ऊर्जाओं को नियन्त्रित करती है। अत: उसे कण्ट्रोलिंग वेशल (Controlling Vessel) कहते हैं। इसी प्रकार शरीर के पीछे की तरफ मध्य भाग से प्रवाहित होने वाली मेरेडियन पीछे की तरफ प्रवाहित मेरेडियनों में ऊर्जा के प्रवाह को संतुलित रखती है। जिसे गवर्निंग वेशल (Governing Vessel) कहते हैं। इन्ही मेरेडियनों के माध्यम से शरीर का सूक्ष्म से सूक्ष्म भाग बाकी शरीर से अपना संबंध बनाये रखता है। शरीर में प्राण ऊर्जा का प्रवाह जब इन पंच तत्त्वों से संबंधित अंगों, उपांगों, अवयवों

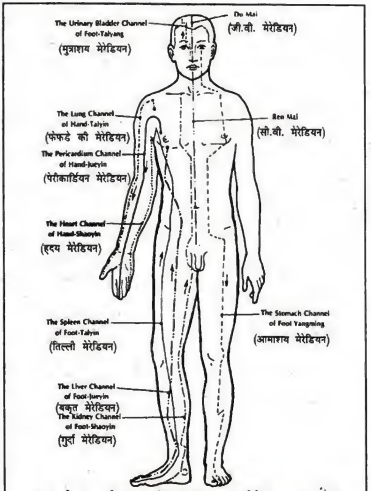

शरीर के सामने भाग में स्थित प्रमुख मेरेडियन की स्थिति
(चित्र नं. 47)

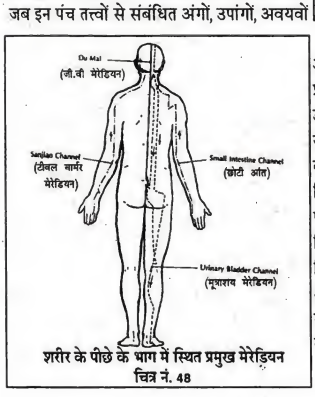

शरीर के पीछे के भाग में स्थित प्रमुख मेरेडियन
चित्र नं. 48

आदि में बिना अवरोध आवश्यक अनुपात में, संतुलित रूप से प्रवाहित होता है तो, हम स्वस्थ होते हैं। रोग की अवस्था में यदि उस अवरोध को दूर कर प्राण ऊर्जा का प्रवाह संतुलित कर दिया जावे तो रोग ठीक हो सकता है। किसी आन्तरिक अथवा बाह्य कारण से जब यिन यांग ऊर्जाओं में असन्तुलन हो जाने की स्थिति में प्राण ऊर्जा का प्रवाह भी असन्तुलित हो जाता है। परिणाम स्वरूप किसी अंग को आवश्यकता से अधिक ऊर्जा मिलने से वह अंग अधिक सक्रिय हो जाता है तो, दूसरी तरफ किसी भाग में ऊर्जा न पहुंचने अथवा कम पहुंचने से वह अंग अपनी पूर्ण क्षमता से कार्य नहीं कर पाता और हम रोगी बनने लगते हैं। प्राण ऊर्जा के प्रवाह को किसी भी विधि द्वारा सन्तुलित कर के ही हम पुन: स्वस्थ हो सकते हैं।

सुजोक बियोल मेरेडियन में ऊर्जा संतुलन द्वारा उपचार

सुजोक सिद्धान्तानुसार शरीर के विभिन्न भागों की स्थिति हथेली में दर्शायी गयी है। शरीर में पैरों में घुटनों से पगथली तथा हाथ में कोहनी से हथेली तथा गर्दन के ऊपरी भाग में अपेक्षाकृत अधिक हलन चलन होता है। अत: शरीर में रोग की अभिव्यक्ति के लक्षण इन भागों में पहले प्रकट होते हैं। हाथ, पैर और गर्दन के ऊपरी भाग से गुजरने वाली मेरेडियन के प्रतिनिधि अंगुलियों और अंगूठे में स्थित होते है। हथेली में मेरेडियन की उस स्थिति को बियोल मेरेडियन कहते हैं। शरीर में जिस स्थिति और दिशा में मेरेडियन की ऊर्जा का प्रवाह होता है, सुजोक के सिद्धान्तानुसार हथेली में उसी स्थिति में बियोल मेरेडियन और उसमें ऊर्जा का प्रवाह होता है। जिसे चित्र में दर्शाया गया है।

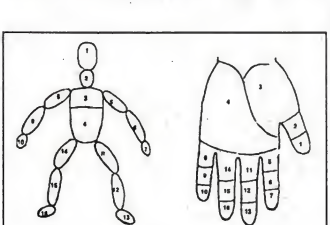

चित्र नं. 49

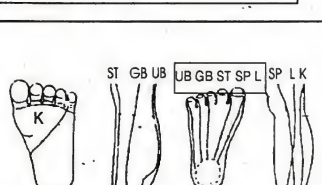

पैरों में घुटनों के नीचे मेरीडियन की स्थिति चित्र नं. 50

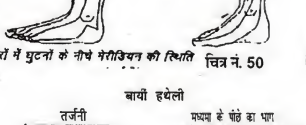

अंगुलियों मे बियोल मेरेडियन के ऊर्जा प्रवाह की स्थिति

चित्र नं. 51

ST-आमाशय
GB-पित्ताशय (गालब्लेडर)
UB- मूत्राशय (ब्लेडर)
L- यकृत (लीवर)
K- गुर्दा (किडनी)
SP- तिल्ली (स्पलीन)
H- हृदय (हार्ट)
PC- परिकार्डियन (मस्तिष्क)
LU- फेफड़ा (लंक्स)
LI- बड़ी आंत
SI- छोटी आंत
TW- त्रिअग्नि (मेरूदण्ड)

उपचार करते समय प्रायः शरीर के प्रतिनिधि के रूप में बायें हथेली का मात्र एक अंगूठा, तर्जनी और मध्यमा का उपयोग लिया जाता है। परन्तु विशेष परिस्थितियों में सारी अंगुलियों और दोनों हथेलियों की अंगुलियों का भी उपयोग किया जा सकता है।

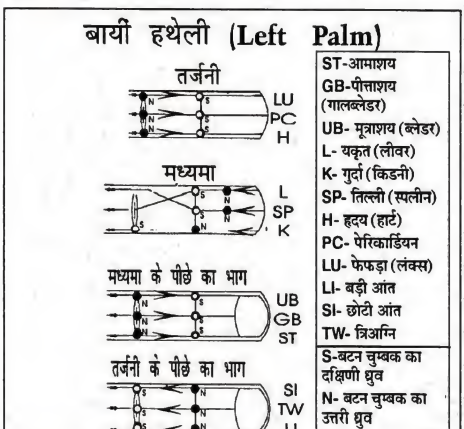

विभिन्न मेरीडियनों में ऊर्जा बढ़ाने हेतु बियोल मेरेडियन में चुम्बक लगाने की स्थिति (चित्र नं. 52)

ऊर्जा संतुलन की सरल विधि

बियोल मेरेडियन पद्धति द्वारा उपचार हेतु बटन के आकार के छोटे-छोटे चुम्बकों का उपयोग किया जाता है। यदि किसी मेरेडियन में ऊर्जा की कमी के कारण रोग हो तो उसमें ऊर्जा बढ़ाने हेतु अंगुलियों में सम्बन्धित मेरेडियन पर ऊर्जा की दिशा में पहले उत्तरी ध्रुव (N Pole) और उसके आगे दक्षिणी ध्रुव (S Pole) स्पर्श कराने से उस मेरेडियन में ऊर्जा का प्रवाह बढ़ने लगता है। इसके विपरीत रोग यदि मेरेडियन में ऊर्जा की अधिकता के कारण हो तो प्रवाह की दिशा में पहिले दक्षिणी ध्रुव और बाद में बटन चुम्बक का उत्तरी ध्रुव लगाने से सम्बन्धित मेरेडियन में ऊर्जा का प्रवाह कम होने लगता है। **चुम्बक के उत्तरी ध्रुव का कार्य ऊर्जा के प्रवाह को नियन्त्रित करना और दक्षिणी ध्रुव का कार्य मेरेडियन में ऊर्जा के प्रवाह को तेज करना होता है। अतः जो अंग कमजोर अथवा रोगग्रस्त होता है, उससे सम्बन्धित मेरेडियन में आवश्यकतानुसार प्राण ऊर्जा के प्रवाह को घटा अथवा बढ़ाकर रोग से शीघ्र राहत पाई जा सकती है।** ऊर्जा के प्रवाह को उतना ही घटाना अथवा बढ़ाना चाहिए जब तक कि उस मेरेडियन में प्रवाह सामान्य एवं संतुलित न हो जावे। मेरेडियन में ऊर्जाका प्रवाह बढ़ाने अथवा घटाने के लिए बटन चुम्बक लगाने के कुछ समय पश्चात यदि किसी भी प्रकार की बैचेनी अनुभव हो, चक्कर आने लगे, जी घबराने लगे, दर्द बढ़े तो इसका मतलब शरीर को ऊर्जा के प्रवाह में होने वाला परिवर्तन अस्वीकार है। अर्थात् शरीर को उस उपचार की आवश्यकता नहीं है। चिकित्सक द्वारा निश्चित किया गया निदान सही नहीं है। अतः उन चुम्बकों को बदल देना चाहिये। उपचार के पश्चात् 5-10

मिनट रोगी को अपने समीप रखना चाहिए ताकि पुन: उपचार से होने वाली प्रतिक्रिया एवं प्रभाव के अनुरूप आवश्यकतानुसार उपचार में परिवर्तन किया जा सके। उपचार पूरा होते ही बैचेनी की स्थिति होने लगती है। इस प्रकार **उपचार की इस विधि द्वारा गलत एवम् आवश्यकता से अधिक उपचार की संभावना नहीं होती। जो अन्य चिकित्साओं में प्राय: संभव नहीं होता।**

यदि हृदय अथवा उससे सम्बन्धित कोई भाग बराबर कार्य नहीं करता है तो हृदय मेरेडियन में ऊर्जा के प्रवाह को संतुलित करने मात्र से आश्चर्यजनक लाभ होता है। उसी प्रकार तपेदिक, अस्थमा अथवा फेंफड़े सम्बन्धी अन्य

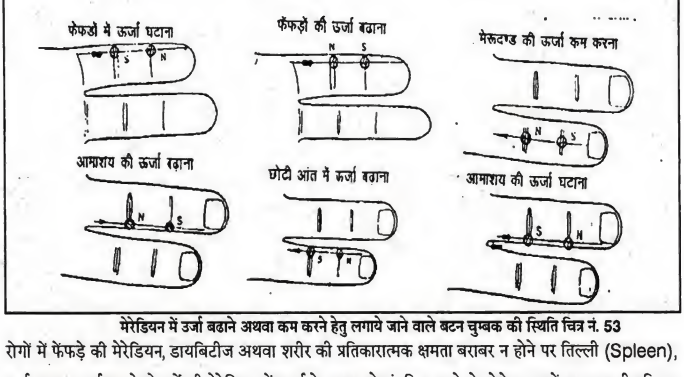

मेरेडियन में उर्जा बढाने अथवा कम करने हेतु लगाये जाने वाले बटन चुम्बक की स्थिति चित्र नं. 53

रोगों में फेंफड़े की मेरेडियन, डायबिटीज अथवा शरीर की प्रतिकारात्मक क्षमता बराबर न होने पर तिल्ली (Spleen), गुर्दा बराबर कार्य न करे तो गुर्दे की मेरेडियन में ऊर्जा के प्रवाह को संतुलित करने से थोड़े समय में प्रभावशाली परिणाम प्राप्त किये जा सकते हैं। नाड़ी संस्थान अथवा मेरुदण्ड सम्बन्धी रोगों में मेरुदण्ड (Spine) मेरेडियन तथा पाचन सम्बन्धी रोगों में आमाशय, यकृत अथवा अन्य सम्बन्धित मेरेडियन में ऊर्जा के प्रवाह को संतुलित कर रोग से मुक्ति पाई जा सकती है।

क्या ऊर्जा का रूपान्तरण हो सकता है ?

ऊर्जा वह शक्ति है जो नष्ट नहीं होती परन्तु बदलती रहती है। प्रत्येक जीवन चक्र का प्रारम्भ, बीच का भाग और अंत होता है, जो वास्तव में अन्त न होकर अगले जीवन चक्र का प्रारम्भ होता है।

मनुष्य के शरीर में ऊर्जा, अंग और स्वास्थ्य एक जीवनोपयोगी त्रिभुज की संरचना करते हैं, जिसकी भुजाएँ

आपस में एक दूसरे पर निर्भर होती है।

प्रत्येक तत्त्व अपनी ऊर्जा से प्रवृत्ति करता है। अपने स्वभाव के अनुसार अपना स्वतंत्र अस्तित्त्व रखता हुआ अन्य तत्त्वों से भी उनका कोई न कोई सम्बन्ध होता है। इसी के माध्यम से शरीर का सूक्ष्म से सूक्ष्म भाग बाकी शरीर से किसी न किसी रूप से प्रभावित होता है। इन तत्त्वों की ऊर्जाओं से ही चेतना के विकास का स्तर आदि की विविधता का बोध होता है।

पंच तत्त्व की ऊर्जाओं का शरीर पर प्रभाव

पंच तत्त्वों से संबंधित ऊर्जाएँ जिन जिन अंगों, अवयवों, भावों, वातावरण आदि से प्रभावित होती है उनका संक्षिप्त आंशिक वर्णन ही पंच तत्त्वों की तालिका में दर्शाया गया है। पाँचों तत्त्वों से संबंधित अलग अलग ऊर्जाएँ होती है । अलग-अलग कार्यों के लिये अलग-अलग प्रकार के ऊर्जा की आवश्यकता होती है। बिना ऊर्जा के कोई भी प्रवृत्ति अथवा गतिविधि संभव नहीं होती। पांचों ऊर्जाओं के अभाव में मानव जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। चन्द्रमा पर वायु ऊर्जा का तथा सूर्य पर ठण्डक ऊर्जा का अभाव होने से मानव जीवन की संभावना नहीं लगती। ब्रह्माण्ड में भी जहाँ जहाँ पंच तत्त्व होते है, वहां वहां ये पंच ऊर्जाएँ भी प्रत्यक्ष-परोक्ष रूपसे होती है। **ये ऊर्जाएं न केवल शारीरिक स्तर पर कार्य करती है, अपितु व्यक्ति के मानसिक , वाचिक, भावनात्मक स्तर को भी प्रभावित करती है। व्यक्ति का विकास, चिन्तन, सोच, भावनाएँ आदि इन ऊर्जाओं की उपलब्धता और उपयोग पर निर्भर करती है। व्यक्ति की जीवनशैली, गतिविधियों और प्रवृत्तियों का संचालन और नियन्त्रण इन ऊर्जाओं के द्वारा ही होता है। इन ऊर्जाओं के सही और संतुलित उपयोग से व्यक्ति अनुकूल अथवा प्रतिकूल परिस्थितियों और वातावरण के बीच भी अपना संतुलित जीवनयापन करता हुआ स्वस्थ और दीर्घायु जीवन जीते हुये अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। विभिन्न ऊर्जाओं का संतुलन और सम्यक् उपयोग ही अच्छे स्वास्थ्य का आधार होता है और उनका अपव्यय, दुरुपयोग, अवमूल्यन और असंतुलन रोग का कारण होता है।**

उपचार करते समय चिकित्सक को देखना होता है कि, रोग के लक्षण किस ऊर्जा को अधिक प्रभावित करते हैं। तालिका के अनुसार जिस ऊर्जा से संबंधित अधिक तथ्य प्रभावित होते है, शरीर में उस ऊर्जा का प्राय: सर्वाधिक असंतुलन होता है। यह असंतुलन एक या एक से ज्यादा ऊर्जाओं का भी हो सकता है । **जितना ज्यादा असंतुलन होता है, उतना ज्यादा रोग होता है । जब रोगी में एक दम विपरीत दो प्रकार की ऊर्जाओं के असंतुलन के लक्षण प्रकट होते हैं तो, रोगी असाध्य अथवा संक्रामक रोग से पीड़ित हो जाता हैं।**

प्रत्येक अंग की वैसे तो कोई न कोई विशेष ऊर्जा होती है, परन्तु उसके साथ-साथ शरीर के प्रत्येक भाग में बाकी सभी ऊर्जाएं भी कम ज्यादा अनुपात में अवश्य होती है। जिन्हें सहायक ऊर्जा कहा जा सकता है। किसी

भी अंग की स्वस्थता सभी ऊर्जाओं के आवश्यकतानुसार सही अनुपात पर निर्भर करती है। सहायक ऊर्जा के अभाव में भी कोई अंग पूर्ण क्षमता से अपना कार्य नहीं कर सकता। परन्तु किसी भी अंग में मुख्य ऊर्जा के अभाव में व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है। इसी कारण सभी व्यक्ति प्राय: एक जैसे रोगों, मौसम और आयु में नहीं मरते।

जब रोग के लक्षण सारे शरीर में हों, स्पष्ट हो तो, संबंधित यिन या यांग अंगों की ऊर्जा को संतुलित करना चाहिये। **परन्तु यदि रोग के लक्षण शरीर के किसी आंशिक भाग विशेष में हों तो उस भाग के समीप से प्रवाहित होने वाली मेरेडियन में, रोग के लक्षणों से संबंधित सहायक ऊर्जा को संतुलित करने से, रोग में शीघ्र राहत मिलती है तथा असाध्य रोगों का उपचार प्रभावशाली ढंग से किया जा सकता है।**

वायु ऊर्जा का प्रभाव

प्रत्येक कार्य के प्रारम्भ में वायु ऊर्जा की आवश्यकता होती है। सभी रोगों का प्रारम्भ भी संबंधित भाग में प्राय: वायु ऊर्जा के असंतुलन से ही होता है। वर्ष का प्रारम्भ बसन्त ऋतु से होता है । मां के गर्भ में सर्व प्रथम अवयव के रूप में गर्भस्थ बालक की मांस पेशियाँ विकसित होती है। अंग के रूप में लीवर और पित्ताशय का विकास होता है। जन्म लेने के पश्चात बालक सर्व प्रथम अपनी आंखों से दुनिया को देखता है, अपने परिजनों को पहिचानता है॥ मनुष्य के शरीर का अधिकतम विकास जन्म लेने के पश्चात् बाल्यकाल में ही होता है। प्रत्येक वनस्पति प्रारम्भिक अवस्था में हरी ही होती है। प्रत्येक फल प्रारम्भिक अवस्था में प्राय: खट्टा होता है। सूर्योदय पूर्व दिशा से ही उदय होता है। क्रोध के प्रारम्भ में व्यक्ति प्राय: मन ही मन चिल्लाकर उसकी अभिव्यक्ति करता है। ये सारे तथ्य किसी न किसी घटनाक्रम के प्रारम्भ के सूचक होते हैं। अत: उनका वायु ऊर्जा से विशेष संबंध होता है। यकृत और पित्ताशय वायु उर्जा के असंतुलन से अधिक प्रभावित होते है। **वायु ऊर्जा का प्रमुख कार्य हलन चलन होता है। गति ही जीवन है। बाल्यकाल में वायु ऊर्जा का बाहुल्य होता है।** इसी कारण बच्चा बड़ा चंचल और अस्थिर होता है। एक स्थान पर स्थिर प्राय: नहीं बैठा रह सकता। बच्चे में जो भी विशेषताएँ होती हैं उसका कारण उसमें वायु ऊर्जा की सक्रियता का प्रभाव अधिक होता है। बच्चा बहुत जिज्ञासु होता है। यदि बच्चे में उपरोक्त गुण न हों तो बच्चा अविकसित, मंद बुद्धि वाला अथवा रोग ग्रस्त समझा जाता है। बच्चा सहज, निष्कपट और मौलिक विचारों वाला होता है। **अत: जिन व्यक्तियों का मौलिक स्वभाव इन गुणों से अधिक मिलता जुलता होता है, उनमें वायु ऊर्जा की सहज ही अधिकता होती है।**

वायु ऊर्जा की अधिकता वालों का सोच हमेशा नई नई वस्तुओं के प्रति आकर्षण का होता है । ऐसे व्यक्ति जब बाजार में वस्तुएँ खरीदने के लिए जाते हैं, तो वे प्राय: नई नई वस्तुओं को अधिक पसंद करते हैं। आवश्यकता हो अथवा न हों, नई वस्तुएं खरीद लेते हैं। प्राय: मितव्ययी नहीं होते। वायु ऊर्जा की बाहुल्यता वालों

में प्राय: उत्सुकता अधिक होती है। ऐसे व्यक्तियों में नित्य नवीन सोच, तर्क, चिन्तन चलता है। उनका मन और मस्तिष्क प्राय: अस्थिर होता है। अत: ध्यान साधना में प्राय: कम सफल होते हैं। मन की अस्थिरता के कारण समय पर सही निर्णय लेने में उन्हें कठिनाई होती है। **अत: जिन लोगों के संस्कारों में स्वभाविक रूप से वायु ऊर्जा अधिक हों, उन्हें शोध कार्यों को चुनना चाहिए।** कलाकार, अभिनेता, शिल्पकार , सेल्समेन, कवि, लेखक, आदि व्यक्ति संस्कार के रूप में प्राप्त विशेष वायु ऊर्जा के कारण ही अपनी क्षमताओं का पूर्ण विकास कर पाते हैं, परन्तु जिनमें उनका अभाव होता है, वे व्यक्ति अपने ऐसे व्यवसायों में प्राय: जीवन की ऊँचाईयों तक नहीं पहुँच पाते।

शरीर के हलन चलन में मांसपेशियों की महत्वपूर्ण भूमिका होती हैं। अत: वायु ऊर्जा के असंतुलन से मांसपेशियों में विकार होने लगते हैं। श्वसन हो या पाचन अथवा विसर्जन क्रिया, सभी में वायु ऊर्जा की आवश्यकता होती है। शरीर में प्रवाहित होने वाले सभी तरल पदार्थों अथवा विचारों के प्रवाह में भी वायु ऊर्जा सहयोग करती है। **संक्षेप में सभी शारीरिक एवं मानसिक गतिविधियों के संचालन में वायु ऊर्जा की आवश्यकता होती है।**

ताप ऊर्जा का प्रभाव - सक्रियता, जोश, उत्तेजना

ताप ऊर्जा का कार्य शरीर में कार्य करने हेतु आवश्यक शक्ति पहुँचाने का होता हैं। शरीर का तापक्रम 98.4 फारेहेनाईट बनाये रखना, भोजन के पाचन हेतु आवश्यक गर्मी प्रदान करना, शरीर की विभिन्न गतिविधियों के संचालन में उत्साह, जोश, पुरुषार्थ के आवश्यकता की पूर्ति ताप ऊर्जा द्वारा ही होती है। इस ऊर्जा के प्रभाव से शरीर का सम्पूर्ण विकास होता है। सूर्य की गर्मी के अभाव में जैसे, पेड़ पौधों का विकास नहीं होता, ठीक उसी प्रकार इस ऊर्जा के अभाव में शरीर में जड़ता, निष्क्रियता अथवा शिथिलता आ जाती है। अंगों की कार्य क्षमता घट जाती हैं।

इस ऊर्जा के प्रभाव से सभी अंगों की क्षमता बढ़ जाती है। कार्य में गति और सक्रियता आ जाती है। मनोबल और आत्म विश्वास अपेक्षाकृत अधिक होता है। अभिव्यक्ति में दु:ख और भय प्रायः नहीं झलकता।

किशोर अवस्था (विद्यार्थी जीवन) में इस ऊर्जा का बाहुल्य होता है। इसी कारण विद्यार्थी जीवन में व्यक्ति में शारीरिक सक्रियता और जोश अपेक्षाकृत अधिक होता है। उस अवस्था में व्यक्ति की कुछ न कुछ जीवन में बनने की इच्छा, चाह और कामना होती है। अपनी अभिलाषा की पूर्ति के लिए सदैव प्रयत्नशील रहते हैं। भीड़, विज्ञापन से अधिक प्रभावित होते हैं तथा उसके अनुरूप अपनी धारणा शीघ्र बना लेते हैं। ताप ऊर्जा की अधिकता वाले व्यक्ति जब भी बाजार में जाते हैं तो उनका स्वभाव जो भी उपयोगी वस्तु सामने आती है उसे तुरन्त खरीद लेते हैं, अधिक पूछताछ नहीं करते। व्यवस्थित ढंग से अच्छी चीजें नहीं खरीद सकते। **जिन व्यक्तियों को संस्कार में ताप ऊर्जा**

का बाहुल्य होता है, यदि ऐसे व्यक्ति अपना व्यवसाय चुनते समय, अपनी ऊर्जा के अनुरूप जीवन शैली का चयन करें, जिसमें सदैव एक जैसा कार्य नहीं होता, परिस्थितियों के अनुसार कुछ न कुछ बदलाव की आवश्यकता होती है, जैसेः- सैनिक, चिकित्सक, इंजीनियर, अध्यापक, वक्ता आदि, कार्यों में अधिक सफल होते हैं। इसके विपरीत यदि ताप ऊर्जा सहज रूप से अधिक न हों तो, ऐसे व्यवसायों में प्रायः पूर्ण रूप से सफल नहीं होते।

बुखार, लू अथवा गर्मी संबन्धी रोगों में अथवा किशोरावस्था में रोग ग्रस्त होने पर उपचार हेतु इस ऊर्जा के संतुलन की तरफ विशेष ध्यान देना चाहिये। हृदय -छोटी आंत तथा पेरिकार्डियन (मस्तिष्क) -त्रिअग्नी (मेरु दण्ड) इस ऊर्जा से विशेष संबंधित होते हैं।

ताप ऊर्जा सारे शरीर में रक्त के माध्यम से पहुंचती है। अतः रक्त संबंधी रोगों में इस ऊर्जा के संतुलन से शीघ्र अच्छे परिणाम आते हैं। शरीर की अधिकांश भावनाओं, संवेदनाओं, आवेगों के संचालन और नियन्त्रण में ताप ऊर्जा का भी महत्वपूर्ण योगदान होता है।

हृदय प्रेम का प्रतीक होता है। इसी कारण निर्दयी, क्रूर व्यक्तियों को हृदयहीन कहा जाता है। ताप ऊर्जा के संतुलन से हृदय को ताकत मिलती है। **अधिकांश आवेगों का सम्बन्ध सीधा हृदय से होता है। हृदय की मुख्य ऊर्जा गर्मी होती है। अतः ताप ऊर्जा को संतुलित कर आवेगों पर सरलतापूर्वक नियन्त्रण किया जा सकता है।**

भावनात्मक स्तर पर इस ऊर्जा से व्यक्ति को प्रसन्नता और आनन्द की अनुभूति होती है। व्यक्ति प्रायः मुस्कराता रहता हैं और कभी-कभी खुलकर हँसता है। **जिन रोगों का सही निदान संभव न हो, उनके पेरीकार्डियन (मस्तिष्क) तथा त्रिअग्नि (मेरु दण्ड) मेरेडियन की ऊर्जा को संतुलित करने से संतोषप्रद परिणाम आते हैं। यह ऊर्जा शरीर में सभी अंगों की गतिविधियों के बीच समन्वय और संतुलन बनाये रखती है।** यह ऊर्जा व्यक्ति में मानसिक और भावनात्मक बल प्रदान करती है। अन्तःश्रावी ग्रन्थियों, ऊर्जा चक्रों और हारमोन्स के उत्पादन पर नियन्त्रण करती है, जिससे व्यक्ति में सम्यक् ज्ञान और सद् विवेक विकसित होता है। सही चिन्तन और मनन होने लगता है तथा सम्यक् दर्शन की प्राप्ति होने की संभावना रहती है। इस ऊर्जा के सदुपयोग से व्यक्ति में मानवीय गुण, जैसेः- दया, करुणा, मैत्री, सेवा, परोपकार, सहिष्णुता आदि के भाव पैदा होते हैं तथा व्यक्ति जीवन में सत्य, संयम, संतोष और नैतिकता को प्राथमिकता देने लगता है। व्यक्ति अन्तर्मुखी बनने लगता है। उसका मनोबल और आत्मबल बढ़ने लगता है। आध्यात्मिक योगी समत्व भाव में होने से इस ऊर्जा का सदुपयोग अधिक कर पाते हैं।

परन्तु जब इस ऊर्जा का दुरूपयोग होता है, अवमूल्यन होता है, पुरुषार्थ सम्यक् नहीं होता है तो, व्यक्ति स्वार्थी बन जाता है। उसमें मानवीय सदगुणों का अभाव होने लगता है। व्यक्ति में कषाय वृत्तियाँ, भय, दुःख, तनाव, असंतोष, जीवन के प्रति निराशा के लक्षण प्रकट होने लगते हैं।

दुर्व्यसनों के सेवन से इस ऊर्जा का विशेष दुरूपयोग होता है। जो व्यक्ति जीवन के प्रति निराश होते हैं, उनके इस ऊर्जा का संतुलन करने से अच्छे परिणाम आते हैं।

इसी ऊर्जा के प्रभाव से व्यक्ति अपने प्राप्त ज्ञान एवं बुद्धि का उपयोग करता है। जो भी कार्य क्षेत्र मिलता है, उसमें विशेष योग्यता प्राप्त करने हेतु प्रयत्नशील हो जाता है। अपने भौतिक अथवा आध्यात्मिक लाभ के प्रति सजगता विकसित होने लगती है।

प्रसन्नता और मुस्कराहट से सारे शरीर की रासायनिक प्रक्रिया बदलती है। परिणामस्वरूप भावनात्मक ऊर्जा मिलती है। जब हम प्रसन्न होते हैं तो, शरीर में ताप ऊर्जा पैदा होती है, परन्तु जब हम भयभीत होते हैं तो, ठण्डक ऊर्जा बढ़ने लगती है। प्रसन्नता से संतोष होता है। यदि कोई अपने जीवन से असन्तुष्ट हो तो, पेरीकार्डियन की ताप ऊर्जा बढ़ाने से समस्या का समाधान हो सकता है। यदि पति-पत्नी में असंतोष हो तो ऐसा उपचार आश्चर्यजनक परिणाम देता है। **मस्तिष्क एवं मेरु दण्ड की ऊर्जा को सन्तुलित करने से मानसिक उपचार प्रभावशाली ढंग से करना संभव हो जाता है।**

हमारी अधिकांश प्रमुख गतिविधियों का संचालन मस्तिष्क से होता है। अधिकतर प्रवृतियां हमारे मस्तिष्क में चिन्तन, सोच और निर्णयानुसार होती है।

ताप ऊर्जा कुछ न कुछ करने को प्रेरित करती है। ऐसे व्यक्तियों के जैसे ही मन में कोई चिन्तन चलता है, विचार आता है, उस पर कार्य प्रारम्भ कर देते हैं। ताप ऊर्जा की बाहुल्यता वाले व्यक्ति धुन के धनी होते हैं। परिणामों की परवाह नहीं करते। उन्हें भय कम लगता है।

नमी ऊर्जा का प्रभाव – सजगता और विवेक

शरीर में लगभग 2/3 भाग जल होता है। **नमी ऊर्जा द्वारा शरीर में व्याप्त तरल पदार्थों का नियन्त्रण होता है। जब जल का अनुपात विभिन्न अवयवों में असंतुलित हो जाता है तो शरीर में अनेकों समस्याएँ उत्पन्न होने लगती है। आंखों में आंसूओं के रूप में, मुंह में थूक के रूप में, फेंफड़ों में कफ के रूप में, शरीर से पसीने एवम् मूत्राशय से पेशाब के रूप में अनावश्यक तत्त्व पदार्थों का विसर्जन होने लगता है। कभी-कभी नाक से पानी और कान से पीब भी आने लगती है। इस ऊर्जा के असंतुलन से शरीर में लासिका तंत्र संबन्धी रोगों के लक्षण प्रकट होने लगते हैं। रुक रुक कर दर्द का अनुभव होने लगता है।** तिल्ली/पेन्क्रियाज और आमाशय इस ऊर्जा के असंतुलन से अधिक प्रभावित होते हैं।

अपाचन, मधुमेह व एलर्जी प्रायः इसी ऊर्जा के असंतुलन के कारण होती है। वर्षा ऋतु और मौसम के बदलाव

के समय होने वाले रोग, शरीर की प्रतिकारात्मक क्षमता, मोटापा अथवा दुबलापन, सूजन, एनेमिक स्थिति (रक्त की कमी) प्रायः इस ऊर्जा के असंतुलन से होती है। **जब शरीर में नमी बढ़ती है तो, भारीपन और थकावट का अनुभव होने लगता है।**

भावनात्मक स्तर पर इस ऊर्जा से व्यक्ति अपने से संबंधित प्रत्येक बात को गम्भीरता से लेता है। **अकारण चिन्ता और छोटी-छोटी अनावश्यक बातों का चिन्तन करने से ऐसे व्यक्ति अधिक तनावग्रस्त और असंतोषी होते हैं।** प्रत्येक घटनाक्रम का बहुत सूक्ष्मता से चिन्तन करते हैं। अतः शीघ्र निर्णय नहीं ले पाते। बिना बात चिंताओं से शरीर पर भी उसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इस कारण बहुत से व्यक्तियों को अनिद्रा, मधुमेह आदि रोग होने की संभावना बढ़ जाती है। **ऐसे व्यक्ति अपने विचार विस्तार से दूसरों को बताना अथवा सुनाना चाहते हैं। यदि कोई उनकी बात सुनने में रुचि लेता है, तो मन ही मन बहुत शान्ति और राहत का अनुभव करते हैं। जो रोगी चिकित्सक को अपने रोग का पुराना इतिहास विस्तार से बताते हैं, उनमें नमी ऊर्जा के असंतुलन की प्रबल संभावना रहती है।**

जिन व्यक्तियों में जन्म से इस ऊर्जा का बाहुल्य होता है, उनका स्वर मधुर होता है। अकेले में गुनगुनाया करते हैं तथा संगीत अधिक प्रिय होता है। वे अपने कार्य एवं जिम्मेदारियों के प्रति प्रायः अधिक सजग होते हैं। अपनी क्षमताओं का सही आंकलन कर हानि-लाभ को ध्यान में रख कार्य करते हैं। अवसर का पूरा लाभ उठाते हैं। परिवार और समाज में प्रायः सबको साथ लेकर चलने वाले होते हैं। ऐसे व्यक्तियों को क्रोध अपेक्षाकृत कम आता है। **जिनके स्वभाव में ऐसे गुण सहज हों, वे व्यक्ति वैज्ञानिक, न्यायाधीश, निरीक्षक, अंकेक्षक, शोध संबंधी कार्यों में अधिक सफल होते हैं।**

नमी ऊर्जा की बहुलता वाले व्यक्ति बाजार में जाने पर अपनी पूर्व योजना के अनुरूप सिर्फ आवश्यकता वाली वस्तुओं का अपनी आर्थिक क्षमतानुसार प्राथमिकता के आधार पर क्रय करते हैं। अनावश्यक वस्तुएँ नहीं खरीदते।

शुष्कता (Dryness) *ऊर्जा का प्रभाव*

यह ऊर्जा शरीर में क्षमता से अधिक विकास अथवा फैलाव को नियन्त्रित करती है। इस ऊर्जा से गतिविधियों में रुचि कम होने लगती है। व्यक्ति की इच्छाएँ, कामनाएँ और जोश ठण्डा पड़ने लगता है। व्यक्ति को दुनियाँ की यथार्थता और नश्वरता का बोध होने लगता है। इस ऊर्जा के बढ़ने से व्यक्ति अपने ही हाल में मस्त रहता है। एक बार जो बात मान्यता और धारणा बन जाती है, उन्हें वे बदलना नहीं चाहते। पूर्वाग्रहों से ग्रसित होते हैं। नवीन विचारों को सहज नहीं स्वीकारते। अपने निर्णय पर दृढ़ रहते हैं। ऐसे व्यक्ति प्रायः धोखा नहीं देते, विश्वसनीय होते हैं। निर्णय आसानी से नहीं बदलते। समय के साथ ही उनमें बदलाव आता है। यदि उनकी मान्यता सही होती है तब तो, अपने

लक्ष्य की प्राप्ति कर लेते हैं, परन्तु गलत धारणाओं का आग्रह हो तो भविष्य में लक्ष्य की प्राप्ति न होने से दुःखी होते है। उनके चेहरे पर मुस्कराहट बहुत कम रहती है। वे प्रायः एकान्तवादी और स्वार्थी होते हैं। जनसाधारण से ज्यादा परिचय नहीं रखते। उनकी बातों में दुःख की अभिव्यक्ति प्रायः स्पष्ट झलकती है। बिना बात कम बोलते हैं।

शारीरिक स्तर पर शुष्क ऊर्जा से अंगों-उपांगों में सिकुड़न होती है। जैसे-शरीर के किसी भाग के तन्तुओं का कड़े पड़ जाना, त्वचा का रुक्ष होना, त्वचा में झुर्रियाँ पड़ना, त्वचा संबंधी अन्य विकृतियों के लक्षण प्रकट होना, खुजली, दाद, बाईटें आना, हृदय, गुर्दे आदि का संकोचन, शरीर में शुष्कता के असंतुलन से प्रायः होता है। फेंफड़े और बड़ी आंत की यह मुख्य ऊर्जा होती है।

स्वभाविक रूप से शुष्क ऊर्जा की प्रधानता वाले व्यक्ति जब बाजार में जाते हैं तो, घर से जो सोचकर जाते हैं, वे ही वस्तुएँ खरीदते हैं। यदि उससे अच्छी वस्तु भी कम मूल्य पर उपलब्ध हों तो भी उस तरफ ध्यान नहीं देते। जो खरीदना है खरीदकर शीघ्र लौट आते हैं। दुकानदार की तनिक भी नहीं सुनते हैं। **शुष्क ऊर्जा वाले व्यापार, ध्यान और आध्यात्मिक क्षेत्र में अधिक सफल होते हैं।**

ठण्डक (Coldness) ऊर्जा का प्रभाव

यह ऊर्जा एक प्रकार से शरीर की गतिविधियों पर क्षमता से अधिक कार्य करने पर नियन्त्रण रखती है। जितने अनुपात में यह ऊर्जा शरीर में बढ़ती हैं, उसी अनुपात में जोश, ताकत, हलन चलन, उत्साह, शारीरिक क्षमता कम होने लगती है। जब लीवर में ठण्डक ऊर्जा बढ़ जाती है तो, लीवर बराबर कार्य नहीं करता। परिणामस्वरूप लीवर सम्बन्धी, फेंफड़े में ठण्डक ऊर्जा बढ़ने से तपेदिक, तीव्र अस्थमा, हृदय में ठण्डक ऊर्जा बढ़ने से हृदय बराबर कार्य नहीं करता। **वृद्धावस्था में ठण्डक ऊर्जा का प्रभाव अधिक होता है। जिसके कारण आंखों की दृष्टि, कानों की श्रवण शक्ति, मस्तिष्क की स्मरण शक्ति और अन्य इन्द्रियों की कार्य क्षमता घट जाती है। परिणामस्वरूप शरीर की रोग प्रतिकारात्मक क्षमता कम होने लगती है। गुर्दे और मूत्राशय की यह प्रमुख ऊर्जा होती है।**

भावनात्मक स्तर पर ठण्डक ऊर्जा बढ़ने से भय अधिक लगता है। अधिक भय की स्थिति में कभी-कभी पेशाब की शंका होने लगती है। वृद्ध व्यक्तियों को अपने साथियों के निरन्तर मृत्यु के समाचार सुन स्वयं की मृत्यु का भय प्रायः अधिक लगा रहता है।

मानसिक स्तर पर ठण्डक ऊर्जा की अधिकता वाले व्यक्ति भय के कारण प्रत्येक निर्णय हानि-लाभ का ध्यान रख, सोच समझ कर प्रत्येक परिस्थिति में निर्णय लेते हैं। गलती से घबराते हैं। बदनामी से डरते हैं। फूँक-फूँक कर कदम रखते हैं। किसी प्रकार का खतरा लेना नहीं चाहते। झगड़ा टालने का प्रयास करते हैं। निर्णय लेने में देरी करते

हैं। स्पष्ट हाँ या ना में जवाब प्रायः नहीं दे पाते। **निर्णय लेने की क्षमता होने के बावजूद उसकी क्रियान्विति में प्रायः पहल नहीं कर पाते। बिना सोचे समझे परामर्श नहीं देते। किसी को भी नाराज करना नहीं चाहते। जैसा चलता है, वैसा चलने देना चाहते हैं।**

इस ऊर्जा से प्रभावित व्यक्ति जब बाजार में कुछ खरीदने जाते हैं तो, विभिन्न दुकानों में आवश्यक सामग्री के भावों और गुणवत्ता की तुलना करके क्रय करते हैं। यदि उपर्युक्त वस्तु उपलब्ध न हो तो उपलब्ध होने तक की प्रतीक्षा करते हैं, परन्तु अनावश्यक, अनुपयोगी, महंगी, खराब वस्तु नहीं खरीदना चाहते। जन्म से सहजता से प्राप्त ठण्डक ऊर्जा की अधिकता वाले व्यक्ति वर्तमान राजनीति में अधिक सफल होते हैं।

उपर्युक्त लक्षण मार्गदर्शक के रूप में ही समझने चाहिये, तथा रोगी में स्पष्ट लक्षित होते हों तो संबंधित ऊर्जा के असंतुलन की प्रबल संभावना रहती है। परन्तु प्रायः सभी स्थानों का जलवायु, वातावरण, जीवनशैली एक जैसी नहीं होती। जैसे उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव, जहाँ दिन रात लम्बे समय बाद बदलते हैं। ठण्डे प्रदेश जहाँ प्रायः गर्मी नहीं पड़ती। कहीं वर्षा आवश्यकता से ज्यादा तो कहीं आवश्यकता से कम होती हैं। कोई स्थान समुद्र के किनारे हैं तो कोई ऊंचे पर्वत पर होता है। पर्वत पर ठण्डक और हवा अधिक होती है तो, समुद्र के किनारे बसे नगरों पर नमी ऊर्जा अधिक होती है।

त्वचा के रंग पर माता-पिता के साथ साथ क्षेत्रीय जलवायु का भी प्रभाव पड़ता है। जहां वर्ष भर गर्मी ज्यादा पड़ती है, वहाँ जन्म लेने वाले अधिकांश बच्चे प्रायः कृष्ण वर्ण के होते हैं। परन्तु जहाँ साल भर अपेक्षाकृत अधिक सर्दी पड़ती है, वहां जन्मने वाले बच्चों की त्वचा प्रायः गौर वर्ण की होती है। अतः यहां चर्चित बातों को सहायक मार्ग दर्शन के रूप तक ही सीमित समझना चाहिए। जो आवश्यकता पड़ने पर निदान और उपचार को प्रभावशाली बनाते हैं।

मनुष्य का स्वभाव, चिन्तन, मौलिक गुण उसको जन्म के सात सहज रूप से मिली इन ऊर्जाओ पर आधारित होता है। जो उसके संस्कारों और चरित्र का निर्माण करती है। रुचि की अभिव्यक्ति, क्षमता का परिचय कराती है। यदि उन गुणों के अनुरूप जीवन शैली चुनी जाये तो जीवन में अधिक से अधिक सफलता मिलती है परन्तु मौलिक गुणों के विपरीत जीवन शैली अथवा व्यवसाय चुनने से अपेक्षित सफलता नहीं मिलती।

पंच ऊर्जाओं के प्रतिवेदन केन्द्र

पंच तत्त्व की ऊर्जाओं के विभिन्न प्रभावों की चर्चा करने के पश्चात प्रत्येक सजग स्वास्थ्य प्रेमी के मन में उनको नियन्त्रित करने की विधि जानने और समझने की जिज्ञासा होना स्वाभाविक है।

एक्यूप्रेशर मेरेडियन चिकित्सा पद्धति के सिद्धान्तानुसार पैरों में स्थित मेरेडियनों में घुटनों और पैरों के अंगुलियों के बीच तथा हाथों में स्थित मेरेडियन में कोहनी और अंगुलियों के बीच इन पांचों ऊर्जाओं से संबंधित प्रत्येक मेरेडियन में पाँच दाब बिन्दु होते हैं। कोरियन डाक्टर ई. वु. पार्क के अनुसार हथेली में तर्जनी और कनिष्ठिका शरीर के दोनों हाथों का तथा मध्यमा और अनामिका शरीर के दोनो पैरों का प्रतिनिधित्व करते हैं। **अतः हाथ की अंगुलियों पर भी मेरेडियन का परोक्ष प्रभाव पड़ता है, जिन्हें बियोल मेरेडियन कहते हैं।** बियोल मेरेडियन पर भी पाँचों ऊर्जाओं से संबंधित प्रतिवेदन बिन्दु होते हैं। चित्र में मात्र हाथ और पैर के प्रतिनिधि के रूप में बांये हाथ की तर्जनी और मध्यमा के दोनों तरफ विभिन्न बियोल मेरेडियनों पर स्थित ऊर्जा बिन्दु दर्शाये गये हैं। सभी यिन मेरेडियनों में इन ऊर्जाओं का क्रम अंगुलियों के अंतिम छोर से वायु, ताप, आद्रता, शुष्कता, एवं ठण्डक के क्रम में होता है। सभी यांग मेरेडियनों में नाखून से हथेली के पीछे की तरफ ऊर्जा प्रतिवेदन केन्द्रों का क्रम शुष्कता, ठण्डक, वायु, ताप और आद्रता की ऊर्जा का होता हैं।

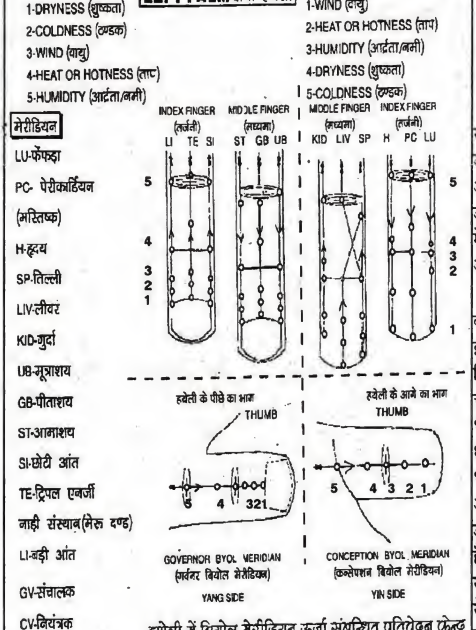

हथेली में बियोल मेरीडियन ऊर्जा संयोजित प्रतिवेदन केन्द्र

पंच ऊर्जाओं को संतुलित करने की विधि

किसी रोग का उपचार करते समय बियोल मेरेडियन में स्थित पंच ऊर्जाओं के केन्द्रों को आवश्यकतानुसार चयन कर उन्हे उत्प्रेरित अथवा शांत करने से संबंधित मेरेडियन में उस ऊर्जा को घटाया अथवा बढ़ाया जा सकता है।

ऊर्जा बिन्दुओं को उत्प्रेरित करने का सरलतम तरिका बटन चुम्बक द्वारा होता है। चुम्बक चिकित्सा के सिद्धान्तानुसार पृथ्वी स्वयं विशाल चुम्बक होती है। **अतः चुम्बक का वह भाग जो लटकाने पर पृथ्वी के उत्तरी ध्रुव की तरफ आकर्षित होता है, वह भाग उस चुम्बक का सक्रिय ध्रुव अथवा दक्षिणी ध्रुव होता है, तथा उसके विपरीत वाला उत्तरी ध्रुव होता है। ऊर्जा बिन्दु पर बटन चुम्बक का सक्रिय दक्षिणी ध्रुव भाग स्पर्श करने से संबंधित मेरेडियन में उस ऊर्जा की वृद्धि होने लगती है और उत्तरी ध्रुव**

स्पर्श करने से ऊर्जा का प्रवाह कम होने लगता हैं।

जैसे लीवर और पित्ताशय की मुख्य ऊर्जा वायु होती है , अत: लीवर की वायु वाले बियोल मेरेडियन के प्रतिवेदन केन्द्र पर बटन चुम्बक का दक्षिणि ध्रुव स्पर्श करने से लीवर को अधिक प्राण ऊर्जा मिलने लगती है तथा उत्तरी ध्रुव का स्पर्श करने से लीवर की प्राण ऊर्जा के प्रवाह को घटाया जा सकता है। इसी प्रकार पित्ताशय बियोल मेरेडियन के वायु के प्रतिवेदन बिन्दु पर बटन चुम्बक का दक्षिणी अथवा उत्तरी ध्रुव का स्पर्श करने से पित्ताशय में प्राण ऊर्जा के प्रवाह को बढ़ाया अथवा कम किया जा सकता है। इसी प्रकार हृदय-छोटी आंत और पेरेकार्डियन-ट्रीपल वार्मर की मुख्य ऊर्जा ताप को, स्पलीन-आमाशय की मुख्य ऊर्जा-आद्रता, फेंफड़े-बड़ी आंत की प्रमुख ऊर्जा-शुष्कता, एवं गुर्दे - मूत्राशय की प्रमुख ऊर्जा-ठण्डक को संबंधित प्रतिवेदन बिन्दुओं पर बटन चुम्बक के स्पर्श द्वारा घटाया अथवा बढ़ाया जा सकता है। यह उपचार बहुत ही प्रभावशाली होता है। **इसमें गलत उपचार की संभावना कम रहती है। अज्ञानवश यदि चिकित्सक गलत चुम्बक यानि विपरीत चुम्बक लगा देता है अथवा जो ऊर्जा शरीर में पहले से ही अधिक होती है और गलती से उसको बढ़ाने का प्रयास किया गया हो तो, तुरन्त रोगी को बैचेनी का अनुभव होने लगता है अथवा चक्कर आने लग जाते हैं। यह इंगित करता है कि, शरीर को उस ऊर्जा की आश्यकता नहीं है। जिस प्रकार किसी प्यासे व्यक्ति को पानी के स्थान पर केरोसीन पिलाने पर वह तुरंत प्रतिक्रिया करता है, ठीक उसी प्रकार गलत चुम्बक लगाने पर मानसिक प्रतिक्रिया होती है। अत: उपचार करते समय चुम्बक लगाने के पश्चात् रोगी द्वारा किसी भी प्रकार की होने वाली प्रतिक्रिया की पाँच मिनट तक प्रतीक्षा करनी चाहिये।**

जिस प्रकार प्यास समाप्त होने के पश्चात् पानी अच्छा नहीं लगता और यदि फिर भी पानी पीने का क्रम चालू रखा जाये तो उल्टी होने की संभावना रहती है। ठीक उसी प्रकार जब ऊर्जा संतुलित हो जाती है, और संबंधित अंग को और अधिक ऊर्जा की आवश्यकता नहीं होती, उस समय रोगी को पुन: बैचेनी होने लगती है, दर्द बढ़ने लगता है अथवा चक्कर आने लग जाते हैं। तब उन बटन चुम्बकों को ऊर्जा केन्द्रों से हटा लेना चाहिये।

अर्थात् बटन चुम्बकों का स्पर्श तब तक किया जा सकता है, जब तक रोगी को किसी प्रकार की बैचेनी, सिर में भारीपन आदि अनुभव न हो। प्राय: प्रत्येक व्यक्ति के उपचार की अवधि उसके शरीर में रोग के अनुसार एवं प्राथमिकता के अनुसार अलग-अलग होती है। उपचार करते समय उपचार से पड़ने वाले प्रत्यक्ष-परोक्ष प्रभावों के प्रति रोगी की सजगता आवश्यक होती है। साधारण स्थिति में बटन चुम्बक का प्रयोग एक स्थान पर एक समय में किसी भी रोग का उपचार करते समय, प्राय: एक घंटे से अधिक नहीं करना चाहिए। भले ही सिर में भारीपन अथवा बैचेनी न भी हो।

क्योंकि प्रत्येक अंग की प्रत्येक ऊर्जा एक साथ अनेकों कार्य करती है तथा अलग अलग कार्यों के लिये पांचों ऊर्जाओं का अनुपात अलग अलग होता है । जिससे उसका संतुलन प्रभावित हो सकता है। आवश्यकता होने पर

कुछ अन्तराल के पश्चात् उसकी पुनरावृति की जा सकती है। परन्तु विशेष परिस्थितियों में चुम्बक स्पर्श की कोई अवधि निश्चित नहीं होती।

इस प्रकार इस चिकित्सा पद्धति में न तो गलत और न आवश्यकता से अधिक उपचार होने की संभावना रहती है। प्रत्येक रोगी का उपचार उसकी आवश्यकता और शारीरिक क्षमतानुसार होता है। जिससे उपचार से पड़ने वाले दुष्प्रभावों की संभावना नहीं रहती।

उपचार करते समय तालिका में बतलाये गये ऊर्जा को प्रभावित करने वाले लक्षणों का पता लगाना चाहिये। जिस ऊर्जा असंतुलन संबंधी लक्षण स्पष्ट हों, उस ऊर्जा को संतुलित करने को प्राथमिकता देनी चाहिये। इसके अलावा शरीर के जिस भाग में रोग हो, उस क्षेत्र से गुजरने वाली मेरेडियन की मौसम, रोग तथा रोगी की आयुष्य से संबंधित ऊर्जाओं को संतुलन हेतु प्राथमिकता देनी चाहिये।

जब रोगी में रोग के साथ भावात्मक लक्षण स्पष्ट प्रकट हों तो, शारीरिक रोग का उपचार करने के साथ-साथ हृदय मेरेडियन की संबंधित ऊर्जा को भी संतुलित करने से तथा जब मानसिक लक्षण प्रकट हों तो, मस्तिष्क मेरेडियन की संबंधित ऊर्जा को संतुलित करने से शीघ्र प्रभावशाली परिणाम आते हैं।

कभी कभी एक से ज्यादा ऊर्जाओं का असंतुलन हो जाता है। ऐसी परिस्थितियों में सभी ऊर्जाओं को एक के बाद दूसरी संतुलित करना चाहिये। रोगों के उपचार हेतु बटन चुम्बक लगाने के लिये आवश्यक प्रतिवेदन केन्द्रों का चयन कैसे करें? उस हेतु चन्द रोगों के उपचार का नीचे वर्णन किया जा रहा है।

पंच ऊर्जाओं का असंतुलन और रोग की अवस्था

ऊर्जा से ही हमारे जीवन की समस्त गतिविधियों का संचालन नियन्त्रण होता है। अत: प्रत्येक रोग में ऊर्जा असन्तुलन की मुख्य भूमिका होती है। **रोग के अनेक कारण हो सकते हैं, परन्तु असंतुलन से पड़ने वाले प्रभावों में कौन सी ऊर्जा की भूमिका होती है, यदि उस ऊर्जा के प्रभाव को संतुलित कर दिया जाये, तो रोग में तुरन्त राहत मिल सकती है। जिस प्रकार कोई नोसिखिया वाहन चालक गाड़ी को नियन्त्रित न रख सके, तो भी आवश्यकता पड़ने पर ब्रेक लगाकर उस गाड़ी को रोक तो सकता ही है, जिससे वाहन दुर्घटनाग्रस्त होने और अन्य खतरों से तो बच सकता है।**

किसी व्यक्ति को कंपन आते हैं, कंप कंपी लगने लगती है। चक्कर आने लगते हैं। ये सारे कारण वायु ऊर्जा की अधिकता के सामान्य दृष्टि से लगते है। अत: शरीर में संबंधित भाग की वायु ऊर्जा को किसी भी विधि द्वारा कम किया जा सके तो, कितना भी पुराना कंपन क्यों न हो, बन्द हो जाता है। क्योंकि बिना वायु की अधिकता कंपन, कंप

कंपी अथवा चक्कर आ नहीं सकते। नल में पानी कितने ही दिनों से गिर रहा हो, परन्तु जैसे ही नल को बंद करते हैं, पानी का गिरना रुक जाता है। बल्ब कितने ही समय से जल रहा हो, यदि उसमें बिजली का प्रवाह बंद कर दिया जाये तो तुरन्त बल्ब प्रकाश देना बंद कर देता है। पानी पीते ही प्यास शांत हो जाती है। ब्रेक लगाते ही गाड़ी रुक

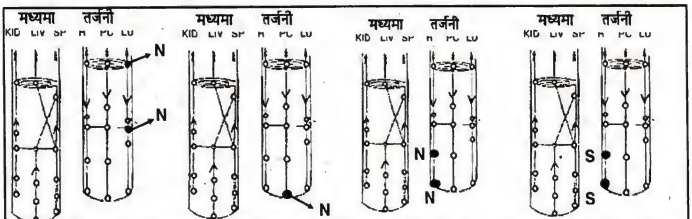

सर्दी जुकाम (चित्र नं. 55) खर्राटों को नियन्त्रित करने हेतु (चित्र नं. 56) रक्तचाप घटाना (चित्र नं. 57) रक्तचाप बढ़ाना (चित्र नं. 58)

जाती है। स्वीच ओफ करते ही बिजली का प्रवाह बन्द हो जाता है। ठीक उसी प्रकार असंतुलित ऊर्जा का

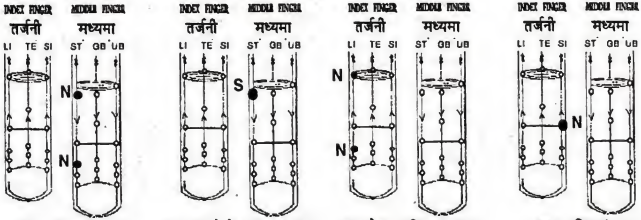

उल्टियां (चित्र नं. 59) प्यास मिटाने हेतु (चित्र नं. 60) दस्त रोकना (चित्र नं. 61) बुखार (चित्र नं. 62)

आवश्यकतानुसार संतुलित करने पर रोग मे तुरन्त राहत मिलती है।

किसी व्यक्ति को निद्रा में खर्राटें आते हों, यदि उस व्यक्ति की सोते समय मस्तिष्क की वायु ऊर्जा को कम कर दी जाये तो खर्राटे आना, उसी दिन से कम होने लग जाते हैं। भले ही वह कितने ही पुराना खर्राटों का रोगी क्यों न हों?

मनुष्य की सर्वाधिक प्राण ऊर्जा हाथ और पैर की अंगुलियों, जीभ एवं आंखों द्वारा प्रवाहित होती है ।

रक्त का संबंध ताप ऊर्जा से होता है और रक्त परिभ्रमण हेतु वायु ऊर्जा की आवश्यकता होती है। परन्तु बिना उष्णता और वायु ऊर्जा की वृद्धि रक्त चाप बढ़ नहीं सकता। अतः रक्त से संबंधित अंग हृदय की वायु और ताप ऊर्जा घटाने से उच्च रक्त चाप कम और बढ़ाने से निम्न रक्त चाप बढ़ने लगता है।

पेट्रोल के बिना जैसे गाड़ी चल नहीं सकती, ठीक उसी प्रकार उल्टियाँ आमाशय में और दस्तें बड़ी आंत में पानी की वृद्धि बिना हो नहीं सकती। वायु के बिना गति संभव नहीं होती। अतः आमाशय की यदि वायु और नमी, कम करने से उल्टियाँ और बड़ी आंत में घटाने से दस्ते बंद हो जाती है।

जैन संत रात में पानी नहीं पीते। परन्तु यदि कभी किसी कारण रात में प्यास से बैचेनी हों तो क्या करें? शरीर में 70 प्रतिशत के लगभग पानी होता है। मात्र आमाशय में पानी की कमी से प्यास लगती है। **अतः प्यास लगने की स्थिति में आमाशय की आद्रता बढ़ा दी जाये तो प्यास की अनुभूति दूर हो जाती है।**

जब तक इन्द्रियों के किसी भी विषय में रुचि होती है अथवा मन लगा रहता है तो प्रायः निद्रा नहीं आती। निद्रा शारीरिक और मानसिक थकावट से आती है। निद्रा जब तक चिन्तन मनन चलता है, प्रायः नहीं आती । मानसिक ऊर्जा का संबंध मस्तिष्क की गर्मी से होता है और विचारों का प्रवाह वायु बिना हो नही सकता। अतः ऐसे व्यक्तियों के सोते समय मस्तिष्क की गर्मी और वायु को कम कर दी जाये तो, चिन्तन बन्द होते ही निद्रा आने लगती है। अनिद्रा के समय व्यक्ति अनायास चिन्तन करता है, जिसका कारण मस्तिष्क की आर्द्रता में वृद्धि। **अतः जो व्यक्ति कुछ न कुछ सोचते रहते हैं उनकी सोते समय मस्तिष्क की नमी घटाने से निद्रा आने लगती है।**

सारी चर्चा का सारांश यही है कि हम रोगों के नामों और लम्बी चोड़ी व्याख्याओं में न उलझे, परन्तु इस बात का अनुभव करें कि शरीर के रोग ग्रस्त भाग में कौनसी ऊर्जा अधिक हो गई है या कम हो गई है। यदि उस ऊर्जा को संतुलित कर लिया जाता है तो प्राण ऊर्जा के प्रवाह में आया अवरोध दूर हो जाता है। उस अंग में प्राण ऊर्जा के प्रवाह से शक्ति आ जाती है और असाध्य संक्रामक और पुराने समझे जाने वाले रोग तुरन्त ठीक होना प्रारम्भ हो जाते हैं। परन्तु हम रोग का निदान करते समय प्रायः उससे पड़ने वाले अन्य प्रभावों की पूर्ण उपेक्षा करते हैं।

पंच ऊर्जाओं का आपसी संबंध

शरीर में सभी प्रमुख ऊर्जाओं का उत्पादन और नियन्त्रण, अलग अलग अवस्थाओं में उनका अनुपात, निश्चित् सिद्धान्तों पर आधारित होता है। प्रत्येक ऊर्जा किसी अन्य ऊर्जा की उत्पत्ति में सहायक होती है, तथा किसी दूसरी ऊर्जा को नियन्त्रित करती है और स्वयं किसी तीसरी ऊर्जा द्वारा नियन्त्रित होती है। गर्मी से आद्रता बढ़ती है। जिसका प्रभाव

पसीने के रूप में स्पष्ट देखा जा सकता है। वायु हलन चलन में सहायक है । संकोचन (शुष्कता) उसको नियन्त्रित रखती है। पांचों ऊर्जाओं के आपसी उत्पादन और नियन्त्रण संम्बन्धों को चित्र तथा निम्न तालिका के माध्यम से सरलता पूर्वक समझा जा सकता है।

प्रमुख ऊर्जा	सम्बन्धित प्रमुख अंग यिन/यांग	ऊर्जा जो उत्पन्न होने में सहयोग देती है (मातृ ऊर्जा)	ऊर्जा जिसको उत्पन्न करती है (पुत्र ऊर्जा)	ऊर्जा जिसको नियन्त्रित करती है।	ऊर्जा जिससे नियन्त्रित होती है।
वायु	यकृत/पित्ताशय	ठण्डक	ताप	नमी	शुष्कता
ताप/गर्मी	हृदय/छोटी आंत मस्तिष्क/मेरूदण्ड	वायु	नमी (आद्रता)	शुष्कता	ठण्डक
आद्रता	तिल्ली/आमाशय	गर्मी	शुष्कता	ठण्डक	वायु
शुष्कता	फेंफड़े/बड़ी आंत	नमी	ठण्डक	वायु	गर्मी
ठण्डक	गुर्दे/मूत्राशय	शुष्कता	वायु	गर्मी	आद्रता

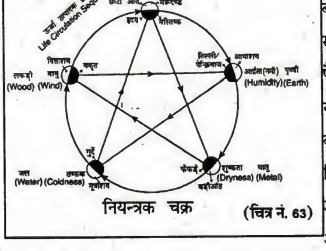

नियन्त्रक चक्र (चित्र नं. 63)

उपचार करते समय यदि किसी अंग की कोई ऊर्जा बढ़ाना हो तो, उसकी मुख्य मातृ ऊर्जा जो उसके उत्पत्ति में सहायक होती है, तथा मुख्य पुत्र ऊर्जा जिस ऊर्जा को वह ऊर्जा पैदा करती है, दोनों की मुख्य ऊर्जाओं को बढ़ाना चाहिये और यदि किसी अंग की ऊर्जा को घटाना हो तो मातृ एवं पुत्र दोनों की ऊर्जा को घटाना चाहिए। इसके साथ साथ जिससे वह ऊर्जा नियन्त्रित होती है और ऊर्जा जिसको, वह नियन्त्रित करती है, उस ऊर्जा को मुख्य ऊर्जा की आवश्यकता के विपरीत घटाना अथवा बढ़ाना चाहिए।

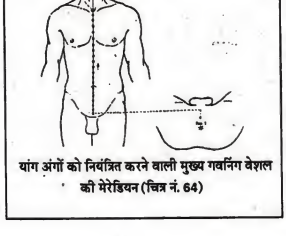
यांग अंगों को नियंत्रित करने वाली मुख्य गवर्निंग वेशल की मेरेडियन (चित्र नं. 64)

शरीर में मास्टर एवं नियंत्रक बियोल मेरीडियन की भूमिका

पेरीकार्डियन (मस्तिष्क) एवं ट्रीपल वार्मर (मेरूदण्ड) शरीर की मास्टर मेरीडियन कहलाती है। अधिकांश रोगों का प्रारम्भ मस्तिष्क से होता है तथा उसकी अभिव्यक्ति में मेरूदण्ड की अहम् भूमिका होती है । अतः उपचार करते समय मुख्य असंतुलित ऊर्जा के अनुरूप इन मेरीडियनों में ऊर्जा को बढ़ाने अथवा घटाने से मुख्य

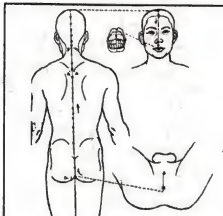
यिन अंगों को नियंत्रित करने वाली मुख्यकनेक्शन वेशल की मेरेडियन (चित्र नं. 65)

ऊर्जा का असंतुलन जल्दी दूर हो जाता है। यिन अंगों (यकृत, हृदय, गुर्दे , तिल्ली, फेंफड़ो) के साथ साथ मस्तिष्क में तथा यांग अंगों (आमाशय, मूत्राशय, पित्ताशय, छोटी आंत , बड़ी आंत) के साथ साथ मेरूदण्ड बियोल मेरीडियन की उसी ऊर्जा को घटाना अथवा बढ़ाना चाहिये, जिससे शरीर में रोग शमन की क्षमता बढ़ जाती है।

शरीर के बीचो बीच आगे और पीछे की तरफ दो मेरेडियन प्रवाहित होती है। आगे के भाग में गुजरने वाली मेरेडियन को कनशेपशन वेशल(सी.वी.) अथवा रेन तथा पीछे के भाग में प्रवाहित होने वाली मेरेडियन को गवरनिंग वेसल मेरेडियन (जी.वी.) अथवा (डू) मेरेडियन कहते हैं। जिनकी बियोल मेरेडियन अंगूठे में होती है। सी.वी. (रेन) मेरेडियन यिन अंगों और जी.वी. (डू) मेरेडियन यांग अंगों के बीच संतुलन रखती है। अत: उपचार करते समय सी.वी. अथवा जी.वी. बियोल मेरेडियन की संबंधित ऊर्जा को घटाया अथवा बढ़ाया जाये तो, शरीर में रोग निवारण क्षमता और अधिक बढ़ जाती है ।

असाध्य रोगों के उपचार हेतु आवश्यक दिशा - निर्देश

उपचार करते समय चिकित्सक अथवा रोगी को सर्व प्रथम यह मालूम करना चाहिये कि उस रोग से संबंधित कौनसी ऊर्जा में असंतुलन हुआ है। जैसे किसी व्यक्ति के घुटनों में दर्द है, इसका मतलब घुटनों में हलन चलन बराबर नहीं होता। अत: दर्द वाले स्थान के समीप गुजरने वाली मेरेडियन की यदि वायु ऊर्जा को बढ़ा दिया जाये और शुष्क और ठण्डक ऊर्जा को कम कर दिया जाये तो, घुटनों में हलन चलन होने लगता है। किसी व्यक्ति को त्वचा संबंधी रोग है । त्वचा का रंग बदल गया है। त्वचा शुष्क ऊर्जा से अधिक प्रभावित होती है। अत: उस स्थान के समीप गुजरने वाली मेरेडियन की शुष्क ऊर्जा और वायु ऊर्जा को संतुलित करने से अच्छे परिणाम आते हैं।

किसी व्यक्ति को मधुमेह का रोग है। जिसका कारण पेन्क्रियाज बराबर कार्य नहीं करता। पेन्क्रियाज स्पलीन से संबंधित है। अत: स्पलीन की मुख्य ऊर्जा (आद्रता) बढ़ाने से मधुमेह को नियन्त्रित किया जा सकता है। किसी व्यक्ति को हृदय, लीवर , गुर्दे अथवा अन्य किसी अंग से संबंधी रोग हो तो, संबंधित अंग की मुख्य ऊर्जा को नियन्त्रित कर उस अंग की क्षमता को बढ़ाया अथवा घटाया जा सकता है। यदि कोई अंग अथवा उपांग निष्क्रिय हो जाता हो तो, उससे संबंधित बियोल मेरेडियन की शुष्क और ठण्डक ऊर्जा को कम कर ताप ऊर्जा को बढ़ाने से रोग ग्रस्त भाग में चेतना की सक्रियता बढ़ने से अपेक्षित लाभ मिलता है । **यदि किसी व्यक्ति के मूत्र संबंधी रोग हों , जैसे मूत्र का रुक रुक कर आना, मूत्र न आना, मूत्र को न रोक पाना, निद्रा में पेशाब आ जाना आदि। ऐसी परिस्थितियों**

में मूत्राशय की आद्रता और वायु ऊर्जा को आवश्यकतानुसार कम अथवा वृद्धि कर संतुलित करने से रोग मुक्त हो सकते हैं।

कभी कभी रोगी के पेशाब में रक्त आने लगता है। रक्त नियन्त्रण ताप ऊर्जा से होता है। अतः यदि मूत्राशय बियोल मेरेडियन की ताप ऊर्जा को कम कर दिया जाये, तो मूत्र के साथ रक्त आना बंद हो जाता है। परन्तु आधुनिक चिकित्सक उसका मूल कारण न खोज पाने के कारण गुर्दे जैसे आवश्यक अंग को शल्य चिकित्सा द्वारा निकालने में भी संकोच नहीं करते और रोगी को जीवन भर के लिये अशक्त बना देते हैं।

प्रमुख ऊर्जा असंतुलन जानने का सरल ढंग

पुराने अथवा संक्रामक रोगों में प्रायः ऊर्जा असंतुलन के लक्षण स्पष्ट प्रकट होने लगते हैं।

रोगी की हथेली को अपने हाथ से स्पर्श कर अनुभव करें :-

१. यदि रोगी की हथेली ठण्डी है तो, समझना चाहिये कि रोगी में ठण्डक ऊर्जा की अधिकता है।

२. यदि रोगी की हथेली गरम है तो, समझना चाहिये कि रोग का कारण ताप ऊर्जा की अधिकता से है।

३. यदि हथेली में पसीना अधिक आता हो तो, रोग का प्रमुख कारण नमी ऊर्जा का असंतुलन होता है।

४. यदि रोगी की हथेली शुष्क हो, त्वचा रुक्ष हो तो, शरीर में शुष्क ऊर्जा अधिक होने का संकेत है।

५. यदि शरीर में कंपकंपी का अनुभव हो अथवा उपरोक्त चारों स्थितियाँ न हों तो, रोग का कारण प्रायः वायु ऊर्जा का असंतुलन होता है। यदि किसी भी विधि द्वारा उन ऊर्जाओ को संतुलित कर स्थिति बदल दी जाये तो रोग सरलता से दूर हो सकता है।

शरीर में संचालक अंग की भूमिका

प्रति दिन की भांति 12 प्रमुख मेरेडियनों में लगभग एक मास तक ब्रह्माण्ड से प्रत्येक मेरेडियन और अंग में प्राण ऊर्जा का प्रवाह अपेक्षाकृत अधिक होता है। इसी कारण मनुष्य की जन्म तिथी के समय जिस अंग में प्राण ऊर्जा का प्रवाह प्रकृति से सर्वाधिक होता है, उससे संबंधित अंग ही प्रायः उस व्यक्ति का प्रमुख संचालक अंग होता है। जब तक वह अंग पूर्ण रूपेण स्वस्थ रहता है, अन्य रोग उसे मृत्यु तक नहीं पहुंचा सकते। परन्तु उस अंग में प्राण ऊर्जा का असंतुलन काफी हानिकारक हो सकता है। मनुष्य की मृत्यु का कारण भी उस अंग में प्राण ऊर्जा के प्रवाह का असंतुलन ही होता है। दूसरी बात जन्म तिथि के आसपास संचालक अंग में ऊर्जा का प्रवाह अपेक्षाकृत अधिक होने से व्यक्ति के रोग होने की अपेक्षाकृत अधिक संभावना रहती है।

इसी कारण किसी व्यक्ति की मृत्यु हृदय रोग से होती है तो कोई गुर्दे, लीवर, फेंफड़े, तिल्ली आदि के रोगों से मरण को प्राप्त होता है। चन्द व्यक्ति प्रथम हृदय आघात में ही चले जाते हैं, क्योंकि उनका संचालक अंग हृदय ही होता है। परन्तु बहुत से व्यक्ति तीन चार बार हृदय आघात आने के पश्चात् भी बच जाते हैं, क्योंकि उनका संचालक अंग दूसरा होता है। मृत्यु के समय सबसे पहले संचालक अंग अपना कार्य करना बन्द करता है, उसके पश्चात् हृदय तथा अन्य अंग। जिस प्रकार सेनापति के हारते ही सेना हार जाती है, उसी प्रकार संचालक अंग की शरीर में प्रभावी भूमिका होती है। अत: जब रोगी मूर्च्छित हो जाये अथवा उसके रोग का निदान संभव न हो, तब सर्व प्रथम संचालक अंग को, ठीक करने को प्राथमिकता देनी चाहिये। साथ ही किसी भी रोग का उपचार करते समय संचालक अंग के संतुलन का विशेष ख्याल रखना चाहिये, जिससे उपचार अधिक प्रभावशाली हो जाता है। अमेरिका के डॉ. ब्लेट के अनुसार शरीर की बारह प्रमुख मेरेडियनों में लगभग एक मास तक प्रत्येक मेरेडियन में अन्य मेरेडियनों की अपेक्षा प्राण ऊर्जा का प्रवाह अधिक होता है। पृथ्वी एक साल में सूर्य का पूरा चक्कर लगा लेती है। पृथ्वी की सूर्य से अलग अलग दूरी के अनुसार ही मौसम बनते हैं और पंच ऊर्जाओं को घटाते अथवा बढ़ाते है। इसी के अनुरूप पंच ऊर्जाओं से संबंधित अंगों की मेरेडियन में भी प्राकृतिक ऊर्जा का प्रवाह प्रभावित होता है, जिसका क्रम निम्नानुसार होता है।

अंग का नाम	अधिक ऊर्जा प्रवाहित होने का समय
1. यकृत मेरेडियन -	8 जनवरी से 6 फरवरी के लगभग
2. फेंफड़े -	7 फरवरी से 8 मार्च के लगभग
3. बड़ी आंत -	9 मार्च से 8 अप्रेल के लगभग
4. आमाशय -	9 अप्रेल से 7 मई के लगभग
5. स्पलीन -	8 मई से 7 जून के लगभग
6. हृदय -	8 जून से 7 जुलाई के लगभग
7. छोटी आंत -	8 जुलाई से 7 अगस्त के लगभग
8. मूत्राशय मेरेडियन -	8 अगस्त से 7 सितम्बर के लगभग
9. गुर्दा -	8 सितम्बर से 7 अक्टूबर के लगभग
10. पेरिकार्डियन -	8 अक्टूबर से 7 नवम्बर के लगभग
11. त्रिअग्नि -	8 नवम्बर से 7 दिसम्बर के लगभग
12. पित्ताशय -	8 दिसम्बर से 7 जनवरी के लगभग

उपर्युक्त समय में आंशिक परिवर्तन स्थानीय भोगोलिक परिस्थितियों के अनुसार हो सकता है।

उपरोक्त तालिका के अनुसार यदि किसी व्यक्ति की जन्म तिथी एक ही समूह के यिन-यांग अंगों के बीच में होती है जैसे- 8 (जनवरी, मार्च, मई, जुलाई, सितम्बर और नवम्बर) के आस पास का समय तब तो निश्चित रूप से उसी ऊर्जा का असंतुलन व्यक्ति के मृत्यु का मुख्य कारण होता है ।

परन्तु यदि जन्म तिथी दूसरे समूह के यिन -यांग अंग के आसपास होती है, जैसे-8 (फरवरी , अप्रेल, जून, अगस्त, अक्टूबर, दिसम्बर) तब प्रमुख संचालक अंग को मालूम करने के लिये दोनों अंगों के प्रभाव का आंकलन करना पड़ता है। प्रारम्भ के दिनों में उस ऊर्जा का प्रभाव बढ़ता है, जो अधिकतम स्थिति तक पहुंच पुन: कम होते हुए, क्रम में अगली मेरेडियन में बढ़ने लगता है। कहने का तात्पर्य यहीं है कि, जिस समय जिस अंग में प्राण ऊर्जा का विशेष प्रवाह होता है, उस समय शरीर की गतिविधियों में उस अंग की प्रभावशाली भूमिका होती है। अत: संचालक अंग के साथ साथ उस अंग की ऊर्जा संतुलन को भी प्राथमिकता देनी चाहिये। सभी मौसमी रोगों का मुख्य कारण उस समय प्रवाहित होने वाली प्राण ऊर्जा का प्राय: असंतुलन ही होता है।

असाध्य रोगों का सरल उपचार

शरीर में ऊर्जाओं का असंतुलन रोगों का मुख्य कारण है। साधारण रोगों में शरीर की पांच मुख्य ऊर्जाओं में से किसी एक ऊर्जा असंतुलन के लक्षण स्पष्ट रूप से प्रकट होते हैं। बाकी अन्य ऊर्जाओं के असंतुलन से पड़ने वाले लक्षण परोक्ष में रहते है। जो प्राय: ध्यान में नहीं आते। अत: सुजोक बियोल मेरीडियन उपचार पद्धति में प्रमुख असंतुलित ऊर्जा के प्रवाह को संतुलित करने मात्र से रोग में तुरन्त राहत मिल जाती है। परन्तु जब रोग जन्मजात हो, पुराना हो, संक्रामक एवं तीव्र हो, जिसके परिणाम स्वरूप शरीर का कोई अंग उपांग अथवा अवयव बराबर कार्य न करता हो, अथवा रोग शल्य चिकित्सा की स्थिति तक पहुंच गया हो, उस समय शरीर में ऊर्जाओं के संतुलन का अनुपात अधिक बिगड़ जाता है। उस स्थिति में रोग की अवस्था के अनुसार यदि प्रमुख असंतुलित ऊर्जा के संतुलन के साथ साथ अन्य सहायक एवं नियन्त्रित करने वाली ऊर्जाओं को भी संतुलित कर दिया जाये तो पुराने हठीले रोगों का उपचार बहुत ही सरल एवं प्रभावशाली हो जाता है। कभी कभी शल्य चिकित्सा की आवश्यकता भी नहीं रहती। **ऊर्जा संतुलन द्वारा शरीर में आये अवरोधों को दूर किया जा सकता है। रक्त संचार सुव्यवस्थित एवं नियन्त्रित किया जा सकता है। शरीर की प्रतिकारात्मक क्षमताओं को बढ़ाया जा सकता है। अंगों की अनावश्यक वृद्धि को रोका जा सकता है। शरीर में विजातीय तत्त्वों के जमा होने से यदि कोई गाँठ बनती है तो, इस पद्धति द्वारा उसको तोड़ा जा सकता है। बिखेरा जा सकता है। गलाया जा सकता है। संकुचित किया जा सकता है। परन्तु एक बार शल्य चिकित्सा करवाने के पश्चात् इस प्रभावशाली उपचार पद्धति की भी सीमाएँ बढ़ जाती हैं। अत: यथा संभव शल्य चिकित्सा**

विविध पुराने रोगों की बियोल मेरेडियन पर ऊर्जा संतुलन हेतु चुम्बक लगाने का सिद्धान्त तथा मुख्य असंतुलित ऊर्जा

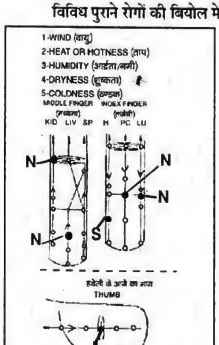

(फेंफड़ों की नमी घटाना)
फेंफड़ों में पानी भरना चित्र नं. 66

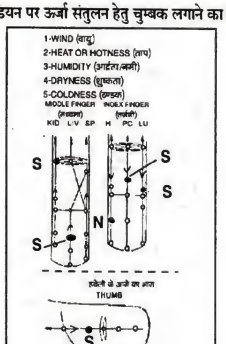

(फेंफड़े की शुष्कता बढ़ाना)
तपेदिक (T.B.) (चित्र नं. 67)

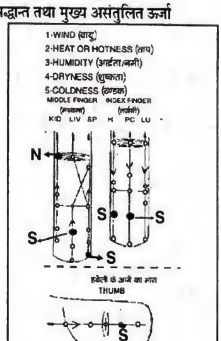

(हृदय का ताप बढ़ाना)
हृदय घात चित्र नं. 68

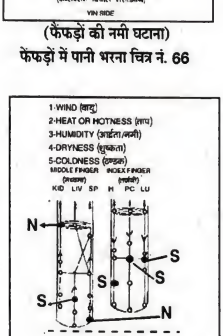

(तिल्ली की नमी बढ़ाना)
मधुमेह (चित्र नं. 69)

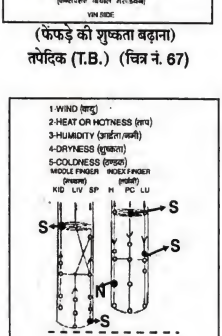

(गुर्दे की ठण्डक बढ़ाना)
गुर्दे का बराबर कार्य न करना चित्र नं. 70

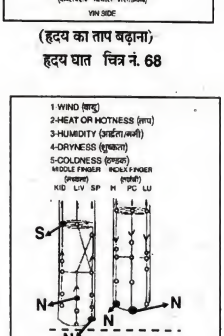

(हृदय की वायु घटाना)
पुराना उच्च रक्त चाप चित्र नं. 71

विविध पुराने रोगों की बियोल मेरेडियन पर ऊर्जा संतुलन हेतु चुम्बक लगाने का सिद्धान्त तथा मुख्य असंतुलित ऊर्जा

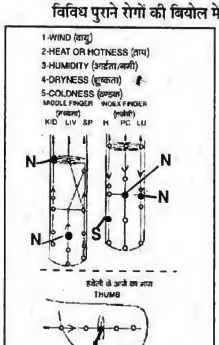

(फेंफड़ों की नमी घटाना)
फेंफड़ों में पानी भरना चित्र नं. 66

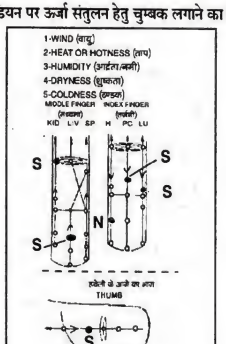

(फेंफड़े की शुष्कता बढ़ाना)
तपेदिक (T.B.) (चित्र नं. 67)

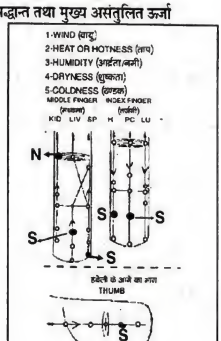

(हृदय का ताप बढ़ाना)
हृदय घात चित्र नं. 68

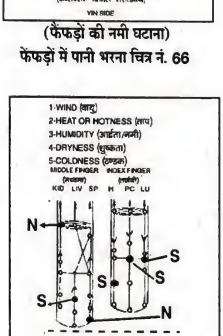

(तिल्ली की नमी बढ़ाना)
मधुमेह (चित्र नं. 69)

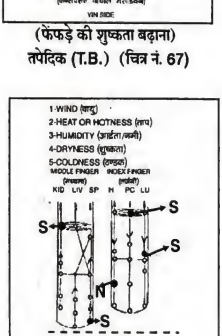

(गुर्दे की ठण्डक बढ़ाना)
गुर्दे का बराबर कार्य न करना चित्र नं. 70

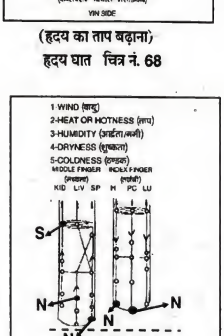

(हृदय की वायु घटाना)
पुराना उच्च रक्त चाप चित्र नं. 71

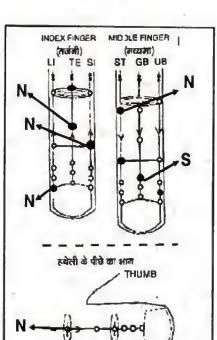

(आमाशय की नमी घटाना)
अजीर्ण (चित्र नं. 72)

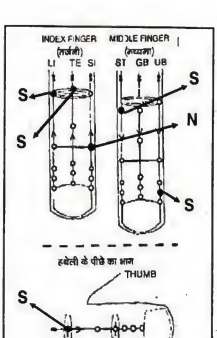

(बड़ी आंत की नमी बढ़ाना)
कब्जी (चित्र नं. 75)

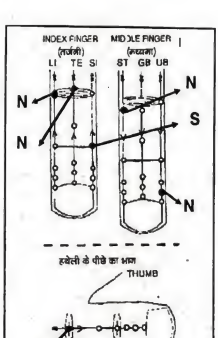

(बड़ी आंत की नमी घटाना)
दस्तें चित्र नं. 74

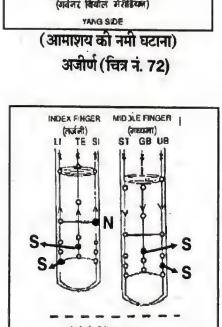

मूत्राशय की ठण्डक बढ़ाना
एपेन्डिक्स (चित्र नं. ७५)

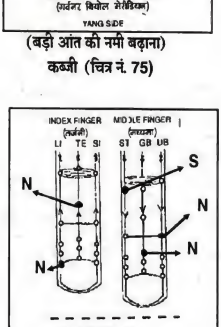

मूत्राशय की गर्मी घटाना
पेशाब में रक्त आना चित्र नं. 76

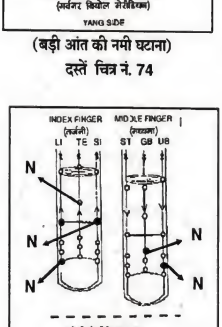

आमाशय की गर्मी घटाना
वियक्त भोजन चित्र नं. 77

से बचना ही स्थायी स्वस्थ जीवन के लिये आवश्यक है।

उपचार करते समय अंग की जिस ऊर्जा को कम करना हो उसके साथ उसके मास्टर एवं नियन्त्रिक मेरेडियन की भी उसी ऊर्जा को कम करना चाहिये तथा उससे संबंधित मातृ एवं पुत्र ऊर्जा के संबंधित मुख्य अंग की मुख्य ऊर्जा को घटाना तथा नियन्त्रक अंग की मुख्य ऊर्जा को बढ़ाना चाहिए । यही सिद्धान्त किसी ऊर्जा को बढ़ाते समय अपनाना चाहिए।

संक्रामक एवं पुराने रोगों में विभिन्न रोगियों की शारीरिक क्रियाओं में परिवर्तन एक जैसा नहीं होता। पूर्व में वर्णन किये गये चन्द उपचार तो जनसाधारण के मार्ग दर्शन हेतु बताये गये हैं, ताकि उन्हें अपने शरीर की क्षमताओं का आभास हो सके। शरीर में सभी रोगों को ठीक करने की अभूतपूर्व क्षमता है। अतः जीवन भर दवाओं के आधार पर जीवन चलाना रोगी की मानसिक दुर्बलता का प्रतीक है। कभी-कभी रोग में बिल्कुल विपरीत ऊर्जाओं के असंतुलन के लक्षण प्रकट होते हैं। अतः उपचार करते समय अनुभवी चिकित्सकों का मार्गदर्शन लेने से उपचार स्थायी एवं प्रभावशाली हो सकता है। जीवन भर दवाओं पर आश्रित रहने की आवश्यकता नहीं रहती। कौन सी ऊर्जा को कितने समय के लिये बढ़ाना अथवा घटाना चिकित्सक के विवेक तथा रोगी द्वारा उपचार से पड़ने वाले सूक्ष्मतम परिवर्तनों की अभिव्यक्ति पर निर्भर करता है। उपचार की यह विधि इतनी सरल, सहज, कष्ट रहित, सस्ती पूर्ण अहिंसक, दुष्प्रभावों रहित, स्वावलम्बी है कि बिना शारीरिक अंगों की विस्तृत जानकारी साधारण जिज्ञासु भी, जो स्वावलम्बी जीवन जीना चाहे तो, चन्द दिनों में सरलता पूर्वक सीख सकता है। स्वयं को शारीरिक रोगों से स्वस्थ रख सकता है।

पंच ऊर्जाओं का भावात्मक और मानसिक स्तर पर प्रभाव

रोग का प्रारम्भ मस्तिष्क से होता है । मस्तिष्क में जैसे विचार, सोच, चिन्तन होता है, उसी के अनुरूप हमारे भाव, स्वभाव और संस्कारों का निर्माण होता है। जैसे संस्कार होते हैं, वैसे ही संवेगों के माध्यम से उनकी अभिव्यक्ति होती है। जैसे संवेग अथवा आवेग होते हैं , उन्ही के अनुरूप संबंधित अंग और मेरेडियन को गतिशील होना पड़ता हैं और उसके अनुरूप बाह्य रूप से हमारा शरीर कार्य करता है। यदि सभी स्तर पर व्यक्ति संतुलित होता है तो उसे पूर्ण स्वस्थ कहते हैं। परन्तु इन चारों स्तरों पर जितना अधिक असंतुलन अथवा क्षमताओं और शक्ति का अपव्यय एवं दुरूपयोग होता है, तो रोग उत्पन्न होने लगते है। जिस स्तर पर रोग अथवा असंतुलन होता है, उसी स्तर पर उपचार करने से उपचार जल्दी हो जाता है।

दूसरी बात प्रत्येक स्तर पर असंतुलन अन्य स्तरों को भी असंतुलित करता है । शरीर का तालमेल समाप्त होने लगता है। उपचार रोग के जितने प्राथमिक अथवा मूल स्तर पर होता है, उतना अधिक स्थायी और प्रभावशाली होता है। जैसे—तनाव, क्रोध, भय आदि के आवेगों से रक्तचाप होता है। अतः यदि उन्हीं आवेगों को दूर कर दिया जाये

तो, रोग के कारण ही नष्ट हो जाते हैं। अधिकांश चिकित्सा पद्धतियाँ प्रायः शारीरिक और ज्यादा से ज्यादा आन्तरिक मेरेडियन स्तर पर उपचार करती है। **कभी कभी दुर्घटना अथवा असाध्य रोगों में शारीरिक स्तर पर उपचार की भी प्राथमिकता हो सकती है। अतः रोग के मूल कारणों को समझ, जिस स्तर का रोग हो, उस स्तर पर रोग मुक्ति के लिए उपचार आवश्यक होता हैं।**

शरीर में रोग चाहे मानसिक स्तर का हो अथवा भावात्मक या शारीरिक, पंच तत्त्वों की विभिन्न मेरेडियन में प्रवाहित होने वाली ऊर्जा असंतुलित होने लगती है। यद्यपि रोग अलग अलग स्तर पर अलग अलग प्रतिक्रियाओं द्वारा प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से अपना प्रभाव दिखलाते हैं, फिर भी एक स्तर, दूसरे स्तर को प्रभावित करता है। हमारी अधिकांश प्रमुख गतिविधियों का संचालन मस्तिष्क से होता है। **हमारी सारी प्रवृत्तियों का कारण हमारा चिन्तन, सोच विचार होता है। शारीरिक क्रियाएँ मस्तिष्क के निर्देशानुसार होती है। प्रायः अधिकांश रोगों की उत्पति मानसिक स्तर पर होती है जो हमारे भावों को प्रभावित करती है । परिणामस्वरूप अन्तःश्रावी ग्रन्थियाँ भावों के अनुरूप स्रावों और हारमोन्स का निर्माण करती है और वे स्राव प्राण तत्त्व के रूप में प्रवाहित हो, अंगों एवं उपांगों की गतिविधियों को प्रभावित करते हैं। अतः उपचार जितने उच्च स्तर का होता है, उतना अधिक प्रभावशाली एवं स्थायी होता है।**

आवेगों तथा संवेगों का विभिन्न अंगों पर प्रभाव

प्रत्येक व्यक्ति का स्वभाव अलग अलग होता है। उसी के अनुरूप उसमें आवेग अभिव्यक्त होते हैं। रोग पैदा करने वाले आवेगों को मुख्यतया पाँच भागों में विभाजित किया जा सकता है। जिनकी अभिव्यक्ति चेहरे, आंखों और वाणी द्वारा प्रायः हो जाती है। आवेग से सर्वाधिक हृदय और उसका यांग अंग छोटी आंत प्रभावित होता है। अंश कालीन आवेगों से पड़ने वाले छोटी आंत के प्रभावों को चित्र में दर्शाया गया है।

1. क्रोध 2. निराशा 3. संताप (तनाव) 4. दुःख 5. भय।

उपरोक्त सभी आवेगों का नियन्त्रण शरीर की ऊर्जा से ही होता है। अतः उसमें संतुलन कर स्वभाव को बदला जा सकता हैं।

यिन-यांग सिद्धान्त के अनुसार पांचों प्रकार की ऊर्जाओं से प्रभावित होने वाले चिन्तन, सोच, आवेग और भावों को मुख्य रूप से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। **एक तो ऐसे आवेग अथवा सोच जो व्यक्ति में संस्कार बन स्थायी हो जाते हैं। उनसे संबंधित रोगों का संबंधित यिन अंगों पर अधिक प्रभाव पड़ता है। परन्तु दूसरे ऐसे**

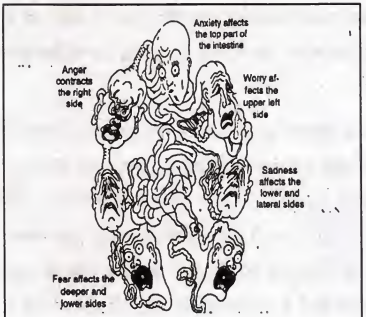

नकारात्मक सोच से छोटी, आंत पर प्रभाव (चित्र नं. 78)

आवेग अथवा सोच जो भले ही अल्पकालीन हों अपना प्रभाव तुरन्त दिखलाते हैं, अतः उनकी भी उपेक्षा नहीं की जा सकती। ऐसे रोगों से संबंधित यांग अँगों की ऊर्जा प्रायः असंतुलित होती है।

यिन आवेग - अर्थात् जो साधारण परन्तु प्रायः स्वभाव के रूप में स्थायी अथवा दीर्घकालीन होते हैं।

यांग आवेग - अर्थात् जो तीव्र , कभी-कभी , परन्तु अल्पकालीन होते हैं।

पंच तत्त्व की तालिका के अनुसार प्रत्येक तत्त्व का एक यिन अंग और एक यांग अंग होता है। **यिन आवेग यिन अंगों को तथा यांग आवेग यांग अंगों को पहले असंतुलित करते हैं।** अतः संबंधित अंगों की असंतुलित ऊर्जा को संतुलित कर आवेगों को नियन्त्रित कर स्वभाव में परिवर्तन किया जा सकता है। जो अन्य चिकित्सा पद्धतियों में संभव नहीं होता है।

यिन (साधारण एवं स्थायी) क्रोध

जो क्रोध लम्बे समय तक रहता है, परन्तु बहुत तीव्र नहीं होता। परन्तु व्यक्ति में उसकी बार बार अभिव्यक्ति होती रहती है। लोक भाषा में हम ऐसे व्यक्ति को क्रोधी स्वभाव वाला कहते हैं। उसकी जड़े गहरी होती है तथा नियमित अभ्यास एवं सजगता से ही उसको रोका जा सकता है। क्रोध का पूर्वाभास हो जाता है। क्रोध का वायु ऊर्जा से सीधा संबंध होता है। क्रोध में मांसपेशिया सक्रिय हो जाती है। क्रोध विवेक को घटाता है। क्रोध का कारण वायु ऊर्जा की अधिकता और विवेक का संबंध नमी ऊर्जा से होता है। ऊर्जा सिद्धान्त के अनुसार भी वायु के बढ़ने से नमी घटती हैं। लीवर, स्पलीन (तिल्ली) को नियत्रित करता है। **अतः जो क्रोधी स्वभाव के होते हैं, उनका लीवर और स्पलीन खराब होने की संभावना अधिक होती है।** इसी कारण अधिकांश क्रोधी व्यक्ति दुबले पतले होते हैं। **स्पलीन खराब हो जाने से रोग प्रतिरोधक क्षमता कम हो जाती है।** *अतः ऐसे व्यक्तियों के लीवर की वायु नियन्त्रित* रखने से क्रोध से बचा जा सकता है।

नियमित रूप से लीवर की शुष्कता और नमी आवश्यकतानुसार बढ़ाने अथवा वायु ऊर्जा को घटाने से क्रोधी स्वभाव को बदला जा सकता है। क्रोध और पीत्त का गहन संबंध होता है। पीत को उग्र करने वाले तामसिक पदार्थों के सेवन से भी क्रोध अधिक आता है। अत: क्रोध के नियन्त्रण हेतु उपर्युक्त उपचार के साथ साथ सात्विक खान-पान अत्यन्त आवश्यक है।

अस्थायी तीव्र क्रोध

कभी कभी साधारण शांत रहने वाले व्यक्तियों, जिनका क्रोधी स्वभाव न होने पर भी अल्पकालीन तीव्र क्रोध आ सकता है जो अधिक खतरनाक हो सकता है। ऐसे क्रोध का पूर्वानुमान भी नहीं लगाया जा सकता। क्रोध की तीवता के कारण व्यक्ति अपना विवेक गंवा देता है। कभी कभी तो हिंसक एवं क्रूर तक बन, तोड़ फोड़ या अकरणीय कार्य करते हुये भी संकोच नहीं करता। क्रोध में कभी कभी दूसरों की हत्या तक कर देता है, अथवा कभी कभी स्वयं की आत्महत्या भी कर सकता है। अत: ऐसे व्यक्तियों को यथा संभव उत्तेजित नहीं करना चाहिये। ऐसे व्यक्तियों के पित्ताशय की वायु को नियन्त्रित करने से तुरन्त क्रोध शांत हो जाता हैं।

वायु ऊर्जा, नमी ऊर्जा को घटाती है और शुष्कता से नियन्त्रित होती है। नमी का संबंध विवेक और सजगता से होता है, तो शुष्कता का संबंध दु:ख के आवेग से। रोने से अथवा विवेक जागृत होने से क्रोध पर सरलता से नियन्त्रण किया जा सकता है।

यिन निराशा *अथवा उतावलापन*

प्रसन्नता के समय चेहरे पर मुस्कराहट अभिव्यक्त होती है। मुंह बंद रहता है। ऐसे व्यक्ति प्राय: तनावमुक्त, होते हैं। वाणी में दु:ख, भय, चिन्ता आदि की बहुत कम अभिव्यक्ति होती है। जब व्यक्ति की प्रसन्नता समाप्त हो जाती है तो, उसमें, निराशा, अधीरता अथवा हतोत्साह की प्रवृत्ति बढ़ने लगती है, जिससे हृदय रोग होने की अधिक संभावना रहती है। ऐसे व्यक्तियों के हृदय की ताप ऊर्जा बढ़ाने से काफी लाभ होता है। प्रसन्नता जब बढ़ जाती है तो, व्यक्ति में संतोष आ जाता है। जिसका संबंध मस्तिष्क यानी पेरिकार्डियन से होता है। अत: जो व्यक्ति जीवन के प्रति निराश हो चुके हैं अथवा जिनके पति-पत्नी में आपसी संबंध संतोषप्रद नहीं होते, यदि उनके पेरिकार्डियन अथवा उसके सहयोगी अंग मेरू दण्ड की आवश्यकतानुसार गर्मी ऊर्जा संतुलित कर दी जाये, तो चमत्कारी परिणाम आ सकते हैं।

यांग (अत्यधिक) निराशा या उतावलापन

ऐसे व्यक्तियों को बहुत ज्यादा खुशी अथवा निराशा पैदा करने की बात एक दम नहीं कहनी चाहिये अन्यथा

खुशी अथवा निराशा के अत्यधिक अनियन्त्रित आवेग के कारण व्यक्ति की कभी कभी मृत्यु तक हो सकती है। बहुत से व्यक्ति बहुत अधीर होते हैं। ऐसे स्वभाव में परिवर्तन हेतु छोटी आंत की शुष्कता तथा मूत्राशय की ठण्डक आवश्यकतानुसार बढ़ानी चाहिये, जिससे अधीरता का आवेग मंद पड़ने लगता है।

यिन (दीर्घकालीन) संताप/तनाव

ऐसे स्वभाव वाले प्रत्येक बात को बड़ी गम्भीरता से सोचते हैं। साधारण प्रतिकूल परिस्थितियों में भी तनाव ग्रस्त तथा बिना बात परेशान रहने से उनको गहरी निद्रा आने में बहुत कठिनाई होती है। ऐसे व्यक्तियों के तिल्ली संबंधी रोग (मधुमेह, एलर्जी, रक्त की खराबी आदि) होने की अधिक संभावना रहती है। इस आवेग का संबंध नमी ऊर्जा से अधिक होता है। अत: जिन व्यक्तियों को निद्रा आने में कठिनाई हों, उनके मस्तिष्क की आर्द्रता बढ़ाने से विवेक और सजगता उत्पन्न होने से अच्छे परिणाम आते हैं। जो सदैव तनाव ग्रस्त रहते हैं, उनके स्पलीन की, आर्द्रता बढ़ानी चाहिये और ठण्डक ऊर्जा कम करनी चाहिये।

यांग (तीव्र) संताप

जिस तनाव का पूर्वाभास न हो, परन्तु यदि थोड़े समय के लिए भी अत्यधिक तीव्रता से आता हो तथा, ऐसा व्यक्ति यदि जीवन से उब चुका हो तो, व्यक्ति अपना आत्म विश्वास खो देता है। कभी-कभी तो आत्महत्या करने तक तैयार हो जाता है। व्यक्ति को उस स्थिति में खाना-पीना, मौज-शौक कुछ भी अच्छा नहीं लगता। तिल्ली-आमाशय की नमी ऊर्जा को संतुलित करने से ऐसी परिस्थितियों को दूर किया जा सकता है।

यिन (दीर्घकालीन) दु:ख

ऐसे व्यक्ति हमेशा अपने दु:ख का रोना रोता रहता है। पुरानी दु:खद घटनाओं की स्मृति होते ही दु:खी होने लगता हैं। उसका चित्त प्रायः नकारात्मक भावों वाला होता है। जिसकी अभिव्यक्ति चेहरे से स्पष्ट झलकती है। फेंफड़े की शुष्कता कम करने तथा ताप ऊर्जा बढ़ाने से स्वभाव में परिवर्तन किया जा सकता है।

यांग (अस्थायी तीव्र) दु:ख

किसी निकट परिजन की मृत्यु अथवा वियोग से व्यक्ति फूट फूट कर रोकर अपने दु:ख की अभिव्यक्ति करता है ऐसी परिस्थिति में व्यक्ति को तुरन्त सांत्वना की आवश्यकता होती है और कभी-कभी वियोग का दु:ख असहनीय होने तथा भविष्य अन्धकारमय लगने से व्यक्ति आत्महत्या तक कर लेता है। आंसू व्यर्थ ही नहीं आते। वे हमारे शरीर से हानिकारक पदार्थों को बाहर निकाल कर शरीर को स्वस्थ रखने में सहायक सिद्ध होते हैं, जो मानसिक तनाव, दु:ख

चिंता आदि की स्थिति में शरीर में बनते हैं। कभी कभी ऐसी परिस्थितियों में न रोने के कारण अनेक रोगभी हो सकते हैं। **तनाव से निपटने की व्यवस्थाओं में रोना भी एक है। तनाव के समय रोने के लिये मौके की तलाश रहती है। जैसे ही किसी ने कुछ कहा, अथवा सुना या देखा रोना आ जाता है। परिस्थिति से निपटने का दूसरा उपाय बड़ी आंत की शुष्कता घटाने तथा ऊष्णता बढ़ाने से तुरन्त आवेग शांत होने लगता है।**

यिन (दीर्घकालीन) भय

प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी भय से प्रायः सदैव त्रस्त रहता है। किसी को अपने मान प्रतिष्ठा की सुरक्षा का भय होता है तो अपराधी को कानून विरुद्ध कार्य करने का, रोगी और वृद्धों को मृत्यु का। अधिकांश रोगों का असाध्य बनने का कारण व्यक्ति में निर्भयता का अभाव और मन ही मन भयभीत रहने की प्रवृत्ति होती हैं। भय की स्थिति में उपचार प्रभावशाली नहीं हो सकता। अपितु रोग बढ़ता ही रहता हैं। इसी कारण किसी भी रोगी को मारणांतिक रोग का पता लग जाने के पश्चात् भी नहीं बतलाना चाहिये। ऐसे स्वभाव वालों के गुर्दों की ठण्डक ऊर्जा घटाने व उष्णता बढ़ाने से व्यक्ति में निर्भयता बढ़ने लगती है।

यांग (तीव्र) भय

यह अचानक होता हैं तथा व्यक्ति को बीमार बनाता है, जैसे- कर निरीक्षक को देख व्यापारी को पकड़े गये अपराधी को पुलिस से, मायावी आचरण का भेद खुलने पर प्रतिष्ठित व्यक्ति को, इसी कारण अत्यधिक भयावह स्थिति में व्यक्ति को पेशाब तक आ सकता है। अतः ऐसे व्यक्तियों के मूत्राशय की ठण्डक ऊर्जा घटायी जावे और छोटी आंत की ताप ऊर्जा बढ़ायी जाये तो भय की स्थिति में आशातीत सुधार हो सकता हैं।

सारे यिन मेरेडियन का एक किनारा हृदय के आसपास होता हैं। अतः जिन व्यक्तियों में उपरोक्त आवेगों में से कोई आवेग की आदत अथवा स्वभाव बन गया हो, उस स्थिति में, साथ में हृदय की ऊर्जा को भी संतुलित करने से परिणाम जल्दी और अच्छे आते हैं। ठीक उसी प्रकार सारी यांग मेरेडियन का एक किनारा मस्तिष्क में अवश्य होता हैं। अतः अस्थायी तीव्र रोगों में मस्तिष्क मेरुदण्ड में संतुलन भी करना आवश्यक होता है।

ऊर्जाओं द्वारा मानसिक उपचार

मनुष्य एक चिन्तनशील प्राणी है। जैसे उसके भाव होते हैं, वैसा ही विचार उसके मस्तिष्क में होने लगता है। कुछ विचार मौलिक होते हैं तो, कुछ मात्र इच्छाओं और कामनाओं तक ही सीमित होते हैं। कुछ विचार अपनी क्षमताओं के अनुरूप अपनी प्रवृत्तियों के प्रति सजग और सचेत करने वाले होते हैं। चन्द व्यक्तियों के विचार और धारणायें आसानी से नहीं बदलती। जब कि चन्द व्यक्तियों के विचारों में बुद्धि, विवेक और अनुभव का समावेश होता हैं।

यिन-यांग सिद्धान्त के अनुसार जब ये विचार दीर्घकालीन होते हैं तो, मस्तिष्क पेरीकार्डियन मेरेडियन को विशेष प्रभावित करते हैं। जबकि यदि वे अल्पकालीन होते हैं तो हमारे नाड़ी संस्थान और मेरु दण्ड से संबधित मेरेडियन को अधिक प्रभावित करते है। इन दोनों मेरेडियन की वायु ऊर्जा मौलिक विचारों को, उष्ण ऊर्जा इच्छा अथवा कामनाओं को, नमी ऊर्जा विवेक और सजगता को, शुष्क ऊर्जा दृढ एवं स्थिर विचारों को तथा ठण्डक ऊर्जा बुद्धि और अनुभव को संतुलित रखती हैं।

अतः जैसी हमारी मानसिक स्थिति होती है, उसके अनुरूप पंच ऊर्जाओं का संतुलन कर मानसिक स्तर पर रोगों का प्रभावशाली ढंग से उपचार किया जा सकता है। जीवन की अलग अलग अवस्थाओं में व्यक्ति अलग अलग मानसिक स्तर पर जीता है। बचपन में उसका मन सहज और सरल होता है। अतः बच्चों के प्रश्नों में बड़ी मौलिकता होती हैं।

परन्तु जब वे थोड़े बड़े हो जाते हैं तो उन्हे अपने जीवन में कुछ प्राप्त करने अथवा बनने की भावना बलवती होने लगती है। अतः उनके विचारों में कामनाएँ और इच्छाओं का बाहुल्य होता है। उसके बाद की अवस्था में जब अपनी योग्यता एवं क्षमताओं का पता चल जाता है, तो व्यक्ति जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये अधिक सजग, सतर्क एवं सचेत अवस्था में जीने लगता है। जो कुछ उसने विद्या का उपार्जन किया है, उसके अनुरूप व्यवसाय को चुनना और अपने अपने क्षेत्र में अधिकतम विकास करना अथवा उपलब्धियाँ प्राप्त करना ही उसका प्रमुख मानसिक सोच होता है। फिर वह चाहे राजनैतिक क्षेत्र हो या व्यावसायिक अथवा आध्यात्मिक क्षेत्र ही क्यों न हों ? अपनी योग्यता के अनुरूप विकास करते करते उसे जीवन की वास्तविकता का बोध होने लगता हैं। उसकी शारीरिक क्षमता क्षीण होने लगती है। अतः उसके विचारों में स्थिरता आने लगती है। अनायास कुछ पाने के लिए चारों तरफ विचारों की दौड़ समाप्त होने लगती है, और अंत में वृद्धावस्था आने से उसे मृत्यु सामने दिखाई देने लगती है। अतः वह प्रत्येक कार्य बहुत सोच समझ कर ही प्रायः करता है। यह तो एक साधारण नियम है, परन्तु प्रत्येक व्यक्ति में उपलब्ध ऊर्जाओं के अनुरूप प्रत्येक अवस्था में उपर्युक्त सिद्धान्त के विपरीत भी सोच और मानसिकता हो सकती है। अतः सकारात्मक विचारों को बढ़ा और नकारात्मक विचारों को घटा संतुलित कर मानसिकता में सरलता से परिवर्तन किया जा सकता है। **पेरिकार्डियन अथवा मेरुदण्ड की शुष्क ऊर्जा को आवश्यकतानुसार कम करने तथा उष्ण ऊर्जा को बढ़ाकर नियन्त्रण करने से सकारात्मक सोच विकसित किया जा सकता है।**

1. यदि कोई व्यक्ति उदास अथवा चिन्तित रहता हो तो, मस्तिष्क की वायु बढ़ाने से उसको नये नये मौलिक विचार आने लगेंगे और उदासी कम होने लग जायेगी।

२. बहुत से व्यक्ति रात में सोते समय भी कुछ न कुछ चिन्तन करते रहते हैं। फलतः उन्हे अनिद्रा का रोग

हो जाता है। अतः ऐसे व्यक्तियों के सोते समय मस्तिष्क की नमी बढ़ा दी जाये तो उनके मस्तिष्क में सजगता विकसित होने से व्यर्थ चिन्तन समाप्त होने लगेगा और निद्रा आने लग जायेगी। परन्तु जिन व्यक्तियों को भय के कारण निद्रा न आती हो तो सोते समय मस्तिष्क मेरुदण्ड की आवश्यकतानुसार ठण्डक ऊर्जा को कम करने से अच्छे परिणाम मिलने लगते है। यांग मेरेडियनों का एक छोर मस्तिष्क क्षेत्र में होता है। अतः यांग ऊर्जाओं की अधिकता से अनिद्रा का रोग हो सकता है, जबकि यिन ऊर्जाओं की अधिकता से अधिक निद्रा आ सकती है। अतः अनिद्रा अथवा अतिनिद्रा का कारण मालूम कर, उसको दूर करना चाहिये।

3. जिन व्यक्तियों की मतिभ्रम हो जाती है अथवा सोच नकारात्मक हो जाता है तो, मस्तिष्क की ताप ऊर्जा को घटाने से अच्छे परिणाम मिलने लगते हैं।

4. यदि कोई पागल हो जाता है, तो उसमें बुद्धि और विवेक का अभाव हो जाता हैं। ऐसे व्यक्तियों के मस्तिष्क की ठण्डक ऊर्जा को बढाने से लाभ मिलता हैं।

5. जो लोग धूम्रपान करते हैं अथवा दुर्व्यसनों का सेवन करते हैं, उनमें दृढ संकल्प शक्ति का अभाव होता है, अतः ऐसे व्यक्तियों के मस्तिष्क की शुष्क ऊर्जा को बढ़ाया जाये और ताप ऊर्जा को घटाया जाये तो संतोषप्रद परिणाम मिलते हैं।

6. जिन व्यक्तियों को भय अधिक लगता है, उनके मस्तिष्क की ठण्डक ऊर्जा को संतुलित अर्थात् कम करने से अच्छे परिणाम आते है।

7. यदि कोई व्यक्ति बहुत ज्यादा बोलता है तो उसका कारण उसके मस्तिष्क में ताप ऊर्जा अधिक होती है। अतः आवश्यकतानुसार उस ऊर्जा को कम करने से तुरन्त लाभ मिलता है।

8. यदि कोई व्यक्ति हकलाता है और वह बच्चा है तो उसमें वायु ऊर्जा का असंतुलन होता है और यदि वह व्यक्ति बड़ा हो तो भय के कारण ऐसी स्थिति हो सकती है। अतः ऐसे बच्चों के मस्तिष्क की वायु कम करने और बड़ो के मस्तिष्क की ठण्डक ऊर्जा कम करने से संतोषजनक परिणाम मिलते हैं।

इस प्रकार मस्तिष्क की ऊर्जाओं को संतुलित कर मानसिक रोगों पर सरलता पूर्वक प्रभावशाली ढंग से नियन्त्रण किया जा सकता है। मानसिक स्तर पर किया गया उपचार प्रायः अन्य स्तरों पर किये गये उपचार से अधिक प्रभावशाली एवं लाभकारी होता है।

ऊर्जा संतुलन से कषाय शमन

क्रोध, मान (अहं), माया (छल-कपट) और लोभ आदि चार कषाय वृत्तियां कहलाती है। इनके कारण आत्मा कर्म बन्धनों से विकृत हो जाती है। अपने परम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त करने हेतु उनका पूर्ण क्षय आवश्यक होता है। प्रायः प्रत्येक साधना, उपासना और आराधना का उद्देश्य कषायों को कम कर समाप्त करने का होता है। कषाय की उपस्थिति में मन, मस्तिष्क और भावों की स्थिति विकार ग्रस्त होती है। लेश्या और नकारात्मक भाव प्रबल होते हैं ।

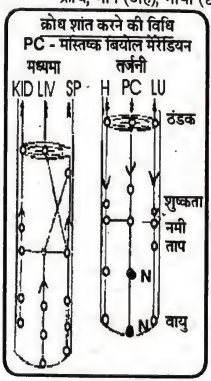

कषाय का संबंध मन के भावों से होता है। स्वाध्याय, ध्यान एवं साधना की विविध पद्धतियों के निरन्तर अभ्यास एवं सम्यक् पुरुषार्थ द्वारा उनको शमन किया जा सकता है। कषाय की अभिव्यक्ति शरीर एवं वाणी के माध्यम से होती है। प्रत्येक कषाय की परिस्थिति उत्पन्न होने पर व्यक्ति के मस्तिष्क की ऊर्जा असंतुलित होने लगती है, जो बाद में शरीर के विभिन्न तंत्रों को प्रभावित करती है। यदि शरीर के तंत्र उस समय मस्तिष्क का सहयोग न करें अर्थात् कोई प्रतिक्रिया न करे तो कषाय पर सरलता से नियन्त्रण रखा जा सकता है। कषाय के भाव मस्तिष्क में पैदा होते हैं। प्रत्येक कार्य के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है।

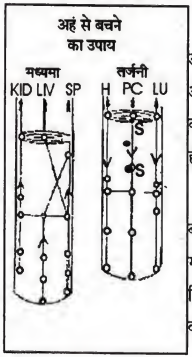

अतः उनको संचालित एवं नियन्त्रित करने वाली अथवा सहयोग देने वाली ऊर्जाओं को किसी भी विधि द्वारा नियन्त्रित कर दिया जाए तो कषाय भावों में मन्दता आ सकती है। नियमित प्रयास, अभ्यास और विवेक पूर्ण सम्यक् आचरण से संस्कारों को बदला जा सकता है। कम से कम कषाय बढ़ाने वाली परिस्थितियों का पूर्वाभास होने की स्थिति में तो निम्न प्रयोगों से लाभ उठाया जा सकता है।

क्रोध का शमन – जब विवेक की कमी होती है और मस्तिष्क में गर्मी बढ़ती है, तो क्रोध आने की संभावना रहती है। विवेक का संबंध नमी ऊर्जा से तथा गर्मी का संबंध ताप ऊर्जा से होता है। ताप ऊर्जा बढ़ने से शुष्क ऊर्जा कम होती है, जिसके परिणाम स्वरूप वायु ऊर्जा बढ़ती है। दूसरी तरफ नमी ऊर्जा की कमी से भी वायु ऊर्जा बढ़ जाती है। **मस्तिष्क में गर्मी और वायु के बढ़ने से ही क्रोध आता है।**

वायु बढ़ने से ही मांसपेशियों में उत्तेजना आती है। अतः मस्तिष्क की वायु और ताप ऊर्जा को बटन चुम्बक का उत्तरी ध्रुव (N Pole) स्पर्श कर कम कर दिया जाए अथवा नमी ऊर्जा और शुष्क ऊर्जा को बढ़ा दिया जाए तो क्रोध आने की संभावना कम हो जाती है।क्रोध आने की परिस्थितियों में यह प्रयोग हमारे सोच और चिंतन को बदल देता है तथा हम क्रोध से बच सकते हैं।

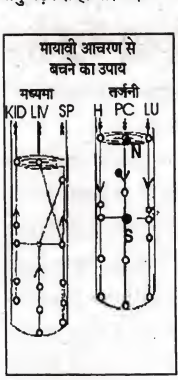

अहं का दमन – जब व्यक्ति को घमण्ड आता है तो व्यक्ति अपने आपको दूसरों से ज्येष्ठ और श्रेष्ठ समझ बहुत प्रसन्न होने लगता है। जिससे उसकी ताप ऊर्जा बढ़ने लगती है । उत्साह और जोश की अभिव्यक्ति प्रमुख होने से जीवन की वास्तविकता का बोध गौण होने से दुःख और भय अस्थायी रूप से दगब जाता है। अर्थात् मस्तिष्क की ठण्डक और शुष्क ऊर्जा कम हो जाती है। अतः अहं अथवा घमण्ड का प्रसंग उपस्थित होने की संभावना वाली परिस्थितियों से पूर्व यदि मस्तिष्क की शुष्कता और ठण्डक बढ़ा दी जाए अथवा ताप ऊर्जा को कम कर दिया जाये तो अहं कम हो सकता है। मस्तिष्क में अहं के दुष्प्रभावों का चिंतन प्रारम्भ हो जाता है । उसका भय अहं पर ब्रेक लगाने का कार्य करता है।

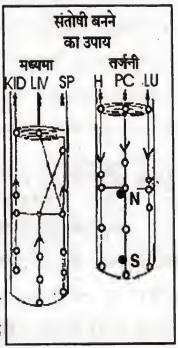

माया का विसर्जन – मायावी व्यक्ति को सदैव इस बात का डर रहता है कि कहीं उसकी पोल न खुल जाए। अर्थात् उस स्थिति में व्यक्ति की प्राय ठण्डक ऊर्जा बढ़ने की संभावना रहती है। ठण्डक ऊर्जा नमी से नियन्त्रित होती है और ताप ऊर्जा को नियन्त्रित करती है। अतः मस्तिष्क की नमी और ताप ऊर्जा को संतुलित रखा जाए तो मनुष्य में विवेक जागृत होने से कपट, छल, मायावी आचरण बुरा लगने लगता है और माया कषाय मंद होने लगती है।

लोभ का अभाव–लोभी व्यक्ति हमेशा अपने लाभ की बात सोचता है। स्वार्थी और असंतोषी होता है तथा प्रायः अकारण दुःखी रहता है। ये सारे लक्षण मस्तिष्क में शुष्क ऊर्जा की वृद्धि के सूचक होते हैं। अतः मस्तिष्क की शुष्क ऊर्जा घटाने से ताप ऊर्जा बढ़ती है जो सच्ची प्रसन्नता की सूचक होती है। इस प्रकार लोभ मनोवृत्ति कम होने लगती है।

प्रत्येक ऊर्जा विविध कार्य करती है। अतः ऊर्जा को संतुलित करते समय इस बात का विवेक आवश्यक है कि जिस समय, जिस कषाय की प्रधानता हो, उसको कम करने को प्राथमिकता देनी चाहिए। इस बात का विवेक रखे कि अन्य ऊर्जाओं में अनावश्यक असंतुलन न बढ़। ऊर्जा संतुलन का प्रभाव तुरन्त पड़ने लगता है । नियमित अभ्यास एवं सजगता से कषाय वृत्तियों में सरलता से मन्दता लायी जा सकती है।

महावीर का स्वास्थ्य चिन्तन

महावीर का दर्शन मौलिक रूप से स्वास्थ्य और चिकित्सा का दर्शन नहीं है, वह तो आत्मा से आत्मा का दर्शन है। परन्तु जब तक आत्मा मोक्ष को प्राप्त नहीं हो जाती तब तक, आत्मा शरीर के बिना रह नहीं सकती। शरीर की उपेक्षा कर आत्म-शुद्धि हेतु साधना भी नहीं की जा सकती। महावीर की दृष्टि में शरीर का आत्म-साधना हेतु महत्त्व होता है, इन्द्रियों के विषय भोगों के लिए नहीं। उनका अधिकांश चिन्तन आत्मा को केन्द्र में रख कर हुआ, परन्तु उन्होंने शरीर के निर्वाह हेतु केवल ज्ञान के आलोक में, जिस सम्यक् जीवन शैली का कथन किया, वह स्वतः मानव जाति के स्वास्थ्य का मौलिक शास्त्र बन गया। महावीर के स्वास्थ्य दर्शन को समझने के लिए उनके द्वारा कथित आत्मा और शरीर के संबंधों तथा एक दूसरे को प्रभावित करने वाले तथ्यों का ज्ञान आवश्यक हैं।

आत्म-शुद्धि और चेतना का विकास

महावीर की दृष्टि में शुद्धात्मा-अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त शक्ति और अनन्त आनन्द का स्रोत होती है तथा उस अवस्था में स्वास्थ्य की कोई समस्या नहीं होती। जितनी-जितनी उसकी मलिनता, उतनी-उतनी स्वास्थ्य की समस्या। परन्तु जब वह कर्मों के आवरणों से आच्छादित हो जाती है तो, आवरण के घनत्व के अनुसार उसकी सारी शक्तियां सीमित हो जाती है तथा, वह मुख्य रूप से नरक , तिर्यञ्च, मनुष्य और देव गति में भटकती रहती है। उसके जन्म और मृत्यु का चक्र चलता रहता है। कर्मों के अनुसार ही किसी भी योनि में उसे शरीर के साथ इन्द्रियाँ और मन उपलब्ध होते हैं। एकेन्द्रिय वाले जीव में मात्र स्पर्शेन्द्रिय अर्थात् शरीर ही होता है। दो इन्द्रिय वाले जीवों में शरीर के साथ साथ रसनेन्द्रिय, तीन इन्द्रिय जीवों को शरीर, रसनेन्द्रिय और घ्राणेन्द्रिय (गंध का ज्ञान कराने वाली) मिलती है। चार इन्द्रिय वाले जीवों को स्पर्शेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय,घ्राणेन्द्रिय और चक्षु इन्द्रिय (नेत्र) प्राप्त होते हैं। पंचेन्द्रिय जीवों को चारों इन्द्रियों के साथ श्रवणेन्द्रिय (सुनने की शक्ति) मिलती है। चेतना का और अधिक विकास होने पर उसे पांचों इन्द्रियों के साथ मन मिलता है।इस दृष्टि से मानव कर्मों से युक्त आत्म चेतना के विकास का सर्वोच्च स्तर होता है।

षट् द्रव्य का सिद्धान्त

किसी भी पदार्थ के मौलिक गुण उसमें सदैव विद्यमान रहते हैं। भले ही उनके अनुपात में घटत बढ़त हो सकती है, परन्तु उनकी अवस्थाएं प्रति क्षण बदलती रहती हैं। पदार्थ के गुण एवम् पर्याय (अवस्था) के योग को महावीर ने द्रव्य बतलाया। प्राणी मात्र की समस्त परिस्थितियों का निर्माण, विनाश, संचालन और नियन्त्रण जिन शाश्वत द्रव्यों

के बिना संभव नहीं होता, ऐसे छः द्रव्यों का महावीर ने कथन किया, जो अपने अपने गुणों के अनुसार इस लोक की सारी गतिविधियों के संचालन में सहयोग देते हैं।

धर्मास्तिकाय

जो द्रव्य हलन-चलन में सहायक होता है, जिसके अभाव में हलन-चलन संभव नहीं हो सकता। जहाँ जहाँ धर्मास्तिकाय होता है वहीं तक जीव गमनागमन कर सकता है। **मृत्यु के पश्चात् जीव एक योनि से दूसरी योनि में, इसी द्रव्य की सहायता से जाता है। स्थूल जगत में हलन-चलन में सहायक वायु उस अवस्था में प्रभावहीन हो जाती है। आधुनिक विज्ञान भी उस ऊर्जा को अभी तक नहीं खोज पाया, जिसका महावीर ने कथन किया।**

अधर्मास्तिकाय

यह द्रव्य हलन-चलन में अवरोध उत्पन्न करता है। अर्थात वाहन में ब्रेक की भांति कार्य करता है। **इसी द्रव्य के कारण शरीर में सारे अंग, उपांग, स्नायु, अस्थियाँ, इन्द्रियाँ आदि अपने अपने स्थान पर स्थिर रह सकते हैं। जिसके लिए भी आधुनिक विज्ञान के पास भी कोई तर्क संगत स्पष्टीकरण नहीं है।**

आकाशास्तिकाय

यह द्रव्य अन्य सभी पदार्थों को स्थान देता है। इसी कारण हलन चलन और तरंगों आदि का प्रवाह संभव होता हैं।

पुद्गलास्तिकाय

शब्द, गंध, रस, स्पर्श एवं वर्ण पुद्गलों आदि से युक्त पदार्थ पुद्गल होता है। सारा लोक पुद्गलों से ठसाठस भरा हुआ है। ये पुद्गल इन्द्रियों, मन आदि के द्वारा ग्राह्य होते हैं। जैसे - जैसे पुद्गलों को ग्राह्य किया जाता है, उसी के अनुरूप परिस्थितियों का निर्माण होने लगता हैं। **एक ही स्थान पर बोया गया नीम और गन्ना, इसी कारण समान जल वायु, धरती, पानी, धूप एवं हवा के बावजूद, गन्ना मधुर रस वाला और नीम में कड़वा स्वाद विकसित होता है। शरीर में इन पुद्गलों का आवश्यक अनुपात न होना अथवा अनावश्यक पुद्गलों की अधिकता से होने वाली स्थिति से रोग उत्पन्न होते हैं।**

गंध, स्पर्श, स्वाद, ध्वनि, त्राटक आदि चिकित्साएँ इन पुद्गलों के सिद्धान्तों पर कार्य करती है, तथा उन्हें संतुलन करने से ही प्रभावशाली बनती है। पुद्गलों के प्रसारण एवं पुनः आकर्षण के कारण ही सारे संचार माध्यम, इंटरनेट ,टी.वी. टेलीफोन, कम्प्यूटर, रेडियों आदि कार्य करते हैं। सारे शारीरिक और मानसिक रोगों का कारण भी अशुभ कर्म

के पुद्गलों का उद्भव एवं असंतुलन से होता हैं। **महावीर ने बिना किसी सूक्ष्म यंत्र इन पुद्गलों का कथन कैसे किया, आधुनिक विज्ञान के शोध का विषय है ?**

काल द्रव्य

समय जो पुराने को नवीन और नवीन को पुराना बनाता है। समय, सैकेण्ड, मिनट, घंटे, दिन, मास, वर्ष, दिन, रात आदि काल द्रव्य के सूचक होते हैं।

जीवास्तिकाय

उपयोग युक्त चेतना मय तत्त्व जीव होता है। जिनमें ये दोनों गुण न हों, वे अजीव होते हैं। महावीर ने संसार के सारे पदार्थों का दो प्रकार से कथन किया। जीव या चेतन और अजीव अर्थात जड़ या अचेतन। **जीव में अनुभव और संवेदन करने की क्षमता होती है। स्वास्थ्य का सारा चिन्तन और समस्याएँ जीव को ही होती है।** मृत्यु के पश्चात् शरीर में से चेतना के निकल जाने के पश्चात, इसी कारण जड़ शरीर को जल्दी से जल्दी नष्ट कर दिया जाता है। क्योंकि मृत शरीर में जीव के लक्षण समाप्त हो जाते हैं। **अजीव में संवेदन और अनुभव करने की क्षमता नहीं होती और न उनमें सजातीय पदार्थों को पैदा करने की क्षमता ही होती है। जीव सदैव अरूपी होता है, परन्तु उसका अनुभव किया जा सकता है। परन्तु अजीव रूपी और अरूपी दोनों हो सकते हैं। जो स्थूल दृष्टि अथवा भौतिक यंत्रों से देखे जा सकते हैं, उन्हें रूपी पदार्थ, परन्तु जिनको इन माध्यमों से देखना संभव नहीं होता, वे अरूपी पदार्थ कहलाते हैं। सभी जीवों में आत्मा समान होती है, परन्तु कर्मों के आवरण के अनुसार चेतना के विकास में अन्तर होता है। इसी आधार से प्रथम पांच द्रव्य अजीव की श्रेणी में आते हैं, जबकि छठा द्रव्य जीव होता है। सभी द्रव्य एक दूसरे से प्रभावित होते हैं।**

महावीर की शरीर संबंधी अवधारणा

महावीर की दृष्टि से जब जीव मानव योनि में आता है तो, उसे पाँच प्रकार के शरीर मिल सकते हैं।

1. **औदारिक या स्थूल शरीर**– जो पंच द्रव्यों और सप्त धातुओं (अवयवों) से बनता है।
2. **वैक्रिय शरीर**–जिसको इच्छानुसार घटाया , बढ़ाया अथवा छोटा-बड़ा किया जा सकता है।
3. **आहारक शरीर**–जिसकी संरचना उच्च साधकों द्वारा संकल्प की तरंगों से की जा सकती है। साधारण व्यक्ति नहीं कर सकता।
4. **तेजस शरीर** (विद्युत शरीर)–यह सूक्ष्म शरीर होता है।

5. **कार्मण अथवा कर्म शरीर** – सूक्ष्मतम शरीर होता है, जो कर्म पुद्गलों से बनता है।

वैक्रिय और आहारक शरीर की प्राप्ति मानव जीवन में चेतना की उत्कृष्ट स्थिति वाले साधकों को साधना द्वारा ही प्राप्त होती है। अत: मोटे रूप में प्रत्येक मानव को स्थूल, सूक्ष्म और सूक्ष्मतम शरीर ही प्राप्त होते हैं। **तेजस् और कार्मण शरीर आत्मा की मलीन अवस्था में सदैव उसके साथ रहते हैं तथा मृत्यु के समय जब तक आत्मा पूर्ण रूप से शुद्धावस्था को प्राप्त नहीं हो जाती, स्थूल शरीर ही नष्ट होता है, सूक्ष्म शरीर समाप्त नहीं होता।** परन्तु अधिकांश आधुनिक प्रचलित चिकित्सा पद्धतियाँ उपचार को मात्र स्थूल शरीर तक ही सीमित रखती है । रोग के मूल कारण कर्मों तक उनका सोच प्राय: नहीं होता। इसी कारण जन्म जात रोगों एवं मृत्यु का रहस्य उनके पूर्ण समझ में नहीं आ पाता।

इन तीनों शरीरों का स्वास्थ्य के साथ गहरा संबंध होता है। शक्तिशाली सूक्ष्म दर्शक यंत्रों की खोज से भी स्थूल शरीर के रहस्यों को तो जाना जा सकता है । परन्तु सूक्ष्म और सूक्ष्मतम शरीर को अभी भी नहीं देखा जा सकता। फिर भी उनका स्थूल शरीर पर प्रभाव पड़ता है। जिसका प्रत्यक्ष अनुभव किया जा सकता है। **कर्म शरीर में जितने स्पन्दन होते हैं, वे स्थूल शरीर में अपना संबंध स्थापित करते हैं। स्थूल शरीर सूक्ष्म शरीर का संवादी होता है।**

चित्त, भाव, मन, वाणी और शरीर का संबंध

भगवान महावीर ने आत्मा के अस्तित्व से जुड़े चित्त, मन, भाव, वाणी, शरीर, इन्द्रियों आदि का जितना स्पष्ट तथ्यपरक विवेचन किया, उतना अन्यत्र नहीं मिलता। जीवन से हमारा परिचय शरीर, वाणी और कार्यों के माध्यम से होता है। जिसका आधार मन और चित्त से भी परे हमारी आत्मा है। हमारी आत्मा चैतन्य का एक सूर्य के समान होती है और उसकी एक किरण का नाम होता है चित्त । चित्त चैतन्य मय होता है तथा सूक्ष्म शरीर द्वारा संचालित होता है। चित्त से ही भाव मन और वाणी का उत्पाद होता है। अत: भाव, मन और वाणी चित्त द्वारा संचालित होते हैं। चित्त मन की भांति अस्थायी नहीं होता है । दीर्घ जीवी होता है। हमारी सारी चेतना का प्रवाह चित्त से ही होता है। सूक्ष्म शरीर का दूसरा उत्पाद होता है, हमारा स्थूल शरीर एवं इन्द्रियाँ। हमारे मन का कोई भाव हम छिपाकर नहीं रख पाते। वह किसी न किसी रूप में प्रकट हो ही जाता है। परोक्ष रूप से छिपे हुए भाव भी हमारे अन्दर निरन्तर क्रियाशील रहते हैं और अपनी अभिव्यक्ति का मार्ग खोज निकालते हैं। शरीर में पनपने वाले असाध्य रोग भी हमारी छिपी भावनाओं को ही अभिव्यक्त करते हैं। हमारी अन्त:स्रावी ग्रन्थियाँ भाव के अनुसार ही शरीर में हारमोन्स अथवा रसायनों का निर्माण करती है फलस्वरुप हम अच्छी या बुरी, करणीय अथवा अकरणीय प्रवृत्तियाँ करने लगते हैं।**अत: अधिकांश रोगों का मूल कारण प्राय: भावनात्मक स्तर पर होता है और जब तक उसमें परिवर्तन नहीं आता, आरोग्य लाभ नहीं मिल सकता।** क्षणिक आने वाले भाव तो हमें बहुत प्रभावित नहीं करते, परन्तु लम्बे काल तक बना रहने वाला

भावात्मक असंतुलन संस्कार बन गहरा प्रभाव दिखाता है।

सूक्ष्म शरीर से कर्म विपाक के अनुसार जो स्पन्दन आते हैं, वे चित्त को प्रभावित करते हैं। जिससे चित्त मस्तिष्क के साथ कार्य करने वाले भावों का निर्माण करता है तथा उन भावों की अभिव्यक्ति के लिये दो सहयोगी तंत्रों का निर्माण करता है और वे होते हैं, मन और वाणी। इस प्रकार मस्तिष्क-चित्त और स्थूल शरीर का संगम स्थल होता है। अतः मन और चित्त एक नहीं, अलग अलग होते हैं। मन चंचल होता है। चित्त बुद्धि और विवेक से उस पर नियन्त्रण रखने की क्षमता रखता हैं। मन कुछ भी नहीं होता और सब कुछ भी होता है। मन का कोई स्थायी अस्तित्व नहीं होता परन्तु जब अस्तित्व में होता है तो सब कुछ बन जाता है, परन्तु यदि हम मन को पैदा न करें तो मन कुछ भी नहीं होता। मन को विराम दिया जा सकता है । स्वास्थ्य का संबंध मन के साथ बहुत कुछ जुड़ा होता है। मन स्वस्थ तो शरीर स्वस्थ और मन अस्वस्थ तो शरीर अस्वस्थ ।

प्राण ऊर्जा और ऊर्जा के स्रोत

महावीर के अनुसार, जब मानव का जीव गर्भ में आता है तो, उसे अपने अपने कर्मों के अनुसार आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छवास, भाषा और मन रूपी छः मूल ऊर्जा के स्रोत अर्थात पर्याप्तियाँ (Bio Potential Energy Source) प्राप्त होते हैं। प्रत्येक पर्याप्ति अपने अपने गुणों के अनुसार पुद्गलों को आकर्षित कर मानव शरीर का विकास करती है। जिन्हें ये शक्तियाँ पूर्ण रूप से प्राप्त होती हैं, उनका सम्पूर्ण एवं संतुलित विकास होता है तथा जिन्हें ये पर्याप्तियाँ आंशिक रूप में प्राप्त होती हैं उनका विकास आंशिक ही होता है।

महावीर ने चेतना के विकास में इन्द्रियों के स्वतंत्र अस्तित्व का कथन किया। जबकि अन्य दर्शनों एवं चिकित्सा वैज्ञानिकों ने उनकी शरीर के एक अवयव तक ही कल्पना की। उनका सम्बन्ध पंच तत्त्वों में से किसी तत्त्व अथवा अंग तक ही सीमित कर दिया। ये जीवनी शक्तियाँ कार्य के अनुसार मुख्य रूप से दस भागों में रूपान्तरित हो मानव की समस्त गतिविधियों का संचालन करती हैं । जिन्हे प्राण भी कहते हैं। प्राण जीवन शैली को शक्ति प्रदान करती है। प्रत्येक प्राण अपने लिये आवश्यक पुद्गलों को आसपास के वातावरण से ग्रहण कर अपने अपने कार्य कर सकते हैं।

श्रोत्रेन्द्रिय बल प्राण – जिससे सुनने योग्य पुद्गलों को आकर्षित करने की शक्ति प्राप्त होती है ।
चक्षु इन्द्रिय बल प्राण — जिससे देखने " " " "
घ्राणेन्द्रिय बल प्राण – जिससे गंध " " " "
रसनेन्द्रिय बल प्राण – जिससे स्वाद " " " "

स्पर्शेन्द्रिय बल प्राण –	जिससे स्पर्श	"	"	"	"
श्वासोच्छ्वास बल प्राण–	जिससे श्वसन योग्य	"	"	"	"
मन बल प्राण –	जिससे मनोवर्गणा	"	"	"	"
वचन बल प्राण –	जिससे भाषा वर्गणा	"	"	"	"
काय बल प्राण –	जिससे हलन-चलन	"	"	"	"

आयुष्य बल प्राण– **जिसके कारण जीव निश्चित अवधि तक किसी योनि में रह सकता है।**

सारी प्राण शक्तियाँ आपसी सहयोग और समन्वय से कार्य करती हैं, परन्तु एक दूसरे का कार्य नहीं कर सकती। आंख सुन नहीं सकती, कान बोल नहीं सकता, नाक देख नहीं सकता इत्यादि। सबमें आयुष्य बल प्राण मुख्य होता है तथा उसके समाप्त होते ही अन्य प्राण रक्तः प्रभावहीन हो जाते हैं। आयुष्य बल प्राण का प्रमुख सहयोगी श्वासोच्छवास बल प्राण होता है।

प्राण ऊर्जा का जितना सूक्ष्म एवं तर्क संगत विश्लेषण महावीर दर्शन में है उतना, आधुनिक चिकित्सा पद्धति में भी नहीं किया गया। परिणाम स्वरूप उन्हें आंख , नाक, कान आदि जड़ उपकरणों की खराबियों को दूर करने में तो आंशिक सफलता मिली, परन्तु जिनमें प्राण ऊर्जा का मौलिक प्रवाह ही नहीं हो, उनको सुधार पाने में अभी तक सफलता नहीं मिलती।

संयम ही जीवन है

स्वास्थ्य की दृष्टि से इन पर्याप्तियों और प्राणों का बहुत महत्त्व है। अतः महावीर ने पर्याप्तियों के संयम एवं सदुपयोग को सर्वाधिक महत्व दिया । जहां जीवन है वहां प्रवृति तो निश्चित रूप से होती ही है। **अतः पर्याप्तियों और प्राणों के संयम का मतलब हम उनका अनावश्यक दुरुपयोग अथवा अपव्यय न करें, अपितु अनादिकाल से आत्मा के साथ लगे कर्मों से छुटकारा पाने हेतु सदुपयोग द्वारा सम्यक पुरुषार्थ करें।**

आहार संयम - जीवन चलाने के लिये जितना आवश्यक हो भक्ष्य -अभक्ष्य का विवेक रख कर आहार-पानी आदि ग्रहण करना।

शरीर का संयम - शरीर की अनावश्यक प्रवृत्तियों से बचना एवं सम्यक् पुरुषार्थ करना।

इन्द्रियों का संयम - इन्द्रियों से क्षमता से अधिक तथा अनावश्यक कार्य न लेना। वीर्य का नियन्त्रण रखना अर्थात ब्रह्मचर्य का पालन करना। इन्द्रिय विषयों को उत्तेजित करने वाली प्रवृत्तियों एवं वातावरण से यथा संभव दूर रहना।

श्वास का संयम - मन्द गति से दीर्घ श्वास लेना तथा पूरक और रेचक के साथ साथ कुम्भक कर श्वास को अधिकाधिक विश्राम देना । जितना अधिक श्वास का संयम होगा, उतना व्यक्ति संवेगों, से सहज बच जाता है । इससे शरीर और मन को बहुत आराम मिलता है । आवेग नहीं आते हैं । **आवेग से शरीर में असंतुलन और रोग होने की संभावनाएं बढ़ जाती हैं ।**

भाषा का संयम - वाणी का विवेक एवं यथा संभव मौन रखना, परन्तु आवश्यकता पड़ने पर मधुर बोलना । अनावश्यक बोलने से जीवनी शक्ति क्षीण होती है । **वाणी के प्रकम्पन हमारे स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं। ध्वनि और मंत्र चिकित्सा का यही आधार होता है। वाणी शरीर और मन दोनों को प्रभावित करती है।**

मन का संयम - मन से अनावश्यक मनन, चिन्तन, स्मृति और कल्पनायें न करना अर्थात मन की सम्यक् प्रवृति करना। मनोबल कमजोर करने वाले दृश्यों को न तो देखना और न सुनना मन का संयम होता है। हिंसा, क्रूरता, घृणा, कामुकता , भय इत्यादि मनोबल कमजोर करने वाले वातावरण में रहना, मन का असंयम होता है ।

उपर्युक्त सभी का आचरण अर्थात संयम महावीर के अनुसार स्वास्थ्य की कुंजी होता है। सभी रोगों का कारण पर्याप्तियों के असंयम से होने वाले प्राणों का असंतुलन ही होता है। पर्याप्तियों के संयम से शरीर में रोग उत्पन्न होने की संभावनाएँ काफी कम हो जाती है और यदि रोग की स्थिति हो भी जाती है तो पर्याप्तियों, के संयम से पुनः शीघ्र स्वास्थ्य को प्राप्त किया जा सकता है। यही महावीर के शरीर स्वास्थ्य का मूलाधार है।

सम्यक् प्रवृत्ति अनिवार्य

वृत्ति के बिना मन उत्पन्न नहीं हो सकता । जितनी ज्यादा वृत्तियाँ होती हैं, उतनी ही मन की चंचलता अधिक होती है । मन, वाणी और काया (शरीर) के द्वारा ही जन्म से मृत्यु तक हमारी सारी गतिविधियां होती हैं । महावीर ने तीनों के आलम्बन को योग कहा । **जैसा भाव और वातावरण होता है, वैसा ही मन में चिन्तन, मनन, कल्पनाएं होने लगती हैं। मन पांचों इन्द्रियों के विषयों को भी प्रभावित करने की क्षमता रखता है। अतः जब उस पर बुद्धि और विवेक का नियन्त्रण रहता है, तब तक मन पांचों इन्द्रियों और शरीर को सद् प्रवृत्तियों में लगाता है, परन्तु जब अज्ञान और अविवेक होता है तो व्यक्ति अकरणीय, अनावश्यक प्रवृत्तियाँ करने लगता है, जिससे सारा संतुलन गड़बड़ा जाता है, और स्वास्थ्य एवं अन्य समस्याएं पैदा होने लगती हैं।**

जब तक जीवन है, तब तक हम बिना प्रवृत्ति नहीं रह सकते । महावीर ने विवेक को सर्वाधिक महत्व दिया । कैसे प्रवृत्ति करना , और कैसे प्रवृत्ति नहीं करना, तथा कब कौनसी प्रवृत्ति करना , और कब कौनसी प्रवृति नहीं करना,

इन बातों का जितना स्वास्थ्य के लिये आवश्यक, स्वावलम्बी, अहिंसक, संयमित, जीवन शैली का सूक्ष्म एवं तार्किक चिन्तन महावीर ने प्रस्तुत किया, ऐसी दिन चर्या एवं रात्रि चर्या का विस्तृत वर्णन अन्य दर्शनों में प्रायः कम मिलता है। अतः जो भी प्रवृत्ति करें उसमें विवेक आवश्यक होता है। महावीर ने पांच प्रकार की सम्यक् प्रवृत्ति की आराधना करने तथा तीन प्रकार की अशुभ दुष्प्रवृत्तियों से बचने अर्थात् मन, वाणी और काया को अशुभ से अलग रखने का जो साधक को मार्ग दर्शन किया, उसे आठ प्रवचन माताओं के रूप में जाना जाता है। **जैसे :-** कैसे, चलना कैसे बोलना, कैसे प्रवृत्ति करना आदि। महावीर ने आत्म विकास हेतु समता अर्थात सामायिक को आवश्यक बताया। सामायिक में मन, वचन और काया की स्थिरता पर विशेष बल दिया, जो साधना की प्रारम्भिक भूमिका होती है। बिना काया की स्थिरता और मन के संयम, अन्तर्मुखी नहीं बना जा सकता।

क्रोध, मान, माया, लोभ, भय, घृणा, वासना, क्रूरता आदि, जैसी भावनाएँ होती हैं, मन और वाणी उसके अनुरूप बन प्रवृत्ति करने लगते हैं। महावीर का दर्शन मानव को योग से अयोग की तरफ एवम् प्रवृत्ति से निवृत्ति की तरफ ले जाने वाला राजमार्ग है। जहां पहुंचने के पश्चात कुछ भी करना शेष नहीं रहता। यदि महावीर के निर्देश के अनुसार जीवन शैली अपनायी जाये तो रोग होने की संभावनाएं क्षीण हो जाती है। शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ जाती है। रोग होने की स्थिति में रोगी की सहनशक्ति बढ़ जाती है। अतः व्यक्ति पुनः जल्दी स्वस्थ हो जाता है। महावीर के सिद्धान्तों एवं कथनों का जितना-जितना ईमानदारी पूर्वक पालन किया जाता है, उतना-उतना व्यक्ति स्वस्थ होता है तथा जितनी-जितनी उसकी उपेक्षा की जाती है, उतनी उतनी रोग होने की संभावना बढ़ जाती हैं।

महावीर का कर्म सिद्धान्त :-

सम्पूर्ण स्वास्थ्य की दृष्टि से रोग पैदा करने वाले कारणों से बचना, रोग पैदा न हों, ऐसी जीवन शैली जीना तथा जो रोग पहले से जमें हुए हों उनका विरेचन अथवा सफाई आवश्यक होती है। महावीर की दृष्टि में हमारे कर्म ही सबसे बड़े शत्रु हैं। जीवन की सारी समस्याओं के सूत्रधार कर्म ही होते हैं। अतः उससे छुटकारा पाने के लिये उन्होंने तीन मार्ग बतलाये तथा उस हेतु आश्रव, संवर और निर्जरा जैसे अलग अलग पारिभाषिक शब्दों का कथन किया।

महावीर ने कर्मों का कथन आठ प्रकार से किया। जो कर्म आत्मा के मूलगुणों का घात अथवा प्रभावित करते हैं, उनको घाती कर्म और जिनका संबंध मात्र शरीर से होता है, उन्हें अघाती कर्म कहा। इस आधार पर **ज्ञानावरणीय** (ज्ञान पर आवरण करने वाले), दर्शनावरणीय कर्म (सम्यक् दर्शन को आच्छादित करते है) **मोहनीय कर्म** (राग-द्वेष पैदा कर वीतराग अवस्था में बाधक बनते हैं) **अन्तराय** (आत्मा के अनन्त बल को सीमित करने वाले अथवा जिसके प्रभाव से व्यक्ति अपनी क्षमताओं का सम्यक् एवं पूर्ण उपयोग नहीं कर सकता) **कर्म घाती कर्म कहलाते हैं।** जबकि **वेदनीय**

(जिस कर्म के अनुसार शरीर को सुख-दुःख की संवेदना हो), **नाम** (जिस कर्म के अनुसार किसी योनि में शरीर का रंग, रूप, आकार आदि मिलता है), **गोत्र** (जिस कर्म के अनुसार जीव का उच्च अथवा नीच कुल में जन्म होता है और प्रारम्भिक संस्कार मिलते है) **आयुष्य** (जिसके प्रभाव से जीव को निश्चित अवधि तक किसी योनि में रहना पड़ता है)। **ये चार कर्म अघाती कर्म कहलाते हैं।** इनका संबंध जब तक शरीर होता है, तभी तक रहता है। जितना जितना कर्मों का क्षय होता है, उतने उतने आत्म-गुण प्रकट होते हैं और शरीर को उसके अनुसार उपलब्धियाँ प्राप्त होती हैं । ज्ञानावरणीय कर्म के पूर्ण क्षय से अनन्त ज्ञान, दर्शनावरणीय कर्म के पूर्ण क्षय से अनन्त सत्य दर्शन, मोहनीय कर्म के पूर्ण क्षय से अव्याबाध (सदैव रहने वाला) सुख एवं अन्तराय कर्म के पूर्ण क्षय होने से अनन्त शक्ति की प्राप्ति होती है। ऐसी स्थिति में जीव संसार के सूक्ष्मतम पदार्थों को देखने एवं वर्तमान, भूत एवं भविष्य में घटित होने वाले सभी तथ्यों को जानने में सक्षम बन जाता है। ये चार कर्म ही आत्म गुणों की घात करते हैं। इनके क्षय होने के पश्चात् बाकी **चार वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र कर्म जिनका संबंध तो मात्र शरीर से होता है, शरीर के साथ स्वयं नष्ट हो जाते हैं। यही महावीर का शरीर स्वास्थ्य का आधार है तथा आत्मा और शरीर को प्रभावित करने वाले कर्मों की भेद रेखा।**

महावीर का नव तत्त्वों का सिद्धान्त

महावीर के दर्शन की दूसरी विशेषता है उनका **अनेकान्त दृष्टिकोण**। अतः महावीर ने मुख्य रूप से संसार के सभी पदार्थों का जीव और अजीव के रूप में कथन किया। आत्मा और शरीर के संबंधों को प्रभावित करने वाले अन्य सार भूत पदार्थों के विशेष गुणों का महावीर ने जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बंध (कर्मों का आत्मा से बंधना), और मोक्ष (आत्मा की परम शुद्धावस्था) जैसे नव मूल तत्त्वों का कथन किया। महावीर ने मानव जीवन का लक्ष्य मोक्ष एवं उसकी प्राप्ति हेतु पाप, आश्रव और बंध से बचने तथा संवर और निर्जरा युक्त प्रवृत्ति करने का कथन किया।

आश्रव :- वे सारे अकरणीय कार्य अथवा पाप की प्रवृत्तियाँ, जो अशुभ कर्मों को आकर्षित कर हमारी चेतना को दुर्बल करती हैं। जिन्हें मुख्य रूप से पांच भागों में विभाजित किया जा सकता है—

1. मिथ्यात्व 2. अव्रत अथवा असंयम 3. प्रमाद (आलस्य अथवा गलत कार्यों में पुरुषार्थ)

4. कषाय (आत्मा को मलिन करने वाले क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष आदि) 5. अशुभ योग

मिथ्यात्व - **मिथ्यात्व अथवा गलत दृष्टिकोण का मूल कारण सम्यक् ज्ञान का अभाव होता है। जिसके कारण व्यक्ति असत्य अथवा आंशिक सत्य को पूर्ण सत्य मान तथा असत्य को सत्य मान आचरण करने लगता है। जब दृष्टिकोण ही गलत हों तो, आचरण कैसे सम्यक् हो सकता है। अज्ञान और अविवेक के कारण उसका**

खान-पान, रहन - सहन, आचार-विचार आदि शरीर में रोग पैदा करने में अहं भूमिका निभाते हैं।

अव्रत (असंयम) - असंयमी व्यक्ति स्वछन्द होने से अपना भला-बुरा नहीं सोच पाता। जीवन की प्राथमिकताओं एवं लक्ष्य का सही चयन नहीं कर पाता तथा **स्वाद के वशीभूत होकर आहार का विवेक न रखने से रोगों को आमन्त्रित करता है। इन्द्रियों का उपयोग विषय भोगों में करता है। उसका जीवन अनियन्त्रित, अनियमित एवं प्राथमिकताओं की उपेक्षा करने से लक्ष्य हीन हो जाता है।**

प्रमाद- **आलस्य अथवा गलत अनावश्यक कार्यों में पुरुषार्थ** । यदि व्यक्ति श्रम नहीं करता है तो, शरीर के अंग उपांग बराबर कार्य नहीं करने से रोग की समस्या उत्पन्न होती हैं। ठीक उसी प्रकार, जो व्यक्ति अनावश्यक अथवा कम उपयोगी अप्राथमिक कार्यों में पुरुषार्थ कर अपनी प्राण ऊर्जा को खर्च करते हैं, ऐसे व्यक्ति भी प्रमादी की श्रेणी में आते हैं। ऐसे सारे कार्य, जो आत्मा को मलिन बनाते हैं, कर्म बंधन में सहयोगी होते हैं, प्रमाद की श्रेणी में ही आते हैं।

कषाय- अर्थात् आत्मा को कलुषित करने वाले क्रोध, मान, माया, लोभ एवं राग-द्वेष बढ़ाने वाले तत्त्व। सबसे पहले रोग की उत्पति भावों में होती है। अत: जब क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष में व्यक्ति उलझ जाता है तो तनाव, भय, चिंता, दु:ख आदि, जो रोग के मूल कारण होते हैं, बढने लगते हैं तथा स्वास्थ्य अस्त व्यस्त होने लगता है।

अशुभ योग अर्थात् मन, वचन और काया से अनावश्यक प्रकृति के सनातन सिद्धान्तों के विपरीत पाप की दुष्प्रवृत्तियाँ करना, करवाना और करने वालों का अनुमोदन करना। जब मनुष्य अपने मन, वाणी और शरीर का हिंसा, झूठ, चोरी जैसी पाप प्रवृत्तियों में दुरुपयोग करता है , दूसरों से करवाता है और जो दुरुपयोग करते हैं , उनका प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष अनुमोदन कर सहयोग करता है तो, उसकी प्राण ऊर्जा अनावश्यक क्षीण होने से, वे स्वास्थ्य के लिये समस्याएँ पैदा करने वाली हो जाती हैं। साथ ही आत्मा कर्मों से भारी हो जाती है।

संवर- **आत्मा पर नये विकारों को जमा न होने देने अर्थात् नवीन कर्म बंधनों से बचने हेतु जिस जीवन शैली को अपनाया जाता है, उसे महावीर ने संवर बतलाया। महावीर ने अहिंसा, संयम और तप मय जीवन प्रवृत्ति को स्वास्थ्य हेतु आवश्यक बतलाया।**

व्यक्ति का विचार और चिन्तन हर क्षण सम्यक् नहीं होता , अत: जब भी उसके मन में शुभ संकल्प जागृत हों , उसकी क्रियान्विति का संकल्प अथवा प्रत्याख्यान (प्रतिज्ञा) ले लेनी चाहिए, जिससे प्रतिकूल परिस्थितियों में भी नियमों के पालन में दृढ़ता और स्थिरता रहती है।

संवर आश्रव का प्रतिपक्ष होता है। जिसमें मिथ्यात्व के स्थान पर सम्यक् दृष्टिकोण, सही सोच, को प्रधानता दी जाती है। जीवन में स्वछन्द मनोवृत्ति को यम-नियम एवं व्रत-प्रत्याख्यान द्वारा संयमित रखा जाता है।

प्रमादं के स्थान पर साधक सम्यक् पुरुषार्थ हेतु सजग रहता है। राग-द्वेष एवं क्रोध, मान, माया, लोभ रूपी कषायों से बचने हेतु अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों में समता रखने का तथा मन, वचन और काया की दुष्प्रवृतियों को शुभ में लाने का प्रयास किया जाता है। साधु को जीवन पर्यन्त अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह का पूर्ण रूप से तथा श्रावकों को अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, क्षेत्र की मर्यादा, उपयोग की वस्तुओं के सीमित उपभोग, अनावश्यक अथवा अप्राथमिक कार्यों से बचने एवं सामायिक, पोषध एवं सम्यक् दान जैसे बारह व्रतों का अधिकाधिक पालन करने का निर्देश दिया। उन्होंने भोजन में अभक्ष्य, तामसिक पदार्थों के सेवन का, रात्रि भोजन एवं सचित्त पानी जिसमें जीवों के उत्पन्न होने की संभावना हो, ऐसा पानी उपयोग करने का निषेध किया। रात्रि में किया गया भोजन तामसिक और विकारी बन जाता है। अतः शरीर में रोगों का कारण बनता है । इसी कारण जैन साधक जीवन पर्यन्त उबला हुआ अथवा अचित्त पानी जिसमें जीवों की उत्पत्ति की संभावना न हो, पीते हैं । **आज पर्यावरण और प्रदूषण के युग में पानी की शुद्धता संदिग्ध है। भोजन और पानी जीवन की मूलभूत आवश्यकता है तथा उनके सम्यक् सेवन से रोग होने की संभावना बहुत कम हो जाती है।**

'संवर' वास्तव में पर्याप्तियों और प्राणों का संयम ही होता है। जिससे शरीर, मन और वाणी संतुलित रहने लगते हैं। नये रोगों के आने की संभावनाएं कम हो जाती हैं। संवर से प्राण ऊर्जा का अपव्यय नहीं होता।

निर्जरा

कर्म विरेचन का साधन - भगवान महावीर के अनुसार जीवन एवं स्वास्थ्य की सभी समस्याओं का मूलाधार कर्म होता है। **कर्मों के प्रभाव से ज्ञान अज्ञान हो जाता है, दर्शन मिथ्या हो जाता है। अतः जब तक आत्मा पर कर्मों का आवरण रहता है, तब तक सम्पूर्ण स्वास्थ्य की कल्पना भी नही की जा सकती। न मालूम कब वे कर्म उदय में आकर व्यक्ति को रोगी बना दें, कहा नहीं जा सकता। अतः आत्मार्थी साधकों के लिये एक तरफ जहाँ आश्रव से बचने का कथन किया तो दूसरी तरफ संवर में प्रवृत्ति करने का कथन किया।**

महावीर का योग शास्त्र

महावीर ने संचित कर्मों को क्षय करने हेतु विविध प्रकार के बारह तप एवं साधना हेतु सम्यक् पुरुषार्थ को आवश्यक बतलाया, जिसे महावीर दर्शन का द्वादशांग योग कहते हैं। कर्मों को क्षय करने अथवा उनकों आत्मा से निर्जरित करने की प्रक्रिया को निर्जरा कहते हैं। जिस प्रकार सोना अग्नि में तप कर शुद्ध हो जाता है, ठीक उसी प्रकार सम्यक् तप की आराधना से आत्मा कर्मों के विकारों से मुक्त हो शुद्ध बन जाती है। छः तप कर्म बन्धन के बाह्य कारणों को क्षय करने के साथ साथ शरीर और रोग के स्थूल कारणों को दूरकर शरीर को स्वस्थ बनाते हैं। अतः उन्हें बाह्य

तप कहते हैं। ये तप दूसरों को प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं, जिसका सीधा प्रभाव शरीर पर पड़ता है । बाह्य तप के आचरण से शरीर के प्रति आसक्ति, स्वादलोलुपता, कष्ट सहिष्णुता एवं खान-पान की आसक्ति छूट जाती है। साधक भूख-प्यास पर विजय पा लेता है। ये सब साधना के विघ्न हैं, जो देह के प्रति आसक्ति, विलासिता और प्रमाद को बढ़ाते हैं। बाह्य तप आभ्यन्तर तप में सहायक होते हैं। आभ्यंतर तपों से हमारे भावों और चित्त की शुद्धि होती है। अतः वे हमारे मानसिक स्वास्थ्य को सुधारते हैं तथा आत्म-बल और मनोबल में वृद्धि करते हैं। आभ्यन्तर तप में बाह्य द्रव्यों की अपेक्षा नहीं होती। इनका प्रत्यक्ष प्रभाव अन्तःकरण पर पड़ता है।

आत्म-शुद्धि की साधना के सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन, और सम्यक् चारित्र तीन मूल आधार स्तम्भ होते हैं। पातंजलि योग की भांति महावीर के योग की आधार शिला भी यम-नियम के पालन से होती है। आत्म-शुद्धि की साधना की चाहे जो अवस्था हो, साधक को साधना से पूर्व अहिंसा, सत्य-अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं परिग्रह आदि पांच नियमों का पालन करना महावीर ने अत्यन्त आवश्यक बतलाया। इन नियमों को धारण किये बिना की जाने, वाली साधना को महावीर ने अज्ञान तप की संज्ञा दी। अपने बल पुरुषार्थ के अनुसार साधक दो प्रकार से साधना कर सकता है। प्रथम जिसमें पांच यमों का पूर्ण तथा जीवन पर्यन्त पालन कर साधु जीवन स्वीकार करना तथा दूसरा आंशिक रूप से अथवा कुछ समय के लिये नियमों को स्वीकार कर गृहस्थ जीवन जीते हुए आत्म शुद्धि करना। बिना यम-नियम साधना विकसित नहीं हो सकती।

बाह्य तप

भूख-प्यास पर विजय पाने के लिये अनशन तप का कथन किया। इसमें सीमित समय के लिये अन्न-जल का पूर्ण अथवा आंशिक त्याग किया जाता है। इसका कारण यह है कि **जब भूख पर विजय प्राप्त कर लेते हैं तब बाकी सभी इन्द्रियाँ शांत होने से स्वतः नियन्त्रित और अनुशासित होने लगती हैं। अनशन से पाचन संबंधी रोगों का नाश होता है।** इच्छा शक्ति अर्थात् मनोबल बढ़ाने के लिये भूख से कम खाना, अपने कषायों को सीमित करना **उणोदरी तप का** उद्देश्य होता है। **ऊणोदरी तप से वात, पित्त, कफादिजनित दोषों का शमन होता है।** विकार बढ़ाने वाली प्रवृत्तियों से बचने हेतु **वृत्ति संक्षेप तप** का प्रावधान है। वृत्ति संक्षेप तप से भोज्य वस्तुओं की इच्छा का निरोध एवं भोजन की चिन्ता पर नियन्त्रण होता है। **भोजन में रस लोलुपता त्यागने के लिये स्वादिष्ट भोजन को छोड़ना त्याग कहलाता है। रस परित्याग तप से इन्द्रिय निग्रह, निद्रा विजय, स्वाध्याय और ध्यान में रुचि बढ़ती है।** जिन पदार्थों से जीभ और मन दोनों विकृत होते हैं तथा जो व्यक्ति को स्वाद लोलुप और विषयोलोलुप बनाते हैं, महावीर ने ऐसे पदार्थों को विगय कहा तथा साधकों को उसके सेवन का यथा संभव निषेध किया। **मांस, मधु, मद्य और मक्खन को महावीर ने महा विगय तथा दूध, दही, घी, तेल और मीठे पदार्थों को विगय बताया।** आधुनिक चिकित्सक भी

प्राय: इन सभी पदार्थों के कम से कम उपयोग का परामर्श देते हैं। स्वाद विजय के लिए महावीर ने बिना विगय वाले आहार की तपस्या को आयंबिल तप कहा। **स्वास्थ्य की दृष्टि से आयंबिल तप से रक्त की शुद्धि, पाचन शुद्धि होती है और मोटापा जैसे अनेक रोग नहीं होते।** शरीर को कष्ट सहन करने का अभ्यास करवाने हेतु प्रतिकूलता में समत्व रखना, शरीर को कठिन स्थिर आसनों और मुद्राओं का अभ्यास करना, **काया क्लेश तप** कहलाता है। यह तप शरीर और आत्मा का भेद ज्ञान कराने में सहायक होता है। **जैन श्रमणों को आचरणीय बाईस परिषह अपनी इच्छा से कर्मों की निर्जरा हेतु प्रतिकूलताओं को अपनाना एवं उन्हें शान्त भाव से सहन करना काया क्लेश तप का ही प्रयोगात्मक पक्ष होता है।** स्वयं भगवान महावीर स्वामी ने सारी साधना विभिन्न कठोर आसनों में की। जब उन्हे केवल ज्ञान हुआ तब वे गोदुहासन में ही थे। अन्तर्मुखी बनने और पांचों इन्द्रियों और मन को वश में करने वाले तप को प्रतिसंलीनता तप कहते हैं। इस तप में मनोज्ञ शब्द, रूप, गंध, शब्द, स्पर्श द्वारा विषयों से मन चलित नहीं होता तथा अमनोज्ञ में राग द्वेष नहीं करता। ये छ: बाह्य तप कहलाते हैं।

आभ्यंतर तप

प्रायश्चित से पुराने दोषों की शुद्धि होती है तथा भविष्य में उनसे बचने हेतु सजगता बढ़ती है। असजगता ही अविवेक का कारण है और अविवेक से ही सारी समस्याएँ पैदा होती हैं। अहंकार हमारी बुद्धि, ज्ञान और विवेक को नष्ट करता है। अत: उस पर विजय पाने के दूसरे आभ्यन्तर तप के रूप में महावीर ने **विनय तप की आराधना** का कथन किया। विनय से अनेक गुण विकसित होते हैं। प्रज्ञा विकसित होती है। आदर करने वालों को स्वत: सम्मान और सुख मिलता है। बिना विनय शिष्य गुरु का विश्वासपात्र नहीं बन सकता, जिससे आत्मिक गुणों का पूर्ण विकास नहीं हो सकता। प्राणी मात्र के प्रति करुणा, मैत्री, अनुकंपा का भाव विकसित करने के लिए दु:खियों का दूख दूर करने के लिए महावीर ने **सेवा को भी तप बतलाया।** सम्यक् ज्ञानार्जन के लिए **स्वाध्याय तप** का कथन किया। स्वाध्याय का मतलब अपने आप का अध्ययन करना। हमारी आत्मा ही सदैव हमारे साथ रहने वाली है। **अनित्य, अशरण, अशुचि, एकत्व आदि बारह भावना के माध्यम से स्वरूप का चिन्तन, निरीक्षण एवं समीक्षा करते रहना, आत्म-शुद्धि हेतु आवश्यक होता है। रोग का प्रारम्भ भावों से ही होता है और भावों की सभी आत्मिक एवं मानसिक शुद्धि से प्रज्ञा निर्मल होती है, विवेक जागृत होता है। स्वाध्याय से विकथा एवं व्यर्थ का वाद विवाद और प्रमाद छूट जाता है। व्यक्ति रोग के मूल कारणों के प्रति सजग हो जाता है। यही स्वास्थ्य का राजमार्ग है।** मन को एकाग्र कर आत्म साक्षात्कार हेतु महावीर ने धर्म एवं शुक्ल (शुभ) ध्यान का कथन किया एवं आर्त्त और रौद्र ध्यान का निषेध किया। आत्म-रमणता के लिये कायोत्सर्ग तप का कथन किया। शरीर में रहते हुये भी शरीर के प्रति ममत्व न होने का नाम कायोत्सर्ग होता है। इस प्रकार **प्रायश्चित, विनय, सेवा, स्वाध्याय, ध्यान** और **कायोत्सर्ग** छ:

प्रकार के आभ्यंतर तप होते हैं।

महावीर के दर्शन में बाह्य तप और आन्तरिक तप का अपना अपना महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। उन सभी बाह्य क्रियाओं, जिनसे आत्मा दूषित होती है, बाह्य तप से ठीक कर दिया जाता है। इसी प्रकार आत्मिक दोषों को आभ्यंतर तप से ठीक किया जाता है। बाह्य तप का उद्देश्य साधक की आभ्यन्तर तप हेतु भूमिका तैयार करना होता है। बिना आभ्यंतर तप बाह्य तप का कोई महत्त्व नहीं होता। बाह्य एवं आभ्यंतर दोनों ही प्रकार के सम्यक् तप के सामजंस्य पूर्ण साधना से ही आत्म शुद्धि होती है।

कषाय की मंदता-साधना एवं स्वास्थ्य का मापदण्ड

साधक कितना ही उग्र तप करें परन्तु उसमें यदि कषाय मंद न हों अर्थात क्रोध का शमन, अहंकार का दमन, माया से मुक्ति और लोभ अथवा आसक्ति कम न हों, फिर चाहे वह पैसे के प्रति हों अथवा परिजनों अथवा यश, कीर्ति, अहं पोषण की प्रवृत्तियाँ के प्रति, तब तक तप की साधना हितकर नहीं होती।

जब तक आत्मा मन, वचन और काया से युक्त होती है, तब तक चित्त स्थिर नहीं रह सकता। अतः प्रवृत्ति करने का भाव पैदा होता रहता है, क्योंकि आत्मा के परिस्पन्दन से ऊर्जा पैदा होती है। यदि उस ऊर्जा का सम्यक् उपयोग नहीं किया जा रहा है तो, आत्मा अशुभ प्रवृत्तियों के परिणाम स्वरूप कर्म बन्धन कर विकार ग्रस्त बन जाती है। परन्तु उसी ऊर्जा का उपयोग बाह्य और आभ्यन्तर तप में करके साधक पहले संयमित जीवन जीने लगता है। फिर उसका सम्यक् पुरुषार्थ से प्रमाद छूटने लगता है। अर्थात् उसकी प्राथमिकताएँ बदल जाती है। जीवन में विवेक बुद्धि और सजगता का प्रादुर्भाव होने से संयोग-वियोग, अनुकूलता-प्रतिकूलता हानि-लाभ में समभाव रहने लगता है। पर दोष दृष्टि समाप्त हो जाती है। समभाव की साधना का विकास जब पूर्ण रूप से हो जाता है तो, साधक राग द्वेष से पूर्ण विजय प्राप्त कर वीतरागी बन जाता है। साधना की विकास यात्रा का जितना क्रमबद्ध तर्क संगत विवेचन १४ गुणस्थानों के स्तरों के माध्यम से महावीर ने किया वैसा, अन्यत्र प्रायः नहीं मिलता। आत्म-साधकों को बिना पूर्वाग्रह उसका अवश्य चिन्तन, मनन और अध्ययन करना चाहिये।

महावीर के अनुसार आध्यात्मिक योगी सत्य का खोजी होता है। स्वावलंबी होता है। परावलंबी सत्य की अनुभूति नहीं कर सकता। स्वतंत्र साधक ही अपने चारों तरफ उपस्थित अज्ञात रहस्यों को जानने के लिए चेतना के सूक्ष्म स्तरों से गुजरता है। जब तक आत्म साक्षात्कार न हो जाये, जहाँ सत्य को मात्र जाना ही नहीं जाता अपितु जीया जाता है, तब तक उसकी साधना चलती रहती है।

साधक शरीर का तभी तक ख्याल रखता है, जब तक शरीर आत्म-विकास की साधना में सहयोग देता

है। दूसरी बात साधना का आधार आत्मा होने से आत्मार्थी साधक शरीर को स्वस्थ रखने के लिये आत्मा को कर्मो से बोझिल नहीं बनाता। उपचार हेतु यम-नियम की उपेक्षा करना साधक को मंजूर नहीं होता। अतः उसका उपचार पूर्ण अहिंसक एवं अन्य दोषों से यथा संभव मुक्त होता है। साधक द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव का सम्यक् उपयोग करता है। अर्थात चारों की शुद्धि का विशेष ख्याल रखता है।

जो चिकित्सा पद्धतियाँ कर्म बन्धन में सहयोगी होती है, महावीर ने उनका पूर्ण निषेध किया। रोग का मूल कारण अप्राकृतिक जीवन शैली, अनियन्त्रित, स्वछन्द, असंयमित-मन, वचन, काया की प्रवृत्तियाँ ही होती है। अतः महावीर ने प्राकृतिक स्वावलम्बी जीवन शैली और मन, वचन और काया के संयम को सर्वोच्च प्राथमिकता दी। जितनी ईमानदारी से उनका पालन किया जाता है, उतना ही साधक स्वस्थ होता है तथा पूर्व संचित असातावेदनीय कर्म के कारण रोग की स्थिति बन भी जाती है तो वह हाय हाय नही करता, परेशान नहीं होता। वह शरीर को आत्मा से अलग, नष्ट और विध्वंसन होने वाला मानता है। अतः उसकी प्राथमिकता शरीर पर नहीं रहती। शरीर से ध्यान के हटते ही शरीर के दर्द, पीड़ा आदि कष्ट नहीं पहुंचा सकते। जहां रोग का आदर सत्कार नहीं होता, वहां रोग अधिक दिनों का मेहमान नहीं रह सकता।

महावीर का चिन्तन पूर्णतः वैज्ञानिक

महावीर का चिन्तन सुना - सुनाया, रटा - रटाया अथवा चुराया हुआ चिन्तन नहीं है, परन्तु अनभूति पूर्ण सत्य पर आधारित है, जिसका उन्होंने स्वयं साक्षात्कार कर प्रतिपादन किया। इस आलेख में तो उनके स्वास्थ्य संबंधी चन्द बिन्दुओं का ही स्पर्श किया गया है।

सारी चर्चा के विश्लेषण का सारांश यही है कि महावीर का स्वास्थ्य दर्शन पूर्ण रूप से मौलिक एवं वैज्ञानिक है। अहिसा को आधार मानकर, अनेकान्त दृष्टि से उसमें स्वास्थ्य का विवेक पूर्ण सनातन सिद्धान्तों को स्वीकारते हुए चिंतन किया गया है। महावीर ने जहां एक तरफ प्राण और पर्याप्तियों के संयम को स्वास्थ्य का आधार कहा, वहीं दूसरी तरफ अशुभ कर्मो एवं आश्रवों से बचने की स्पष्ट प्रेरणा दी तथा उन्हें ही रोग हेतु जिम्मेदार बतलाया। सम्यक् प्रवृत्ति एवं संवर युक्त जीवन शैली का कथन कर, महावीर ने जनमानस को स्वस्थ जीवन जीने का राजमार्ग बतलाया। पूर्व में उपार्जित अशुभ कर्मो के रूप में होने वाले रोग के कारणों के उपचार हेतु बारह प्रकार के तपों की सम्यक् आराधना का सुझाव दिया, जिससे न केवल आत्म शुद्धि ही होती है अपितु अधिकांश पुराने शारीरिक एवं मानसिक रोगों से भी मुक्ति मिलती है। शरीर के निर्माण का कारण पंच तत्त्वों को ही मानने वालों के लिये महावीर ने षट् द्रव्यों तथा नव तत्त्वों की व्याख्या कर जन्म और मृत्यु द्वारा आत्मा के विविध योनियों में भ्रमण का कारण और जीवन पर पड़ने वाले जड़ और चेतन के प्रभावों का जितना तार्किक विवेचन किया है, जो स्वास्थ्य विज्ञान की

अमूल्य निधी है।

शरीर एवं रोगों की अपेक्षा रोग के मूल कारणों को दूर करने पर उन्होंने जो जोर दिया वह आधुनिक स्वास्थ्य विज्ञान के लिये चिन्तनीय है। अतः उनके दर्शन पर जितनी अधिक शोध की जायेगी उतने उतने स्वास्थ्य के प्रति नये आयाम सामने आते जायेंगे। महावीर का दर्शन अपने आप में परिपूर्ण है। अतः उसकी उपेक्षा करने वाला आधुनिक स्वास्थ्य विज्ञान अपने आपको पूर्ण वैज्ञानिक मानने का दावा नहीं कर सकता।

सारांश यही है कि महावीर का दर्शन अहिंसा, अनेकान्त और अपरिग्रह रूपी त्रिवेणी का समग्र जीवन्त दर्शन है, अलौकिक दर्शन है । उन्होंने आचरण में अहिंसा और व्यवहार में अनेकान्त का समावेश कर सभी दर्शनों को समुचित स्थान दिया ।

महावीर की दृष्टि अनाग्रहपूर्ण थी। भाषा में पूर्ण विवेक था। साधना में द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावना की सम्यक् शुद्धि का जितना महावीर ने चिन्तन किया, वैसा अन्यत्र प्रायः नहीं मिलता। साधना मार्ग में कदम बढ़ाने की भावना रखने वाला,कोई जिज्ञासु जब उनकी सेवा में उपस्थित होता, तब भी वे उसे सीधी प्रेरणा देने के बजाय यही कहते, तुम्हें जैसा सुख हो वैसा करो, परन्तु साधना में प्रमाद मत करो। उनकी कथनी करनी में एक रूपता थी। इसी कारण उनका प्रमुख शिष्य गणधर गौतम तब तक केवल ज्ञान प्राप्त नहीं कर सका, जब तक गौतम को भगवान के प्रति राग था। अन्य दर्शनों में ऐसा दृष्टान्त शायद ही मिलता है। कहने का तात्पर्य यही है कि महावीर का दर्शन पूर्णतः राग-द्वेष से मुक्त, निष्पक्ष, सम्यक् एवं सनातन सिद्धान्तों पर आधारित होने से जीवन के प्रत्येक पक्ष की समस्याओं के समाधान का सामर्थ्य वाला है।

वैज्ञानिक स्वास्थ्य की दृष्टि से सापेक्षवादी होता है और पूर्वाग्रही नहीं होता। वह स्वविवेक से रोग के मूल कारणों को समझते हुए दूर कर अपने आपको अथवा दूसरों को स्वस्थ रखने में समर्थ होता है। महावीर के जैसे सनातन वैज्ञानिक दृष्टिकोण के अभाव में ज्ञानी का ज्ञान, पंडित का पांडित्य, विद्वान् की विद्वत्ता, धार्मिक का धर्माचरण, भक्तों की भक्ति, चिकित्सकों की चिकित्सा, वैज्ञानिकों का वैज्ञानिक शोध, चिन्तकों का चिन्तन, लेखकों का लेखन अधूरा होता है, जो सनातन सत्य हो या न हो आवश्यक नहीं। महावीर के सिद्धान्तों से मतभेद रखना, उन्हें अस्वीकरना, चिन्तनशील, प्रज्ञावान, विवेकवान व्यक्ति के लिए संभव नहीं फिर वह जीवन का कोई भी क्षेत्र क्यों न हों ? सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन, सम्यक् आचरण उसका राजमार्ग है एवं स्वस्थ जीवन उसका लक्ष्य।

1. क्या पुनर्जन्म और पूर्व जन्म का सिद्धान्त वैज्ञानिक है ?
2. क्या उपचार करवाते समय कर्म सिद्धान्त की उपेक्षा उचित है ?
3. क्या यंत्रो एवं परीक्षणों की पकड़ में सारे रोग आ सकते हैं ?

प्रभावशाली स्वावलम्बी अहिंसात्मक उपचार पद्धतियाँ

क्या स्वास्थ्य हेतु समान मापदण्डों का निर्धारण सम्भव है ?

दुनियाँ में कोई भी दो व्यक्ति सम्पूर्ण रूप से एक जैसे नहीं हो सकते हैं? क्या उनके जीवन का लक्ष्य, प्राथमिकताएँ, कर्त्तव्य, आवश्यकताएँ , समस्याएँ आदि एक जैसी ही होती है? अत: **बाह्य रूप से कुछ लक्षणों में समानता होने के बावजूद, एक-जैसी दवा अथवा उपचार करना, किसी एक रोग के नाम से रोगी का परिचय करना, सहयोगी रोगों की उपेक्षा करना कहाँ तक उचित है?** जो चिन्तनशील व्यक्तियों के सम्यक् चिन्तन की अपेक्षा रखता है।

जितनी और जैसी रोग की स्थिति, उसके अनुरूप ही समाधान अपेक्षित होता है। जिसकी जितनी बुद्धि, विवेक, पात्रता, समझ और क्षमता होती है, उसको उसी के अनुरूप समाधान अथवा परामर्श दिया जा सकता है। प्रत्येक व्यक्ति का खान-पान, रहन-सहन, आचार-विचार, आवास-प्रवास, आयु, व्यवसाय, कर्त्तव्य, जिम्मेदारियाँ , रुचि, स्वभाव, सहनशक्ति, सोच, शारीरिक और मानसिक क्षमता, पारिवारिक एवं व्यावसायिक परिस्थितियाँ, रीति-रिवाज, धार्मिक संस्कार और मान्यताएँ, मौसम की स्थिति और बदलाव, सहयोगी एवं द्वेषी लोगों का योग आदि दैनिक जीवन में ऐसे अनेकों कारण होते हैं जो व्यक्ति के स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं, व्यक्ति में तनाव अथवा प्रसन्नता का कारण बनते हैं।

क्या हमारी भावनाओं, आकांक्षाओं , संकल्पों, विकल्पों, आवेगों, संवेदनाओं, इन्द्रियों के विषयों की ग्रहण शक्ति की विभिन्नता का स्वास्थ्य से संबंध होता है? क्या हमारा मनोबल, सहनशक्ति, उत्साह, सकारात्मक सोच, खुशी के प्रसंग आदि स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं? विभिन्न इन्द्रियों के माध्यम से ग्रहण किए गए एक जैसे विषय जैसे: **देखना, सुनना, बोलना, स्वाद, सुगन्ध, स्पर्श सभी व्यक्तियों पर एक-सा प्रभाव क्यों नहीं डालते? उनके प्रति रुचि अथवा अरुचि क्या हमारे स्वास्थ्य की अभिव्यक्ति नहीं करती?** कहने का आशय यही है कि प्रत्येक व्यक्ति पर उपर्युक्त बातों का अलग-अलग प्रभाव पड़ता है, जिसका अनुभव प्रत्येक व्यक्ति को अलग-अलग होता है। दूसरी बात कुछ व्यक्ति वर्तमान में तो लगभग स्वस्थ होते हैं। जो व्यक्ति लम्बे समय से रोगी होते हैं, उनकी प्राथमिकताएँ

होती हैं-रोग का फैलाव रोकना तथा आंशिक स्वस्थता अथवा राहत प्राप्त करना ।.जो व्यक्ति मरणासन पर है, असाध्य भयंकर अथवा संक्रामक रोगों से पीड़ित हैं अथवा किसी भी प्रकार की विकलांगता से ग्रस्त हैं, रोगों की भीषणता में आंशिक सुधार से ही वे खुशी का अनुभव कर सन्तुष्ट हो जाते हैं। अत: **प्रत्येक व्यक्ति स्वास्थ्य के अलग-अलग स्तर पर जीता है और उनके स्वास्थ्य के अपने अपने अलग-अलग मापदण्ड होते हैं। अलग-अलग आवश्यकताएँ, प्राथमिकताएँ एवं सोच होता है।** अत: स्वास्थ्य हेतु सभी के लिए एक-जैसा मापदण्ड, परामर्श, निर्देश और आचरण न तो उचित ही होता है और न सम्भव।

परन्तु आज स्वास्थ्य का परामर्श देते समय अथवा रोग की अवस्था में निदान करते समय प्राय: अधिकांश चिकित्सक अथवा स्वास्थ्य विशेषज्ञ व्यक्ति के स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले उपर्युक्त प्रभावों का समग्रता से विश्लेषण नहीं करते।

पूर्ण सत्य की पूर्णत: अभिव्यक्ति नहीं की जा सकती। वह तो व्यक्ति के स्वयं की अनुभूति का विषय होता है। जो भी देखा जाता है, सुना जाता है, यन्त्रों अथवा परीक्षणों से पता लगाया जाता है, वह सत्यांश ही होता है। ऐसा अधूरा निदान और परामर्श कैसे शत-प्रतिशत सत्य और पूर्ण हो सकता है, अपने आपको स्वस्थ रखने की कामना रखने वालों से सम्यक् चिन्तन की अपेक्षा रखता है। अत: स्वस्थ रहने हेतु व्यक्ति के स्वयं की सजगता, विवेक, बुद्धि स्वावलम्बन जीवन पद्धति तथा स्वयं की स्वयं द्वारा नियमित समीक्षा पूर्ण स्वस्थता की प्राप्ति के लिए अनिवार्य होती है। पराधीन अथवा दूसरों पर आश्रित रहने वाला व्यक्ति स्थायी स्वास्थ्य को प्राप्त नहीं कर सकता है।

स्वास्थ्य हेतु चिकित्सा के विभिन्न दृष्टिकोण

रोग की अवस्था में आयुर्वेद के सिद्धान्तानुसार शरीर में वात, पित्त और कफ का असन्तुलन होने लगता है। आधुनिक चिकित्सक को मल, मूत्र, रक्त आदि के परीक्षणों में रोग के लक्षण और शरीर में रोग के कीटाणुओं तथा वायरस दृष्टिगत होने लगते हैं। प्राकृतिक चिकित्सक ऐसी स्थिति से शरीर के निर्माण में सहयोगी पंच तत्त्व पृथ्वी, पानी, हवा, अग्नि और आकाश का असन्तुलन अनुभव करते हैं। चीनी एक्यूपंक्चर एवम् एक्यूप्रेशर के विशेषज्ञों के अनुसार शरीर में यिन-यांग का असंतुलन हो जाता है। एक्यूप्रेशर के प्रतिवेदन बिन्दुओं की मान्यता वाले थेरेपिष्टों को व्यक्ति की हथेली और पगथली में विजातीय तत्त्वों का जमाव प्रतीत होने लगता है। सुजोक बायल मेरेडियन सिद्धान्तानुसार रोगी के शरीर में पंच ऊर्जाओं (वायु, गर्मी, ठण्डक, नमी और शुष्कता) का आवश्यक सन्तुलन बिगड़ने लगता है। चुम्बकीय चिकित्सक शरीर में चुम्बकीय ऊर्जा का असन्तुलन अनुभव करते हैं। ज्योतिष शास्त्री ऐसी परिस्थिति का कारण प्रतिकूल ग्रहों का प्रभाव बतलाते हैं। आध्यात्मिक योगी ऐसी

अवस्था का कारण पूर्वार्जित अशुभ असाता वेदनीय कर्मों का उदय मानते हैं। होम्योपेथ और बायोकेमिस्ट की मान्यतानुसार शरीर में आवश्यक रासायनिक तत्त्वों का अनुपात बिगड़ने से ऐसी स्थिति उत्पन्न होने लगती है। आहार विशेषज्ञ शरीर में पौष्टिक तत्त्वों का अभाव बतलाते हैं। शरीर में अम्ल-क्षार, ताप-ठण्डक का असन्तुलन बढ़ने लगता है। कहने का आशय यही है कि विभिन्न चिकित्सा पद्धतियाँ अपने-अपने सिद्धान्तों के अनुसार शरीर में इन विकारों की उपस्थिति को रोग अथवा अस्वस्थता का कारण मानते हैं। जो जैसा कारण बतलाता है, उसी के अनुरूप उपचार और परहेज रखने का परामर्श देते हैं। सभी को आंशिक सफलताएँ भी प्राप्त हो रही है तथा सफलताओं एवं अच्छे परिणामों के लम्बे-लम्बे दावे अपनी-अपनी चिकित्सा पद्धतियों के सुनने को मिल रहे हैं। विज्ञान के इस युग में किसी पद्धति को बिना सोचे-समझे अवैज्ञानिक मानना, न्याय-संगत नहीं कहा जा सकता। फिर भी इतना अवश्य है कि अधिकांश चिकित्सा पद्धतियाँ रोग के मूल कारणों को समझने एवं दूर करने में अपने-आपको असमर्थ पा रही है। क्योंकि उनके चिन्तन में समग्रता का अभाव होता है। जिसका जितना ज्यादा विज्ञापन, प्रचार-प्रसार होता है, उस पद्धति का बिना सोचे समझे रोग की अवस्था में रोगी और उसके परिजनों की असजगता, अधीरता, अज्ञानवश उपचार हेतु प्रायः अन्धानुकरण हो रहा है। परिणाम स्पष्ट है कि डाक्टरों और अस्पतालों की संख्या में निरन्तर वृद्धि के बावजूद रोग और रोगियों की संख्या में अप्रत्याशित वृद्धि हो रही है, जो स्वास्थ्य के प्रति हमारी अदूरदर्शिता, गलत चिन्तन, अप्राकृतिक जीवनशैली, अज्ञान, अविवेक एवं गलत सोच का सूचक है।

आज उपचार के नाम पर रोग के कारणों को दूर करने के बजाय अपने-अपने सिद्धान्तों के आधार पर रोग के लक्षण मिटाने का प्रयास हो रहा है। उपचार में समग्र दृष्टिकोण का अभाव होने से तथा रोग का कारण पता लगाये बिना उपचार किया जा रहा है अर्थात् रोग से राहत ही उपचार का लक्ष्य बनता जा रहा है। अतः अच्छा स्वास्थ्य जीने की भावना रखने वालों को स्वास्थ्य के मूलभूत सनातन प्राकृतिक साधारण नियमों का ईमानदारी पूर्वक सजगता एवं स्वविवेक से पालन करना चाहिये। जितना-जितना हमारा प्रकृति के साथ तालमेल होगा, उतना-उतना हम स्वस्थता के समीप होते जाएंगे। आकस्मिक दुर्घटनाओं को छोड़ अन्य परिस्थितियों में रोग का सही कारण जानने का भी प्रयास करना चाहिये, ताकि रोग की पुनरावृत्ति और उपचार के दुष्प्रभावों से स्वयं को बचाया जा सके।

उपचार की आवश्यक प्राथमिकताएँ :-

स्वस्थ रहने के लिये आवश्यक है कि हम स्वाभाविक प्राकृतिक जीवन जीएँ। रोग उत्पन्न करने वाले कारणों से यथा सम्भव बचने का प्रयास करें। शरीर, मन और आत्मा के विकास में जो सहायक हैं, ऐसे सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन और सम्यक् आचरण के संवर्द्धन हेतु सतत प्रयत्नशील रहें। शरीर, मन और आत्मा पर जो विकार हैं, उन्हें प्राथमिकता के आधार पर दूर करने का सम्यक् पुरुषार्थ करने से ही हम स्थायी स्वास्थ्य को प्राप्त

कर सकते हैं । फिर भी रोग उत्पन्न हो जायें तो उपचार करते अथवा करवाते समय इस बात का अवश्य विवेक रखें कि उपचार यथासंभव अहिंसक हो, स्वावलम्बी हो, प्रत्यक्ष - परोक्ष रूप से अन्य प्राणियों को कष्ट पहुँचाने वाला अथवा उनकी स्वाधीनता का हस्तक्षेप करने वाला न हो। यदि उपर्युक्त मापदण्डों की उपेक्षा की जायेगी तो शरीर अथवा मन का उपचार आत्मा को कर्म बंधनों से जकड़ देगा, जिसका भविष्य में अधिक दुष्परिणाम भोगना पड़ेगा। ऐसा प्रयास कर्जा चुकाने के लिये ऊँचे ब्याज पर कर्जा लेने के तुल्य होगा। नौकर को सेठ से अधिक महत्त्व देने के समान अविवेकपूर्ण होगा। अतः शरीर का उपचार करते समय आत्मा की उपेक्षा न हों, इस बात का विशेष ख्याल रखना चाहिये। ऐसे ही उपचारों का संक्षिप्त सैद्धान्तिक विवरण और चन्द विधियाँ यहाँ बतलाई जा रही हैं–

उपचार प्रारम्भ करने से पूर्व बाह्य शारीरिक संतुलन जैसे-पैरों, गर्दन, नाभि, मेरूदण्ड आदि का आवश्यक होता है। इन असंतुलनों को दूर किये बिना कोई भी उपचार स्थायी और प्रभावशाली नहीं हो सकता। तत्पश्चात् पूर्ण सजगता के साथ रोग का सही निदान आवश्यक है। जितना निदान आंशिक अथवा अधूरा होगा उतना ही उपचार भी अपूर्ण होगा जो भविष्य में अधिक हानिकारक हो सकता है। ऐसा उपचार मात्र रोग, दर्द, पीड़ा में तात्कालिक राहत दिला सकता है, पूर्ण रोग मुक्ति नहीं। निदान हेतु रोगी की सजगता, चिकित्सक से रोग के कारणों पर सम्यक् तर्क पूर्ण चर्चा आवश्यक है। क्योंकि आधुनिक चिकित्सक भी रोग में रोगी के मानसिक और भावात्मक कारणों को समझने में असमर्थ होने के कारण उनकी पूर्ण उपेक्षा करते प्रायः पाये गये हैं।

निदान संबंधी चिन्तन योग्य बातें :-

क्या आधुनिक निदान पूर्ण और सही होता है?

शरीर में पंच तत्त्व का अपना अपना परिवार होता है तथा उस तत्त्व अथवा उससे संबंधित ऊर्जा के असंतुलन से परिवार के सभी सदस्य किसी न किसी रूप में प्रभावित होते हैं। ठीक उसी प्रकार जब पंच तत्त्वों के अनुपात में द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की आवश्यकतानुसार असंतुलन हो जाता है तो, रोग होने की संभावना बढ़ती हैं। हमारे शरीर में पांच इन्द्रियों, मन और मस्तिष्क उस असंतुलन से अलग अलग ढंग से प्रभावित होते हैं, जो हमारे चित्त, स्वभाव और जीवन शैली का निर्धारण करते हैं। रोग का निदान करते समय क्या आधुनिक चिकित्सक उन प्रभावों को महत्व देते हैं? मानसिक स्थिति को समझे बिना निदान कैसे सही हो सकता है, चिन्तन का प्रश्न है ?

क्या शरीर में अकेला रोग हो सकता है?

हमारे शरीर में प्रायः सैकडों रोग होते हैं। जिनकी उपस्थिति का हमें आभास तक नहीं होता है । हम तब तक रोग को रोग नहीं मानते, जब तक उनके लक्षण स्पष्ट रूप से प्रकट नहीं हो जाते या हमे परेशान करने नहीं

लग जाते अथवा रोग हमारी सहनशक्ति से परे नहीं होने लगता है।

रोग के जो लक्षण बाह्य रूप से प्रकट होते हैं, अथवा पेथालोजिकल टेस्टों एवं यंत्रों की पकड़ में आते हैं, वे लक्षण तो सामान्य ही होते है, जिनके आधार पर प्रायः रोगों का नामकरण किया जाता है। चिकित्सा पद्धतियों के अधिकांश चिकित्सक भी अपने सिद्धान्तों के अनुरूप निदान करने के स्थान पर उसी निदान को शत प्रतिशत सही मान अपने अपने ढंग से उन रोगों का उपचार करते हैं। पुराने अनुभवी वैद्य रोगी की नाड़ी देख कर रोग का सही निदान करने में सक्षम थे। परन्तु आज आयुर्वेद में भी निदान का वह आधार गौण होता जा रहा है। इसी कारण उसका प्रभाव भी दिन प्रतिदिन घटता जा रहा है। ठीक उसी प्रकार एक्यूप्रेशर की सुजोक अथवा रिफ्लेक्सोलोजी के अनुसार हथेली और पगथली के जिन स्थानों पर दबाव देने से दर्द होता है, वे सारे स्थान शरीर में रोग के पारिवारिक सदस्य होते हैं, जितना अधिक दर्द उतना रोग निवारण हेतु प्रभावशाली प्रतिवेदन बिन्दू। परन्तु आज अधिकांश एक्यूप्रेशर चिकित्सक भी अपने सहज सरल, सही निदान के तरीकों से दूर हट, आधुनिक निदान के आधार पर प्रदर्शित रोग का ही उपचार करते हैं। परिणाम स्वरूप उपचार की प्रभावशालीता न केवल कम हो जाती है, अपितु उपचार आंशिक होने से लम्बा भी हो जाता है।

क्या समान लक्षणों वाले दो रोगी एक जैसे हो सकते हैं?

कहने का तात्पर्य यही है कि **दुनियाँ में जब दो व्यक्ति एक जैसे नहीं हो सकते, तब दो रोगियों और उनका निदान एक जैसा कैसे हो सकता है ?** वास्तव में आज लक्षणों के आधार पर जिन रोगों का नामकरण किया जाता है, वे अनेक रोगों के समूह के नेता की भांति होते हैं। जिन्हें सैकड़ों अप्रत्यक्ष रोगों का सहयोग प्राप्त होता है। जनतन्त्र में नेता को हटाने का सरलतम उपाय है कि उसके सहयोगियों को उनसे अलग करना। सहयोगियों को अलग किये बिना नेता को हटाना सरल नहीं होता। ठीक उसी प्रकार निदान करते समय, यदि अप्रत्यक्ष रोगों की उपेक्षा करें तो, निदान और उस पर आधारित उपचार आंशिक अथवा अधूरा ही होता है।

क्या भाव निदान को प्रभावित करते है ?

निदान में भावों और मानसिक स्थिति के अनुसार ही अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ अपने हारमोन्स पैदा करती हैं, इसी कारण एक ही व्यक्ति के अलग अलग समय पर किये जाने वाले मल, मूत्र, ई. सी. जी. आदि पैथालोजिकल टेस्ट सदैव एक जैसे नहीं होते। आधुनिक चिकित्सा पद्धति के निदान का यहीं मूलाधार होता है। **जब रोग का आधार ही बदलता रहे तो ऐसे निदान कैसे विश्वसनीय, सही, प्रभावशाली, और वैज्ञानिक हो सकते हैं?**

निदान में आयु का महत्त्व

कोई भी रोग रातों रात अपना विकराल रूप धारण नहीं करता। जिस प्रकार बीज धीरे धीरे वृक्ष का रूप लेता है उसी प्रकार रोग भी धीरे धीरे अपना प्रभाव दिखाता है। शरीर में वायु गर्मी, नमी, शुष्कता और ठण्डक का जीवन की विभिन्न अवस्थाओं में अलग अलग अनुपात होता है। जिस अवस्था में रोग होता है, रोग के कारणों में उस अवस्था से संबंधित ऊर्जा की प्रभावी भूमिका होती है। जैसे बच्चा चंचल न हो, युवाओं में जोश न हों, तो असंतुलन के कारण माने जाते हैं। अत: एक ही प्रकार के लक्षणों से परिभाषित रोगों के कारण अलग अलग होते हैं। उनका अलग अलग अंगों की मुख्य अथवा सहायक ऊर्जा से भी अलग-अलग संबंध होता है। अत: सही निदान करते समय व्यक्ति की आयु के प्रभाव का भी महत्व होता है।

मौसम का प्रभाव

अलग अलग जलवायु में अलग अलग ऊर्जाएँ प्रभावशाली होती है। अत: रोग का निदान करते समय उस जलवायु से संबंधित प्रमुख अंग में ऊर्जा असंतुलन की रोग के कारणों में मुख्य भूमिका होती है। एक जैसे बाह्य लक्षण वाले रोगों में बसन्त ऋतु में, यकृत-पित्ताशय, गर्मी में हृदय -छोटी आंत, वर्षा अथवा बदलते मौसम में तिल्ली-आमाशय, सर्दी की मौसम में, गुर्दे-मूत्राशय आदि में असंतुलन रोग का प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष कारण हो सकता है।

शारीरिक ध्वनियाँ और रोग

प्रत्येक व्यक्ति के शरीर से अलग अलग प्रकार की आवाजें निकलती हैं। जैसे कोई निद्रा में खर्राटें लेता है तो किसी को डकारें, जम्भाईयाँ, हिचकियाँ, छीकें, खांसी आती है। किसी की आवाज बदल जाती है तो, किसी के आवाज के साथ गैस विसर्जित होती है। किसी की आवाज मधुर सुरीली होती है तो, किसी की कर्कश और मोटी क्यों? शरीर में इन ध्वनियों के स्पन्दन का नियन्त्रण कौन और कैसे करता है ? क्या इन ध्वनियों का हमारे स्वास्थ्य से कोई संबंध होता है? **क्या इन ध्वनियों को मन चाहें घटाना, बढ़ाना संभव होता है? क्या निदान में इनकी समीक्षा होती है?**

रंग और रोग

कोई काला तो कोई गोरा या अन्य रंग वाला क्यों ? - कभी - कभी शरीर के कुछ भाग काले, नीले या लाल क्यों हो जाते हैं? कभी कभी त्वचा का रंग क्यों उड़ जाता है? क्या आधुनिक परीक्षणों में इस परिवर्तन के कारणों का निदान संभव होता है ? क्या इन परिवर्तनों का रोग से कोई संबंध होता है? इन रंगों के परिवर्तन में कौन से अंग की प्रभावी भूमिका होती है? इसके अतिरिक्त **किसी को लाल तो किसी को पीला, हरा, नीला आदि रंग अच्छे**

या बुरे क्यों लगते हैं? क्या रंगों की पसन्द या नापसन्द का स्वास्थ्य से कोई संबंध है? क्या निदान करते समय इस तथ्य की उपेक्षा तो नहीं होती?

स्वाद और रोग-

किसी व्यक्ति को खट्टा तो किसी को मीठा, किसी को नमकीन तो किसी को चटपटा, क्यों अच्छा लगता है? क्या इन स्वादों की पसन्द या अरुचि का स्वास्थ्य से कोई संबंध होता है ? मधुमेह वालों को मिठाई और रक्तचाप के रोगियों को नमक छोड़ने की क्यों सलाह दी जाती है ? शरीर में उन स्वादों का नियन्त्रण कौन करता है ? क्या अपनी इच्छानुसार जब चाहें स्वादों के प्रति लगाव बदला जा सकता है ? **क्या स्वादों का रोग से संबंध होता है?**

गंध और रोग

चन्द व्यक्ति अत्यधिक सुगन्ध प्रिय होते हैं । चन्द तनिक भी दुर्गन्ध सहन नहीं कर सकते। कुछ व्यक्तियों को दूर में कुछ भी जल रहा हो, सहज आभास हो जाता है, तो कुछ लोगों को समीप में जलने का भी आभास नहीं होता । किसी के शरीर से एक प्रकार की गंध आती है और अन्य के शरीर में दूसरे प्रकार की। ऐसा क्यों ? **क्या शरीर से निकलने वाली तथा बाहिर से आने वाली गन्धों के प्रति रुचि अथवा अरुचि के भाव का स्वास्थ्य से कोई संबंध होता है? क्या गन्ध का नियन्त्रण एक मात्र नाक से संबंधित है ? क्या गन्ध के प्रति हमारी प्रकृति को दवा द्वारा मन चाहा बदलना संभव है? क्या गंध निदान को प्रभावित करती है?**

शरीर से विसर्जित होने वाले तरल पदार्थों की रोग निदान में भूमिका

किसी व्यक्ति को बैठे बैठे ही पसीना आता है तो अन्य को कठिन परिश्रम अथवा दौड़ने के बावजूद भी नहीं आता। ऐसा क्यों? किसी की आंखों में बिना कारण आंसू आ जाते हैं । किसी के थूक, कफ अथवा पसीना ज्यादा आता है, तो वैसे ही लक्षणों वाले अन्य रोगी को कभी कभी कम भी पसीना आता है? क्या हम जैसा चाहें, जिस मार्ग से चाहें, तरल विजातीय पदार्थों का विसर्जन अपनी इच्छानुसार कर सकते हैं? क्या विजातीय तरल विभिन्न द्रवों के विसर्जन तरीकों का आपसी संबंध होता है ? क्या पेथालोजीकल अथवा अन्य परीक्षणों द्वारा उनके कारणों का पूर्ण निदान संभव होता है?

निदान में अंगों में प्रवाहित होने वाली ऊर्जा प्रवाह के क्रम की भूमिका

शरीर में स्थित मेरेडियनों में ऊर्जा के प्रवाह का एक निश्चित क्रम होता हैं। प्रत्येक मेरेडियन में प्रवाह किसी अन्य मेरेडियन से आता है और किसी दूसरी मेरेडियन में आगे जाता हैं। अतः रोग की अवस्था में संबंधित अंग में

ऊर्जा प्रवाह को संतुलित करते समय उसके आगे और बाद में आने वाले अंगों पर पड़ने वाले रोग के लक्षणों की तरफ

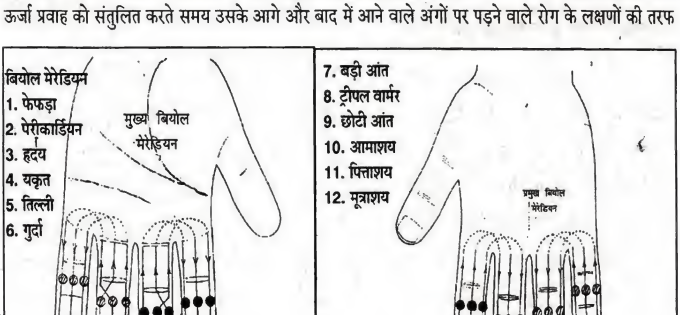

यिन बियोल मेरेडियन में ऊर्जा का प्रवाह (चित्र नं.79)

यांग बियोल मेरेडियन में ऊर्जा का प्रवाह (चित्र नं. 80)

विशेष ध्यान देना चाहिये ताकि निदान सही हो सके। जैसे फेंफड़ें मेरेडियन में ऊर्जा का प्रवाह तिल्ली मेरेडियन से आता हैं और आगे बड़ी आंत मेरेडियन में जाता हैं। अतः दमा अथवा फेंफड़ों से संबंधित अन्य रोगों में तीनों मेरेडियनों में ऊर्जा प्रवाह नियमित और संतुलित करने से प्रभावशाली स्थायी परिणाम आते हैं। एलर्जी अस्थमा का मुख्य कारण तिल्ली मेरेडियन में ऊर्जा के प्रवाह का असंतुलन प्रायः होता है। अन्य प्रकार के पुराने दमा का कारण प्रायः बडी आंत मेरेडियन में ऊर्जा प्रवाह का असंतुलन भी हो सकता है।

हृदय मेरेडियन में ऊर्जा गुर्दे मेरेडियन से आती हैं और छोटी आंत मेरेडियन में जाती हैं। अतः तीनों एक दूसरे से संबंधित होते हैं। इसी प्रकार पेरीकार्डियन मेरेडियन में ऊर्जा लीवर मेरेडियन से आती है और ट्रीपल वार्मर मेरेडियन में जाती हैं। स्पलीन मेरेडियन पित्ताशय मेरेडियन से आती हैं और फेंफड़े में जाती हैं। इसी कारण प्राणायम और पाचन तंत्र के संतुलन से मधुमेह जो स्पलीन से विशेष संबंधित होता है, नियन्त्रित किया जा सकता हैं। गुर्दे मेरेडियन में प्रवाह मूत्राशय से आता है और हृदय में जाता हैं। लीवर मेरेडियन में प्रवाह आमाशय मेरेडियन से आता है और पेरीकार्डियन मेरेडियन में जाता हैं। अतः पुराने रक्त चाप और हृदय रोग का कारण गुर्दे मेरेडियन में ऊर्जा के प्रवाह का असंतुलन भी हो सकता है।

निदान में रोग के समय की भूमिका

रोग का निदान करते समय काल का भी बहुत अधिक महत्व होता हैं। जब रोग तीव्र अवस्था में होता हैं उस समय कौनसी मेरेडियन में ऊर्जा का सर्वाधिक प्रवाह होता है और कौनसी मेरेडियन में न्यूनतम। यदि रोग का कारण अंग की निष्क्रियता हों तो जब उस मेरेडियन में ऊर्जा का प्रवाह निम्नतम होता है, रोगी अधिक परेशान होता हैं। परन्तु जब रोग का कारण अंग की अत्यधिक सक्रियता से होता है तो, जब उससे संबंधित मेरेडियन में ऊर्जा का अधिकतम प्रवाह होता है तब रोगी को अधिक बैचेनी होती हैं।

शरीर में चौबीसों घंटे सभी मेरेडियनों में ऊर्जा प्रवाह की एक जैसी स्थिति नहीं रहती। अतः दिन अथवा रात में जब किसी अंग में ऊर्जा का प्रवाह सर्वाधिक अथवा न्यूनतम होता है उस क्रम में आगे और पीछे आने वाले अंगों पर भी प्रत्यक्ष परोक्ष रूप से रोग का प्रभाव पड़ता हैं। जैसे फेंफड़े में सर्वाधिक ऊर्जा का समय प्रातः 3 बजे से 5 बजे तक का लगभग होता हैं। फेंफड़े से पूर्व लीवर में रात्रि एक बजे से तीन बजे ऊर्जा का सर्वाधिक प्रवाह और बड़ी आंत में प्रातः 5 बजे से 7 के मध्य होता हैं। अतः फेंफड़े संबंधित रोगों का यकृत और बड़ी आंत के कार्यो पर भी प्रभाव पड़ सकता हैं। दूसरी बात जब फेंफड़ों में निम्नतम ऊर्जा का प्रवाह दोपहर 3 बजे से 5 बजे के लगभग होता हैं, उसी समय गुर्दे में अधिकतम ऊर्जा का प्रवाह होने से रोग की स्थिति में फेंफड़े और गुर्दो में असंतुलन भी बिगड़ सकता है। कहने का तात्पर्य यही है कि निदान करते समय चिकित्सक का दृष्टिकोण जितना व्यापक और समग्र होगा उतना ही निदान सही होता हैं।

निदान को प्रभावशाली बनाने में सहयोगी-सामान्य जानकारी

असाध्य एवं पुराने संक्रामक रोगों का उपचार करने से पूर्व उपर्युक्त चर्चित अन्य बातों के साथ साथ यदि चिकित्सक द्वारा निम्न बातों की भी जानकारी लेने से निदान अधिक सही एवं सरल हो जाता हैं।

(1) रोगी के रोग का पिछला इतिहास-जन्म से अथवा उसके बाद भूतकाल में घटित दुर्घटना अथवा विशेष रोग संबंधी जानकारी।

(2) रोगी की मुख्य शिकायते।

(3) पैतृक रोग एवं अन्य परिजनों के रोग संबन्धी जानकारी।

(4) व्यवसायिक वातावरण एवं कार्य संबंधी जानकारी।

(5) शौक अथवा दुर्व्यसनों के सेवन संबन्धी जानकारी।

(6) पारिवारिक स्थिति।

(7) आवास व्यवस्था।

(8) भूख, प्यास, मल एवं मूत्र त्याग संबंधी सामान्य जानकारी।

(9) खान-पान, रहन-सहन, आचार-विचार, चिन्तन-मनन, सजगता स्वभाव, संस्कारों, निर्णय लेने की क्षमता एवं विवेक संबंधी जानकारी।

(10) दृढ़ता, मनोबल की स्थिति, तर्क शक्ति आदि की जानकारी

उपर्युक्त बातों की जितनी सही जानकारी प्राप्त होती है, उतना ही निदान प्रमाणिक और विश्वसनीय हो जाता हैं। अतः निदान करते समय चिकित्सक का स्वविवेक, अनुभव और समग्र दृष्टिकोण की अहं भूमिका होती है।

क्या एक जैसे लक्षणों का संबंध अलग-अलग अंगों से हो सकता है ?

अतः जब तक रोग के मूल कारण को मालूम नहीं किया जाता है, तब तक निदान कैसे विश्वसनीय और सही हो सकता है ? ऐसा उपचार स्थायी एवं प्रभावशाली कैसे हो सकता है ? ऐसे ही कुछ लक्षणों से विभिन्न अंगों के संबंध का विवरण निम्न तालिका में दिया गया है–

रोग के लक्षण	सम्बन्धित अंग
1. मूत्र संबंधी रोग	गुर्दे-मूत्राशय में गड़बड़ी के कारण
2. मल त्याग संबंधी रोग	फेंफड़े-बड़ी आंत अथवा यकृत-पित्ताशय में गड़बड़ी के कारण
3. नाड़ी की गति सम्बन्धी रोग	हृदय-छोटी आंत, पेरीकार्डियन-ट्रिपल वार्मर में गड़बड़ी के कारण
4. श्वसन संबंधी रोग	फेंफड़े-बड़ी आंत में गड़बड़ी के कारण
5. पसीना संबंधी रोग	हृदय-छोटी आंत अथवा फेंफड़े-बड़ी आंत या गुर्दे -मूत्राशय में गड़बड़ी के कारण
6. भूख संबंधी रोग	यकृत-पित्ताशय अथवा तिल्ली-पेन्क्रियाज/आमाशय में गड़बड़ी के कारण
7. वजन संबंधी रोग	यकृत-पित्ताशय या तिल्ली-पेन्क्रियाज/आमाशय अथवा पेरिकार्डियन-ट्रिपल वार्मर में गड़बड़ी के कारण
8. भावनाओं संबंधी रोग	हृदय-छोटी आंत अथवा पेरिकार्डियन-मेरूदण्ड (ट्रिपल वार्मर) में असंतुलन के कारण

क्या आधुनिक निदान पूर्णतः वैज्ञानिक है?

कहने का तात्पर्य यही है कि उपर्युक्त सारे तथ्य शरीर में असंतुलन पैदा कर रोग उत्पन्न करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका रखते हैं। सम्पूर्ण आरोग्य के लिये रोग का सही और पूर्ण निदान आवश्यक होता हैं। किसी भी चिकित्सा पद्धति द्वारा एक पक्षीय सिद्धान्तों पर आधारित निदान आंशिक, अधूरा, अपूर्ण ही होता है। ऐसे निदानों को वैज्ञानिक मानना कितना अदूरदर्शिता पूर्ण है? जो प्रत्येक चिन्तनशील प्राणी के लिये चिन्तन का विषय है। अतः निदान करते समय हमें अनेकान्त और समग्रता का दृष्टिकोण रखना होगा ताकि निदान सही और उपचार प्रभावशाली हो।

स्वावलम्बी चिकित्सा प्रभावशाली क्यों?

मानव शरीर अपने आप में परिपूर्ण है। इसमें अपने आपको स्वस्थ रखने की पूर्ण क्षमता होती है। हम अनुभव करते हैं कि चेतनाशील प्राणियों में मनुष्य जाति का प्रतिशत तो एक से भी कम होता है। बाकी 99 प्रतिशत जीव अपना सहज जीवन जीते हैं। वे उपचार हेतु न तो किसी चिकित्सक से परामर्श ही करते हैं तथा न किसी प्रकार की दवा भी लेते हैं। **हमें चिन्तन करना होगा कि जो शरीर अपनी कोशिकाएँ, रक्त, मांस, मज्जा, हड्डियाँ, चर्बी, वीर्य आदि अवयवों का निर्माण स्वयं करता है, जिसे आधुनिक विकसित विज्ञान पूरी कोशिश के बावजूद नहीं बना पाया। ऐसे स्वचालित, स्वनिर्मित, स्वनियन्त्रित शरीर में, स्वयं के रोग को दूर करने की क्षमता न हों, यह कैसे संभव हो सकता है?**

परन्तु आज हमें चिकित्सक और दवा पर जितना विश्वास है, उतना अपने आपकी क्षमताओं पर नहीं है। जिसका दुष्परिणाम है कि साधारण से रोगों में हम स्वयं को अपने अविवेक, अज्ञान, असजगता के कारण चिकित्सकों की प्रयोगशाला बनाते तनिक भी संकोच नहीं करते। **शरीर अविभाज्य है। अतः शरीर के किसी भाग की खराबी अथवा असंतुलन से पूरा शरीर प्रभावित होता है।** अतः रोगी का उपचार लक्षणों पर आधारित रोगों के स्थान पर पूर्ण शरीर का होना चाहिये। इस दृष्टि से आज अधिकांश चिकित्सकों की सोच मात्र सत्यांश ही होती है। उसमें समग्र दृष्टिकोण का अभाव होने से उपचार अस्थायी होता है। **आरोग्य शास्त्र में तन, मन और चित्त, तीनों का एक साथ उपचार होता है, अर्थात् समग्रता से विचार किया जाता है। शरीर की प्रतिकारात्मक शक्ति कम न हों, इस बात को प्राथमिकता दी जाती है। जबकि रोग शास्त्र में रोग के कारणों की अपेक्षा कैसे राहत मिले, प्रमुख होता है।**

शरीर का विवेक पूर्ण सजगता के साथ उपयोग करने की विधि स्वावलम्बी जीवन की आधारशिला होती है। मानव की क्षमता, समझ और विवेक जागृत करना उसका उद्देश्य होता है। उपचार में रोगी की भागीदारी मुख्य होती है। अतः रोगी उपचार से पड़ने वाले प्रभावों के प्रति अधिक सजग रहता है, जिससे दुष्प्रभावों की सम्भावना

प्रायः नहीं रहती। ये उपचार बाल-वृद्ध, शिक्षित-अशिक्षित, गरीब अमीर, शरीर विज्ञान की विस्तृत जानकारी न रखने वाला साधारण व्यक्ति भी आत्म विश्वास से स्वयं कर सकता हैं।

अहिंसात्मक चिकित्सा पद्धतियाँ हिंसा पर नहीं अहिंसा पर, विषमता पर नहीं समता पर, साधनों पर नहीं साधना पर, दूसरों पर नहीं स्वयं पर आधारित होती है। वे व्यक्ति को सजग और स्वाधीन बनाती है। उससे प्रत्यक्ष - अप्रत्यक्ष, दृश्य - अदृश्य रोगों का उपचार एक साथ सरलता से किया जा सकता है। एक जैसे लक्षणों का संबंध अलग-अलग अंगों से हो सकता है।

अतः निदान करते समय इस बात की सजगता और विवेक रखना आवश्यक होता है कि बाह्य रूप से प्रकट होने वाले लक्षणों का संबंध कौन से अंग से होता है ? आजकल चिकित्सकों के समग्र चिन्तन का अभाव होने से, मात्र पसीना आने अथवा छाती में दर्द के कारण कभी कभी रोगी का हृदय ठीक होने पर भी उसे हृदय रोगी बतला दिया जाता है, जिससे रोगी की मानसिकता पर विपरीत प्रभाव पड़ सकता है। निदान करते समय सम्पूर्ण शरीर को एक इकाई के रूप में समझने से ही निदान सही हो सकता है।

स्वावलम्बी चिकित्सा से संबंधी आवश्यक बातें

- रोगी की सजगता।
- रोग के कारणों को जानने की जिज्ञासा तथा स्वयम् की भूमिका का चिन्तन।
- शरीर, मन एवम् आत्मा की क्षमताओं का निरन्तर चिन्तन।
- स्वस्थ होने की तीव्र उत्कण्ठा।
- अहिंसा में पूर्ण विश्वास
- दृढ़ निश्चय, मनोबल, आत्म विश्वास।
- सम्यक् श्रद्धा, तर्क पूर्ण चिन्तन तथा दुष्प्रभावों के प्रति उपेक्षावृत्ति न होना।
- रोगी की भागीदारी, एकाग्रता, नियमितता, समयबद्धता।

मस्तिष्क शोधन की क्रिया

(Mind Cleansing Exercise)

स्वास्थ्य और मस्तिष्क का सीधा संबंध होता है। मस्तिष्क में शरीर के प्रत्येक भाग के प्रतिनिधि होते हैं। चेतना के केन्द्र भी वैसे तो सारे शरीर में फैले हुए रहते हैं परन्तु मुख्य केन्द्र मस्तिष्क में ही होते हैं। अतः शल्य चिकित्सा करते समय मस्तिष्क को संवेदन शून्य बना दिया जाता है, जिससे दर्द की अनुभूति नहीं होती। **हमारी सभी जीवनी शक्तियों के संचालन में मस्तिष्क की अहं भूमिका होती है। हमारा चित्त सर्व प्रथम मन और भाव के माध्यम से मस्तिष्क को प्रभावित करता है। मन के कार्य कलापों, जैसे - स्मृति, कल्पना, चिन्तन, मनन में भी मस्तिष्क के संतुलन और स्वच्छता की आवश्यक होती है। अतः यदि किसी विधि द्वारा मस्तिष्क का शोधन कर दिया जाये तो विस्मृत स्मृतियाँ पुनः ताजा हो सकती है। प्राण ऊर्जा के प्रवाह में आने वाले अवरोध दूर हो सकते हैं तथा मन में शांति, निर्भयता, तनाव मुक्ति जैसी उपलब्धियां सहज प्राप्त होने लगती हैं। पूर्वाग्रह समाप्त होने लगते हैं एवं व्यक्ति बच्चे के समान सरल और निष्पृह होने लगता है।**

इस प्रक्रिया में सोऽहं के उच्चारण के साथ अलग अलग अवधि तक लयबद्ध ढंग से अलग अलग गति के साथ श्वास-निःश्वास का अभ्यास किया जाता है। इस हेतु पहले केसट में 2-3 मिनट के लिये बारी बारी से धीरे धीरे, तो कभी मध्यम गति से तो कभी तेज, तो कभी बहुत जल्दी सोऽहं का उच्चारण भर लिया जाता है। उच्चारण बदलने का कोई निश्चित क्रम नहीं होता। अर्थात 2-3 मिनट के लिए पहले धीरे-धीरे, तो कभी तेज, तो कभी मध्यम, कभी बहुत तेज तो फिर एक दम धीमा। इस प्रकार लगभग आधा घंटे के लगभग सोऽहं उच्चारण का टेप भर लिया जाता है।

मस्तिष्क शोधन करने हेतु प्रातःकाल का समय श्रेष्ठ होता है परन्तु खाना खाने के 2-3 घंटे बाद इसे कभी भी किया जा सकता है । सो के उच्चारण के साथ श्वास लिया जाता है और हम् के उच्चारण के साथ पूर्ण निःश्वास किया जाता है। हृदय और दमा के रोगियों के लिए तेज एवं बहुत तेज गति से सोहं के साथ साथ लयबद्ध ढंग से श्वास और निःश्वास करने का प्रारम्भ में निषेध किया गया है। परन्तु धीमी और मध्यम गति से इस क्रियां को किया जा सकता है।

इस प्रक्रिया हेतु शांत, एकान्त, स्वच्छ वातावरण में आराम से शिथिलिकरण की अवस्था में लेट जाना चाहिये। फिर टेप की केसट को चालू करके सोऽहं की ध्वनि के साथ श्वास को लयबद्ध ढंग से लेना प्रारम्भ करें। श्वास लेते समय पेट पूरा फूलना चाहिये और निःश्वास के समय पेट को अधिक से अधिक अन्दर की तरफ सिकोड़ना चाहिये। यदि लय टूट जाये तो पुनः लयबद्ध होने हेतु सजगता से प्रयास करना चाहिये। जैसे ही सोऽहं उच्चारण की लय बदले, उसी के अनुरूप श्वास की गति बदल देनी चाहिये। इस प्रकार श्वास और सोऽहं के उच्चारण में तालमेल होने से व्यक्ति का ध्यान श्वास पर केन्द्रित होने लगता है । परिणाम स्वरूप प्राण ऊर्जा के प्रवाह में आने वाले अवरोध तथा विजातीय तत्व मस्तिष्क में अपना स्थान छोड़ने लगते हैं। आधा घंटे पश्चात जब केसट में भरा सोऽहं का उच्चारण बंद हो जाता है तों, शिथिलीकरण की मुद्रा में पुनः आ जाना चाहिये। इस प्रक्रिया में व्यक्ति के मन में जो भी नकारात्मक भाव होते हैं, वे सघन हो मस्तिष्क में जमा हो जाते हैं तथा व्यक्ति की कुछ करने की इच्छा प्रबल होने लगती है। अतः उस समय उन भावनाओं को दबाने के बजाय, मन जो करना चाहे कर लेना चाहिये। अर्थात हँसने की इच्छा हो तो खुलकर हँसना चाहिये और रोने की इच्छा हो तो बिना संकोच रो लेना चाहिये। चिल्लाने अथवा अन्य कोई भी इच्छा अथवा भावना हो, उसे नहीं दबाना चाहिए। जैसी इच्छा हो उसकी स्वयं के माध्यम से पूरा करने से मस्तिष्क एक दम शांत, तनाव मुक्त और स्वच्छ हो जाता है जिससे, स्मृतियाँ ताजा होने लग जाती हैं, व्यक्ति के अन्दर में नये जीवन का संचार होने लगता है। अतः बहुत से योगी इस प्रक्रिया को पुनर्जन्म वाला व्यायाम (Rebirth Exercise) भी कहते हैं।

चित्र नं. 81

नियमित रूप से इस क्रिया को करने से व्यक्ति के मानसिक रोगों से त्रस्त होने की संभावनाएँ बहुत कम हो जाती हैं और शरीर में यदि रोग हों तो, वे शीघ्र दूर होने लगते हैं।

शरीर से मन और मन से मस्तिष्क की ताकत ज्यादा होती है

शरीर के लिए उपयोगी खाद्य पदार्थों के परीक्षण की विधि

प्रायः हम अनुभव करते है कि सभी व्यक्तियों को सभी वस्तुएँ अनुकूल नहीं होती। किसी को किसी वस्तु से एलर्जी होती है अथवा ताकत मिलती है, जबकि उसी पदार्थ से अन्य व्यक्ति में वैसा लाभ नहीं होता। किसी को दूध लाभप्रद होता है, जबकि किसी अन्य को दूध का पाचन भी कठिन होता है। ऐसा क्यों? प्रत्येक व्यक्ति के शरीर में उपलब्ध अवयवों की मात्रा का अनुपात अलग अलग क्यों होता है?

कौनसी वस्तु किसके लिये कितनी लाभप्रद अथवा हानिकारक होती है, यदि इस बात का पता चल जाये, तो अनुपयोगी पदार्थों के सेवन से सहज ही बचा जा सकता है जो स्वास्थ्य के लिये परमावश्यक है।

आज का युग तरंगों के प्रभाव से पूर्ण परिचित है। प्रत्येक पदार्थ से उसके गुण धर्म के आधार पर तरंगें निकलती है। यदि उन तरंगों से शरीर की ताकत बढ़ती है तो, वे पदार्थ हमारे लिये उपयोगी होते हैं। परन्तु जो तरंगे हमारी शक्ति घटाती हैं, वे पदार्थ हमारे लिये अनुपयोगी होते हैं। जो व्यापारी अपने व्यवसाय में हेराफेरी करते हैं, यदि उनके दूकान के बाहर कोई इंकमटेक्स अथवा सेल्स टेक्स आफिसर की गाड़ी ठहरती है तो, उन्हें तनाव क्यों हो जाता है? पुलिस को देखते ही अपराधी क्यों घबराने लगता है? जितना प्रेम माता को अपने बच्चे से होता है, भले ही उसका रूप कैसा ही क्यों न हो, उतना प्रेम अन्य बच्चों से क्यों नहीं होता? **हमारे शरीर के चारों तरफ आभा मंडल अथवा चुम्बकीय क्षेत्र होता है। जिस पदार्थ की तरंगें उस आभा मंडल के अनुकूल होती है, उसे शक्तिशाली बनाती है, वे वस्तुएँ और प्रवृत्तियाँ मानव के लिए हितकारी होती है। परन्तु जिन तरंगों से आभा मंडल विकृत और अशुद्ध बनता है, वे पदार्थ और क्रियायें हमारे लिए अनुपयोगी और अकरणीय होती हैं।** जिस वस्तु की आवश्यकता होती है, उसकी प्राप्ति पर प्रसन्नता क्यों होती है? जो वस्तु आवश्यक न हो, हानिकारक हो, उसको हम क्यों स्वीकार नहीं करते? कारण स्पष्ट है जो पदार्थ की तरंगे हमारे आभा मंडल अथवा शरीर के चारों तरफ स्थित चुम्बकीय क्षेत्र को ताकतवर बनाती है। वे पदार्थ हमारे लिये उपयोगी होते हैं तथा जो तरंगे शरीर की तरंगो से मिल उसके प्रभाव को कम कर देती हैं, वे पदार्थ हमारे लिए उपयोगी नहीं हो सकते। इसी सिद्धान्त के आधार पर हम खाद्य पदार्थों एवं दवाओं का परीक्षण कर सकते हैं।

प्रयोग–एक वजन करने वाली मशीन लें। फिर अपनी बायीं हथेली को हृदय की धड़कन वाले स्थान से स्पर्श कर, दूसरी हथेली से वजन करने वाली मशीन पर जितना ज्यादा से ज्यादा दबाव दे सकते हैं, दें और अपनी ताकत

को मशीन से मांप लें। अब जो वस्तु अथवा दवा जिसका परीक्षण करना है, उसे बायीं हथेली में लेकर अथवा कागज में लेकर पुनः धड़कन वाले स्थान पर हलका सा दबाव से स्पर्श करें। तरल पदार्थ का परीक्षण करना हो तो कांच के

(चित्र नं. 82)

बर्तन में लेकर धड़कन वाले स्थान पर स्पर्श करें तथा दाहिनी हथेली को पहले की भांति वजन तोलने वाली मशीन पर अधिकतम दबाव देकर पुनः अपनी ताकत का मांप करें। अगर आपकी ताकत में वृद्धि होती है तो जिस वस्तु का आप बायें हाथ में परीक्षण कर रहे है, वह वस्तु आपके लिये स्वास्थ्यवर्द्धक होती है। परन्तु इसके विपरित यदि आपकी शक्ति पहले से कम होती है तो, वह खाद्य वस्तु खाना हानिकारक होता है। हमारा हृदय शरीर में सबसे संवेदनशील अंग है तथा उसकी धड़कन बायीं हथेली में जो पदार्थ है, उनसे निकलने वाली तरंगों के लिए एण्टिना का कार्य करती है। जो पदार्थ की तरंगे पेट में जाने से पहले ही व्यक्ति की ताकत घटा दे, उन खाद्य पदार्थों और दवाईयों का सेवन निश्चित रूप से हानिकारक होता है। यह प्रयोग करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि परीक्षण करते समय हमारे शरीर की स्थिति एक जैसी ही होनी चाहिए। दोनों समय मशीन पर एक जैसा अधिकतम दबाव डालना चाहिए। अलग-अलग दबाव डाला गया अथवा शरीर की स्थिति (Posture) बदला गया तो इस प्रयोग के परिणाम प्रमाणिक नहीं होंगे।

कोई भी दवा अथवा पदार्थ कितना भी लाभप्रद क्यों न हो, उपयोगी क्यों न हों, उसका सीमित प्रयोग ही उपयोगी होता है। जैसे प्यास लगने पर पानी अच्छा लगता है। परन्तु वहीं पानी प्यास समाप्त हो जाने के बावजूद पीया जायें तो शरीर उसे स्वीकार नहीं करता है। भूखे को भोजन अच्छा लगता है, परन्तु भूख मिट जाने के पश्चात अधिक भोजन करना हानिकारक होता है। अतः यह जानना आवश्यक है कि किसी दवा अथवा खाद्य पदार्थ का कितना उपयोग किया जाये ?

किसी पदार्थ का प्रथम बार परीक्षण करने के पश्चात् जो पदार्थ अथवा दवा उपयोगी है उसकी निर्धारित मात्रा का सेवन करने के आधा घंटे पश्चात् पूरे प्रयोग को पुनः दोहरावे। जब तक परीक्षण में ताकत बढ़ती है, तब तक उस दवा अथवा पदार्थ का सेवन उपयुक्त होता है। इस विधि द्वारा न केवल दवाईयों और खाने पीने की वस्तुओं, अपितु उन सभी शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक प्रवृत्तियों का भी सरलता से पता लगाया जा सकता है, जो हमारे लिए उपयोगी, अनुपयोगी अथवा लाभ या हानि वाली होती है। जैसे प्रार्थना, ध्यान, स्वाध्याय, निद्रा आदि के पश्चात् ऊर्जा बढ़ती है तो ही उसका फल प्राप्त होता है। क्रोध, चिड़चिड़ापन, उत्तेजना, घृणा, तनाव, भय आदि नकारात्मक प्रवृत्तियों से निश्चित रूप से ऊर्जा कम होती है। अतः स्वास्थ्य प्रेमियों को ऐसी सभी गतिविधियों से अपने आपको अलग रखना चाहिए, जो शक्ति का अपव्यय करती है, घटाती है।

संतुलन और स्वास्थ्य

रोग का प्रारम्भ स्वयं की असजगता से

जिस प्रकार यदि परिवार का कोई सदस्य छोटी मोटी भूलें करता हैं तो परिवार का मुखिया उसको बाहर प्रचारित नहीं करता। ठीक उसी प्रकार **शरीर भी रोगों के लक्षणों को प्रारम्भिक अवस्था में बाह्य रूप से प्रकट नहीं करता। परन्तु हमारे अज्ञान, अविवेक, असजगता एवं शरीर में होने वाले असंतुलन की लगातार उपेक्षा के कारण जब रोग व्यापक रूप धारण कर लेता है, तब ही रोग के लक्षण प्रकट होने लगते हैं और हम उपचार की आवश्यकता समझते हैं।** बाह्य रूप से प्रगट होने के पूर्व रोग के लक्षण अपनी अपनी भाषा में बार-बार चेतावनी देते है। परन्तु असजग व्यक्ति उन्हें सुनने तथा समझने का प्रयास ही नहीं करते, अपितु पूर्ण उपेक्षा के साथ गौण कर देते हैं। असजगता उस व्यक्ति की मूर्खता से किसी प्रकार कम नहीं है, जो नाँव में यात्रा कर रहा है और जिसे यह ज्ञात हो कि नांव में छिद्र हो गया है, फिर भी जो निश्चिंत रहता है, परवाह नहीं करता। परन्तु जब नाँव पानी में डूबने लगती है तो सहायता के लिए हल्ला गुल्ला करता है, चिल्लाता है, शोर मचाता है तथा संकट से बचने के लिए हर संभव प्रयास करता है। यदि वह छिद्र होते ही संभल जाता तो ऐसी विकट स्थिति नहीं बनती। ठीक उसी प्रकार **जब तक दर्द, पीड़ा या कमजोरी के रूप में रोग के अन्य लक्षण अनुभव नहीं होते, तब तक व्यक्ति रोग को रोग ही नहीं मानता। अपने आपको पूर्ण स्वस्थ मानता है।**

शरीर के असन्तुलन से सबसे पहले चित्त की प्रसन्नता कम होती है। उसके पश्चात् मन और मस्तिष्क में नकारात्मक सोच आने लगती है। तत्पश्चात् रोग के लक्षण शरीर पर प्रगट होने लगते हैं। **शरीर की तुलना हारमोनियम अथवा वीणा से की जा सकती है। यदि हारमोनियम व वीणा का कोई तार ढ़ीला या तंग हो तो स्वर बेसुरा निकलता है। ठीक उसी प्रकार जब तक चित्त, मन और शरीर सन्तुलित नहीं होता, पूर्ण स्वास्थ्य की प्राप्ति नहीं हो सकती।**

जब शरीर में जो आवश्यक हो उसका अभाव और जो अनावश्यक हो उसमें वृद्धि होने लगती है तो, असंतुलन की स्थिति उत्पन्न होती है। शरीर अविभाज्य है। अतः शरीर के किसी भाग की खराबी अथवा असंतुलन से प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से पूरा शरीर प्रभावित होता है।

हमारे तंत्र, ग्रन्थियाँ और ऊर्जा चक्र, अवयव अपनी पूर्ण क्षमता से कार्य नहीं कर पाते, परिणामस्वरूप शरीर

की शक्ति क्षीण होने से असंतुलन अथवा अस्वस्थता पैदा होने लगती है। शरीर की चाल बदल जाती है और बाह्य शारीरिक विकास असंतुलित होने लगता है। जैसे मोटापा अथवा शरीर का बेढंगा होना। उठने, बैठने, खड़े रहने, सोने अथवा चलने फिरने के गलत ढंग से शरीर की प्रक्रियाओं पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

यदि किसी साधारण बुद्धिमान व्यक्ति के पास राष्ट्र के उत्थान की कोई विशेष योजना हो और यदि ऐसा व्यक्ति राष्ट्र के सबसे बड़े नेता को अपनी योजना से अवगत कराना चाहे तो, साधारणतया उस व्यक्ति को मिलने नहीं दिया जाता और यदि वह बुद्धिमान व्यक्ति जबरदस्ती नेता से मिलने का प्रयास करें तो, उसको पागल समझ कैद कर लिया जाता है। भले ही वह व्यक्ति मूर्ख अथवा पागल न भी हों। **देश के सर्वोच्च नेता तक अपनी बात पहुंचाने की साधारण सी प्रक्रिया होती है। जिसमें नीचे से ऊपर क्रमबद्ध ढंग से योजना बतलायी अथवा समझायी जाती है। ठीक उसी प्रकार रोग के नेता का सीधा उपचार करना कभी-कभी असंगत और तुरन्त प्रभावकारी नहीं भी हो सकता है।**

शारीरिक क्रियाओं का वर्गीकरण

जीवित शरीर मुख्य रूप से दो प्रकार की क्रियाओं से संचालित होता है। प्रथम तो वे क्रियाएँ जो स्वतः संचालित होती है, जिन पर हमारा प्रत्यक्ष रूप से नियंत्रण नहीं होता। ये क्रियाएँ चाहे हम निद्रा में हों अथवा जागृत अवस्था में शरीर में चलती रहती है। जैसे हृदय का धड़कना, रक्त का परिभ्रमण, श्वसन, पाचन, शारीरिक अंगों की कार्यप्रणाली, शरीर में आवश्यक अवयवों एवं कोशिकाओं का निर्माण, अनावश्यक विजातीय तत्त्वों का पूर्ण विसर्जन। जैसे आंख, कान, नाक के मल, पसीना, कफ, मल-मूत्र का विसर्जन आदि। दूसरे शरीर की वे क्रियाएँ जिन्हें व्यक्ति अपनी इच्छाओं द्वारा जागृत अवस्था में कुछ नियन्त्रित कर सकता है। जैसे हलन-चलन, उठना-बैठना; देखना-सुनना, बोलना, हँसना, रोना, खाना-पीना आदि।

संतुलन ही स्वास्थ्य का मूल आधार :-

हमारा शरीर अपने आप में परिपूर्ण होता है। उसमें रोग से बचने एवं रोग से लड़ने की अपूर्व क्षमता होती है। आवश्यकता है अपनी क्षमताओं को पहचानने समझने तथा उनका सही उपयोग करने की। जितना-जितना हम अपनी क्षमताओं एवं प्राण ऊर्जा का अपव्यय अथवा दुरुपयोग करते हैं, उतने-उतने हम रोगों को आमन्त्रित करने का मार्ग प्रशस्त करते हैं। प्रायः हम शरीर की भाषा को समझने का प्रयास नहीं करते। अपने आपको ध्यान से नहीं देखते। शरीर की बाह्य आकृति को समझने का प्रयास नहीं करते। हमारी चाल कैसी है? हमारे शरीर का कोई भाग आवश्यकता से अधिक ठंडा अथवा गर्म तो नहीं है? शरीर के किसी भाग की त्वचा का रंग तो नहीं

बदल गया है ? हमें भूख-प्यास, निद्रा नियमित और आवश्यकता के अनुरूप आती है अथवा नहीं ? हमारा मल-मूत्र विसर्जन बराबर है अथवा नहीं ? तथा उसमें कोई परिवर्तन तो दृष्टिगत नहीं होता आदि ऐसी अनेक बातें हैं जो शरीर की आन्तरिक स्थिति का हमें संकेत देती हैं।

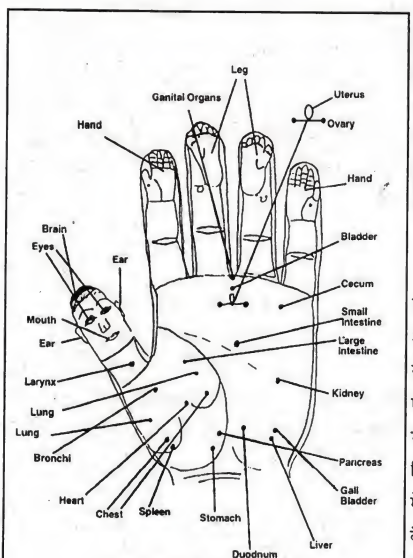

शरीर से मिलता जुलता हथेली का आकार (चित्र नं. 83)

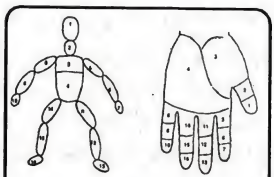

हथेली में शरीर के भागों की स्थिति चित्र नं. 84

हमारा शरीर बायां-दायां, बाह्य रूप से एकसा क्यों ? सिर में बाल और हाथ-पैरों की अंगुलियों के नाखून ही जीवनभर क्यों बढ़ते रहते है? हाथ और पाँव की बनावट में एकरूपता क्यों? हमारे कान की आकृति गर्भावस्था में गर्भस्थ बालक के शरीर की स्थिति के अनुसार मिलती-जुलती क्यों ? चित्र में हथेली का आकार सारे शरीर की बनावट कैसे इंगित करता है ?

शरीर के प्रत्येक अंग उपांग अथवा भाग की आकृति का विशेष महत्त्व होता है परन्तु हमारा चिन्तन उस तरफ प्रायः नहीं जाता। शरीर का प्रत्येक भाग और अवयव शरीर के संचालन में सहयोग करता है। जब तक उसमें आपसी सन्तुलन, तालमेल बना रहता है, तभी तक हम स्वस्थ होते है। **"संतुलन स्वास्थ्य का कवच है, तो असंतुलन रोगों का प्रवेश द्वार"। जितना-जितना असन्तुलन व असहयोग बढ़ता जाता है, उतने-उतने स्वास्थ्य से व्यक्ति भटक जाता है। अतः प्रत्येक व्यक्ति को अपने शरीर, मन, भाव व विचारों**

में होने वाले सूक्ष्मतम परिवर्तनों का चिंतन करना चाहिये और जहाँ कहीं असहयोग अथवा असन्तुलन की स्थिति ध्यान में आती है, उसे सम्यक् पुरुषार्थ द्वारा दूर करने का तुरन्त प्रयास करना चाहिये।

विभाव अवस्था असन्तुलन का प्रतीक है :-

शरीर के संचालन में विभिन्न अंगों, उपांगों, इन्द्रियों, ग्रन्थियों, ऊर्जा चक्रों आदि की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती हैं। जब तक ये सब अपना कार्य सन्तुलित रूप से करते हैं, तब तक ही व्यक्ति स्वस्थ रहता है। असन्तुलन चाहे अशुभ कर्मों के उदय से हो अथवा असंयमित, अनियन्त्रित, अप्राकृतिक जीवन शैली आदि से ही क्यों न हो, जब तक उसे दूर नहीं किया जाता तथा भविष्य में असंतुलन पैदा करने वाले कारणों से नहीं बचा जाता, तब तक पूर्ण स्वास्थ्य की प्राप्ति स्वप्न में भी संभव नहीं हो सकती। शरीर के असन्तुलन से शारीरिक रोग और मानसिक असन्तुलन से मानसिक रोग होते हैं।

असंतुलनों की बाह्य अभिव्यक्तियाँ :-

शरीर में जब कोई रोग उत्पन्न होता है, तो उसके संकेत बाह्य रूप से अभिव्यक्त होने लगते हैं। जैसे :- भूख न लगना अथवा बहुत अधिक लगना, अनिद्रा अथवा अति निद्रा आना, शरीर से खांसी, हिचकियाँ, डकारें, गैस बनना, हाँफने की आवाज, निद्रा में खर्राटे भरने जैसी ध्वनियाँ निकलना, जल्दी बोलना अथवा हकलाना, हाथ पैर अथवा शरीर के किसी भाग में कम्पन्न होना, शरीर का ठण्डा अथवा गरम हो जाना, बहुत अधिक पसीना आना, चेहरे पर तनाव, भय अथवा दुःख की अभिव्यक्ति होना, मोटापा, गंजापन, समय से पूर्व बालों का सफेद हो जाना आंख, कान, नाक आदि इन्द्रियों की क्षमता कम हो जाना, मल-मूत्र का विसर्जन नियमित न होना इत्यादि, तो असंतुलन की ऐसी अभिव्यक्तियाँ हैं, जिन्हें हम रोग समझ उपचार द्वारा स्वस्थ करते हैं। परन्तु कुछ ऐसे असंतुलन होते हैं, जिनकी प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति नहीं होती। अतः हम शरीर में उनकी उपस्थिति को प्रायः रोग का कारण नहीं मानते। इसी कारण प्रायः अधिकांश चिकित्सा पद्धतियों में उनका संतुलन करना पूर्णतया उपेक्षित होता है, परन्तु जिनको बहुत ही सरल ढंग से संतुलित किया जा सकता है। जैसे :- पगथली का ठण्डा रहना। उठते-बैठते, चलते-फिरते पीड़ा की अनुभूति होना। एक पैर का बड़ा अथवा दूसरे पैर का छोटा हो जाना। गर्दन और नाभि केन्द्रों का अपने स्थान से हट जाना। रीढ़ के मणको के आसपास अवरोध आ जाने से नाड़ी संस्थान संबन्धी रोगों का प्रकट होना। मानसिक तनाव, अपाचन, अनिद्रा, थकान, कमजोरी अथवा अन्य किसी भी रोग का हो जाना आदि। जब तक इन असन्तुलनों को पुनः संतुलित नहीं किया जाता तब तक कोई भी चिकित्सा पद्धति पूर्ण प्रभावशाली ढंग से कार्य नहीं कर सकती। जिस प्रकार फूटे हुए घड़े को भरने से पूर्व उसका छिद्र बन्द करना आवश्यक होता है। बिना छिद्र बंद किये, कितना ही पानी

क्यों न डाले, घड़ा स्थायी रूप से भरा हुआ नहीं रह सकता। मोटर कार को चलाने से पूर्व उसके चक्कों में हवा का उचित दबाव आवश्यक होता है। गाड़ी बहुत ही अच्छी हो, चालक भी बहुत अनुभवी हो, परन्तु जैसे चक्कों में वायु का दबाव बराबर न हों, ऐसी गाड़ी में निर्विघ्न यात्रा कर गन्तव्य स्थान पर पहुँचना संदिग्ध होता है। ठीक उसी प्रकार शारीरिक और मानसिक संतुलन के अभाव में कोई भी उपचार स्थायी और प्रभावशाली नहीं हो सकता। **जिस प्रकार खेती में बीज बोने से पूर्व खेत की सफाई एवम् उस पर हल जोतना तथा खाद देना आवश्यक होता है। ठीक उसी प्रकार उपचार से पूर्व कुछ सरल शारीरिक संतुलन से उपचार प्रभावशाली और स्थायी हो जाता है। कभी-कभी तो असंतुलन दूर होते ही रोगी को तत्काल जो राहत मिलती है वह अच्छी से अच्छी दवा से भी ज्यादा होती है। स्वस्थ अवस्था में भी नियमित निरीक्षण कर संतुलन बनाये रखने से रोग होने की संभावना कम हो जाती है।**

तापक्रम का असंतुलन :-

शरीर सबसे बड़ा प्राकृतिक वातानुकूलित संयंत्र है। बाहर चाहे जितनी गर्मी एवम् सर्दी क्यों न हो वह अपने को निश्चित ताप पर नियन्त्रित रखता है। यदि वह ताप अनियन्त्रित हो जावे तो हम रोग ग्रस्त हो जाते हैं। शरीर पर आन्तरिक ताप के असंतुलन की अभिव्यक्ति बुखार अथवा कमजोरी के रूप में होती है। ब्राह्य ताप के प्रभाव से भी हमारा संतुलन बिगड़ जाता है। गर्मी एवम् सर्दी सम्बन्धी रोगों की उत्पत्ति इन्हीं का परिणाम है। अतः गर्मी के प्रकोप से होने वाले रोगों को चन्द्र नाड़ी (बांयें नथूने) से श्वास लेकर ठीक किया जा सकता है। ऐसे रोगियों को दाहिना नथूना बन्द कर श्वास लेना चाहिये। दाहिनी करवट सोना चाहिये। इसके विपरीत जिन्हें सर्दी के प्रकोप से रोग हो जाय उन्हें सूर्य नाड़ी (दाहिने नथूने) से श्वास लेनी व बांयी करवट सोने से रोग मुक्त होने में सहायता मिलती है।

शरीर गरम अथवा ठण्डक की भाषा समझता है। अतः स्थानीय पीड़ाओं में शरीर का जो भाग रोग ग्रस्त है उसका निरीक्षण करें। यदि वहां उष्णता अथवा गरमाश हो तो ठीक उसके दूसरी तरफ उसी स्थान पर रगड़ने, गर्म सेंक करने अथवा बाह्य अन्य किसी भी प्रक्रिया द्वारा शरीर में गर्मी पहुंचाकर दोनों तरफ संतुलन करने से रोग में राहत मिलती हैं। इसी प्रकार यदि रोग ग्रस्त भाग ठण्डा हों तो उसके ठीक विपरीत भाग में ठण्डे पानी, बर्फ या अन्य किसी विधि द्वारा शरीर में ठण्डक पहुंचाने से रोग में राहत मिलती हैं।

शारीरिक असंतुलनों के परीक्षण एवं उपचार की विधियाँ :-

असंतुलन के लक्षण

व्यक्ति की पगथली शरीर के अन्य भागों से ज्यादा ठण्डी नहीं होनी चाहिये। जिस पगथली पर सारे शरीर

का वजन आता है और वही ठण्डी हो, इसका मतलब शरीर में रक्त का प्रवाह विशेष रूप से पैरों में बराबर नहीं होता। **अगर पगथली ठण्डी हो तो सर्व प्रथम, हथेली से पगथली को इतना रगड़ें कि उसकी ठण्डक दूर हो जाये।** इससे हथेली की ऊर्जा भी पगथली को मिल जावेगी। जिससे रोगी के शरीर में रक्त का प्रवाह सुव्यवस्थित हो जायेगा तथा उसमें स्फूर्ति आने से उपचार प्रभावशाली हो जायेगा। यदि पगथली को हथेली से रगड़ना संभव न हो तो नायलोन के ब्रुश या अन्य विधि द्वारा रगड़ कर भी पगथली को गरम किया जा सकता है, परन्तु जितना हथेली से रगड़ने पर लाभ होगा उतना भौतिक उपकरणों से रगड़ने पर लाभ नहीं होगा। क्योंकि भौतिक उपकरणों में चेतना का अभाव होता है। हमने प्रायः अनुभव किया है कि जो रोगी मरणासन्न पर होते हैं उनके हाथ पैर ठण्डे पड़ने लगते हैं। अतः यदि उनके परिजन थोड़ा विवेक रख एवं पगथली को गरम करने का प्रयास करें तो व्यक्ति को जीवनदान मिल सकता है। इसीलिये तो हमारे यहाँ लोकोक्ति प्रसिद्ध है - **"पैर गरम, पेट नरम और सिर ठण्डा, फिर डाक्टर आवे तो मारो डण्डा"** अर्थात् ऐसा व्यक्ति प्रायः स्वस्थ होता है।

हमारा शरीर दाहिने एवं बायें बाह्य दृष्टि से एक जैसा लगता है। **परन्तु उठने-बैठने-खड़े रहने, सोने अथवा चलते फिरते समय प्रायः हम अपने बायें और दाहिने भाग पर बराबर वजन नहीं देते। जैसे खड़े रहते समय किसी एक तरफ थोड़ा झुक जाते हैं। बैठते समय सीधे नहीं बैठते। सोते समय हमारे पैर सीधे और बराबर नहीं रहते। स्वतः किसी एक पैर को दूसरे पैर की सहायता और सहयोग लेना पड़ता है। फलतः पैर के ऊपर दूसरा पैर चला जाता है। ऐसा क्यों होता है? हम किसी भी एक आसन में लम्बे समय तक स्थिरता पूर्वक क्यों नही बैठ सकते? इसका मतलब हमारा शरीर असंतुलित होता है। हमारे पूर्ण नियंत्रण में नहीं होता है। हम सीधे क्यों नहीं सो सकते? बार बार करवटें क्यों बदलनी पड़ती हैं? निद्रा में पैर के ऊपर पैर क्यों चला जाता है?**

शरीर को संतुलित रखने के लिये हमें अपने दोनों पंजों पर शरीर का पूरा वजन देकर जितनी देर बिना कोई सहारा लिए चित्र नं. 25 के अनुसार ताड़ासन में खड़े रहने का अभ्यास करना चाहिए। चित्र नं. 22 के अनुसार वज्रासन में बैठने से वीर्य विकार संबंधी सारे रोग दूर होते हैं। वासना एवं कामेच्छा नियंत्रित रहती है। महिलाओं में सफेद प्रदर नियंत्रित रहता है तथा बच्चों को स्वप्न दोष नहीं होता। बैठने हेतु सुखासन, पद्मासन, वज्रासन तथा गोदुहासन (चित्र नं. 24) जैसे संतुलित आसनों में अधिकाधिक देर तक सीधी कमर रख कर बैठने का अभ्यास करना चाहिये। प्रारम्भ में हमें कुछ समय बैठने के पश्चात् पीड़ा और दर्द की अनुभूति हो सकती है। परन्तु यदि अभ्यास करते करते हम जितना अधिक इन आसनों में बिना परेशानी बैठ सकें तो हमारा शरीर स्वतः संतुलित हो जायेगा। बिना शारीरिक संतुलन ऐसा संभव नहीं हो सकता। शरीर के संतुलित होते ही हमारी रोग प्रतीकारात्मक क्षमता बढ़ जायेगी और हम स्वस्थ बन जायेंगे। अतः प्रत्येक स्वस्थ व्यक्ति को नियमित रूप से अपने शरीर को ऐसी स्थिति में रखने का अभ्यास करना चाहिये। **काया की स्थिरता ध्यान साधना का प्रथम चरण है। जब तक काया का हलन-चलन स्वच्छंद ढंग**

से होगा, अनियंत्रित अस्थिर होगा, ध्यान साधना नहीं हो सकती।

अपने आपको संतुलित करने का एक तरीका और भी है। हम बारी बारी से बिना किसी सहारे एवं परेशानी के थोड़ी देर तक एक एक पैर पर खड़ा रहने का अभ्यास करें। जब हम बारी बारी से लम्बे समय तक एक के बाद एक पैर पर बिना किसी दर्द, पीड़ा खड़े रहने का अभ्यास कर लेंगे तो हमारा शरीर संतुलित हो जायेगा, परन्तु इस बात की अवश्य सावधानी रखें कि शरीर के साथ किसी प्रकार की जबरदस्ती न हों। आसन सहज होने चाहिये। जिससे शारीरिक और मानसिक तालमेल न बिगड़े। परन्तु ऐसा अभ्यास स्वस्थ व्यक्ति ही कर सकते हैं। रोगावस्था में पहले दूसरे संतुलन कर रोग से राहत पाना आवश्यक होता हैं।

पैरों को संतुलन करने की विधि

हम प्रतिदिन हजारों कदम चलते हैं। यदि हमारे दोनों पैर बराबर न हुये एक पैर बड़ा और दूसरा छोटा हुआ तो निश्चित रूप से एक पैर पर अधिक दबाव पड़ेगा। फलतः हमारे शरीर का दाहिना बांया संतुलन बिगड़ने लगेगा। अतः उपचार करते समय या स्वस्थ रहने हेतु दोनों पैरों को संतुलित करना जरूरी होता है।

आज स्वास्थ्य के संबंध में अधिकांश व्यक्तियों का चिन्तन प्रायः नगण्य, अथवा अविवेक पूर्ण और सही नहीं होता। हमारी अधिकतर गतिविधियाँ देखा-देखी सुनी-सुनाई, विज्ञापन पर आधारित भीड़ से प्रभावित होती है। प्रायः उसके साथ सम्यक् चिन्तन न होने से कभी कभी अच्छी प्रवृत्तियां भी हानिकारक हो सकती है। जैसे जिस व्यक्ति का एक पैर लम्बा और दूसरा पैर छोटा होता है, यदि ऐसा व्यक्ति पैरों का संतुलन किये बिना प्रतिदिन घूमने जाता है, तो उसके लिये घूमना लाभ के स्थान पर हानिकारक भी हो सकता हैं। शरीर के किसी भाग पर अनावश्यक दबाव लगातार पड़ते रहने से वह भाग रोग ग्रस्त हो जाता है। अतः घूमने से पहले शरीर का संतुलन (Aligment अथवा Balance) आवश्यक होता है।

(चित्र नं.85)

(चित्र नं. 86)

रोगी को सीधा सुलावे। दोनों पैरों के अंगूठें एवम् टखने को पास में रख कर देखें कि दोनों अंगूठे बराबर हैं अथवा नहीं, तथा दोनों टखनों के केन्द्र बराबर हैं अथवा नहीं। यदि दोनों अंगूठे अथवा टखनों के केन्द्र बराबर न हों तो दोनों पैर बराबर नहीं होंगे। जिस पैर का अंगूठा छोटा हो, उस अंगूठे को खींच कर बराबर किया जा सकता है।परन्तु बहुत बार ऐसी स्थिति आती है कि उस अंगूठे को खींचना उचित,संभव नहीं होता। ऐसी स्थिति में हमे निम्न

(चित्र नं.87)

प्रक्रिया द्वारा दोनों पैरों को बराबर कर सकते हैं। जिस पैर को बराबर करना हों, उस घुटने को चित्र नं. 71 में दर्शाये अनुसार पेट से स्पर्श करने का प्रयास करें। अगर ऐसा करना संभव न हों तो, घुटने को पेट के जितना नजदीक बिना किसी दर्द ले जा सकते हैं, ले जावें। अब यदि छोटे पैर को बड़ा करना हों तो उस पैर की पिण्डली को पकड़ते हुये पैर को अन्दर की तरफ चित्र नं. 88 में दर्शाये अनुसार रोगी का चेहरा देखते हुए जितना सहन हो सके ले जायें। ऐसा करने से छोटा पैर बड़ा हो जाता है। यदि व्यक्ति के किसी पैर में चोट पीड़ा अथवा अन्य किसी कारण तकलीफ हो तो उस पैर को नहीं

(चित्र नं. 88)

(चित्र नं. 89)

मोड़ना चाहिये। यदि किसी कारणवश छोटे पैर को घुमाना संभव न हों तो बड़े पैर को छोटा करने के लिये पिण्डलियों से पैर को चित्र नं. 89 में दर्शाये अनुसार बाहिर की तरफ इतना मोड़े जितना रोगी सहन कर सकें। इस प्रक्रिया से छोटा पैर बड़ा तथा बड़ा पैर छोटा किया जा सकता है। अत: Short पैर को in करने से छोटा पैर बड़ा तथा Long पैर को out करने से बड़ा पैर छोटा किया जा सकता है।

शरीर में मेरू दण्ड का महत्व

मेरु दण्ड का संतुलन करने के पहले यह जानना और समझना आवश्यक है कि मेरु दण्ड क्या है? वह शरीर में कहाँ स्थित है तथा उसके क्या क्या कार्य हैं। जो उसके असंतुलन से प्रभावित हो सकते हैं। रीढ़ की हड्डी (मेरु दण्ड) शरीर के पिछले मध्य भाग में होती है। जो खोपड़ी से शुरु होकर नितम्ब तक एक श्रंखला के रूप में कार्य करती है। इसमें कुल 33 हड्डियों के जोड़ होते हैं। जिन्हे मणके, कशेरूकायें, वरटेबरा आदि नामों से पुकारा जाता है। ये

मणके साईकल की चैन के समान एक दूसरे के साथ समान दूरी पर जुड़े हुये रहते हैं। जब किन्ही दो मणकों के बीच की दूरी कम या अधिक हो जाती है अथवा एक दूसरे से चिपक जाते हैं तो मेरु दण्ड का लोच समाप्त हो जाता है। उनमें तनाव उत्पन्न हो जाता है और असंतुलन होने से विकृति आ जाती है। परिणामस्वरूप सरवायकल स्पोंडोलाईसस, स्लिप डिस्क, जैसी अनेक मेरू दण्ड से संबंधित बीमारियाँ हो सकती है। नाड़ी संस्थान संबंधी अधिकांश रोगों का भी मेरुदण्ड में असंतुलन मुख्य कारण होता हैं।

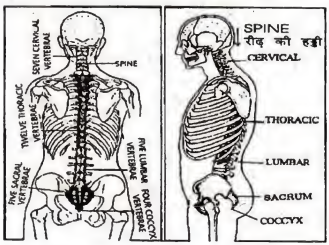

शरीर में पीछे की तरफ मेरुदण्ड की स्थिति (चित्र नं. 90)

तेतीस मणकों में 24 मणके अलग अलग तथा गति वाले होते हैं- जिसमें मेरु दण्ड के सबसे ऊपर गर्दन के भाग में सरवायकल के सात, छाती वाले भाग में थोरोसिक के 12 तथा उसके नीचे पेट वाले भाग में लम्बर के पांच मणके होते हैं। बाकी 9 मणकों में कुल्हे को जोडने वाले पांच मणके मिलकर सैक्रम तथा अन्त में बहुत पतली पूंछ के समान चार मणके. मिलकर कोसिक्स का भाग बनते हैं।

ऊपर के गतिशील 24 मणकों के बीच में कुछ खाली स्थान होता है। जिसमें गद्दी सी होती है, जो शोकर अथवा स्प्रिंग का कार्य करती है। ताकि झटका लगने पर, मुड़ने पर, टेढ़ी अथवा खिचाव होने पर, ये गद्दियाँ मेरु दण्ड को टूटने, फिसलने अथवा विकृत होने से बचाती है। रीढ़ हमारे शरीर की मुख्य धुरी होती है। जो शरीर को लचकता प्रदान करती है। इसी कारण हम दांये-बांये, आगे-पीछे मुड़ सकते हैं। नीचे झुक सकते हैं। ऊपर देख सकते हैं। पीठ की सारी मांसपेशियाँ भी मेरु दण्ड के सहारे टिकी रहती हैं।

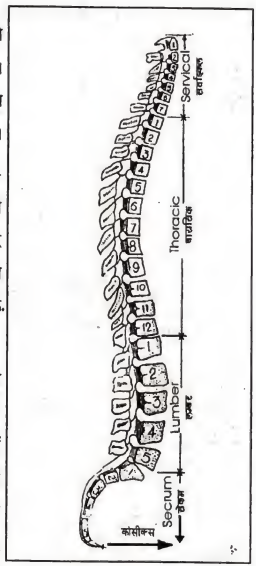

मेरू दण्ड का आकार (चित्र नं. 91)

इसके अतिरिक्त केन्द्रीय स्नायु संस्थान का मुख्य भाग भी मेरु रज्जू (Spinal Cord) रीढ़ की हड्डी में स्थित

होता है। मेरु रज्जू के दोनों तरफ थोड़ी थोड़ी दूरी पर स्नायु नाड़ियों के जोड़े निकलते हैं। स्नायु संस्थान शरीर के समस्त संस्थानों एवं अंगों का नियन्त्रण और संचालन करता है। मस्तिष्क को मिलने वाले सारे संदेश और मस्तिष्क द्वारा प्रतिक्रिया स्वरूप भेजे गये आवश्यक निर्देश और आदेश की पालना नाड़ी संस्थान के माध्यम से ही संभव होती है। चित्र में मेरुदण्ड से संबंधित विभिन्न मणकों और उनसे निकलने वाली स्नायु नाड़ियां दर्शायी गयी है, जो मेरु दण्ड

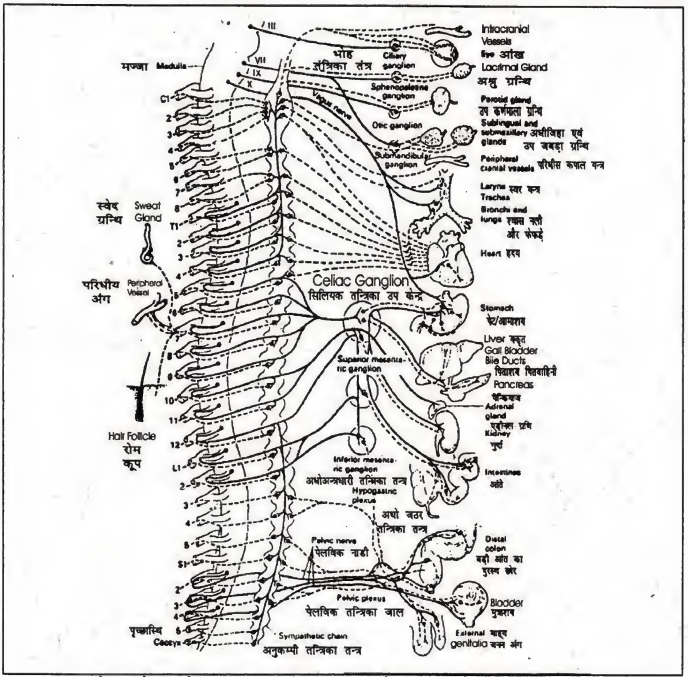

मेरुदण्ड से निकलने वाली स्नायु नाड़ियाँ एवं उनका शरीर के प्रमुख भागों से संबंध (चित्र नं. 92)

के सारे शरीर से संबंधों को स्पष्ट करती है। शरीर का प्रत्येक अंग ज्ञान तन्तु द्वारा संचालित होता है और ये सभी ज्ञान तन्तु प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से रीढ़ की हड्डी से जुड़े होते हैं।

मेरुदण्ड के मणकों से संबंधित शरीर के प्रभावित अंग तथा उनमें विकार होने से संभावित प्रमुख रोग

अ (अ)	ब (क्षेत्र)	क (बिमारियाँ)
सर्वाईकल 1	सिर, पिच्यूटरी ग्रन्थि खोपड़ी, चेहरे की हड्डियां, मस्तिष्क, कान का भितरी तथा मध्य भाग तथा संवेदन नाडी संस्थान को रक्त भेजना यहीं से होता है।	सिरदर्द, मानसिक दौर्बल्य, अनिद्रा, सर्दी, उच्च रक्तचाप, माइग्रेन, मानसिक रोग, मूर्च्छा, बच्चों का पक्षाघात, हमेशा थकावट, चक्कर आना आदि।
सर्वाईकल 2	आंखें, चक्षुगोलक	(Optic Nerue) श्रवण, ज्ञाननाड़ी, साइनस, मेस्टोईड हड्डियाँ, (Mastoid bones) जीभ एवं माथा।
सर्वाईकल 3	गाल, बाहरी कान, चेहरे की झुर्रियां, दांत, त्रिमुखी नाड़ी (Tri-facial Nerve)	स्नायुशूल, नाड़ी प्रदाह, मुंहासे, एक्झिमा (चर्मरोग)
सर्वाईकल 4	नाक, होठ, मुंह, कण्ठनली	नाक बहना, नजला, लाल बुखार, कम सुनाई देना, गले की गिल्टी बढ़ना।
सर्वाईकल 5	स्वरनली, कंठ ग्रन्थियां, तालुमूल (Phyarygx)	तालुमूल प्रदाह, आवाज बिगड़ना, गले में खराश, कण्ठ प्रदोह।
सर्वाईकल 6	गर्दन की पेशियां, कंधे, टान्सिल।	गर्दन की अकड़न, ऊपरी बाजू में दर्द, तालू मूल प्रदाह, कुकर खांसी, क्रुप।
सर्वाईकल 7	थाइरोइड ग्रन्थि, कन्धे के जोड़, कोहनियां।	बरसाइटिस (Bursitis), जुकाम, थाइरोइड की स्थिति बदलना, घेंघा (Goiter)।
थोरोसिक 1	बाजू में कोहनी के नीचे के भाग-हथेली, कलाई, अंगुलियों सहित, श्वास नली, खाने की नली।	दमा, खांसी, श्वास कृच्छ (Difficult Breathing), श्वास कण्ठ, हाथ और कोहनी के नीचे के हिस्से में दर्द।
थोरोसिक 2	हृदय अपने कपाटों व आवरणों सहित, कोरोनरी धमनियां।	हृदय की क्रिया में गड़बड़ी, कुछ विशेष छाती के दर्द।
थोरोसिक 3	फेंफड़े, ब्रोकीयल नली प्लूरा (Pleura), छाती, वक्ष, निपल।	ब्रोंकायटीस, प्लूरसी (Pleurisy), निमोनिया, कफ भरजाना, फ्लू, ग्रिप (Grippe)।
थोरोसिक 4	गॉलब्लेडर, कॉमन डक्ट।	गॉलब्लेडर की बीमारियां, पीलिया, सिंगल (Shingles)
थोरोसिक 5	यकृत, सोलार प्लेक्सस (Solar Plexus), रक्त।	लीवर बिगड़ना, बुखार, निम्न रक्तचाप, खून की कमी, रक्तसंचार में गड़बडी, जोडों का दर्द।
थोरोसिक 6	पेट।	पेट की तकलीफें, नर्वस पेट, अपच, छाती में जलन, पेट में वायुसंचित होना (Dyspepsia)
थोरोसिक 7	पेंक्रियाज, लिंगरेनका द्वीप (Island of langerhans), डियुयोडिनम् (छोटी आंत का प्रथम हिस्सा)	मधुमेह, अल्सर, गैस (वायु) Gastritis)
थोरोसिक 8	प्लीहा, झिल्ली (Diaphragm)।	ल्यूकेमिया (सफेद दाग), हिचकी।
थोरोसिक 9	एड्रीनल।	एलर्जी, Gocespe (Hives)।
थोरोसिक 10	किडनी (गुर्दे)	किडनी की बीमारियां, धमनियों का कठोरपन, हमेशा थकावट, पेशाब की तकलीफें, पाइलिटिस (Pyelitis)
थोरोसिक 11	किडनी, मूत्रनली।	चमडी की बिमारियां जैसे मुहांसे फोडे, एक्झिमा आदि, जहरबाद (Autointoxication)

थोरोसिक 12	छोटी आँते, डिम्बनलियाँ (Fallopian tubes), लिम्फ संचार।	जोड़ों का दर्द, वायुशूल (गैस), विशेष प्रकार की बाँझपन।
लम्बर 1	बड़ी आँते (कॉलन), इंगुनल गोलाई (Inguinal Ring)	कब्ज, कोलाइटिस, पेचिश, अतिसार, हर्निया।
लम्बर 2	एपेन्डिक्स, पेट, जांघे, सीकम (Caecum)।	एपेन्डिक्स का दर्द, बांयटें, श्वास लेने में कठिनाई, एसिडोसिस (Acidosis), शिराओं का फूलना।
लम्बर 3	प्रजनन ग्रन्थियां, डिम्बकोश (Ovaries), पोते (Testicles), गर्भाशय, मूत्राशय, घुटने।	मूत्राशय बिमारियाँ, मासिक धर्म सम्बन्धी तकलीफ, दर्द के साथ, अनियमित आदी, गर्भपात, अनिच्छित पेशाब, बांझपन, घुटनों का दर्द।
लम्बर 4	प्रोस्टेट ग्रन्थि, कमर के नीचे के स्नायु, साइटिक नर्व	साइटिका, कमर दर्द, पेशाब की तकलीफ, लुम्बागो (Lumbago)
लम्बर 5	टाँगे, अंगूठे, तलवे।	पैरो में कम खून संचार, टखनों की सूजन, कमजोर टखने, तलवे, पाँव ठण्डे रहना, टांगों में कमजोरी व बांयटें।
सेक्रम (Sacrum)	नितम्ब की हड्डियां, हिप बोन (Hip Bone)।	कमर और नितम्बकी बिमारियाँ, रीढ की हड्डियों का मुडना।
कोसीक्स (Coceyx)	मलद्वार, एनस (Anus)	बवासीर, मलद्वार की खुजली, रीढ़ की आखरी हड्डी के नीचे दर्द (बैठने पर)।

तालिका नं. 3 तालिका एक्युप्रेशर - लेखक कांति भाई सर्राफ पुस्तक से उद्धृत

मेरुदण्ड

मेरू दण्ड का नाड़ी संस्थान से गहरा सम्बन्ध होता है। हमारी सारी संवेदनाओं का आदान-प्रदान रीढ़ के माध्यम से होता है। सीधी कमर न बैठने, वजन उठाने, झुक कर चलने अथवा अन्य किसी कारण से मेरु दण्ड के किसी भाग में ज्यादा खिचाव आ जाने से रीढ़ असंतुलित होती है। सरवायकल स्पोन्डोलायसिस, साईटिका, स्लीप डिस्क, जोड़ों में दर्द आदि रोगों का कारण मेरुदण्ड का असंतुलन ही होता है। रीढ़ में असंतुलन कितना है ? कितने प्रतिशत है? इस बात की जानकारी निम्न विधि द्वारा मालूम की जा सकती हैं।

चित्र नं. 93

रोगी को सीधा सुलावें तथा उसकी दोनों हथेलियों को आपस में गर्दन के नीचे चित्र नं. 93 के अनुसार रखावें। रोगी को पालकी आसन मे सुलावें ।

पालकी आसन में कमर के बल बैठते हुए।

चित्र नं.94

चित्र नं. 95

रोगी को कमर के बल चित्र नं. 94 में दर्शाये अनुसार बिना कोई सहारा लिये बैठने का कहें। यदि इस स्थिति में रोगी बैठ जायें तो उसका मेरू दण्ड काफी अच्छा समझना चाहिये और ऐसी स्थिति में रीढ़ का कोई रोग ज्यादा पुराना नहीं होता। अगर रोगी न उठ सकें तो मेरूदण्ड में 15% असंतुलन समझना चाहिये।

दूसरी स्थिति में पैरों को सीधा करके हथेलियों को गर्दन के नीचे रखते हुये चित्र नं. 95 में दर्शाये अनुसार बिना सहारा दिये उठने का कहें। यदि रोगी इस स्थिति में भी न उठ सके तो मेरूदण्ड में 20 से 30% असंतुलन समझना चाहिये।

चित्र नं. 96

तीसरी स्थिति में दोनों हाथों को जमीन से स्पर्श करते हुए चित्र नं. 96 में दर्शाये अनुसार सिर से ऊपर पूरा ले जाते हुये रोगी को सोने को कहें। यदि इस स्थिति में भी बिना सहारा रोगी न बैठ सकता हो तो असंतुलन 30% से भी अधिक समझना चाहिए। तत्पश्चात् रोगी की दोनों पिण्डलियों को चित्र नं. 97 में दर्शाये अनुसार दूसरा व्यक्ति दबाये रखे, फिर भी रोगी न बैठ सकें तो मेरू दण्ड में 40 से 50% असंतुलन समझना चाहिये। यदि रोगी के दोनों घुटनों को दबाये रखने के बावजूद भी रोगी न बैठ सकें तो मेरुदण्ड में 50 से 60 % खराबी समझनी चाहिये।

चित्र नं. 97

जितना अधिक असंतुलन होगा, रोग उतना ही पुराना, संक्रामक होगा और उपचार में समय भी उसके अनुपात में अधिक लगेगा। मेरुदण्ड का असंतुलन निम्न विधि द्वारा सरलता से दूर किया जा सकता है।

मेरू दण्ड को संतुलित करने की विधि -

सरवायकल का संतुलन –रोगी को उल्टा सुलावें। रोगी के दोनों हाथ शरीर से स्पर्श करते हुये रखें। फिर चिकित्सक को अपनी दोनों हथेलियों को रोगी के दोनों कानों से लगाते हुये, गर्दन को जमीन से थोड़ा उठाते हुये, चित्र नं. 98 में दर्शाये अनुसार बायें-दाहिने जितनी गर्दन घूम सके धीरे धीरे 5-7 बार घुमायें। उसके पश्चात् 5 से 7 बार गर्दन को धीरे धीरे ऊपर-नीचे चित्र नं. 99 में दर्शाये अनुसार जितनी घूम सकती है,

गर्दन को बायें-दायें घुमाते हुए गर्दन का संतुलन करना।

(चित्र नं. 98)

गर्दन को ऊपर-नीचे घुमाकर निरीक्षण करते हुए।

चित्र नं. 99

घूमावें। फिर उसी के साथ एक हल्का सा झटका बायें दाहिने दें। ताकि कोई जकड़न हों तो आसानी से निकल जाती है। गर्दन को झटका देते समय इतना ध्यान रखे कि गर्दन पहले जितनी दाहिने बांयी घूम रही थी उससे आधा से ज्यादा न घूमावें।

हथेली से रीढ़ के दोनों तरफ मसाज करते हुए।

चित्र नं. 100

इस प्रक्रिया से सरवायकल स्पोण्डोलायसिस में शीघ्र आराम मिलता है। 4-5 दिन लगातार ऐसा उपचार करने से वर्षों पुराना रोग दूर हो जाता है।

रीढ़ के दोनों तरफ मणकों पर मुठियों एवं अंगुठे से दबाव घुमावदार दबाव देते हुए।

(चित्र नं. 101)

मेरू दण्ड के नीचे के भाग का संतुलन–उसके पश्चात् रोगी की रीढ़ के दोनों तरफ उसको सहन हो सकें उसके अनुरूप ऊपर से नीचे पूरी मेरूदण्ड तक पहले दोनों हथेलियों से, उसके पश्चात् हथेलियों को बंद कर दोनों मुट्ठियों और अंगुठे का दबाव देते हुये तथा अन्त में रीढ़ के दोनों तरफ एक एक मणके पर 5-5

दोनों पैरों की एड़ियों को हिप्स से स्पर्श करते हुए।

शवासन द्वारा शिथिलिकरण

रीढ़ का संतुलन करने के लिऐ पगथली को बायें-दायें घुमाते हुए।

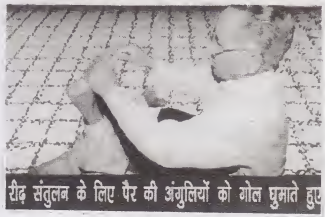

रीढ़ संतुलन के लिए पैर की अंगुलियों को गोल घुमाते हुए

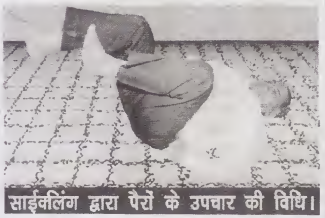

साईकलिंग द्वारा पैरों के उपचार की विधि।

बार अंगूठे से घूमावदार दबाव देवें। तदुपरान्त दोनों पगथलियों की एडियों को घुटनों पर दबाव देते हुये पुट्ठों को स्पर्श करावें। फिर बारी बारी से एक पगथली को टखने से पकड़ 5-5 बार उल्टा सीधा, बायें-दाहिने, आगे-पीछे घूमावें। उसके पश्चात दोनों पैरों के अंगूठों और अंगुलियों को 5-5 बार गोल गोल उल्टा सीधा घूमावें तथा झटका देते हुये हथेली को छोड़े। फिर अंगूठे को एक हथेली में तथा बाकी चार अंगुलियों को दूसरी हथेली में पकड़ आगे पीछे 5-5 बार घूमावें। इसी प्रकार एक हथेली में एक एक कम करते हुये 5-5 बार घूमावें। इस प्रक्रिया से पूरे शरीर की नाड़ी संस्थान में आये अवरोध दूर होने लगते है। विशेष रूप से स्लीप डिस्क, साईटिका तथा ऐडी से लगाकर गर्दन के सभी प्रकार के रोगों में शीघ्र आराम मिलता है। पुराने से पुराने स्लीप डिस्क के रोगी जिन्हे डाक्टर पूर्ण आराम की सलाह देते है और महिनों आराम के बाद भी ठीक नहीं हो पाते, मेरू दण्ड को संतुलित करने की इस सरल विधि से 5-7 दिनों में प्रायः स्वस्थ हो जाते हैं। यह विधि इतनी सरल है कि कोई भी व्यक्ति इसको आसानी से सीख सकता हैं। **मेरू दण्ड के संतुलन करने के पश्चात शरीर में हल्कापन आ जाता है तथा दर्द में तुरन्त आराम का आभास होने लगता है। इस प्रक्रिया के पश्चात किसी भी पद्धति द्वारा किया गया उपचार अत्यधिक प्रभावशाली हो जाता है।**

मेरु दण्ड के घुमावदार व्यायाम

योग महर्षि स्वामी देवमूर्ति जी द्वारा अन्वेषित मेरुदण्ड के घुमावदार आसनों से रीढ़ के मणकों में आया तनाव, खिंचाव और विकृति सरलतापूर्वक दूर की जा सकती है। इन आसनों को स्त्री पुरुष, बच्चे-बूढ़े, स्वस्थ और रोगी सभी आसानी से कर सकते हैं। इनके नियमित अभ्यास से रोगी स्वस्थ हो जाते हैं। स्वस्थ निरन्तर स्वस्थ बने रह सकते हैं।

मनुष्य को छोड़कर सभी प्राणियों की रीढ़ की हड्डी क्षितिज के समानान्तर होती है। अतः चलने-फिरने में उनके मणके स्वयं हलचल में आ जाते हैं। परिणाम स्वरूप इसमें सुषुम्ना नाड़ी की सुप्त शक्तियाँ स्वयं जागृत हो जाती हैं। यही कारण है कि अन्य जीवों को मनुष्य की अपेक्षा स्नायु सम्बन्धी कष्ट कम होते हैं। यदि मनुष्य भी रीढ़ के घुमावदार आसनों का नित्य अभ्यास करें तो स्नायु संबंन्धी रोगों के होने की संभावनाएँ बहुत कम हो जाती हैं।

हम देखते हैं कि घोड़ा दिन भर बोझा खिंचता है, जिससे उसकी रीढ़ के मणके आपस में चिपक जाते हैं। शाम को घोड़ा जमीन पर लेटकर मस्ती से अपने शरीर को दांयें बांयें करता है, जिससे मणकों में आया तनाव और खिंचाव दूर हो जाता है, उसकी सारी थकान दूर हो जाती है। यदि हम भी घोड़े की तरह रीढ़ की हड्डी को सुबह-शाम **'ठोडी दायें तो घुटना बायें' और 'घुटना दाये तो ठोडी बायें' घुमाना प्रारम्भ कर दें तो मेरु दण्ड में आई विकृतियाँ दूर हो जाती है।**

रीढ़ के घुमावदार व्यायाम करने के लिये सर्व प्रथम दोनों हाथ कन्धों के बराबर फैलाकर एक दम सीधा जमीन पर लेट जाना चाहिए। इस व्यायाम की विविध स्थितियाँ होती हैं, जिनमें पैरों की ही स्थितियां अलग अलग ढंग से

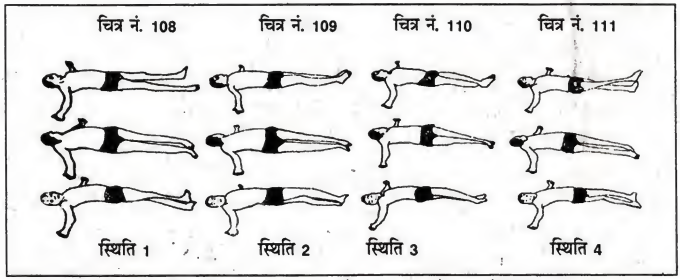

बदली की जाती है। गर्दन को घुमाने का एक ही तरिका और नियम होता है। जब पैरों को बायीं तरफ घुमाया जाता है तो गर्दन को दाहिनी तरफ मोड़ टोढ़ी को कंधों से स्पर्श किया जाता है। जब पैरों को दाहिनी तरफ घुमाया जाता है तो गर्दन को उसी ढंग से बांयीं तरफ घुमाया जाता है।

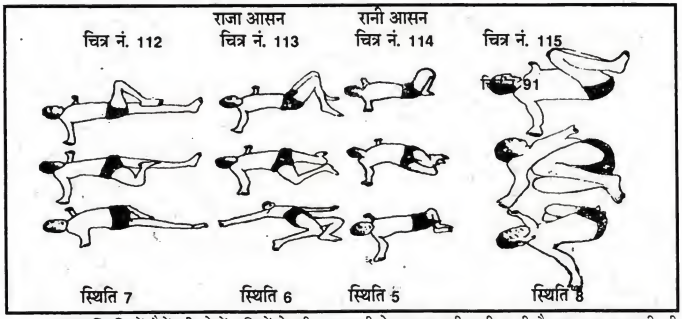

प्रथम स्थिति में पैरों की दोनों एडियों के बीच पगथली के बराबर दूरी रखी जाती है तथा एक पगथली की अंगुलियों को बारी बारी से दूसरे पैर को ऐडी से स्पर्श किया जाता है तथा गर्दन को उसके विपरीत दिशा में घुमाया जाता है।

दूसरी स्थिति में दोनों पगथलियों को पास पास में रख अंगुलियों को एक बार बांयी, फिर दाहिनी तरफ बारी बारी से जमीन को स्पर्श किया जाता है तथा साथ ही साथ गर्दन को विपरीत दिशा में घुमाया जाता है।

ठीक इसी प्रकार तीसरी स्थिति में एक पगथली के ऊपर दूसरी पगथली रख कर, चौथी स्थिति में पैर के अंगूठे और उसके पास वाली अंगुलि के बीच दूसरे पैर की एडी को बारी बारी से रख, पांचवी स्थिति में दोनों घुटनों को पास पास खड़ा कर मिलाते हुये रख बारी बारी से बांयें दाहिने जमीन को स्पर्श कराया जाता है। पांचवे आसन को क्वीन एक्सरसाइज (रानि आसन) भी कहते हैं।

इसी प्रकार छट्ठी स्थिति में दोनों घुटनों को कुछ दूरी पर खड़ा रख पैर को बांयें दाहिने घुमाते हुये एक घुटने को जमीन तथा दूसरे को पहले पैर की एडी से स्पर्श बारी बारी से कराया जाता है। इस आसन को **किंग एक्सरसाइज (राजा आसन) भी कहते हैं।**

सातवीं स्थिति में एक पैर को सीधा रख दूसरे पैर की पगथली को उसके घुटने के पास रख कर, दूसरे पैर के घुटने को दूसरे पैर की दिशा में जमीन से बारी बारी स्पर्श कराया जाता है। आठवी स्थिति में दोनों घुटनों को छाती से स्पर्श करते हुये बांयीं दाहिनी तरफ पैरों व गर्दन को घुमाया जाता है।

दसवीं स्थिति में पवन मुक्तासन की स्थिति में दोनों हथेलियों से घुटनों का पकड़ छाती से चिपकाते हुए बांयें दाहिने पैरों और अंत मे सीधा पवन मुक्तासन किया जाता है।

व्यायाम करते समय ध्यान रखने योग्य सावधानियाँ

प्रत्येक आसन के पश्चात् कुछ समय शवासन करना चाहिये। प्रत्येक आसन को कम से कम पांच बार करना चाहिये। इन आसनों का अभ्यास प्रायः मल त्याग के पश्चात खाली पेट करना चाहिए। परन्तु जिन्हें कब्ज की शिकायत रहती है, उन्हे उषापान करने के पश्चात इन आसनों को करना अधिक गुणकारी होता है। महिलाएं मासिक धर्म के दिनों में एवं गर्भावस्था के तीन मास पश्चात् तथा व्यक्ति को शल्य चिकित्सा के तुरन्त पश्चात् अथवा फ्रेक्चर होने की स्थिति में इन आसनों को नहीं करना चाहिये। प्रत्येक व्यायाम श्वास भर कर करने से अधिक लाभकारी होता है,परन्तु जिन्हें इसमें कठिनाई हो, वे साधारण स्थिति में भी इन आसनों को कर सकते हैं। आसन करते समय शरीर के साथ किसी प्रकार की जोर जबरदस्ती नहीं करनी चाहिए। जितना सहजता एवं सरलता से शरीर घुमाया जा सकता है, उतना ही घुमाना चाहिए। घुमाते समय धीरे धीरे दांयें - बांयें जाना चाहिये अर्थात किसी प्रकार का झटका नहीं देना चाहिए। घूमाते समय शरीर की जिन मांसपेशियों में दर्द हों, वे मांसपेशियाँ शरीर में रोगों से संबंधित होती है। उन मांसपेशियों का आगे के अध्याय में बतलाए गये तरिकों से उपचार करने से रोग में तुरन्त आराम मिलता है। नियमित इन आसनों के करने से बोने बच्चों की लम्बाई-बढ़ने लगती है। नाभि अपने स्थान पर आ जाती है। कब्ज, गैस, थकावट, आलस्य, अनिद्रा, मोटापा, मधुमेह एवं स्नायु सम्बन्धी अन्य रोगों में लाभ होता है।

खिंचाव चिकित्सा

(Suction Vaccum/Cupping Therapy)

मांसेपशियों पर विजातीय तत्त्वों के जमा हो जाने के कारण भी शरीर के उस भाग पर प्राण ऊर्जा के प्रवाह में अवरोध होने लगता है। फलतः रक्त का प्रवाह बराबर नहीं हो पाता एवं व्यक्ति को दर्द या पीड़ा के रूप में रोग की अनुभूति होने लगती है। उस भाग का हलन चलन प्रभावित होने लगता है। जितना ज्यादा अवरोध होता है, उतनी ही अधिक समस्याएं होने लगती है।

अतः यदि किसी भी विधि द्वारा उन जमें हुये विकारों को दूर कर दिया जाय तो पुनः प्राण ऊर्जा और रक्त का प्रवाह आश्यकतानुसार होने लगता है और पीड़ा में आराम मिलने लगता है। **मांसपेशियों पर जमें विजातीय तत्त्वों को दूर करने का सबसे सरल तरिका शरीर के उस संबंधित भाग की मांसपेशियों का किसी भी विधि द्वारा हलन चलन करना। अर्थात् उस भाग को सिकोड़ना और फैलाना, आगे-पीछे, ऊपर-नीचे, दांयें-बांयें जितना घुमाया जा सके, कुछ देर तक धीरे-धीरे घुमाने का प्रयास करना। ऐसा करने से वहां पर जमें विकार हटने लगते हैं और रोगी स्वस्थ हो जाता है।**

कपिंग चिकित्सा-

परन्तु शरीर में बहुत सी मांसपेशियां ऐसी है, जिनका हलन चलन इच्छानुसार करना आसान नहीं होता। ऐसी मांसपेशियों पर हल्का हल्का मसाज कर विकारों को हटाया जा सकता है। उन विकारों को दूर करने का एक सरल तरिका और भी है, जो खिंचाव (Suction) के सिद्धान्त पर आधारित है। टेनिस की गेंद के दो बराबर भाग करने से कप के आकार के दो भाग हो जाते हैं। **उपचार हेतु ऐसे कपों का प्रयोग करने से उपचार की इस विधि को कपिंग चिकित्सा भी कहते हैं।**

किसी भी स्थान की सफाई करने के लिए प्रायः आंगन पर झाड़ू लगाया जाता है। विशेष अवसरों पर अधिक स्वच्छता हेतु आंगन को पानी, साबुन अथवा अन्य रसायनों द्वारा स्वच्छ किया जाता है। परन्तु जहाँ ऐसा करना संभव नहीं होता वहाँ वायु के दबाव द्वारा सफाई की जाती है। परन्तु आँगन पर बिछे गलीचे, फ़ेल्ट, दरी आदि पर जमीं धूल को हटाने के लिये आजकल वेक्यूम क्लीनर से खिंचाव द्वारा मिट्टी को दूर किया जाता है। इसी प्रकार जिन मांसपेशियों

पर विकार जमा हो जाते हैं, वहां गेंद के कपों को त्वचा पर रख, दबाने से उनके अन्दर की वायु निकल जाती है। कप के अन्दर शून्यता हो जाने से कप त्वचा पर चिपक खिंचाव पैदा करने लगता है। उस स्थान पर खिंचाव बढ़ने से प्राण ऊर्जा और रक्त का प्रवाह बढ़ने लगता है। अवरोध के कारण रक्त वाहिनियाँ जो सिकुड़ जाती है, पुनः फैलने लगती है। परिणाम स्वरुप विजातीय तत्त्व उस स्थान से दूर होने लगते हैं और रोगी स्वस्थ होने लगता है।

चित्र सं. 116

कमर, घुटनों, हाथ-पैर, संबंधी रोगों में यह उपचार बहुत प्रभावशाली एवं शीघ्र राहत दिलाता है। मेरु दण्ड संबंधी रोग विशेष कर स्लीप डीस्क एवं साईटिका में लाभदायक होता है। वात संबंधी रोगों में कपिंग उपचार से शीघ्र आराम मिलने लगता है। फंसी हुई वायु अथवा गैस शीघ्र अपना स्थान छोड़ देती है। वात रोगों में कप द्वारा खिंचाव, रोगी को प्रायः अच्छा लगता है। जो विजातीय तत्व दबाव और मसाज द्वारा दूर नहीं होते उन्हे दूर करने में खिंचाव से अच्छे परिणाम आते हैं।

चित्र सं. 117

सीने पर इस प्रयोग से फेंफड़े मजबूत होते हैं। उन पर जमा कफ दूर होने लगता है। हृदय पर कप लगाते समय रोगी को विशेष सजगता की आवश्यकता होती है।

चित्र सं. 118

प्रारम्भ में 2-3 मिनट तक कप लगाकर उसके प्रभाव का अनुभव करना चाहिए। स्वस्थ अवस्था में प्रतिदिन हृदय और डायाफ्राम पर कप उपचार करने से हृदय और डायाफ्राम की कार्यक्षमता बढ़ती है। परन्तु हृदय रोग के समय अनुभवी कपिंग थेरेपिस्ट की उपस्थिति में ही कप लगाने चाहिए। खिंचाव उतना ही दें जो सहनीय हो।

सावधानियां कोई भी उपचार करते समय रोगी की अवस्था एवं उपचार से होने वाली प्रतिक्रिया का विवेक एवं सजगता पूर्वक ध्यान आवश्यक होता है।

उसके अभाव में उपचार से अपेक्षित परिणाम नहीं मिलते। उपचार करते समय रोगी को उपचार का सिद्धान्त समझाने से उसका आत्म विश्वास श्रद्धा और सजगता बढ़ जाती है और उपचार अधिक प्रभावशाली बन जाता है। **अश्रद्धा और अनचाहा जबरदस्ती किया गया उपचार अपेक्षित परिणाम नहीं दे सकता।** त्वचा पर कप लगाते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उस स्थान पर बाल न हों। बाल होने से कप में वायु की शून्यता न हो सकेगी। फलत: कप आवश्यक खिंचाव पैदा नहीं कर सकेगा। अत: बाल साफ करना आवश्यक होता है। अथवा जहां मामूली बाल हों उस स्थान पर पानी, लगाना चाहिये ताकि कप में शून्यता की जा सकें।

प्रारम्भ में कप को 10 से 15 मिनट से अधिक नहीं लगाना चाहिए। यदि आवश्यकता हो तो कुछ समय के अन्तराल में पुन: कप लगाए जा सकते है।

उपचार के पश्चात कप को हटाने हेतु कप पर ताकत से सीधा खिंचाव नहीं देना चाहिए। परन्तु कप के चारों तरफ के पास वाली त्वचा को दबाने से कप में वायु चली जाती है और अन्दर की शून्यता समाप्त होने से कप से त्वचा का खिंचाव स्वत: समाप्त हो जाता है और कप वहाँ से स्वत: हट जाते हैं।

खिंचाव के अन्य उपकरण

वेक्यूम पंप द्वारा नाभि संतुलन।

चित्र सं. 119

आजकल इसी सिद्धान्त पर आधारित अनेक उपकरण बाजार में उपलब्ध हैं। जैसे स्तन पम्प, आर्गन डेवलेपर, कटोरी के आकार के वेक्यूम कप इत्यादि। जिनसे आवश्यकतानुसार नियंत्रित खिंचाव किया जा सकता है। जिन लोगों के शरीर पर चर्बी अधिक होती है, उन स्थानों पर इन उपकरणों का उपयोग विशेष प्रभावशाली होता है। नाभि का स्पन्दन अपने केन्द्र में लाने के लिये भी इसी सिद्धान्त से उपचार किया जाता है।

शरीर के कोमल अंगों अथवा बहुत छोटे बच्चों जिनकी त्वचा बहुत अधिक कोमल होती है, कपिंग उपचार जहां तक हो नहीं करना चाहिए। अल्सर, घाव, चोट एवं फ्रेक्चर के समय, उन स्थानों पर कप नहीं लगाने चाहिए।

सम्यक् पुरुषार्थ से सभी समस्याओं का समाधान संभव होता है

नाभि आरोग्य का मूलाधार है

नाभि का महत्व :-

मानव जीवन के विकास, संचालन एवम् नियंत्रण में नाभि की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। माता के पेट में गर्भाधान से लेकर जीवन के अंतिम क्षणों तक नाभि केन्द्र सजग, सतर्क एवं क्रियाशील रहता है। **मृत्यु के पहले हृदय की धड़कन रुक जाने के पांच छः मिनट बाद तक नाभि में स्पन्दन होता है। यदि कोई अनुभवी व्यक्ति किसी विधि द्वारा नाभि की प्राण ऊर्जा का संपर्क हृदय से पुनः स्थापित कर दें, तो मनुष्य की मृत्यु टल सकती है। परन्तु नाभि में स्पन्दन रूक जाने के बाद मृत्यु को नहीं टाला जा सकता।** माता के गर्भ में नवजात बालक का सबसे पहले नाभि केन्द्र ही विकसित होता है। नाभि में हमारी पैतृक ऊर्जा का संचय होता है, जो बीज से वृक्ष की भांति हमारे सम्पूर्ण विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। गर्भस्थ बालक में नाभि के माध्यम से ही गर्भावस्था में विकास हेतु आवश्यक पोषक तत्वों की पूर्ति होती है।

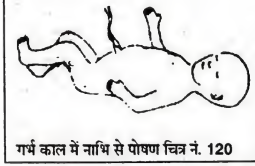

गर्भ काल में नाभि से पोषण चित्र नं. 120

गर्भ के बाहर आते ही सर्वप्रथम माता के शरीर को नाभि से जोड़ने वाली नली का सम्बन्ध विच्छेद करना अतिआवश्यक होता है। जिससे नवजात शिशु स्वतन्त्र रूप से श्वास लेकर अपनी जीवन यात्रा प्रारम्भ कर सकें। **जीवन की प्रथम श्वास बहुत ही महत्वपूर्ण होती है। उस समय सौरमण्डल में गृह नक्षत्रों की जो स्थिति होती है, उसी के आधार पर ही सारा ज्योतिष विज्ञान, उस व्यक्ति का भविष्य बतलाता है। यदि अज्ञानवश जन्म लेते ही नाभि को माता से जोड़ने वाली नली को शीघ्र न काटा जायें अथवा नली को काटते ही बच्चा न रोयें तो बालक विकलांग हो सकता है।**

नर से नारायण बनाने में नाभि का योगदान :-

नाभि में हमारे प्राणों का संचय होता है। यह शरीर का डायनेमों अथवा बैटरी है। ब्रह्माण्ड में जो भी घटित होता हैं, वह हमारे शरीर के अणु अणु को प्रभावित करता हैं। हमारी कोशिकाएँ शरीर में ब्रह्माण्ड का लघुतम रूप हैं। नाभि ही ब्रह्माण्ड से ऊर्जा को अपने आवश्यकतानुसार ग्रहण करने, संग्रह करने तथा रूपान्तरित करने की क्षमता रखती है। नाभि शरीर की धुरी है तथा शरीर में कार्यरत विभिन्न प्रकार की ऊर्जाओं का केन्द्र है। **नाभि उठते-बैठते,**

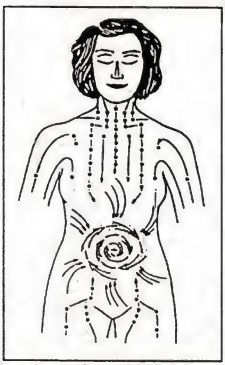

शरीर, मन और आत्मा का केन्द्र नाभि
चित्र नं.121

दौड़ते-चलते, सोते अथवा किसी भी स्थिति में शरीर के अंगों-उपांगों को अपने स्थान पर स्थिर रखती है। हमारी अधिकांश शारीरिक एवं मानसिक तथा आध्यात्मिक क्रियाओं के संचालन में इसकी प्रभावशाली भूमिका होती है। कुण्डलिनी जागृत कर अन्य चक्रों को सजग करना हों अथवा प्राणायाम की साधना या पातंजलि योग द्वारा यम से समाधि तक की अवस्था को प्राप्त करना आदि, सारी क्रियाएं नाभि की स्वस्थता पर ही निर्भर करती है। योगी पुरुष अपनी नाभि को संतुलित रख मन को नियंत्रित करते हैं। मन के माध्यम से संकल्प शक्ति को ऊपर उठाते हुए मस्तिष्क केन्द्र को स्थिर करते हैं। यही निर्विकल्प अवस्था होती है और सारी साधना का परम लक्ष्य भी इसी अवस्था को प्राप्त करना होता है।

नाभि को कमल की उपमा :-

जिस प्रकार कमल पानी में रहता हुआ भी उससे अपने आपको अलग रखता है। ठीक उसी प्रकार नाभि जीवन की अधिकांश शारीरिक, मानसिक, आत्मिक गतिविधियों का संचालक होते हुए ही भी बाह्य रूप से अपना कोई सम्बन्ध नहीं दर्शाती। इसी कारण हमारे पौराणिक ग्रन्थों में नाभि को कमल की उपमा दी गई हैं। जिस प्रकार वृत का केन्द्र होते हुए भी चित्र में वह नहीं दिखता, ठीक उसी प्रकार मन व आत्मा की भांति नाभि भी एक्सरे अथवा सोनोग्राफी की पकड़ में नहीं आती। अतः आज का ऐलोपैथिक विज्ञान इसके अस्तित्व को स्वीकार करने में परेशानी अनुभव कर रहा है ।

जीवनचर्या का आधार नाभि :-

जिस प्रकार कमल सूर्य के प्रकाश में खिलता है और सूर्यास्त के पश्चात् अपने आप में सिमट जाता है। ठीक उसी प्रकार सूर्यास्त के पश्चात् नाभि की सक्रियता मंद पड़ जाती है। जिससे रात्रि में हमारी क्षमताएं अपेक्षाकृत कम हो जाती है। निद्रा द्वारा विश्राम करना पड़ता है। हमारी दिनचर्या एवं रात्रिचर्या में अन्तर होता है। इसी कारण लम्बे समय तक रात्रि में कार्य करने वालों का स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। यदि कभी कारणवश पूर्ण रात्रि जागृत रहना पड़े तो दूसरे दिन हमारा पाचन बिगड़ जाता है।

नाभि और पाचन :-

नाभि का हमारे पाचन से गहरा सम्बन्ध होता है। अतः हमें जब नाभि सक्रिय हों, अर्थात् दिन में ही भोजन करना चाहिये।

नाभि केन्द्र खिसकने के प्रभाव :-

यदि नाभि अपने स्थान से अन्दर की तरफ हो जाए, उस व्यक्ति का वजन दिन प्रतिदिन घटता चला जाता है और यदि किसी कारण नाभि अपने स्थान से बाहर की तरफ हो जाती है तो शरीर का वजन न चाहते हुए भी

अपच, कब्ज, गैस, हृदय में जलन, अनिद्रा, खांसी एवं व्यक्तित्व में तनाव की समस्या होती है। महिलाओं को मासिक असंतुलन की संभावना होती है।

शरीर के निचले भाग में तनाव तथा पीड़ा होती है। लीवर, पित्ताशय तथा दाहिनी किडनी प्रभावित हो सकती है। महिलाओं को मासिक असंतुलन हो सकता है तथा आतों की समस्या हो सकती है।

शरीर के ऊपरी बायें भाग पर दर्द एवं तनाव की अनुभूति हो सकती है। इसके कारण पैन्क्रियाज, जठर, प्लीहा, तथा बायीं ओर की किडनी प्रभावित हो सकती है। लम्बर क्षेत्र में विकेन्द्रीकरण के कारण दाहिने पैर में दर्द हो सकता है।

शरीर का दाहिना भाग प्रभावित होता है। किडनी एवं आतों में खिचाव तथा कड़ापन एवं दर्द की अनुभूति हो सकती है।

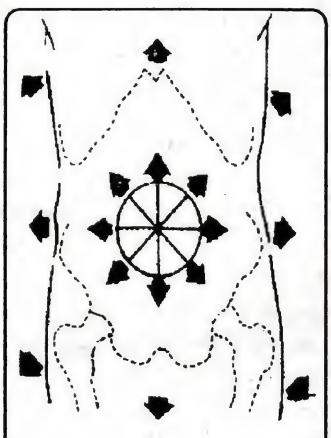

असहजता, मानसिक समस्यायें, बुरे स्वप्न, मासिक असंतुलन एवं मूत्राशय संबंधी समस्या हो सकती है।

दाहिनी और के निचले भाग में तनाव, कड़ापन तथा पीड़ा होती है। पैन्क्रियाज, जठर एवं प्लीहा तथा बायीं ओर की किडनी में पीड़ा हो सकती है। महिलाओं में मासिक असंतुलन की संभावना होती है।

शरीर का बायां भाग प्रभावित होता है तथा किडनी एवं आंतों में खिंचाई एवं कड़ापन तथा दर्द की अनुभूति हो सकती है।

शरीर के ऊपरी भाग में तनाव एवं दर्द की अनुभूति हो सकती है। यकृत (Liver) पित्ताशय (Gall Bladder) उदर . पटल (डायाफ्राम) तथा दाहिनी किडनी प्रभावित कर सकती है। कभी कभी लम्बर (ब्रन्सी) क्षेत्र या बायें में दर्द भी हो सकता है।

विभिन्न दिशाओं में नाभि खिसकने का प्रभाव (चित्र नं. 122)

अनावश्यक बढ़ने लगता है। किसी कारण नाभि यदि अपने स्थान से ऊपर की तरफ चढ़ जाती है तो खट्टी डकारें,

अपच आदि की शिकायतें रहने लगती है। कब्जी हो सकती है। परन्तु यदि नाभि अपने स्थान से नीचे की तरफ चली जाती है तो दस्तों की शिकायत हो जाती है। इसी प्रकार नाभि कभी दांयें, बांयें अथवा तिरछी दिशाओं में भी हट जाती है, जिससे शरीर में अनेक प्रकार के रोग होने लगते हैं। सारे परीक्षण एवं पेथोलोजिकल टेस्ट करने के पश्चात् भी रोग पकड़ में नहीं आता। ऐसे में नाभि केन्द्र को अपने केन्द्र में लाने से तुरन्त राहत मिलने लग जाती है।

नाभि असंतुलन के कारण :-

गलत ढंग से श्वसन क्रिया करने, योगासन न करने अथवा गलत ढंग से करने अथवा शरीर का संतुलन बिगाड़ने वाली अन्य प्रवृत्तियों के कारण भी नाभि अपने केन्द्र से हट जाती है। स्कूटर में कीक मारने अथवा गलत तरीके से वजन उठाने पर नाभि प्रायः ऊपर की तरफ, झुककर अधिक देर बैठने से अन्दर की तरफ जा सकती है।

तनाव का नाभि पर प्रभाव

गलत खान-पान एवं जीवन चर्या के साथ प्रतिदिन की चिन्तायें, दुःख, तनाव, आवेग, क्रोध, द्वेष, घृणा आदि प्रवृतियाँ विभिन्न मानसिक जहरों के माध्यम से शरीर पर अपना प्रभाव निरन्तर छोड़ती रहती है। इससे नाभि क्षेत्र में विजातीय तत्वों का जमाव होने लगता है। यदि इन दुष्प्रवृत्तियों के दुष्प्रभावों का प्रायश्चित/एवं सम्यक् चिन्तन किया जावे तथा समभाव पूर्ण जीवन जीया जावे तो भविष्य में इन दोषों के दुष्प्रभावों से बचा जा सकता है। इसी कारण जैन साधुओं के लिए प्रतिदिन प्रातः एवं सांयकाल अपने दोषों का परिमार्जन करने के लिए प्रतिक्रमण को आवश्यक बतलाया गया हैं। **परन्तु कभी-कभी महीनों अथवा सालों के बीत जाने के बाद भी यदि हम घृणा, द्वेष, क्रोध से उत्पन्न उन विजातीय तत्वों को प्रायश्चित एवं सकारात्मक सोच द्वारा दूर करने का प्रयत्न नहीं करते, जिससे विजातीय तत्वों का जमाव नाभि क्षेत्र में बढ़ने लगता है। नाभि के आसपास जो नाड़ियाँ (रक्त की सिरायें) एक-दूसरे से अलग-अलग फैली हुई है, आपस में चिपक जाती है। उलझ जाती है अथवा गुच्छों का रूप ले लेती है। फलतः नाभि क्षेत्र से पूरे शरीर को प्रवाहित होने वाली प्राण ऊर्जा के मार्ग में अवरोध उत्पन्न होने लगता है। शरीर के संतुलन का मुख्य आधार नाभि केन्द्र होता है। नाभि केन्द्र में स्थित मणिपुर चक्र ब्रह्माण्ड से सर्वाधिक ऊर्जा ग्रहण करता है और बाकी शरीर भी जो प्राण ऊर्जा ग्रहण करता है वह सर्व प्रथम मणिपुर चक्र (नाभि केन्द्र) में होकर अन्य ऊर्जा चक्रों में प्रवाहित होती है।** गर्भकाल में सारा पोषण नाभि के माध्यम से ही मिलता है। अतः यदि नाभि की धड़कन अपने केन्द्र में न हों तो शरीर असंतुलित होने लगता है।

मानव को दुःखी होना पसन्द नहीं। परन्तु सुखी होना आता नहीं तथा सुखी होने के लिए जैसा सम्यक् पुरुषार्थ आवश्यक है, वह होता नहीं। अतः व्यक्ति प्रायः दुःखी होता है।

निद्रा के समय शरीर निश्चिंत अवस्था में सतत लम्बे समय तक रहता है। अतः सोने का सही ढंग शरीर के संतुलन के लिए आवश्यक है। यही रोग की प्रारम्भिक स्थिति होती है। यदि नाभि क्षेत्र को पुनः स्वस्थ बनाकर नाभि को अपने केन्द्र में स्थित कर दिया जावे तो अधिकांश रोग ठीक होने लगते है। भले ही वे कितने ही पुराने अथवा असाध्य क्यों न हो। बहुत बार इस प्रक्रिया द्वारा शल्य चिकित्सा भी टाली जा सकती है। इसीलिए तो कहा जाता है **"पेट साफ तो सब रोग माफ"।**

स्वास्थ्य के लिए सम्यक् आचरण आवश्यक :-

प्रारम्भ से ही नाभि के केन्द्र में मौलिक (मूल) प्राण ऊर्जा रहती है। जितना ज्यादा इसका ब्रह्माण्ड से सम्पर्क रहेगा उतनी ज्यादा ऊर्जा मिलेगी। इसी ऊर्जा से शरीर की अवरोधक क्षमता बढ़ती है। श्वेत रक्त कोशिकाओं तथा T.Cells का निर्माण होता है, जो शरीर को दीर्घायु एवम् निरोग बनाते हैं। **नाभि चेतना का मूल केन्द्र है। इसके असंतुलन से मन और आत्मा भी स्वस्थ नहीं रह सकती। अतः आरोग्यता के लिए हमारी दिनचर्या, रात्रिचर्या में आहार निद्रा एवम् ब्रह्मचर्य का सम्यक् पालन आवश्यक होता है। प्रत्येक कार्य की सिद्धी के लिए आवश्यक है सम्यक् ज्ञान, सम्यक दर्शन और सम्यक् आचरण। सर्वप्रथम हमें स्वास्थ्य के बारे में अपना सोच बदलना होगा। लाभ हानि का चिन्तन कर आचरण करना होगा।**

नाभि के आकार से रोग निदान :-

जब नाभि का स्पन्दन नाभि केन्द्र में होता है तब चित्त में प्रसन्नता और मन में सात्विक विचारों का सर्जन होता रहता है। जो शारीरिक संतुलन के लक्षण होते हैं। परन्तु जब नाभि का स्पन्दन अपने केन्द्र में न हों तो शरीर असंतुलित होने लगता है। लम्बे समय तक नाभि का स्पन्दन केन्द्र में न रहने से नाभि केन्द्र के जिस तरफ स्पन्दन होता है, उधर की तरफ ऊर्जा का प्रवाह ज्यादा होने लगता है तथा उसके विपरीत दिशा में ऊर्जा का प्रवाह कम होने से नाभि क्षेत्र की मांशपेशियों में लगातार खिंचाव रहने से आकार बदल जाता है और शरीर में रोग के लक्षण स्थायी रूप से प्रकट होने लगते हैं।

(चित्र नं. 123)

आजकल हमारी अप्राकृतिक, असंयमित, अनियन्त्रित जीवनशैली के कारण अधिकांश व्यक्तियों का नाभि केन्द्र अपने स्थान पर प्रायः नहीं होता। नाभि क्षेत्र विजातीय तत्वों से पूर्णतया स्वच्छ नहीं होता। लम्बे समय तक ऐसी स्थिति बनी रहने से नाभि क्षेत्र का आकार स्थायी रूप से बदलने लगता है। **स्वस्थ नाभि का आकार गोलाकार, मांसपेशियाँ सुडौल तथा स्पन्दन इसके केन्द्र में होता है।**

(चित्र नं. 124)

परन्तु यदि नाभि अपने केन्द्र में स्थित न हो, त्वचा में लचीलेपन के स्थान पर कठोरता हो, नाभि सक्रिय एवं सजग न हो, नाभि एक तरफ खिंची हुई, उभरी हुई अथवा दबी हुई हो अथवा उसका आकार स्थायी रूप से बदल गया हो तो यह उस व्यक्ति में लम्बे समय से किसी न किसी रोग की तरफ इंगित करता है। शरीर में अनन्त क्षमता होने से साधारण स्थिति में हमें उन रोगों का आभास तक नहीं होता। परन्तु जब परिस्थितियाँ अनियंत्रित हो जाती है तब रोग के लक्षण बाहर दिखाई देने लगते हैं। हम अपने आपको रोगी मान उसके उपचार हेतु सजग हो जाते हैं। परन्तु वास्तव में हम कितने स्वस्थ हैं?अपनी क्षमताओं का कितना उपयोग करते हैं? सभी स्वास्थ्य प्रेमियों के लिये चिन्तन का विषय है।

जिस प्रकार किसी गोलाकार अथवा वृत्ताकार क्षेत्र में उसके केन्द्र से परिधि तक अनन्त रेखायें खिंची जावे तो वे आपस में नहीं कटती। परन्तु जब केन्द्र अपने स्थान से हट जाये और पुनः उसी प्रकार केन्द्र से परिधि तक रेखायें खिंची जावे तो कुछ रेखायें आपस में कटने लग जाती है। ठीक उसी प्रकार नाभि हमारे प्राण ऊर्जा का केन्द्र बिन्दु है तथा यहीं से सारे शरीर को प्राण ऊर्जा का वितरण, नियन्त्रण एवम् संतुलन होता है। अतः जब नाभि केन्द्र अपने स्थान से खिसक जाता है तो सभी अंगों को मिलने वाली प्राण ऊर्जा का संतुलन बिगड़ने लगता है। किसी को आवश्यकता से ज्यादा तो किसी को आवश्यकता से कम ऊर्जा मिलती है। फलतः ऐसे अंगों की कार्यप्रणाली असंतुलित हो जाती है। अलग-अलग लक्षण प्रकट होने लगते है। जिन्हें अलग-अलग रोगों के नाम से पुकारा जाता है। यदि इस संतुलन को पुनः ठीक कर दिया जावे तो हम स्वस्थ हो जाते हैं। जितनी-जितनी नाभि अपने वास्तविक स्थिति में आती है, उतने-उतने हम स्वस्थता का अनुभव करने लगते हैं। मात्र थोड़े समय के लिए किसी विधि द्वारा नाभि केन्द्र को पुनः अपने स्थान पर लाने से रोग में राहत अवश्य मिलती है। परन्तु ऐसी स्थिति बना दी जावे जिससे नाभि केन्द्र स्थायी रूप से अपने केन्द्र पर स्थिर हो जावे तो

हम पूर्ण स्वस्थ हो जाते हैं। जिस प्रकार किसी तालाब के मध्य में कोई पत्थर डाला जाये तो, वहां से उठने वाली लहरें वृताकार बन चारों तरफ फैलती है। परन्तु यदि पत्थर बीचों-बीच में न डालकर तालाब की किसी एक दिवार से थोड़ी दूरी पर डाला जावे, तो वृताकार फैलने वाली लहरें दिवार से टकराकर ठीक उस दिवार के विपरीत दिशा में वृताकार परिधि से वाहर की तरफ बढ़ जाती है। कहने का तात्पर्य यह है कि अवरोध आने से लहरें अपना आकार बदल देती है। ठीक उसी प्रकार नाभि केन्द्र से प्रवाहित होने वाली ऊर्जा के मार्ग में जिधर लम्बे समय से अवरोध बना रहता है, **नाभि का वह क्षेत्र सिकुड़ने लगता है। उसी तरफ स्थित अंग पूरी ऊर्जा न मिलने के कारण रोग ग्रस्त हो जाते हैं। इसके विपरीत जिधर लम्बे समय से ऊर्जा का प्रवाह आवश्यकता से ज्यादा हो रहा है, उधर नाभि का गोलाकार क्षेत्र खुल जाता है। उस तरफ स्थित अंगों में आवश्यकता से अधिक प्राण ऊर्जा मिलने से संतुलन बिगड़ जाता है और वे रोग ग्रस्त होने लगते हैं।**

नाभि निरीक्षण की विधि

नाभि अपने स्थान पर है अथवा नहीं, पता लगाने की अनेकों विधियाँ होती है परन्तु यहाँ एक ही प्रमुख विधि का तरिका बताया जा रहा है। जिस व्यक्ति की नाभि चेक करनी हो उस व्यक्ति को जमीन पर पीठ के बल सुला दीजिये। फिर अपने बांयें अथवा दाहिने हथेली की पांचों अंगुलियों को एक साथ मिलाकर ठीक नाभि पर दबाव देते हुये रखिये। यदि नाभि अपने स्थान पर होगी तो पांचों अंगुलियों के बीच में आपको स्पन्दन का आभास होगा। यदि नाभि थोड़ी हटी हुई हो तो नाभि का स्पन्दन पांचों अंगुलियों में किसी अंगुली के नीचे प्राय: अनुभव होगा परन्तु यदि नाभि अपने केन्द्र से अधिक हटी हुई हो तो नाभि क्षेत्र के आसपास पांचों अंगुलियों से दबाव देते हुए, उस स्थान को मालूम करें, जहां स्पन्दन आ रहा हो। जहां पर स्पन्दन आता है, नाभि चक्र उसी स्थान पर होता है। परन्तु जिन लोगों का पेट मोटा अथवा कठोर होता है, उन लोगों के नाभि चक्र का स्पन्दन आसानी से पता नहीं चलता तथा ढूंढने वाले को नाभि क्षेत्र में पर्याप्त दबाव डालकर ढूंढना पड़ता है।

नाभि केन्द्र ठीक करने की विधियाँ

नाभि केन्द्र को अपने स्थान पर लाने के लिये भारत में अनेकों विधियाँ प्रचलित है । वे इतनी सरल है कि कोई भी जिज्ञासु, शिक्षित, अशिक्षित , बच्चा, बुढ़ा, आसानी से उन विधियों को सीख सकता है। नाभि के केन्द्र में स्पन्दन का अनुभव होने पर वह अपने स्थान पर कही जाती है। परन्तु यदि स्पन्दन केन्द्र में न हों तो, बोलचाल की भाषा मे हम धरण का टलना, पेचुटि अथवा नाभि का खिसकना कहते हैं।

1. प्रात:काल खाली पेट रोगी को सीधा सुलाएँ। नाभि के आसपास बाल हों तो उन्हे साफ कर लें, अथवा पानी से गिला कर लें। उसके पश्चात रोगी को पांच सात बार गहरा एवं लम्बा श्वास लेने को कहें। उसके पश्चात

नाभि के केन्द्र पर जला हुआ दीपक रख उसको कांच की ग्लास से ढ़क दें तथा पेट पर ग्लास को हल्का सा दबाव देकर रखें। थोड़ी देर बाद ग्लास के अन्दर की आक्सीजन समाप्त हो जाने से दीपक बुझ जायेगा तथा ग्लास पेट के चिपक जायेगी, तथा उसके अन्दर की वायु नाभि के स्पन्दन को अपनी जगह पर लाने के लिये खिंचाव करेगी। जब नाभि का स्पन्दन अपने केन्द्र में आ जायेगा तो ग्लास अपने आप पेट से हट जायेगी। **जितनी देर से ग्लास हटती है, उतने ही अनुपात में नाभि क्षेत्र में प्राण ऊर्जा के प्रवाह में अवरोध होता है। रोग ज्यादा अथवा कम, पुराना अथवा तत्कालीन होता है।** अगर नाभि का स्पन्दन अपने केन्द्र में होता है तो ग्लास दीपक बुझने के पश्चात या तो पेट से चिपकेगी भी नहीं अथवा तुरन्त हट जायेगी। ग्लास हटने के पश्चात पुनः नाभि का स्पन्दन उसके केन्द्र में जांच कर लें। ग्लास हटने के पश्चात उसी स्थान पर रोगी को बैठा कर कुछ सात्विक ठोस पोष्टिक भोजन कराना चाहिये, ताकि पेट में भोजन के दबाव से नाभि का स्पन्दन अपने स्थान पर ही केन्द्रित रहे। आजकल दीपक के स्थान पर पंप, आर्गन डेवलेपर अथवा ब्रेष्ट पम्प का उपयोग भी किया जाता है। विशेषकर उन रोगियों के लिये जिनके तोंद ज्यादा हों अथवा नाभि का स्पन्दन बहुत गहरा अथवा केन्द्र से बहुत दूर हो। पम्प द्वारा खिंचाव उतना ही देना चाहिये जितना रोगी सहन कर सकें।

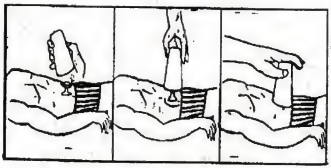

चित्र नं. 125

2. सुबह खाली पेट कमर सीधी करके सीधे लेट जायें। सर्व प्रथम 25-30 बार चित्र नं. 107 में दर्शायी विधि द्वारा सीधी एवं उल्टी साइकलिंग का व्यायाम करें। फिर रीढ़ के घुमावदार राजा और रानी आसन 25-30 बार करें। दोनों पैरों को धीरे-धीरे ऊपर उठायें तथा 90 डिग्री के कोण पर रखें। फिर सिर को बिना जमीन से उठाएँ दोनों पैरों को सीधे रखते हुये धीरे धीरे जमीन पर लाएं। ऐसा उत्तानपादासन पांच छः बार करें। उसके पश्चात पांच छः बार नौकासन विधि पूर्वक करें। ऐसा करने से खिसकी हुई धरण अपने स्थान पर आ जाती है।

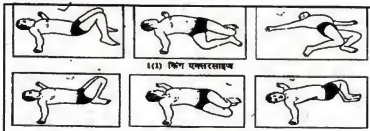

क्विन एक्सरसाइज(चित्र 126)

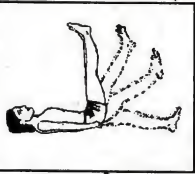

उत्तानपादासन(चित्र 127)

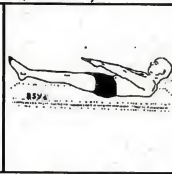

नौकासन (चित्र 128)

आसनों द्वारा नाभि ठीक करने की विधि

3. सुबह भूखे पीठ बल सीधे लेट जायें। दोनों टखनों तथा घुटनों को साथ साथ रखें। यदि धारण अपने स्थान पर नहीं होती है तो एक पैर का अंगूठा दूसरे पैर के अंगूठे से

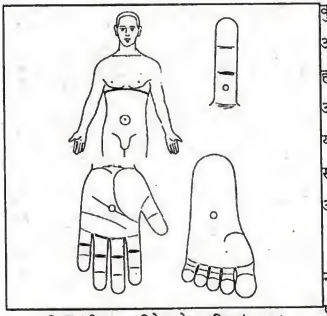

नाभि संबंधी मुख्य प्रतिवेदन केन्द्र (चित्र नं. 129)

कुछ बड़ा चित्र संख्या 85 एवं 86 में जैसा दर्शाया गया है लगेगा, अर्थात् दोनों अंगूठे बराबर नहीं होंगे। जो अंगूठा नीचे हों उसे हाथ से ऊपर की ओर खींचें। दो तीन बार खींचने से दोनों अँगूठे बराबर हो जायेंगे और धरण अपने स्थान पर आ जायेगी। यदि छोटे पैर को खिचना किसी कारण संभव न हों तो पैरों को संतुलन करने की विधि से दोनों पैरों को बराबर करने से नाभि अपने केन्द्र में आ जाती है।

गर्मियों के दिनों मे नाभि पर बर्फ का टुकड़ा रखने से नाभि क्षेत्र में संकोचन होने लगता है और हटी नाभि अपने स्थान पर आ जाती है।

स्वस्थ रहने की कामना रखने वालो को प्रतिदिन नाभि केन्द्र की स्थिति का परीक्षण कर लेना चाहिये। यदि नाभि केन्द्र अपने स्थान से विचलित हो गया हों तो प्रमाद छोड़ उसके केन्द्र में लाने का प्रयास करना चाहिये। जो व्यक्ति अपने नाभि केन्द्र के बारे में पूर्ण सजग रहते हैं, उन्हे जीवन मे कोई असाध्य रोग नहीं होता।

चित्र नं. 129 में बतलाये सुजोक एक्यूप्रेशर प्रतिवेदन केन्द्रों पर दबाव देने से भी नाभि संबंधी असंतुलन जल्दी दूर होता है। **रात्रि में सोते समय नाभि केन्द्र में शुद्ध देशी गाय का घी 2-3 बूंद डालने से नाभि केन्द्र के आसपास जमें विजातीय तत्त्व दूर हो जाते हैं।** नाभि के अन्दर और चारों तरफ दाणा मेथी लगाने से, चुम्बक का मसाज करने से भी नाभि संबंधी रोगों से शीघ्र आराम मिलता है।

चिन्तनीय प्रश्न

- **क्या उपचार हेतु प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष हिंसा का सेवन उचित है?**
- **क्या शरीर में स्वयं स्वस्थ होने की क्षमता होती है?**
- **प्रयोगशालाओं में शारीरिक अवयवों का निर्माण क्यों नहीं हो सकता?**
- **क्या हमारे मन में निदान और उपचार की सत्यता को जानने की जिज्ञासा होती है?**
- **क्या उपचार करवाते समय हम दवाओं के दुष्प्रभावों की उपेक्षा करते है?**

प्रभावशाली चैतन्य चिकित्सा

यदि किसी व्यक्ति को चन्द मिनटों के लिए लाखों रुपयों का प्रलोभन दे कर भी श्वास रोकने अथवा बन्द करने का अनुरोध करें तो भी शायद ही कोई अभागा अथवा मूर्ख व्यक्ति हमारी बात को स्वीकारेगा ? श्वास बंद होते ही व्यक्ति की मृत्यु होती है तथा मृत्यु के पश्चात् प्राप्त उस अपार धन राशि का स्वयं के लिए क्या उपयोग ? ऐसी अमूल्य श्वास ऊर्जा हमें जीवित अवस्था में प्रकृति से अनवरत विना कुछ मूल्य चुकाये प्रतिक्षण प्राप्त होती है। इसी कारण अधिकांश प्रचलित सभी ध्यान पद्धतियों का प्रारम्भिक अभ्यास श्वास पर ध्यान केन्द्रित करके ही कराया जाता है।

परन्तु **प्रायः हम हमारी अमूल्य श्वास का पूर्ण सजगता के साथ सदुपयोग नहीं करते। हमारी चेतना अथवा प्राण का श्वास के साथ घनिष्ठ संबंध होता है। दोनों का एक दूसरे के बिना अस्तित्व संभव नहीं होता।** जिस प्रकार बिजली की ऊर्जा को आवश्यकतानुसार रूपान्तरित कर एयर कंडीशनर, कूलर, फ्रीज, पंखे आदि ठण्डक प्रदान कराने वाले व हीटर, ओवन, गीजर आदि गर्मी पैदा करने वाले तथा ट्यूब, बल्ब आदि प्रकाश फैलाने वाले एवं वाहन आदि, गति करने वाले उपकरणों का उपयोग किया जा सकता है। ठीक उसी प्रकार शरीर में चेतना, आंखों के सहयोग से देखने, कानों के सहयोग से सुनने, नाक के सहयोग से सूंघने, मुंह एवं जीभ के सहयोग से बोलने तथा आहार ग्रहण करने इत्यादि की क्षमता प्राप्त कर लेती है।

हमारी अधिकांश प्रवृत्तियाँ पांचों इन्द्रियों और मन के माध्यम से संचालित होती है। मन की चेतना सभी प्रवृतियों में निर्णायक भूमिका निभाती है। पाँचों इन्द्रियों और मन के सकारात्मक तालमेल एवं सदुपयोग से हम स्वस्थ और संतुलित होते हैं जबकि उनके नकारात्मक एवं दुरुपयोग से हम असंतुलित एवं रोगी होते हैं। आत्मार्थी साधक इन्द्रियों का आलम्बन मन से हटाने हेतु पर्वतों, गुफाओं अथवा एकान्त स्थान का साधना हेतु चयन करते हैं।

अतः यदि किसी विधि द्वारा शरीर के किसी भाग पर मन को केन्द्रित कर दिया जाये तो अधिकांश प्राण ऊर्जा को भी उस स्थान पर केन्द्रित किया जा सकता है। निद्रा में पाँचों इन्द्रियाँ और मन सुसुप्त अवस्था में होते हैं, अतः हमें दर्द, कमजोरी अथवा अन्य संवेदनाओं का अनुभव नहीं होता। **शरीर को स्वस्थ रखने के लिये इस प्राण अथवा चैतन्य ऊर्जा से अच्छा, प्रभावशाली और सशक्त कोई अन्य विकल्प बहुत कठिन होता है।**

परन्तु मन को एकाग्र करना बहुत कठिन होता है और उस हेतु दीर्घकालीन ध्यान साधना का अभ्यास आवश्यक

होता है, जो जनसाधारण के लिये प्राय: संभव नहीं होता। अत: यदि हम आँख से देखना, मुँह से खाना और बोलना बंद कर दें तथा शांत एकान्त स्थान पर चले जायें तो आवाज न आने से कान और गंध परिवर्तन न होने से घ्राणेन्द्रिय को आराम मिल जाता है। ऐसे समय हम मन को जिस स्थान पर एकाग्र करना चाहें, सरलता से कर सकते हैं। हम भलिभांति जानते हैं कि जब सूर्य की किरणों को किसी कांच के लेन्स के अन्दर से निकाला जाती है तो, किरणें एकाग्र होकर अपना प्रभाव दिखाने लगती है। जिस स्थान पर वे किरणें फेंकी जाती है, वहाँ इतनी गर्मी पैदा होने लगती है, कि कुछ ही देर में वहाँ पड़ा कागज, कपड़ा अथवा अन्य ज्वलनशील पदार्थ जलने लगता है। जो कार्य सूर्य की असंख्य किरणें मिलकर नहीं कर सकती है, वही कार्य जब उनको एकाग्र करके डाला जाये तो सहज हो जाता है । कहने का तात्पर्य यही है कि **एकाग्रता से ऊर्जा की ताकत बहुत बढ़ जाती है** । जिस प्रकार राष्ट्र की विकटतम समस्या के संमाधान हेतु जब सर्वोच्च नेता का ध्यान आकर्षित हो जाता है, वे रुचि लेने लगते हैं तथा उन समस्याओं को प्राथमिकता से सुलझाने का प्रयास करते हैं तो उस समस्या का अवश्य समाधान हो जाता है। चाहे कारगिल पर आक्रमण हो अथवा गुजरात में भूकम्प, राष्ट्र की प्राथमिकताओं को बदल, उन समस्याओं के समाधान को महत्व मिलता है। **ठीक उसी प्रकार जब रोग ग्रस्त भाग से चेतना का सीधा सम्पर्क हो जाता है, मन के दूसरे आलम्बन समाप्त हो जाते हैं तो प्राण ऊर्जा का प्रवाह उस भाग में बढ़ने लगता है । जिससे शरीर के उस रोग ग्रस्त भाग की क्षीण कार्य क्षमता** पुन: बढ़ने लगती है। वहाँ से **विजातीय तत्त्व एवं विकार** दूर **होने लगते हैं । फलत: रोग ग्रस्त भाग रोग मुक्त होने लगता है।**

पेन्क्रियाज़ पर दबाव देकर चैतन्य चिकित्सा द्वारा मधुमेह का उपचार।

चित्र नं. 130

अत: प्रात: काल हम इतना जल्दी उठे कि आसपास का वातावरण पूर्णतया शांत हों तो हमारा घर ही मन की एकाग्रता के लिये शांत और एकान्त स्थान बन सकता है। ऐसे समय घर की खुली छत अथवा प्रकृति के शुद्ध वातावरण में स्थिर आसन बैठ, दर्द वाले भाग को थपथपायें अथवा उस भाग का संकोचन करें और फैलावें या उस भाग पर तनाव दें तो मन उस स्थान पर केन्द्रित होने लग जाता है। परिणामस्वरूप उस स्थान पर चेतना अथवा प्राण ऊर्जा अधिक मात्रा में प्रवाहित होने लगती है। जिससे विजातीय विकार दूर होने लगते हैं और कमजोर भाग सशक्त होने लगता है। मांसपेशियों में हलन चलन होने से सक्रियता आने लगती है। जिस प्रकार जो स्प्रींग क्रियाशील होती है, उसमें जंग लगने की संभावनाएं कम रहती है, ठीक उसी प्रकार दर्द वाले भाग पर मन को एकाग्र करके गहरा श्वास लेने तथा तेजी से निकालने अथवा जोर से हँसने से रोग ग्रस्त भाग की मांसपेशियों में हलन चलन होने से उन पर लम्बे समय से जमें अथवा एकत्रित विकार दूर होने लगते

हैं। प्राण ऊर्जा का प्रवाह आवश्यकतानुसार संतुलित होकर प्रवाहित होने लगता है, जिससे तुरंत स्वास्थ्य लाभ की प्रक्रिया प्रारम्भ होने लग जाती है। मृत कोशिकाएँ पुनर्जीवित होने लगती है। जिस प्रकार मालिक के जागते ही, चोर भाग जाता है, ठीक उसी प्रकार रोग ग्रस्त भाग पर ध्यान करने से वहाँ से रोग के कारण दूर होने लगते हैं।

चेतना से ज्यादा शक्तिशाली एवं प्रभावशाली रोग निवारक शक्ति प्रायः मिलना असंभव होता है। परन्तु जब रोगी की चेतना का दर्द अथवा कमजोर भाग से सीधा सम्पर्क हो जाता है तो उपचार का प्रभावशाली होना स्वाभाविक है । अंतःस्रावी ग्रन्थियाँ आवश्यकतानुसार अपने स्राव के रूप में मदद भिजवाने लगती है, जिससे व्यक्ति रोग मुक्त होने लगता है।

दर्द अथवा कमजोर भाग पर किसी भी विधि द्वारा तनाव और ढ़ीला छोडने की प्रक्रिया के साथ गहरी श्वसन क्रिया या कपाल भाति प्राणायाम अथवा वेग के साथ हँसी की क्रिया जिसका वर्णन हास्य चिकित्सा के अध्याय में किया गया है। भूखे पेट करने से सर्वाधिक लाभ मिलता है।

स्वावलम्बी चिकित्सा पद्धति में साध्य रोगों के उपचार का क्रम

- समग्र दृष्टि से परीक्षण करना।
- शारीरिक असन्तुलन ठीक करना।
- अप्रत्यक्ष रोगों की उपेक्षा नहीं करना।
- रोगी को सूक्ष्म शारीरिक परिवर्तनों को समझने के लिये प्रेरित करना एवं उपचार के प्रभाव की विस्तृत जानकारी लेना।
- उपचार में रोगी की क्षमताओं का अधिकतम उपयोग लेना।
- रोगी की शंकाओं, तर्कों का सही समाधान करना।
- रोगी को स्वावलम्बी बनने की प्रेरणा देना।

हास्य चिकित्सा

शरीर में विजातीय तत्त्वों को निःश्वास के साथ विसर्जित करने का सरलतम उपाय है हास्य योग अर्थात् खुलकर हँसना। मुस्कराना। प्रसन्नचित्त रहना।

श्वसन के विभिन्न व्यायामों में हास्य सरलतम नैसर्गिक क्रिया है, जो हमारी आन्तरिक प्रसन्नता को प्रकट करती है। जो नित्य मुस्कराता रहता है, उसके तनाव, भय, निराशा, चिन्ता, नकारात्मक सोच, क्रोध, घृणा आदि कारण स्वतः दूर होने लगते हैं। मुख मण्डल आभा से भर जाता है। व्यक्ति का व्यक्तित्व निखरता है, उसमें मिलनसारिता की प्रवृत्ति विकसित होने लगती है, जिससे उसके सम्पर्क में आने वाले प्रभावित हुए बिना नहीं रहते। मुस्कान न केवल एक जीवन्त प्रक्रिया है, उससे भी कहीं अधिक एक सामाजिक, मनोवैज्ञानिक घटना भी है, जिससे दो व्यक्तियों के बीच शुभ संवाद आरम्भ होने में सुविधा मिलती है। जब दो परिचित मिलते हैं तो दूर से दिखते ही चेहरे पर मुस्कान आ जाती है। अतिथियों का मुस्कराते हुए ही स्वागत किया जाता है। अर्थात् मुस्कान हमारे जीवन में आनन्द, सुःख, प्रसन्नता की, सूचक होती है। मुस्कान की उपमा खिलते हुए कमल के फूल से की जा सकती है। जिस प्रकार खिला हुआ कमल का पुष्प अच्छा लगता है, ठीक उसी प्रकार मुस्कान से व्यक्ति को सुख की अनुभूति होती है। जिसके चेहरे की मुस्कुराहट चली जाती है, उसके जीवन की प्रसन्नता चली जाती है। जिसके जितनी ज्यादा मुस्कान रहती है, उतना अधिक स्वास्थ्य अच्छा रहता है। मुस्कराना प्रकृति की मानव को अनुपम देन हैं। जो उसको स्वस्थ, सुखी प्रसन्नचित्त रखने का उसके, स्वयं के हाथ में सहज, सरल, सस्ता, प्रभावशाली उपाय है। जिसमें किसी भी प्रकार के दुष्प्रभाव की संभावना नहीं होती। **जितना अधिक व्यक्ति आन्तरिक मुस्कराहट से ओतप्रोत रहता है, उतनी ही उसकी सहनशीलता बढ़ती जाती है। प्रतिकूलता और वियोग में समतामय जीवन जी सकता है। उसकी पर दोष दृष्टि समाप्त होने लगती है, चिन्तन सकारात्मक होने लगता है, जो मानव जीवन की सफलता एवं उद्देश्य प्राप्ति का मूलाधार होती है। सकारात्मक भाव पैदा होते हैं, जिससे शरीर के लिए उपयोगी रसायन पैदा होने लगते हैं।** कार्य क्षमता बढ़ जाती है। अशान्ति की आग में आकुल-व्याकुल व्यक्ति के लिए हास्य एक वरदान होता है।

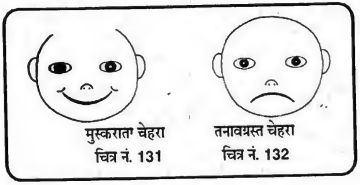

मुस्कराता चेहरा
चित्र नं. 131

तनावग्रस्त चेहरा
चित्र नं. 132

जब मुस्कान हँसी में बदल जाती है तो स्वास्थ्य वर्धक औषधि का कार्य करने लगती है। मानव ही एक

मात्र ऐसा प्राणी है, जिसमें हंसने की क्षमता होती है। यह उसका स्वभाव भी है तथा उसके खुशी की अभिव्यक्ति का माध्यम भी। किसी बात पर मुस्कराना अथवा हँसना, किसी को देख कर हँसना, कुछ व्यंग सुनकर हँसना, कुछ पढ़कर हँसना, किसी को हंसते हुए देख कर हँसना किसी से मुस्कराते हुए मिलना, खुशी के प्रसंगों पर मुस्कराना मानव व्यवहार की सहज क्रियाएँ हैं। कहना होगा कि **हास्य तनाव का विरेचन है। सच्चा हास्य तोप के गोले की तरह छूटता है और मायूसी की चट्टान को बिखेर देता है। हास्य से रोम-रोम पुलकित होते हैं, दुःखों का विस्मरण होता है, खून में नयी चेतना आती हैं। शरीर में कुछ भाग हास्य ग्रन्थियों के प्रति विशेष संवेदनशील होते हैं।** जैसे पगथली, काख, गला आदि। अतः यदि किसी तनाव ग्रस्त, भय ग्रस्त अथवा मानसिक दुःखों से ग्रस्त व्यक्ति के उन संवेदनशील भागों पर आवश्यक सिरहन किया जाए तो अनचाहे हँसी आने लगती है। परिणामस्वरूप तनाव, भय, चिन्ताओं के विकार शरीर से विसर्जित हो जाते हैं, जिससे व्यक्ति खुशी का अनुभव करने लग जाता हैं। हंसी मानसिक रोगों के उपचार का प्रभावशाली माध्यम होता है।

हंसी से शरीर में वेग के साथ आक्सीजन का अधिक संचार होने से मांसपेशियाँ सशक्त होती है। जमें हुए विजातीय अनुपयोगी, अनावश्यक तत्त्व अपना स्थान छोड़ने लगते हैं, जिससे विशेष रूप से फेंफड़े और हृदय की कार्य क्षमता बढ़ती है। अवरोध समाप्त होने से रक्त का प्रवाह संतुलित होने लगता है। शरीर स्वस्थ एवं बलिष्ठ होने लगता है। हँसी से शरीर में ताजगी आती है। अच्छी स्वाभाविक निद्रा आती है। बुखार दूर हो जाता है। दर्द और पीड़ा में राहत मिलती है। वास्तव में हँसी सभी प्रकार के रोगों में प्रायः लाभकारी होती है। हृदय रोगियों का हास्य सरलतम प्रभावशाली उपचार है।

दुःखी, चिन्तित, तनाव ग्रस्त, भयभीत, निराश, क्रोधी आदि हँस नहीं सकते और यदि किसी भी कारण से हँसी आती है तो उस समय तनाव, चिंता, भय, दुःख, क्रोध आदि रह नहीं सकते, क्योंकि दोनों एक दूसरे के विरोधी स्वभाव के होते हैं। अतः यदि हम काल्पनिक हँसी भी हँसेंगे तो तनाव, चिंता, भय, निराशा आदि स्वतः भूल जाते हैं। ये ही वे कारण होते हैं जो व्यक्ति को अस्वस्थ, असंतुलित, रोगी बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। हंसने से शरीर के आन्तरिक भागों की सहज मालिश हो जाती है। अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ और ऊर्जा चक्र सजग और क्रियाशील होने लगते हैं। जिससे रोग प्रतीकारात्मक क्षमता बढ़ती है। मन में सकारात्मक चिन्तन, मनन होने लगता है। शुभ विचारों का प्रादुर्भाव होता है। नकारात्मक भावनाएँ समाप्त होने लगती है। आज के तनाव युक्त वातावरण से मुक्त होने के लिए हास्य-योग सरलतम, स्वयं के पास, सभी समय उपलब्ध, सहज, सस्ता साधन है। परन्तु प्रायः देखा जाता है कि हँसने के लिए व्यक्ति बाह्य आलम्बनों पर निर्भर रहता है। जो हमारे पास सदैव उपस्थित नहीं होते। चुटकलों के सहारे हम 365 दिन नहीं हँस सकते, क्योंकि नित्य नवीन ज्ञानवर्धक प्रभावशाली चुटकले भी पढ़ने को नहीं मिलते और न ऐसे व्यक्तियों का नियमित सम्पर्क होता है, जो दूसरों को हँसाने में दक्ष होते हैं। आज के सभ्य

समाज में अकारण हँसने वालों की तुलना पागलों अथवा मूर्खों से की जाती है। बिना बात हँसना बहुत कठिन होता है। सबसे बड़ी समस्या अकारण हँसने से लज्जा आती है। अतः व्यक्ति हास्य के लाभ को जानते, मानते हुए भी हँसने का साहस नहीं जुटा पाता। परिणामस्वरूप उसे रोग होने की संभावनाएँ बढ़ती है तथा बीमार होने पर चिकित्सकों की प्रयोगशाला बनने हेतु मजबूर होना पड़ता है। इसी कारण आज सारे विश्व में हास्य योग संगठन बनते जा रहे हैं। जो प्रातःकाल खुले मैदानों अथवा बगीचों में नियमित एकत्रित होकर सामूहिक रूप से कृत्रिम ढंग से हँसते हैं, हँसाते हैं। हम प्रायः अनुभव करते हैं कि साधारण परिस्थितियों में कभी-कभी सामने वाले को हँसते हुए देख अकारण ही हँसी स्वतः आने लगती हैं। इसका छूआछूत के रोग की भांति आपस में फैलाव अथवा प्रसार होने लगता है, जिससे समूह में हँसी का सहज माहौल हो जाता है। आजकल समूह में भी हँसने की भी विभिन्न विधियाँ मानव ने विकसित कर ली है।

जो व्यक्ति ऐसे संगठनों में न जा सकते हों या जहां ऐसे संगठन न हों, यदि अपने घर में भी भूखे पेट, खुले एकान्त, स्वच्छ स्थान पर गहरा श्वास लेकर एक ही श्वास में ठहाका मारते हुए पूर्ण वेग के साथ जितने लम्बे समय तक खुल कर हँस सकें, हँसने का अभ्यास कर सकते हैं। जिसको लोक भाषा में हम अट्टहास कहते हैं। अट्टहास का अपनी क्षमतानुसार अभ्यास किया जा सकता है। अट्टहास का क्षमतानुसार अधिकाधिक पुनरावर्तन करना चाहिये। तत्पश्चात् थोड़ी देर तक शवासन अथवा शिथिलीकरण करना चाहिये।

जो व्यक्ति अट्टहास करने का साहस न जुटा सकें, वे होठ बन्द कर मन ही मन तीव्र गति से हँसने का प्रयास करें। जिससे हास्य योग का लाभ मिल जाता है। **कोई भी प्रवृत्ति का सर्वमान्य स्पष्ट मापदण्ड नहीं हो सकता। प्रत्येक व्यक्ति को स्वविवेक और स्वयं की क्षमताओं तथा हँसने से होने वाली प्रतिक्रियाओं का सजगता पूर्वक ध्यान रख अपने लिए उपयुक्त और आवश्यक विधियों का चयन करना चाहिए, न कि देखा देखी, सुनी सुनायी, पद्धति के आधार पर किसी के उपहास या मजाक के रूप में हँसना। किसी की असफलता या नुकसान पर हँसना क्रूर हास्य है। अतः ऐसे हास्य का निषेध है। दूसरों को देख हँसना, कभी-कभी कलह अथवा द्वेष के कारण, कषाय वृद्धि का हेतु बन सकती है।** परन्तु अकेले में एकान्त में होठ बन्द कर शान्त हँसी कषाय वृद्धि का कारण भी नहीं होती है। पाँच मिनट हँसने से शरीर को 1 से 2 किलोमीटर प्रातःकाल घूमने जितनी ऊर्जा मिलती हैं। प्रदूषण रहित स्वच्छ एवं खुले प्राण वायु वाले वातावरण में, प्रातःकाल उदित सूर्य के सामने, हास्य व्यायाम अधिक प्रभावशाली होता हैं, क्योंकि हास्य लाभ के साथ-साथ सौर ऊर्जा की भी सहज प्राप्ति हो जाती है।

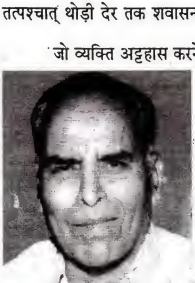

मुँह बन्द कर हँसते हुए।

(चित्र नं. 133)

प्रभावशाली मेथी चिकित्सा

दाणा मेथी हमारे रसोइघरों में दैनिक उपयोग में आने वाली वस्तु है, जो अनेक औषधि -गुणों से भरपूर होती है। इसका नियमित प्रयोग शरीर को स्वस्थ बनाता है। प्राचीन काल से ही इसका प्रयोग खाद्य और औषधि के रूप में हमारे घरों में होता आ रहा है।

आयुर्वेद के ग्रन्थ भाव प्रकाश में कहा गया है कि मेथी वात को शान्त करती है, कफ और ज्वर का नाश करती है। राज निघन्टु ने मेथी को पित्त नाशक, भूख बढ़ाने वाली, रक्त शोधक, कफ और वात का शमन करने वाली बतलाया गया हैं।

मेथी में प्रोटीन, वसा, कार्बोहाइड्रेट्स, खनिज, विटामिन, कैल्शियम, फासफोरस, लोह तत्त्व , केरोटीन , थायमिन, रिवोफलेबिन, विटामिन सी आदि प्रचुर मात्रा में होते हैं। लोह तत्त्व की अधिकता के कारण मेथी रक्त की कमी वालों के लिये विशेष लाभप्रद होती है। मेथी दानों से शरीर की आन्तरिक सफाई होती है। आग से जलने पर दानेदार मेथी को पानी में पीस कर लेप करने से जलन दूर होती है। फफोले नहीं पड़ते। शरीर में अन्दर की जलन वाले स्थान पर भी लेप करने एवं मेथी का पानी पीने से आन्तरिक जलन कम होती है। मेथी की चाय बुखार को कम करने में बहुत प्रभावकारी होती है।

मेथी मुख्यतः पाचन संस्थान पर कार्य करती है। पाचन तंत्र को सुधारती है। परोक्ष रूप से वात नाड़ी संस्थान एवं रक्त पर भी अपना प्रभाव डालती है। आमाशय की पाचन क्रिया सुधारती है। मेथी के सेवन से पेट में कृमियों का नाश हो जाता है। आंतों में भोजन का बराबर पाचन होता है। बड़ी आंत में, मल में कुछ गाढ़ापन आता है और मल आसानी से बड़ी आंत में गमन करने लगता हैं। मेथी खाने से भूख अच्छी लगती है। मेथी सेवन से गंध और स्वाद इन्द्रियाँ अधिक संवेदनशील होती हैं। यह शरीर का आन्तरिक शोधन करती है। श्लेष्मा को घोलती है तथा पेट और आंतों की सूजन ठीक करने में सहायक होती है। इसी कारण तपस्या का पारणा करते समय मेथी का सेवन लाभ प्रद होता है।

मेथी सेवन से मुंह की दुर्गन्ध दूर होती है। कफ , खांसी, इनफ्लुएन्जा, निमोनिया, दमा आदि श्वसन संबंधी रोगों में लाभ होता है। गले की खराश में मेथी दाने के पानी से गरारे करने से बहुत लाभ होता है।

मेथी पत्तों की चाय से डूश लेने से महिलाओं में श्वेत प्रदर का रोग ठीक होता है। जामुन के आकार की पोटली

में मेथी दाने अथवा उसका चूर्ण भर कर पोटली को गर्भाशय में रखें तथा डोरा बाहर लटकने दें। जिससे आवश्यकता पड़ने पर पोटली बाहर निकाली जा सके अथवा गंदी होने पर बदली जा सके। श्वेत प्रदर में मेथी का ऐसा प्रयोग काफी लाभप्रद होता है। प्रजनन के पश्चात् गर्भाशय के संकोचन एव गर्भाशय की शुद्धि के लिये मेथी सेवन उपयोगी होता है। मेथी के सेवन से महिलाओं में महावारी की गड़बड़ियाँ दूर होती है। मेथी सेवन से प्रजनन के बाद मां के स्तनों में अधिक दूध उपलब्ध होता है।

मेथी का सिर पर लेप करने से गिरने वाले बाल रुक जाते हैं, गंजों के बाल आने लगते हैं। बाल अपने प्राकृतिक रंग में और मुलायम बने रहते हैं। बालों की लम्बाई बढ़ती है। ताजा पत्तियों का पेस्ट रोज नहाने से पूर्व चेहरे पर लेप करने से चेहरे का रुखापन, झुर्रियां, गर्मी से होने वाले फोड़े फुन्सियाँ आदि ठीक होते हैं।

मधुमेह और हृदय रोगियों के लिये मेथी बहुत लाभप्रद होती है। मेथी से तन्तुओं को ताकत मिलती है। मेथी के सेवन से घुटनों के दर्द, स्नायु रोग, गंठिया, बहुमूत्र रोग, सुखा रोग आदि में लाभ होता हैं।

पित्त प्रकृति वालों को या जिन्हे रक्त पित्त, रक्त प्रदर, खूनी बवासीर, नकसीर, मूत्र में रक्त आना अथवा शरीर के किसी भाग से रक्त निकलने की शिकायत हों अथवा जिन्हें गर्म वस्तुएं अनुकूल न हों, उन्हें मेथी का प्रयोग करते समय सावधानी रखनी चाहिये, क्योंकि मेथी उष्ण और खुश्क होती है। तेज गर्मी में भी मेथी का आन्तरिक प्रयोग करते समय विशेष ध्यान रखना चाहिये।

यद्यपि अलग-अलग रोगों के उपचार हेतु मेथी का प्रयोग अनेक प्रकार से किया जाता है। जैसे—मेथी दाणा भिंगोकर उसका पानी पीना, उसे अंकुरित कर खाना, या रस निकालकर पीना, उबालकर उसका पानी पीना या सब्जी बनाकर खाना, विभिन्न अचारों, सब्जियों अथवा अन्य खाद्य पदार्थों के साथ पकाकर सेवन करना, मेथी दानों को चूसना, चबाना अथवा पानी के साथ निगलना, मेथी की चाय अथवा काढ़ा बनाकर पीना, उसका पाउडर बना पानी के साथ लेना, अथवा लेप करना, मेथी की पुड़ियें बनाकर खाना अथवा पकवान बनाकर उपयोग करना इत्यादि कई तरीकों से मेथी का प्रयोग हमारे घरों में होता रहता है। **परन्तु आजकल मेथी की प्रभावशाली तरंगों के कारण कमजोर अंगों को शक्तिशाली बनाने, शरीर के दर्द वाले भाग की वेदना कम करने, जलन वाले भाग की जलन दूर करने में मेथी का बाह्य प्रयोग चमत्कारी प्रभावों वाला सिद्ध हो रहा है, जिससे जनसाधारण प्रायः अनभिज्ञ ही है।**

मेथी जो कार्य पेट में जाकर करती है, उससे अधिक एवं शीघ्र लाभ उसके बाह्य प्रयोग से भी संभव होता है, क्योंकि उसमें उसका रोग ग्रस्त भाग से सीधा सम्पर्क होता है। परिणामस्वरूप पित्त प्रकृति वालों एवं तेज गर्मी में भी बिना किसी दुष्प्रभाव इसका उपयोग किया जा सकता है। फिर भी उपचार अथवा उपयोग का काल व्यक्ति के स्वविवेक और सजगता पर निर्भर रहता हैं। मेथी दानों को शरीर के दर्द वाले भाग पर लगाने से दर्द में तुरन्त राहत

मिलती है। शरीर के कमजोर अंग पर लगाने से वह अंग पुनः सक्रिय और ताकतवर होने लगता है। **हृदय रोगियों के हृदय वाले स्थान पर मेथी दाणा लगाने से हृदय शूल और अन्य विकार शीघ्र दूर होने लगते हैं। रक्तचाप सुधरता है। रक्त में कोलस्ट्रोल की मात्रा कम होती है। मधुमेह के रोगियों के पेन्क्रियाज पर दाणा मेथी लगाने से पेन्क्रियाज अधिक इंसुलिन बनाने लगता है। उसकी ताकत बढ़ती है। गुर्दे के रोगियों के गुर्दों वाले स्थान पर मेथी लगाने से गुर्दों की कार्यप्रणाली सुधरने लगती हैं। दांतों के दर्द में मुंह में दर्द वाले दांतों के पास मेथी चूसते रहने से दांतों का दर्द ठीक होने लगता है। कान के दर्द में दाणा मेथी को कान में डालने से तुरन्त आराम मिलता है। चाहे कमर का दर्द हो या घुटनों का अथवा ऐडी या शरीर में ओर किसी प्रकार के स्थानीय दर्द में मेथी दाणा उस स्थान पर लगाने से प्रभावशाली परिणाम आते हैं।** कहने का तात्पर्य यह है कि मेथी से अनेक रोगों का उपचार हो सकता है। गांठ पर मेथी दाणें लगाने से गांठ सिकुड़ने लगती हैं।

एक्यूप्रेशर के जिन प्रतिवेदन बिन्दुओं पर विजातीय तत्त्वों के जमा हो जाने से दबाव देने पर दर्द होता है वहां दाणा मेथी लगाकर रखने से विजातीय तत्त्व उस स्थान से दूर होने लगते हैं और प्राण ऊर्जा का प्रवाह पुनः नियमित होने से रोग में राहत मिलती है। अतः मेथी के प्रयोग से एक्यूप्रेशर चिकित्सा पद्धति बिना दर्द वाली उपचार पद्धति बन जाती है।

सिर पर मेथी दाणों का मसाज करने से सिर का भारीपन , तनाव और दर्द ठीक हो जाता है। मेथी का तकिया बनाकर सिर के नीचे सोते समय रखने से गहरी निद्रा आती हैं।

मेथी दाणों को मुंह में चूसते रहने से गले संबंधी रोगों में लाभ होता है । मेथी का हल्का सा मसाज छाती पर करने से फेंफड़े मजबूत होते हैं। कफ, खांसी, दमा में आराम मिलता है। नाभि में और उसके आसपास के क्षेत्र में मेथी दाणा लगाने से गैस नहीं बनती। जलन, खुजली, फोड़ा, फुन्सी, दाद वाले स्थान पर मेथी लगाने से तुरन्त आराम मिलता हैं।

मेथी शरीर पर कैसे लगावें ?

कागज की चिपकाने वाली टेप पर मेथीदाणा को चिपका दें। चारों तरफ थोड़ा स्थान खाली छोड दें ताकि टेप त्वचा पर आसानी से चिपक सकें। मेथी दाणों का स्पर्श, तब तक शरीर पर चिपका रहने दें, जब तक उस स्थान पर किसी प्रकार की प्रतिकूलता अथवा सिर में भारीपन अनुभव न हों। यह प्रयोग चन्द दिनों तक चालू रखें, जब तक अपेक्षित परिणाम न मिल जाये। मात्र तीन दिन के नियमित प्रयोग से उसके चमत्कारी प्रभावों का अनुभव होना प्रारम्भ होने लगता है। वैसे मेथी अपना

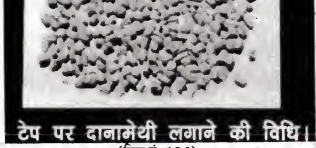

टेप पर दाना मेथी लगाने की विधि।
(चित्र नं. 134)

प्रभाव लगाने के तुरन्त बाद अनुभव कराने लग जाती है।

मेथी कैसे कार्य करती है?

प्रायः हम अनुभव करते हैं कि जब भी हम किसी रोगी का आराम पूछने जाते हैं, तो अपने स्नेही प्रियजन को देखते ही रोगी को चन्द क्षणों के लिए राहत का अनुभव होता है। भले ही हम उसे बातचीत न भी करें। ऐसा क्यों होता है? क्या जो प्रभाव हमारी उपस्थिति का होता है, वही प्रभाव रोगी के सामने हमारी फोटो दिखाने से क्यों नहीं होता ?

आयकर अधिकारी को दुकान के समीप खड़ा देख व्यापारी तनावग्रस्त क्यों हो जाता है ? अपने स्नेही मित्र को दूर से देखते ही चेहरे पर मुस्कराहट क्यों आ जाती है? अनुकूलता हमें क्यों अच्छी तथा प्रतिकूलता क्यों खराब लगती हैं? ठीक उसी प्रकार जो तरंगे शरीर को विकारों से मुक्त बनाती है, शरीर के लिये लाभकारी होती है।

शरीर में अधिकांश दर्दों और अंगों की कमजोरी का कारण आयुर्वेद के सिद्धान्तानुसार प्रायः वात और कफ संबंधी विकार होते हैं। मेथी वात और कफ का शमन करती है। अतः जिस स्थान पर मेथी का स्पर्श किया जाता है, वहाँ वात और कफ विरोधी कोशिकाओं का सृजन होने लगता हैं, शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ने लगती है। दर्द वाले अथवा कमजोर भाग में विजातीय तत्त्वों की अधिकता के कारण शरीर के उस भाग का आभा मंडल विकृत हो जाता है। मेथी अपने गुणों वाली तरंगें शरीर के उस भाग के माध्यम से अन्दर में भेजती है। जिसके कारण शरीर में उपस्थित विजातीय तत्त्व अपना स्थान छोड़ने लगते हैं और प्राण ऊर्जा का प्रवाह संतुलित होने लगता है। फलतः रोगी स्वस्थ होने लगता है। लेखक ने स्वयं का एवं हजारों रोगियों का मेथी द्वारा उपचार कर सुखद परिणामों की अनुभूति की है। चन्द वर्षों पूर्व उनको हृदय रोग की शिकायत हुई। परिजनों ने उनकी इच्छा के विरूद्ध उन्हें अस्पताल में 5 दिनों तक गहन चिकित्सा विभाग में निरीक्षण पर रखा, परन्तु चिकित्सकों द्वारा रोग के कारण का सही निदान संभव न हो पाया। लेखक मेथी के उपचार द्वारा बिना किसी दवा का सेवन किये अपने आपको आज तक पूर्ण स्वस्थ रखने में सफल रहा। लेखक उन्हीं बातों की प्रायः चर्चा में विश्वास करता है, जो अत्यधिक प्रभावशाली होते हैं तथा जिनके प्रयोग उन्होंने स्वयं अपने पर अथवा रोगियों पर सफलतापूर्वक किये हैं।

मेथी दाणों में चेतना होने से वह अधिक प्रभावशाली होती है। परन्तु जैन साधु सचित्त मेथी (जिसमें उत्पादन की क्षमता होती है) का स्पर्श नहीं करते। अतः वे अचित्त (जिसमें उत्पादन की क्षमता न हो) मेथी का प्रयोग करने पर

प्रत्येक वस्तु अमूल्य है, यदि उसके सदुपयोग का आवश्यक ज्ञान हों ?

प्रभावशाली तेल चिकित्सा

शुद्ध घी स्वास्थ्यवर्धक

घी और तेल हमारे रसोईघर के प्रमुख स्थायी सदस्य माने जा सकते हैं। उनके उपयोग से शरीर में रुक्षता कम होती है तथा स्निग्धता बढ़ती है। **पहले हमारे देश में शुद्ध देशी गाय का घी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होता था तथा पौष्टिक भोजनों में उसका बहुत उपयोग होता था। जनसाधारण शारीरिक श्रम अधिक करता था, अत: उनमें घी को पचाने की क्षमता होती थी। शुद्ध देशी घी को भोजन में ताकत का महत्त्वपूर्ण स्रोत समझा जाता था। कमजोर व्यक्तियों को विशेषकर सर्दी की मौसम में घी के उपयोग का परामर्श दिया जाता था। देशी गाय का घी आक्सीजन का अच्छा स्रोत होता है। गोबर के कंडों के साथ चावल डाल घी से धुआं करने पर आक्सीजन, इथेलिन ऑक्साईड, प्रोपलीन ऑक्साईड, डिहाईड जैसी उपयोगी गैस बनती है जिससे पर्यावरण शुद्धि होती है। सोते समय नथुनों में घी डालने से श्वसन संबंधी रोगों में शीघ्र लाभ होता है।** लेखक ने स्वयं अपने विद्यार्थी जीवन में सर्दियों में घी का नियमित पान किया है। आज भी तपस्या के पारणे में दूध अथवा उकाली (सोंठ, कालीमीर्च, गर्म मसालों आदि) के उबले पानी में घी मिलाकर पीने का प्रचलन है, जिससे भोजन नली की रूक्षता दूर होती है। गर्भवती महिलाओं, कमजोर, व्यक्तियों को प्रत्यक्ष परोक्ष रूप से हमारे अनुभवी पूर्वज घी खाने का परामर्श देते हैं। शुद्ध देशी घी कीटाणु नाशक होता है। उसके उपयोग से कोलस्ट्रोल नहीं बढ़ता। गाय के अवयवों से चिकित्सा करने वाले (पंच गव्य चिकित्सक) शुद्ध देशी गाय के घी से विभिन्न असाध्य रोगों का सफल उपचार करते हैं। **वे हृदय रोगियों को भी ऐसे घी के प्रयोग का निषेध करने के बजाय, उपयोग हेतु परामर्श देते हैं। शुद्ध घी की मालिश शरीर में रोगाणुओं को दूर कर त्वचा को स्निग्ध बनाती है। प्रजनन के पश्चात आज भी ग्रामीण महिलाओं में घी की मालिश का प्रचलन होता है। मानसिक रोगियों के सिर पर शुद्ध देशी घी की मसाज का परामर्श दिया जाता है। नाक में घी की बूंदे डालने से श्वसन संबंधी रोगों तथा नाभि केन्द्र पर घी की बूंदे डालने से पेट के विकार दूर होते हैं। घी मालिश से रक्त पित्त दूर हो जाता है। घी त्वचा के छिद्रों में प्रवेश कर सर्व देह को शांति पहुँचाता है, जिससे त्वचागत रोग दूर होते हैं। सार्थ योगरत्नाकर भाग 1 के श्लोक नं. 5 में इस बात की पुष्टि की गयी है।**

> तैलाभ्यंग श्लेष्म वात प्रणाशी, पित्तं रक्तं नाशयेद्वा घृतघ्य ॥
> देह सर्व तर्पयेद्रोम कूपै-वैवर्ण्या दिख्यात रोगापकर्षी ॥5 ॥

हम प्राय: स्वयं अनुभव करते हैं कि जिन व्यक्तियों ने शुद्ध देशी घी का अपने यौवनावस्था में सेवन किया अथवा आज भी करते हैं, वे वृद्धावस्था में भी आधुनिक युवा व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक परिश्रम करने की क्षमता रखते है। उनके जोड़ों में अपेक्षाकृत कम रोग होते हैं। इसीलिये तो कहा जाता है कि **इन्होंने देशी घी खाया है, ऐसा कथन और मान्यता आज भी प्राय: सुनने को मिलती है।**

परन्तु भ्रामक विज्ञापनों एवं पश्चिम की मान्यताओं के अन्धानुकरण से ग्रस्त आधुनिक चिकित्सकों के एक पक्षीय चिन्तन तथा गो हत्या के समर्थकों द्वारा देशी गाय की नस्ल को अनुपयोगी बतलाने की साजिश के कारण अपने अज्ञानवश जीवनोपयोगी इस तत्व से आज जाने अनजाने हम वंचित हो रहे हैं। दूध को भी मांसहारी बतलाने की साजिश हो रही है। दूध की मलाई से परहेज कराया जा रहा है। जिस पर समग्र दृष्टिकोण से चिन्तन एवं शोध आवश्यक है। वास्तव में शुद्ध देशी घी स्वास्थ्य के लिये शक्तिवर्धक होता है। आज जिस घी से परहेज रखने को कहा जाता है उसका तात्पर्य नकली अथवा रासायनिक पदार्थों से बने घी से ही होता है।

परन्तु हमारे अज्ञान, सरकारी नीतियों के कारण देशी गाय का शुद्ध घी मिलना आज कल बहुत कठिन हो गया है। जो कुछ शुद्ध घी के नाम से बाजार में उपलब्ध होता है उसमें भी मिलावट की प्रबल संभावना रहती है। दूसरी तरफ पश्चिम की देखा देखी हमारे यहाँ भी रासायनिक पदार्थों से मिश्रित घी के रूप में जो उपलब्ध होता है, उसकी तुलना देशी गाय के शुद्ध घी से नहीं की जा सकती। नकली घी खाने का दुष्परिणाम होता है , शरीर में कोलस्ट्रोल आदि रक्त के विकारों का बढ़ना। इसी कारण आधुनिक चिकित्सक शायद हृदय और रक्त संबंधी रोगों में घी के प्रयोग का स्पष्ट निषेध करते हैं। शुद्ध देशी घी के प्रयोग से कोलस्ट्रोल नहीं बढ़ता अपितु कम होता है।

आयुर्वेद में तेल से रोगोपचार

आयुर्वेद के ग्रन्थों में तिल्ली के तेल को मुँह में भर कर घूमाकर कुछ समय रख, थूकने की क्रिया को तेल गण्डूश कहते हैं। इस प्रकार का प्रयोग रोग विशेष में जड़ी बूटियों और औषधि सिद्ध तेलों से भी करने का प्रावधान हैं। **तेल गण्डूश से स्वर उत्तम होता है, चेहरे की कान्ति बढ़ती है, भोजन में रुचि तथा स्वादों के प्रति सजगता बढ़ती है। कण्ठशोध, होठों का फटना, दांतों का हिलना एवं दांतों संबंधी रोगों में बहुत लाभ होता है।**

कान में तेल डालने से कान संबंधी रोग नहीं होते और न कानों में मल का संचय भी होता है। वात रोग होने की संभावनाएँ कम हो जाती हैं। बहरापन कम होता है और व्यक्ति दूर से भी सुन सकता है, जैसा कि सार्थयोगरत्नाकर भाग 1 पृष्ठ संख्या 10 के श्लोक नं. 59 और 60 में वर्णन किया गया हैं।

न कर्ण रोगं न मलं न च मन्याहनुग्रहः।
नौच्चैः मुतिर्तवाधियं स्यान्नित्यं कर्ण पूरणात्। ।59 ॥

कान में तेलादि स्निग्ध पदार्थ सूर्यास्त के पश्चात् डालना अधिक लाभप्रद होता है। जबकि कान में किसी प्रकार के औषधि रूप रस को भोजन से पूर्व डालने का निर्देश दिया गया है।

रसाद्यै : पूरणं कर्णे, भोजनात्प्रावप्रशष्यते।
तैलाद्यैः पूरणं कर्णे, भास्करअस्तमुपागते। ।60 ॥

तेल मर्दन से लाभ-

तेल मर्दन के लाभ का वर्णन सार्थयोगरत्नाकर भाग 1 के श्लोक संख्या 55 से 58 तथा 61,62 में विस्तार से किया गया है। शरीर पर तेल का मर्दन करने से शरीर को बल की प्राप्ति होती है। मालिश करने से कफ एवं वात का नाश होता है, जैसाकि श्लोक नं. 5 में बतलाया गया है। निद्रा अच्छी आती है। शरीर का रूप निखरता है एवं त्वचा स्निग्ध और कोमल होती है। दृष्टि सुधरती है तथा शरीर बलिष्ट होता है । सिर पर तेल मालिश करने से मस्तिष्क बलवान तथा सिर के बाल मजबूत, घने, एवं चिकने होते हैं। सिर पर तेल मालिश सभी इन्द्रियों संबंधी रोगों में राहत दिलाता है तथा दिमाग के रोगों का नाश होता है। छोटे बच्चों में तेल की मालिश से सिर का पूर्ण विकास होता है। तेल मालिश से दृढता एवं परिश्रम करने की शक्ति प्राप्त होती है। त्वचा में स्थित वातनाड़ियों का पोषण होता है। सर्दी एवं गर्मी सहन करने की क्षमता बढ़ती है।

दोनों पगथलियों के तलवों में नित्य तेल मर्दन करने से वायु का शमन होता है। नेत्र ज्योति सुधरती है। निद्रा अच्छी आती है। पैर शक्तिशाली होते हैं और पैरों संबंधी विकार दूर होते हैं। व्यायाम अथवा अधिक श्रम से थके व्यक्ति के पैरों में, तलवों में तेल की मालिश से थकावट तुरन्त दूर हो जाती है।

सिर पर तेल की मालिश करने से सिर के सभी रोग नष्ट होते हैं। मन शान्तिमय बन जाता है। आँख में तेल डालने से दांत संबंधी रोगों में आराम मिलता है। मालिश के लिये भी अच्छे परिणाम पाने हेतु तेल की शुद्धि आवश्यक होती है।

सूर्यमुखी तेल की विशेषता एवं असाध्य रोगों का प्रभावशाली उपचार

सूर्यमुखी तेल में विटामीन ए, डी तथा ई अधिक मात्रा में होने से इसके सेवन से रक्त में कोलस्ट्रोल की वृद्धि नहीं होती। अत: आधुनिक चिकित्सक हृदय एवं रक्तचाप के रोगियों को वनस्पति घी के स्थान पर सूर्य मुखी तेल का भोजन में उपयोग करने का परामर्श देते हैं।आयुर्वेद के अनुसार सूर्यमुखी का तेल कफ एवं वात नाशक, त्वचा विकार, खुजली , दाद, कोढ दूर करने वाला, खाने में स्वादिष्ट पचने में आसान होता है।

तेल में भी आजकल शुद्धता , स्निग्ध होती है । प्राय: रासायनिक पदार्थों का मिश्रण होता है। अत: बिना छानबीन सूर्यमुखी के तेल का उपयोग भी हृदय रोगियों के लिये लाभदायक नहीं होता, अपितु कभी कभी हानिकारक भी हो सकता है। अत: उपचार हेतु बाह्य उपयोगों तक सूर्यमुखी के तेल का उपयोग सीमित होता जा रहा हैं।

रक्त विकार सभी रोगों का प्रमुख कारण होता है। अत: किसी सरल प्रभावशाली विधि द्वारा रक्त में से उसके विकारों को अलग कर दिया जायें तो प्राय: सभी रोगों से काफी राहत मिल सकती है। सूर्यमुखी तेल में

सूर्य की ऊर्जा के विशेष गुण होते हैं जिस प्रकार चुम्बक लोहे को आकर्षित करता है, ठीक उसी प्रकार सूर्यमुखी तेल में रक्त के विकारों को रक्त से अलग करने की क्षमता होती है।रक्त सारे शरीर में परिभ्रमण करता है। चेहरे, जीभ और दांतों का संबंध शरीर के सभी प्रमुख अंगों से सीधा होता है। अतः यदि एक चम्मच सूर्यमुखी तेल को मुंह में भरकर 15 से 20 मिनट अन्दर ही अन्दर घुमाने से चेहरे की समस्त मांसपेशियाँ सक्रिय होने लगती है । दूसरी बात जब रक्त मुँह की नाड़ियों से होकर गुजरता है तो तेल उसमें उपस्थित रोगाणुओं और विकारों को अपनी तरफ आकर्षित कर लेता है और रक्त शुद्धि में सहयोग देता है। परिणाम स्वरूप रक्त विकार संबंधी सभी रोगों में लाभ होता है। शरीर में रक्त ऊर्जा का प्रमुख स्रोत होता है। अतः रक्त शुद्धि से शरीर की प्रतिकारात्मक शक्ति बढ़ती है। **रूस के डाक्टर कराच ने भी 1991 में न्यूयार्क में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय कैंसर अधिवेशन में तेल द्वारा केंसर जैसे रोगों के उपचारों की पुष्टि की है। उन्होने सैकड़ों सभी प्रकार के कैंसर रोगियों पर प्रयोग करने के पश्चात् अनुभव किया कि उपर्युक्त विधि से तेल को 15 से 20 मिनट मुंह में अन्दर ही अन्दर घुमाने से सिर दर्द, दमा, दांतों संबंधी रोग, रक्त चाप और अन्य रक्त संबंधी रोगों, पक्षाघात, हृदयघात, त्वचा संबंधी रोगों, गुर्दे एवं आंतों के रोगों में चंद दिनों के प्रयोग से ही अच्छे चमत्कारी परिणाम आते हैं। उन्होने पाया कि इस प्रयोग से केंसर का फैलाव न केवल कम होता है अपितु उसको नियमित एवं निरन्तर प्रयोग से पूरा ठीक भी किया जा सकता है।**

उपयोग की विधि – प्रातः भूखे पेट बिना कुछ खाये इस प्रयोग को करना चाहिये। संक्रामक और पुराने रोगों में कुछ दिनों तक दिन में दो तीन बार खाने से पूर्व इस प्रयोग को करना चाहिये। खाने के बाद यह प्रयोग करने से उल्टियाँ होने की संभावनाँ बढ़ती है। प्रयोग करते समय कभी कभी परेशानी और बैचेनी भी हो सकती है, परन्तु उससे न तो घबराना चाहिये और न प्रयोग को रोकना ही चाहिये। प्रयोग तब तक चालू रखना चाहिये जब तक संतोषजनक अपेक्षित लाभ न हों। स्वस्थ व्यक्ति भी सप्ताह में कम से कम एक बार इस प्रयोग को करें तो रक्त विकार बढ़ने की संभावना कम हो सकती है। प्रयोग करते समय तेल को निगलना नहीं चाहिये। प्रयोग के पश्चात् तेल एक दम सफेद एवं पतला हो जाता है।

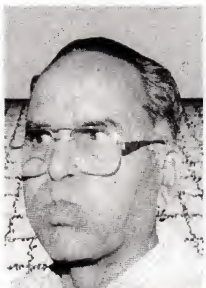

सूर्य मुखी तेल द्वारा गंडूस प्रक्रिया।

15 से 20 मिनट उपयोग के पश्चात् तेल को जहाँ भी डाले उस स्थान को एकदम साफ कर लेना चाहिये अन्यथा उस तेल की गंध से जीव जन्तु उसका सेवन कर मर सकते हैं, क्योंकि प्रयोग के पश्चात् तेल विकारों से युक्त हो जाता है। साथ ही जीभ और दांतों को भी पानी से स्वच्छ कर लेना चाहिये। **उपर्युक्त प्रयोग सरल, सहज, सस्ता, स्वावलम्बी, अहिंसक दुष्प्रभावों से रहित, प्रभावशाली शरीर के सभी प्रत्यक्ष-परोक्ष रोगों में लाभ पहुँचाने वाला होता है। इस चिकित्सा में रोग के निदान की आश्यकता नहीं होती।** अतः **"रोग अनेक उपचार एक"** तेल द्वारा होता है।

चित्र नं. 135

प्रभावशाली एक्युप्रेशर चिकित्सा

एक्युप्रेशर क्या है ?

एक्यूप्रेशर शब्द अंग्रेजी के दो शब्दों से मिलकर बनता है। एक्यु और प्रेशर। एक्यु का मतलब होता है एक्युरेट अर्थात् सही और प्रेशर का मतलब होता है दबाव। अर्थात् शरीर के किसी भाग पर सही दबाव देकर रोगों के उपचार एवं स्वस्थ रहने की पद्धति को एक्युप्रेशर चिकित्सा पद्धति कहते हैं।

एक्युप्रेशर निदान, उपचार एवं रोगों के रोकथाम की बहुत ही सरल, सस्ती, स्वावलंबी , प्रभावशाली , अहिंसक वैज्ञानिक पद्धति है। प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से सोते, उठते-बैठते, चलते-फिरते, आसन-प्राणायाम अथवा योगिक क्रियायें और मसाज करते हुए तथा, प्रत्येक कार्य करते हुए हमारे शरीर के किसी न किसी भाग पर अवश्य दबाव पड़ता है । दर्द के समय हमारा हाथ सहज रूप से दर्दस्थ स्थान पर क्यों चला जाता है ? हाथ जोड़ते, ताली, बजाते, नंगे पैर चलते, प्रणाम करते , ग्रह कार्य करते सहज प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से एक्युप्रेशर हो जाता है। परन्तु विधिवत् विभिन्न सिद्धान्तों एवं दृष्टिकोणों पर आधारित एक्युप्रेशर की अनेक शाखाएं हैं और अलग-अलग नामों से प्रचलित हैं, उनमें से चंद विधियों की ही संक्षिप्त सैद्धान्तिक आवश्यक जानकारी यहाँ दी जा रही हैं।

शरीर एक इकाई के रूप में कार्य करता है :-

शरीर के सूक्ष्म से सूक्ष्म भाग का संबंध पूरे शरीर से होता है। इसी कारण जब शरीर के किसी भाग में तीव्र पीड़ा होती है अथवा कष्ट होता है तो, हमे कुछ भी अच्छा नहीं लगता। प्रायः हम अनुभव करते हैं कि यदि आँख में कचरा चला जाये अथवा भोजन करते समय भोजन का कुछ अंश भोजन नली के स्थान पर श्वासनली में चला जाये तो हमें कितनी बैचेनी होती है? शरीर में तीक्ष्ण पदार्थ चुभते ही सारा शरीर कम्पायमान हो जाता है । पांचों इन्द्रियों और मन का ध्यान कुछ समय के लिये वहां केन्द्रित हो जाता है। **फिर भी शरीर में प्रत्येक अंग, उपांग, अवयव, अन्तःस्रावी ग्रंथियों आदि से संबंधित कुछ महत्त्वपूर्ण प्रतिवेदन बिन्दु हमारी हथेली और पगथली में होते हैं।**

संतुलन एक्युप्रेशर

हमारा शरीर बायें दाहिने बाह्य दृष्टि से लगभग एक जैसा दिखता है। अतः जैसी नाड़ियाँ बायीं तरफ होती है, वैसी ही नाड़ियाँ दाहिनी तरफ भी होनी चाहिये। बायें भाग के रोग का दाहिने भाग के उससे मिलते जुलते भाग

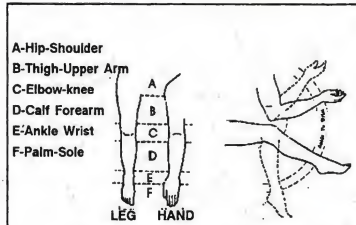

हाथ और पैरों की बनावट में समानता चित्र नं. 136

पर कुछ समय दबाव देने से बांयाँ-दाहिना संतुलन होने लगता है। इस विधि द्वारा एक्युप्रेशर करने को बायें दाहिने का संतुलन एक्युप्रेशर (Left & Right Balance Acupressure) कहते हैं। शरीर में हाथ और पैरों की बनावट में भी बहुत अधिक समानता होती है। हथेली और पगथली में अंगूठा और अंगुलियाँ, एडी से मिलती जुलती कलाई का जोड़ तथा घुटनों से मिलते-जुलते कोहनी के जोड़ होते हैं। रोग की अवस्था में ये एक दूसरे से प्रभावित होते हैं। अत: जब हाथ का उपचार पैर से तथा पैर का उपचार हाथ के मिलते-जुलते भाग पर दबाव देकर किया जाता है तो, संतुलन एक्युप्रेशर की इस विधि को मिलते-जुलते प्रतिवेदन बिन्दुओं वाला एक्युप्रेशर(Referal Acupressure) कहा जाता है।

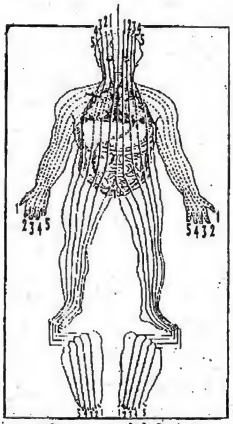

शरीर का दस भागों में विभाजन
चित्र नं. 137

जोनोंलोजी

एक्युप्रेशर की इस विधि में सारे शरीर को पगथली से सिर तक दस भागों में विभाजित किया जाता है। शरीर के जिस भाग में तकलीफ अथवा खराबी होती है, उसी जोन में दबाव देकर उपचार करने की एक्युप्रेशर की विधि को जोनोलोजी कहते हैं। इन दस जोन, के अंतिम सिरे हाथ और पैर की अंगुलियों में समाप्त होते हैं। अत: **उपचार करते समय प्राय: शरीर के जिस जोन में तकलीफ होती है, उससे संबंधित अंगुलि के अंतिम सिरे पर दबाव देने से सारी जोन में प्राण ऊर्जा का विशेष प्रवाह होने लगता है और रोग में आराम मिलता है।** जिस प्रकार रस्सी का एक सिरा हिलाने पर सारी रस्सी में कम्पन्न होने लगता है, ठीक उसी प्रकार दर्द वाले जोन में दबाव देने से संबंधित रोग में राहत मिलती है। **दबाव वाला स्थान जोन में जितना रोग वाले भाग से नजदीक होता है, उतना लाभ शीघ्र मिलता है।** नाभि से ऊपर के रोगों में हाथ की अंगुलियों तथा नाभि के नीचे के रोगों में पैर की अंगुलियों में दबाव अधिक प्रभावशाली होता है।

ॐ स्वनियंत्रित नाड़ी संस्थान का पगथली की अंगुलियों से संबंध

क्या हमने कभी चिंतन किया कि पैरों में अंगूठे और अंगुलियों का क्या उपयोग ? सभी अंगुलियों का मांप

एक सा क्यों नहीं ? अंगूठा बड़ा क्यों ? जो भाग जितना महत्वपूर्ण होता है, उसका आकार उस ही के अनुरूप होता है।

पगथली की अंगुलियों और अंगूठे का भी अन्य कार्यों के साथ शरीर के संवेदनशील नाड़ी संस्थान से सीधा संबंध होता है। पैर का अंगूठा गले के ऊपर वाले नाड़ी संस्थान का प्रतिनिधित्व करता है, जबकि उसके पास वाली अंगुली गले से डायाफ्राम तक के नाड़ी संस्थान से संबंधित होती है। बीच की अंगुली का संबंध डायाफ्राम से नाभि तक के अंगों के नाड़ी संस्थान से होता है। जबकि सबसे छोटी अगुली का पैरों की नाड़ियों और उससे पास वाली अंगुली का संबंध नाभि से नीचे गुदा तक के भाग से होता है। नाड़ी संस्थान संबंधी रोगों में पैरों की अंगुलियों में किया गया उपचार बहुत अधिक प्रभावशाली होता है। नाड़ी संस्थान ठीक होते ही शरीर के अनेक रोग स्वत: समाप्त हो जाते हैं। अत: बहुत से चिकित्सक मात्र पैरों की पांच अंगुलियों से भी सभी रोगों का निदान और उपचार करते हैं। प्रतिदिन कुछ समय गोदुहासन में बैठने एवं पंजों पर खड़े रहने से संवेदनशील नाड़ी संस्थान सक्रिय एवं ललित रखने में सहायता मिलती है।

रिफ्लेक्सोलोजी

एक्युप्रेशर के रिफ्लेक्सोलोजी के सिद्धान्तानुसार शरीर की दोनों हथेलियों और दोनों पगथलियों में शरीर के सभी अंगों, उपागों तथा अन्त:स्रावी ग्रन्थियों से संबंधित प्रतिवेदन बिन्दु होते हैं। **जिस प्रकार किसी भवन की बिजली का सारा नियन्त्रण मुख्य स्विच बोर्ड से होता है। ठीक उसी प्रकार ये प्रतिवेदन बिन्दु शरीर के प्रत्येक भाग का प्रतिनिधित्व करते हैं। जब उपचार हेतु दबाव हथेलियों में दिया जाता है तो, उस विधि को हस्त रिफ्लेक्सोलोजी**

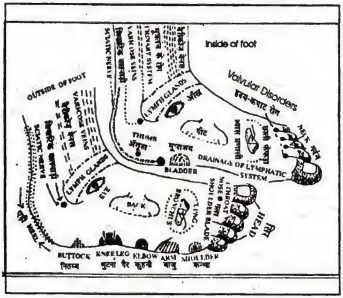

पगथली के ऊपर पैर रिफ्लेक्सोलोजी के मुख्य प्रतिवेदन केन्द्र
चित्र नं. 138

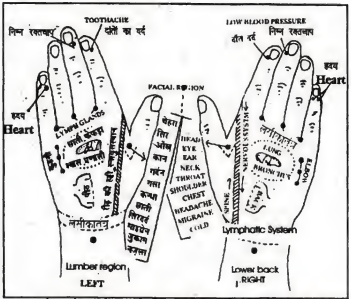

हथेली के पीछे रिफ्लेक्सोलोजी के मुख्य प्रतिवेदन केन्द्र
चित्र नं. 139

(Hand Reflexology) तथा जब उपचार हेतु पगथलियों का उपयोग किया जाता है तो उस प्रक्रिया को पैर रिफ्लेक्सोलोजी (Foot Reflexology) कहते हैं।

हैंड और फुट रिफ्लेक्सोलोजी की भांति कान पर भी शरीर के सभी भागों से संबंधित प्रतिवेदन होते हैं। जब उपचार कान के प्रतिवेदन बिन्दुओं पर दबाव देकर किया जाता है तो, उस विधि को इअर रिफ्लेक्सोलोजी (Ear Reflexology) कहते हैं।

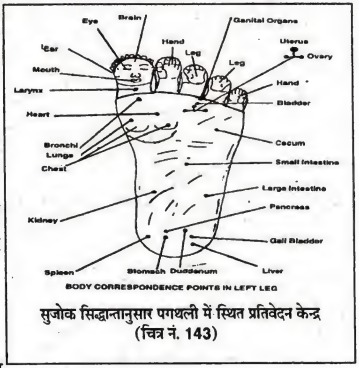

सुजोक सिद्धान्तानुसार पगथली में स्थित प्रतिवेदन केन्द्र
(चित्र नं. 143)

सुजोक एक्यूप्रेशर :-

सुजोक एक कोरियन शब्द है। सु का मतलब हाथ और जोक का मतलब पैर। कोरियन डा. जे. वु. पार्क ने सन् 1988 में हथेली और पगथली की तुलना

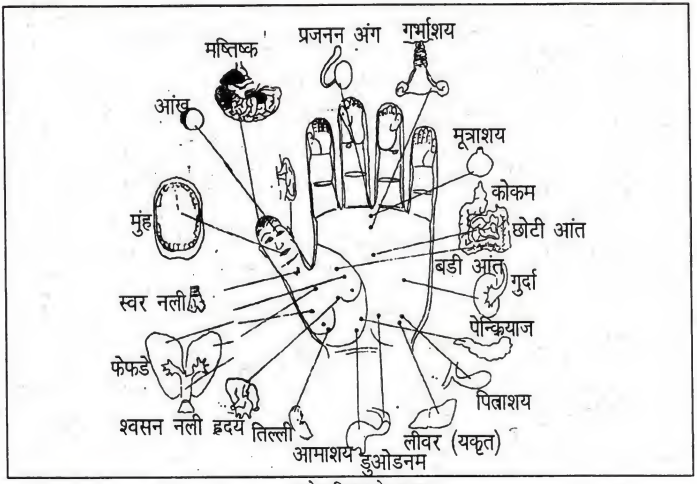

सुजोक सिद्धान्त के अनुसार
हथेली में अंगों, उपांगों की स्थिति चित्र नं. 144

शरीर की बनावट से कर, संबंधित भागों में शरीर के सम्बन्धित अंगों, उपागों आदि के प्रभावशाली तर्क संगत प्रतिवेदनों की खोज की। उस आधार पर पगथली और हथेली में दबाब देकर एक्युप्रेशर द्वारा रोगोपचार करने की विधि को सुजोक एक्युप्रेशर कहते हैं।

मेरेडियन एक्युप्रेशर :

शरीर में विभिन्न अंगों में प्राण ऊर्जा के प्रवाह मार्ग को मेरेडियन कहते हैं। प्रत्येक मेरेडियन में कुछ प्रभावशाली चेतना केन्द्र होते है। जैसा कि चित्र नं. 47 में एवं 48 में दर्शाया गया है। उन चेतना केन्द्रों पर दबाव देकर उपचार करने की विधि को मेरेडियन एक्युप्रेशर कहते हैं। इन प्रमुख मेरेडियनों का एक सिरा हथेली अथवा पगथली की अंगुलियों में होता है, जैसा कि चित्र में दर्शाया गया है। यांग मेरेडियनों का दूसरा सिरा मस्तिष्क में तथा यिन मेरेडियनों का दूसरा सिरा सीने मे होता है।

हथेली और पगथली की अंगुलियों और अंगूठों का अंगों की मेरेडियन से संबंध (चित्र नं.145)

शियात्सु एक्युप्रेशर

शरीर में कुछ प्रतिवेदन बिन्दु न तो स्थानीय होते हैं और न हथेली अथवा पगथली में होते हैं और न मेरेडियन में। ऐसे प्रभावशाली प्रतिवेदन बिन्दुओं पर दबाव देकर उपचार करने की विधि को शियात्सु एक्युप्रेशर विधि कहते हैं। एक्युप्रेशर की किसी भी विधि द्वारा चयनित प्रतिवेदन बिन्दु लोकसभा, राज्य सभा अथवा विधानसभा के सदस्यों की भाँति शरीर के विभिन्न भागों का प्रतिनिधित्व करते हैं । शरीर में संचालित उनसे संबंधित सभी गतिविधियों पर नियन्त्रण रखते हैं। रोग होने की स्थिति में अलग अलग ढंग से अभिव्यक्ति कर व्यक्ति को सावधान करते हैं।

सुजोक और रिफ्लेक्सोलोजी पद्धति के प्रतिवेदन बिन्दु शरीर के छोटे से भाग हथेली एवं पगथली में होने के साथ-साथ सरल होने से यहां सारी चर्चा उन्हीं दोनों पद्धतियों को आधार मानकर की जा रही है । मेरेडियन और शियात्सु विधियों द्वारा उपचार हेतु प्रशिक्षित अनुभवी चिकित्सक की आवश्यकता होती है। अतः उन्हें स्वावलम्बी चिकित्सा के अन्तर्गत नहीं लिया गया है।

शरीर में किसी एक भाग के अनेक प्रतिवेदन क्यों ?

जिस प्रकार कोई व्यक्ति किसी का पिता, किसी का भाई, किसी का पति तो अन्य किसी का दादा, नाना, पुत्र, चाचा, मामा, मित्र आदि भी हो सकता है। यदि किसी व्यक्ति का फोटों अलग अलग स्थानों से लिया जायें तो एक ही व्यक्ति के फोटों में अन्तर हो सकता है। ठीक उसी प्रकार से प्रतिवेदन बिन्दु भी शरीर के अलग अलग भागों से भी संबंधित हो सकते हैं। यानी एक ही प्रतिवेदन बिन्दु के शरीर में अनेक संबंध हो सकते हैं। विभिन्न चित्रों में एक्यूप्रेशर की दो प्रमुख प्रचलित शाखाओं (रिफ्लेक्सोलोजी तथा सुजोक) के अनुसार शरीर में प्रमुख भागों की स्थितियाँ दर्शायी गयी है। एक ही अंग अथवा भाग के प्रतिवेदन बिन्दुओं में स्पष्ट अन्तर देखा जा सकता हैं। इन प्रतिवेदन बिन्दुओं को अंगूठे अथवा अन्य किसी विधि द्वारा दबाव देने पर, हम अनुभव करते हैं कि एक सा दबाव देने पर भी, सब स्थानों पर एक सा दर्द नहीं होता? कहीं ज्यादा, तो कहीं साधारण, तो कहीं बिल्कुल दर्द नहीं होता। ऐसा क्यों? **सुजोक और रिफ्लेक्सोलोजी एक्युप्रेशर के सिद्धान्तानुसार हथेली और पगथली में दबाव देने पर जिन स्थानों पर दर्द होता है, उसका मतलब उन स्थानों पर विकार अथवा अनावश्यक विजातीय तत्त्वों का जमाव हो जाना होता है। परिणाम स्वरूप शरीर में प्राण ऊर्जा के प्रवाह में अवरोध हो जाता है। ये प्रतिवेदन बिन्दु बिजली के पंखों, बल्ब या अन्य उपकरणों के स्विच की भांति शरीर के अलग अलग भागों से संबंधित होते हैं। जिस प्रकार स्विच में खराबी होने से उपकरण तक बिजली का प्रवाह सही ढंग से नहीं पहुँचता, ठीक उसी प्रकार इन प्रतिवेदन बिन्दुओं पर विजातीय तत्त्वों के जमा होने से संबंधित अंग, उपांग, अवयवों आदि में प्राण ऊर्जा के प्रवाह में असंतुलन हो जाने से व्यक्ति रोगी बनने लगता है।**

एक्युप्रेशर द्वारा रोग निदान का सिद्धान्त

हथेली और पगथली में आगे पीछे सूक्ष्म से सूक्ष्म भाग में अर्थात पूरी हथेली और पगथली के पूरे क्षेत्रफल में अंगुलियों या अंगूठे से हम सहनीय गहरा दबाव देवें और जहाँ जहाँ जैसा जैसा दर्द आता है, उन दर्दों को तीन भागों में विभाजित कर अलग अलग रंगों की पेनसिलों से चिन्हित कर लें।

1. प्रथम वे भाग जहां असहनीय दर्द होता है। **ये प्रतिवेदन बिन्दु शरीर में उपस्थित रोग के परिवार के प्रभावशाली** सदस्य होते हैं।

2. दूसरे वे प्रतिवेदन बिन्दु जहाँ दबाव देने से सहनीय दर्द होता है। **ये प्रतिवेदन बिन्दु शरीर में रोग के परिवार के साधारण सदस्य होते हैं।**

3. तीसरे वे प्रतिवेदन बिन्दु जहाँ दबाव देने से बहुत ही कम दर्द होता है। ये प्रतिवेदन बिन्दु रोग के परिवार के दूर के रिश्तेदार होते हैं।

जैसे परिवार के प्रमुख सदस्य प्रतिदिन घर में साथ-साथ रहते हैं । उनके सुख दुःख से हम अधिक प्रभावित होते हैं । दूसरे वे सदस्य जिनका हमारे से नजदीक का रिस्ता होता है और जो साधारण आयोजनों अथवा त्यौहारों पर मिलते रहते हैं। उनके सुख-दुःख से हम उतने प्रभावित नहीं होते, जितने घर में रहने वालों से होते हैं। तीसरे वे संबंधी जिनको हम विवाह शादियों अथवा बड़े बड़े आयोजनों पर आमंत्रित करते हैं। उनके सुख-दुःख से हम बहुत थोड़े प्रभावित होते हैं। ठीक उसी प्रकार **सारे दर्द वाले प्रतिवेदन बिन्दु मिलकर शरीर में रोग के परिवार की स्थिति, एक्युप्रेशर के सिद्धान्तानुसार बनाते है।**

एक्युप्रेशर प्रभावशाली क्यों ?

१. जितने ज्यादा दर्द वाले प्रतिवेदन बिन्दु उतना रोग पुराना होता है। जितने ज्यादा दर्द वाले प्रतिवेदन बिन्दु होते हैं उतना रोग संक्रामक और भयंकर होता है। हथेली और पगथली में सारे शरीर के प्रत्येक भाग के प्रतिवेदन बिन्दु होने से पूरे शरीर में रोग का निदान हो जाता है। जबकि अन्य चिकित्साओं में रोग ग्रस्त भाग की तरफ ही निदान में विशेष ध्यान दिया जाता है।

2. दूसरी बात प्रत्येक व्यक्ति की हथेली और पगथली उसके स्वयं की होती है। अत: **इस विधि द्वारा उस व्यक्ति का स्वयं से संबधित सभी रोगों का निदान होता है। जबकि लक्षणों पर आधारित निदान पूरा नहीं हो सकता।** उदाहरण के लिये दो घरों में शादी का उत्सव है। दोनों स्थानों पर बाह्य आयोजनों में समानता हो सकती है। जैसे बारात का आना, भोजन की व्यवस्था आदि। परन्तु उन आयोजनों में भाग लेने वाले शत प्रतिशत सभी व्यक्ति एक जैसे नहीं हो सकते। ठीक उसी प्रकार सैंकड़ों हृदय रोगियों, मधुमेह के रोगियों, अथवा और किसी नाम से पहचाने वाले रोगियों के रोग का परिवार एक सा नहीं हो सकता। **अत: निदान करते समय सहयोगी रोगों की उपेक्षा होना स्वाभाविक है। परन्तु एक्युप्रेशर पद्धति द्वारा जितना सही और विश्वसनीय निदान होता है, अन्यत्र प्राय: संभव नहीं होता।**

3. तीसरी बात कभी कभी रोग के कारण कुछ और होते हैं और उसके लक्षण कहीं दूसरे अंगों पर प्रकट होते हैं। जैसे मधुमेह का कारण पाचन तंत्र का बिगड़ना भी हो सकता है, न कि पेन्क्रियाज का खराब होना। हृदय शूल का कारण छोटी आंत में बनी गैस का प्रभाव भी हो सकता है, न कि हृदय की कमजोरी का होना। अस्थमा का कारण बड़ी आंत का बराबर कार्य न करना, न कि फेफड़ों का खराब होना। जब निदान ही गलत होता है

तो उपचार कैसे प्रभावशाली हो सकता है? आधुनिक चिकित्सक ऐसे रोगों को प्रायः असाध्य बतला देते हैं। **परन्तु हथेली और पगथली के समस्त प्रतिवेदन बिन्दुओं पर दबाव देने से जहाँ ज्यादा दर्द आता है, वे ही रोग का मुख्य कारण होते हैं, भले ही रोग के लक्षण कहीं अन्य प्रकट क्यों न होते हों? इसी कारण एक्युप्रेशर असाध्य रोगों की प्रभावशाली चिकित्सा पद्धति होती है।**

लगभग 25 वर्षों से भी अधिक समय से अस्थमा से पीड़ित जोधपुर के प्रमुख उद्योगपति दुर्गाप्रसाद जी साबू (T.No.2430606,2741573) का उपचार हेतु लेखक से सन् 1991 में सम्पर्क हुआ। दमा से परेशान साबू जी ने देश और विदेश के अनुभवी चिकित्सकों से अपना उपचार करवाया, परन्तु उसके संतोषजनक परिणाम प्राप्त नहीं हुये।

लेखक ने साबूजी के पगथली और हथेली में फेफड़े से संबंधित प्रतिवेदन बिन्दुओं पर दबाव देकर उपचार करना चाहा। परन्तु आवश्यकतानुसार गहरा दबाव देने के बावजूद भी उनको विशेष पीड़ा का अनुभव नहीं हुआ, जितना दमा के इतने पुराने रोगी को प्रायः हुआ करता है। अतः लेखक ने पूरी हथेली के प्रतिवेदन बिन्दुओं पर दबाव दे, उनके रोग के मूल कारण का पता लगाने का प्रयास किया। जैसे ही उसने बड़ी आंत से संबंधित हस्त रिफ्लेक्सोलोजी के अनुसार प्रतिवेदन बिन्दुओं पर दबाव देना प्रारम्भ किया तो साबू जी के मुख से चीख निकल पड़ी। एक्युप्रेशर के सिद्धान्तानुसार उस प्रतिवेदन बिन्दु का रोग से विशेष संबंध होता है। लेखक ने साबूजी से भोजन के संबंध में तथा मल विसर्जन के संबंध में विस्तृत जानकारी प्राप्त की। नाभि एवं पैरों के संतुलन का निरीक्षण किया, जो पूर्णतया असंतुलित थे। अत्यधिक व्यस्तता के कारण भोजन करने के समय की कोई नियमितता नहीं थी। प्रायः दिन का भोजन दोपहर बाद तीन चार बजे और रात्रि भोजन 10 बजे बाद करने से उनका पाचन तंत्र काफी गड़बड़ था। बड़ी आंत फेफड़े का यांग अंग होने से उसका प्रभाव फेंफड़े पर पड़ना स्वाभाविक था।

साबूजी को नाभि एवं पैरों का संतुलन करने की विधि समझाकर, समय पर भोजन करने का परामर्श दिया गया। दो रोज में ही उन्हे पचास प्रतिशत से अधिक राहत मिली। बाद में एक्युप्रेशर के उपचार से उन्हें रोग से मुक्ति मिली। आज वे एक्युप्रेशर चिकित्सा के न केवल प्रशंसक और समर्थक ही हैं, अपितु उसके प्रचार प्रसार एवं रोगियों का उपचार करवाने हेतु अनेकों उपचार केन्द्रों का अपने सेवा ट्रस्ट के द्वारा संचालन कर हजारों रोगियों को प्रतिवर्ष स्वास्थ्य लाभ पहुंचा रहे हैं।

4. चौथी बात **रोग की प्रारम्भिक अवस्था में ही इस विधि द्वारा निदान संभव होता है। जहाँ जहाँ पर दबाव देने से दर्द आता है, वे सभी प्रतिवेदन बिन्दु शरीर में रोग की स्थिति बनाते हैं। यदि रोग के लक्षण प्रकट हो गये हों तो, वे उसके कारण होते हैं, परन्तु यदि रोग के लक्षण प्रकट न हुयें हों तो, भविष्य में होने वाले रोगों का कारण उन्ही प्रतिवेदन बिन्दुओं में से होता है। रोग आने से पूर्व उसकी प्रारम्भिक अवस्था का निदान जितना**

सरल इस पद्धति द्वारा होता है, उतना अन्यत्र कठिन होता है।

5. पाँचवीं बात शरीर में रोग कभी अकेला आ ही नहीं सकता। जिन लक्षणों के आधार पर आज रोगों का नामकरण किया जाता है, वे वास्तव में रोगों के नेता होते हैं, जिन्हे सैंकड़ों अप्रत्यक्ष रोगों का समर्थन और सहयोग प्राप्त होता है। परन्तु इस विधि द्वारा रोगों के पूरे परिवार का निदान होने से निदान सही और विश्वसनीय होता है, जो अन्य चिकित्सा पद्धतियों में प्रायः संभव नहीं होता।

6. हथेली और पगथली में दबाव देने पर जितने कम प्रतिवेदन बिन्दुओं पर और जितना कम दर्द आता है, उतना ही व्यक्ति स्वस्थ होता है। जितने ज्यादा दर्द वाले प्रतिवेदन बिन्दु उतना पुराना रोग और स्वास्थ्य खराब होता है। इस प्रकार इस निदान पद्धति द्वारा जो रोग आधुनिक पेथालोजिकल टेस्टों अथवा यंत्रों की पकड़ में नहीं आते, उन रोग के कारणों का भी सरलता पूर्वक निदान किया जा सकता है। उपर्युक्त निदान अधिक सही और विश्वसनीय होता है। अतः उस निदान पर आधारित उपचार-प्रभावशाली, दुष्प्रभावों से रहित और अल्पकालीन होता है, जिस पर किसी को भी आशंका नहीं होनी चाहियें।

निदान बिल्कुल सरल, सस्ता, सहज, पूर्ण अहिंसक, स्वावलम्बी, सर्वत्र अपने साथ उपलब्ध होता है। शरीर विज्ञान के विशेष ज्ञान की आवश्यकता नहीं होने से सभी व्यक्ति आत्म विश्वास के साथ उपचार कर सकते हैं। पूरे शरीर का निदान होने से शरीर के साथ-साथ, मन और वाणी के विकारों का भी, निदान करने वाला एवं अन्तःस्रावी ग्रन्थियों का सरलतम निदान होता है।

क्या रोग के नाम से निदान और उपचार एक्युप्रेशर सिद्धान्तों के अनुकूल है?

परन्तु आजकल हम आधुनिक चिकित्सा पद्धति के निदान से इतने अधिक प्रभावित होते हैं कि जब तक वे प्रमाणित न कर दें, तब तक हम रोग को रोग ही नहीं मानते। दूसरी बात एक्युप्रेशर चिकित्सक भी प्रायः उन्हीं रोगों से संबंधित प्रमुख प्रतिवेदन बिन्दुओं पर उपचार कर रोगी को राहत पहुँचाने तक ही अपने आपको सीमित रखते हैं। तीसरी बात सुजोक और रिफ्लेक्सोलोजी के चित्रों में बतलाये गये प्रमुख बिन्दुओं में दर्द की स्थिति देख अधिकांश एक्युप्रेशर चिकित्सक रोग के नाम से निदान करते संकोच नहीं करते। जैसे किसी व्यक्ति के हृदय के प्रमुख प्रतिवेदन बिन्दु पर दबाव देने से दर्द आने की स्थिति में उसे हृदय का रोगी कह देते हैं। परन्तु ऐसा सदैव सही नहीं होता। हृदय में रोग होने पर निश्चित रूप से हृदय के प्रमुख प्रतिवेदन बिन्दु पर दबाने से दर्द आता है। परन्तु उसका विपरीत कथन कभी कभी गलत भी हो सकता है, क्योंकि उस प्रतिवेदन बिन्दु का शरीर के अन्य भागों से भी कुछ न कुछ संबंध अवश्य होता है। जैसे किसी व्यक्ति के पिता की मृत्यु होने पर पुत्र रोता है। इस कारण पुत्र को किसी अन्य कारण से रोते हुये देख यह कहना कि क्या आपके पिताजी की मृत्यु हो गयी है ?

कहाँ तक तर्क संगत है? अत: एक्युप्रेशर पद्धति में आधुनिक चिकित्सा द्वारा कथित रोगों के नाम से निदान करना उसके मूल सिद्धान्तों के विपरीत होता है। चिकित्सक मात्र इतना कह सकता है कि, दर्द वाले प्रतिवेदन बिन्दु, शरीर में उपस्थित रोग का प्रतिनिधित्व करते हैं, भले ही वे किसी भी नाम से क्यों न पुकारे जाते हों?

परन्तु जब तक निदान करते समय कोई एक्युप्रेशर चिकित्सक आधुनिक चिकित्सकों की नामावली के अनुसार रोग का कथन नहीं करता, तब तक रोगी अथवा उसके परिजन उस निदान को सही होते हुए भी प्रमाणिक नहीं मानते। हालांकि 60 से 70 प्रतिशत ऐसा कथन सही हो सकता है।

एक्युप्रेशर चिकित्सक हेतु आवश्यक निर्देश

एक्युप्रेशर द्वारा किसी अन्य रोगी का उपचार करते समय चिकित्सक को निम्न बातों का विशेष ध्यान रखना आवश्यक होता है। उपचार करते समय रोगी पर उपचार के पश्चात पड़ने वाले प्रभाव की तरफ विशेष सजगता रखनी चाहिये तथा रोगी एवं रोग की स्थिति के अनुसार स्वविवेक से दबाव देना चाहिए।

1. रोग का प्रचलित नाम के आधार पर निदान नहीं करना चाहिए।
2. रोगी को किसी भी प्रकार की दवा लेने का अपनी तरफ से परामर्श नहीं देना चाहिए।
3. रोगी का उपचार किसी खास बीमारी हेतु नहीं करना चाहिए।
4. चिकित्सक को रोगी को उपचार के बारे में समझाना चाहिए।
5. यथा संभव उपचार करते समय दबाव हाथों की अंगुलियों एवं अंगूठे से देना चाहिए। परन्तु ऐसा संभव न हों तों इस बात का विशेष ध्यान देना चाहिए कि प्रतिवेदन बिन्दुओं पर दबाव देने के पश्चात दर्द नहीं बढ़ना चाहिए। प्राय: इस बात का विवेक न होने से अनेक व्यक्ति इस पद्धति के विरोधी बन जाते हैं। सही जगह पर सही दबाव देने से तुरन्त प्रभाव पड़ता है तथा दबाव का दर्द भी तुरन्त शांत हो जाता है।
6. गर्भवती महिलाओं के प्रजनन संबंधी प्रतिवेदन बिन्दूओं पर दबाव यथा संभव न दें और यदि देना आश्यक हो तो विशेष सतर्कता रखें।

एक्युप्रेशर द्वारा उपचार की विधि

हथेली और पगथली पर दबाव देने पर जहां जहां और जितने जितने विजातीय तत्त्व होते हैं, उन्ही के अनुपात में दर्द का अनुभव होता है। अत: हथेली और पगथली के सभी भागों में दर्द वाले प्रतिवेदन बिन्दुओं का पता लगाने के पश्चात्, प्रत्येक दर्द वाले प्रतिवेदन बिन्दु पर दिन में एक बार बीस से तीस सैकण्ड तक उन प्रतिवेदन बिन्दुओं पर जमा हुये विजातीय पदार्थों को दूर करने हेतु, सहनीय घुमावदार दबाव देने से, धीरे धीरे विजातीय तत्त्व वहाँ से दूर होने लगते हैं। परिणाम स्वरूप शरीर के संबंधित रोग ग्रस्त भागों में प्राण ऊर्जा का प्रवाह नियमित और संतुलित

होने लगता है तथा रोगी रोग मुक्त हो जाता है।

उपचार प्रारम्भ करने से पूर्व शरीर में दर्द वाले प्रतिवेदन बिन्दुओं की स्थिति और संख्या का चार्ट बना लेना चाहिए। उपचार प्रारम्भ करने से पूर्व हथेली एवम् पगथली को रिलेक्स (क्रियाशील) करना चाहिए। जैसे :- हथेली एवं पगथली को रगड़ना, आगे पीछे मसाज करना, दाहिने-बायें, हलन चलन करना, अंगुलियों एवं जोड़ों को उल्टा सीधा जितना सहजता से घुमाया जा सके, धीरे धीरे घुमाना। 3-4 रोज का उपचार करने के पश्चात हमें पुन: दर्द वाले प्रतिवेदन बिन्दुओं के स्थिति की समीक्षा करनी चाहिए। हमें अनुभव होगा कि जहाँ पहले मामूली सा दर्द होता था, अब कुछ केन्द्रों पर उतना ही दबाव देने के बावजूद दर्द नहीं होता। पहले जहाँ बहुत ज्यादा दर्द होता था, वहाँ पर भी चंद केन्द्रों पर दर्द में कुछ कमी होने लग जाती हैं। इस प्रकार उपचार करने से दर्द वाले बिन्दुओं की संख्या कम होने लगती है, परिणाम स्वरूप एक्युप्रेशर द्वारा असाध्य से असाध्य रोग भी ठीक किया जा सकता है।

परन्तु आजकल हम रोग के नेता को सीधा नियन्त्रण में करने का प्रयास करते हैं, जो न्यायोचित नहीं होता। सहयोगियों को दूर किये बिना नेता पर नियन्त्रण करना कठिन होता है। हम प्राय: अखबारों में पढ़ते हैं और टी.वी. पर देखते हैं कि प्रदर्शनों के समय पुलिस प्रदर्शनकारियों के नेता को सीधा कैद नहीं करती। पहले प्रदर्शन कारियों को शान्त करने का प्रयास करती है, फिर लाठी चलाती है, अश्रु गैस छोड़ती हैं और जब सारी भीड़ चली जाती है तो नेता को आसानी से कैद किया जा सकता है। **ठीक उसी प्रकार रोग के परिवार के सहायक रोगों से संबंधित सभी प्रतिवेदन बिन्दुओं का उपचार करने से मुख्य रोग की ताकत स्वत: समाप्त हो जाती है तथा वह शीघ्र नियन्त्रण में लाया जा सकता है। जिस प्रकार जनतंत्र में सहयोगियों का समर्थन न मिलने से नेता की ताकत समाप्त हो जाती है, नेता को पद त्याग करना पड़ता है। ठीक उसी प्रकार अप्रत्यक्ष सहयोगी रोगों के दूर हो जाने से मुख्य रोग से शीघ्र मुक्ति मिल जाती है। यही एक्युप्रेशर चिकित्सा का मूल सिद्धान्त है।**

दर्द विहीन एक्युप्रेशर चिकित्सा विधि-

पुराने संक्रामक और हट्टीले असाध्य रोगों के समय हथेली और पगथली के बिन्दुओं पर दबाव देने पर संबंधित प्रतिवेदन बिन्दुओं पर असहनीय दर्द आता है। इस कारण बहुत से रोगी चाहते हुये भी एक्युप्रेशर चिकित्सा का लाभ नहीं उठा सकते। यद्यपि अंगूठे तथा अंगुलियों से दबाव देना ही सर्व श्रेष्ठ होता है, परन्तु जब ऐसा संभव न हों तो अन्य साधनों का भी उपयोग किया जा सकता है। हथेली और पगथली के सूक्ष्म से सूक्ष्म भाग का पूरे शरीर से प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से कुछ न कुछ संबंध होता ही है । अत: **प्रतिदिन चन्द मिनटों के लिए हथेली और पगथली को आगे पीछे, दूसरी हथेली से रगड़े तो भी शरीर में स्फूर्ति आने लगती है।** साथ ही जिन प्रतिवेदन बिन्दुओं पर दबाव देने से विजातीय तत्त्वों की उपस्थिति के कारण मामूली दर्द भी आता हों तो वहाँ से मात्र इस प्रक्रिया से विजातीय तत्त्व दूर होने लगते हैं। **ताली बजाने से भी हथेली के प्रतिवेदन बिन्दुओं पर एक्युप्रेशर हो जाता है। दोनों हाथ जोड़ने**

से भी प्राण ऊर्जा के प्रवाह में संतुलन होने लग जाता है। आवेग एवं उत्तेजना शांत हो जाती हैं। स्वविवेक विकसित होने लगता हैं। मसाजर से मसाज करने पर भी उस स्थान से विजातीय तत्त्व दूर होने लगते हैं।

चुम्बक द्वारा एक्युप्रेशर :- चुम्बक के समान ध्रुव एक दूसरे को दूर फेंकते हैं। दूसरी बात चुम्बकीय ऊर्जा चुम्बक की क्षमतानुसार हथेली और पगथली के आर पार जा सकती है। अत: एक चुम्बक को पगथली या हथेली के नीचे स्पर्श करें तथा दूसरे चुम्बक का वही ध्रुव दूसरी तरफ प्रतिवेदन बिन्दुओं पर घुमाने से चुम्बकीय ऊर्जा के प्रभाव से विजातीय तत्त्व दूर होने लगते हैं। जैसे - कचरा साफ करने के लिए कभी झाड़ू का प्रयोग किया जाता है तो, कभी हवा के दबाव का, तो कभी पानी के बहाव से भी कचरा साफ किया जा सकता है। अत: किसी भी विधि अथवा ऊर्जा द्वारा प्रतिवेदन बिन्दुओं से विजातीय तत्त्व दूर कर देने से रोगी स्वस्थ हो सकता है।

प्रतिवेदन बिन्दुओं पर मेथी का प्रयोग - दर्द वाले प्रतिवेदन बिन्दुओं पर मेथी के दाने स्पर्श कर रखने से भी, उस स्थान पर जमा विजातीय तत्त्व धीरे धीरे दूर हो जाते हैं, और प्राण ऊर्जा का प्रवाह संतुलित होने लगता है, जिससे व्यक्ति रोग मुक्त हो जाता है।

एक्यूप्रेशर स्वयं द्वारा स्वयं के उपचार की प्रभावशाली पद्धति

जिस प्रकार ध्यान, योग, आसन, प्राणायाम आदि व्यक्ति को स्वयं ही करने पड़ते हैं, अनुभवी प्रशिक्षक आवश्यक मार्ग दर्शन कर सकता है। ठीक उसी प्रकार वास्तव में एक्युप्रेशर उपचार और निदान भी व्यक्ति को स्वयं ही करना चाहिये। दूसरे व्यक्ति से एक्युप्रेशर करवाने से उपचार का शत प्रतिशत लाभ नहीं मिलता। उपचार लम्बा, अस्थायी एवं कम प्रभावशाली होता है। अत: यथा संभव जितना उपचार रोगी स्वयं कर सकें, उतना तो कम से कम उसको स्वयं ही करना चाहिए, तथा चिकित्सक का रोग से संबंधित प्रमुख प्रतिवेदन के दबाव हेतु, शीघ्र राहत मिलने तक, ही सहयोग लेना चाहिए। किसी भी चिकित्सक के पास इतना समय नहीं होता कि रोगी के सभी प्रतिवेदन बिन्दुओं का ढंग से निदान कर सकें। वे तो मात्र मुख्य प्रतिवेदन बिन्दुओं तक ही अपना ध्यान केन्द्रित रखते हैं, अत: उपचार आंशिक ही कर सकते हैं। **स्वयं द्वारा निदान और उपचार करने से व्यक्ति समान दबाव दे सकता है और रोग में जैसे जैसे राहत मिलती जाती है, उसका आत्म विश्वास और सजगता बढ़ती जाती है।** प्रारम्भ में जो प्रतिवेदन गहरे और मुख्य होते हैं, उनके उपचार हेतु किसी अच्छे थेरेपिस्ट का मार्गदर्शन एवं सहायता ली जा सकती है, परन्तु बाकी सभी पगथली और हथेली का निदान और उपचार तो स्वयं ही करना चाहिये। **प्रतिदिन निश्चित समय पर उपचार करने से, उपचार अधिक प्रभावशाली हो जाता है।** उपचार कब, कहां, कैसे, कितना करना चाहिए उसके संबंध में अधिक जानकारी हेतु जिज्ञासु स्वास्थ्य प्रेमियों को यहाँ चर्चित मूल सिद्धान्तों को ध्यान में रखते हुये एक्युप्रेशर से संबंधित अच्छा साहित्य पढ़ना चाहिए तथा अनुभवी प्रशिक्षकों से सम्यक् मार्ग दर्शन प्राप्त करना चाहिए।

अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ और स्वास्थ्य

हमारे शरीर में दो प्रकार की ग्रंथियाँ होती है। प्रथम तो वे जो अपने में बनने वाले रस को नलिकाओं द्वारा शरीर के विशेष भागों में पहुंचाती है । दूसरी वे ग्रंथियाँ जो बिना नलिकाओं के (Ductless Glands) अपना स्राव शरीर के आवश्यक भागों तक पहुंचाती है। दूसरे प्रकार की ग्रंथियों को अन्तःस्रावी ग्रंथियाँ कहते हैं।

इण्डोक्राइन और हार्मोन ग्रीक भाषा के शब्द हैं, जिनका अर्थ क्रमशः अन्तःस्राव तथा उत्तेजक करना होता है। अतः अन्तःस्रावी ग्रंथियों से उत्पन्न होने वाले स्राव को हार्मोन्स भी कहते हैं।

अन्तःस्रावी ग्रंथियों का प्रभाव

जैसे वृक्ष का आधार उसकी जड़े एवम् मकान का आधार उसकी नींव होती है, ठीक उसी प्रकार शरीर के सफल संचालन में हमारी अन्तःस्रावी ग्रंथियों का योगदान होता है। जड़ एवं नींव बाह्य रूप से न दिखने के बावजूद वृक्ष के विकास एवम् मकान की सुरक्षा हेतु आवश्यक होती है, ठीक उसी प्रकार प्रत्यक्ष रूप से न दिखने के बावजूद हमारे शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक गतिविधियों के संचालन में ग्रंथियों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

हम क्या हैं और क्यों हैं? हमारे स्वभाव, प्रवृत्तियों, क्रियाओं एवम् प्रतिक्रियाओं का संचालन और नियन्त्रण कौन करता है? हमारे शरीर का नियन्त्रित व समयबद्ध विकास क्यों और कैसे होता हैं? निश्चित अवधि के पश्चात अंगों के विकास एवम् वृद्धि में क्यों स्थिरता आ जाती हैं ? कुछ व्यक्ति क्रोधी, क्रूर, हिंसक, अशान्त, चिड़चिड़े , हताश, भयभीत, असंवेदनशील, निराशावादी होते हैं तो बहुत से व्यक्ति स्वभाव से शान्त, प्रसन्न, हंसमुख आशावादी , संवेदनशील, करुणाशील , निडर, निर्भय, आत्म विश्वासी क्यों होते हैं ? एक ही अध्यापक से शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों में कोई मन्दबुद्धि वाला तो कोई प्रखर पंडित, विद्वान्, ज्ञानी कैसे बन जाते हैं? एक ही परिस्थिति में कार्य करने वाले सभी व्यक्तियों में नेतृत्व की क्षमता एक सी क्यों नहीं होती है? कोई साधारण खुराक खाने के बावजूद मोटा एवम् तगड़ा होता है तो बहुत से व्यक्ति खाने पीने में पूर्ण विवेक रखने तथा अच्छी खुराक लेने के बावजूद अपेक्षाकृत दुबले पतले ही क्यों रह जाते हैं ? कभी कभी कुछ व्यक्ति बहुत बोने तो चन्द व्यक्ति अध्याधिक लम्बे क्यों हो जाते हैं? ऐसे सैकड़ों प्रश्नों का समाधान ग्रंथियों की कार्य प्रणाली एवम् नियन्त्रण की क्षमता को जानने से हो जाता है। ग्रंथियों के बराबर कार्य न करने से 75 प्रतिशत से 90 प्रतिशत रोगों के पनपने की सम्भावना रहती हैं। ग्रन्थियों को सुव्यवस्थित व संतुलित किये बिना लाख प्रयास करने

के बावजूद हम पूर्णतया शरीर के रोगों से मुक्त नहीं हो सकते।

इन ग्रंथियों से उत्पन्न होने वाले उत्तेजक रस शरीर की वृद्धि, पोषण, यौन संतुलन, मांसपेशियों के संचालन तथा अन्य ग्रंथियों की क्रियाओं के नियन्त्रण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। ये हार्मोन्स न केवल प्रत्येक शारीरिक क्रिया में भाग लेते हैं, अपितु व्यक्ति की मानसिकता, चिन्तन, स्वभाव और व्यवहार को भी प्रभावित करते हैं।

अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के उत्तेजक श्रावों की अधिकता या कमी से न केवल साहस, शारीरिक गठन तथा मानसिक योग्यता जैसे गुण घटने लगते हैं, बल्कि व्यक्ति का व्यवहार तथा चाल चलन ही बदल जाता है। ये इतनी प्रभावशाली होती है कि किसी भी स्त्री या पुरुष के जीवन में बहुत बड़ा परिवर्तन ला देती है। मनुष्य उतना ही तरूण होता है, जितनी उसकी अन्तःस्रावी ग्रन्थियां संतुलित एवं सजग होती है।

अन्तःस्रावी ग्रंथियाँ प्रभावी चैतन्य केन्द्र

हमारी वृत्तियों और कामनाओं का उद्‌भव अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के द्वारा होता है। वे वृत्तियां व्यक्ति में न केवल इच्छा ही पैदा करती है, अपितु उसकी पूर्ति हेतु तदनुरूप प्रवृत्ति की भी मांग करती है। सारे आवेग जो भाव तंत्र को संचालित करने वाले होते हैं, इन ग्रन्थियों के हार्मोनों के द्वारा ही पैदा होते हैं। हार्मोनों का अत्यन्त गहरा प्रभाव हमारे भावों के अनुसार हमारे आचरण और व्यवहार पर पड़ता है। बार बार होने वाले भावनात्मक दबावों के परिणाम स्वरूप हमारे विचार विकृत होते हैं, तथा हमारा आचरण एवं व्यवहार वैसा ही होने लगता है। अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ ही हमारे चैतन्य केन्द्र के संवादी स्थान होती है। **मनुष्य की जितनी भी आदते बनती है, आधुनिक वैज्ञानिकों की मान्यतानुसार उनका उद्‌गम स्थान अन्तःस्रावी ग्रन्थियां होती है। वे ही आदते मस्तिष्क में पहुंचती है, अभिव्यक्त होती है और व्यवहार में उतरती है। चैतन्य केन्द्र सब अवयवों में सक्रियता पैदा करते हैं। ये इन्द्रियों और मन को भी संचालित करते हैं।** अतः शरीर का सबसे महत्वपूर्ण अवयव है, हमारी "अन्तःस्रावी ग्रन्थियां"। इनके स्राव सीधे रक्त में मिल जाते है।

कर्म सिद्धान्तों को मानने वाले शरीर निर्माण की सारी परिस्थितियों का आधार संस्थान नाम कर्म को मानते हैं। जबकि आधुनिक विज्ञान अन्तःस्रावी ग्रन्थियों को। दोनों में भाषा का अन्तर है, तथ्य का नहीं। शरीर शास्त्री के अनुसार हार्मोन्स अन्तःस्रावी ग्रन्थियों का स्राव होता है। शरीर में जो कार्य हारमोन्स करते हैं, वही कार्य कर्म शास्त्र के अनुसार कर्मो का रस विपाक (जो अनुभाग बन्ध कहलाता है) करता है।

अन्तःस्रावी ग्रन्थियों और ऊर्जा चक्रों में समानता

आज के वैज्ञानिक जिन्हें अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के रूप में स्वीकारते हैं, हमारे पूर्व योगाचार्यों ने उन्हें चक्र अथवा कमल के रूप में स्वीकारा। जापान में प्रचलित बौद्ध मद्धति जूडो में उन्हें क्यूसोस कहते हैं। इन तीनों के शरीर में जो स्थान और आकार माने जाते हैं, उनमें विशेष अन्तर नहीं है।

अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ	संबंधित योग चक्र	जूडो क्यूसोस	रंग	तत्त्व	संचालक तंत्र	शरीर में स्थिति	विशेष प्रभावित अंग
पिनियल	सहस्रार चक्र	टेन्डो	बैंगनी	—		कपाल	ऊपरी मस्तिष्क एवं आँख
पीयूष	आज्ञा चक्र	ऊतो	नीला	—	बोध	चेहरा	निचला मस्तिष्क स्नायु तंत्र
थायरोइड एवं पेराथायरोइड	विशुद्धि चक्र	हिचू	आसमानी	आकाश	श्वसन	कंठ	नाक, कान, गला, मुँह, स्वर तंत्र
थायमस	अनाहत चक्र	क्योटोटसु	हरा	वायु	रक्त संचार	हृदय	हृदय, फेफड़े, भुजाएं, रक्त संचार प्रणाली
एड्रीनल पैंक्रियाज	मणिपुर चक्र	सुहगेट्स	पीला	अग्नि	पाचन	नाभि	पाचन संस्थान, यकृत, तिल्ली, नाड़ीतंत्र, आंतें
प्रजनन	स्वाधिष्ठान चक्र	म्योजो	नारंगी	जल	प्रजनन	पेडू	मल-मूत्र अंग, गुर्दे, प्रजनन अंग
प्रजनन	मूलाधार चक्र	सुरगिने	लाल	पृथ्वी	विसर्जन	मल द्वार के पास	मेरु दण्ड, गुर्दे, पैर

आधुनिक डाक्टरों ने चक्रों अथवा कमलों को शरीर की चीर फाड़कर देखने का प्रयास किया। उसके अणु अणु का विश्लेषण कर दिया, पर कहीं भी कमल नहीं मिला और न चक्र दिखाई दिए। नाभि कमल हो या न हो, आज्ञा चक्र हो या न हो, विशुद्धि केन्द्र हो या न हो, किन्तु जो पीयूष, पिनियल, थायरोइड आदि ग्रन्थियाँ हैं, उनको हम तुलनात्मक दृष्टि से देखें तो योग शास्त्र और शरीर शास्त्र के प्रतिपादन में कोई विशेष भेद प्रतीत नहीं होता।

ये ग्रन्थियाँ शरीर में ऊर्जा संचालन केन्द्र, रसायन संचालन केन्द्र तथा शरीर के विभिन्न हिस्सों में क्षेत्रीय केन्द्र

के रूप में कार्य करने के साथ साथ सामूहिक रूप से भी कार्य करती है, जो हमारे भावों और विचारों से प्रभावित होती है।

ग्रन्थियों की कार्य प्रणाली

जिस प्रकार मधु मक्खी फलों का रस संचय कर उसमें अपना थूक मिलाकर मधु बनाती है , ठीक उसी प्रकार ग्रंथियां शरीर में से आवश्यक तत्व ग्रहण कर उसमें अपना रस मिलाकर रासायनिक कारखानों की भांति शक्तिशाली हारमोन्स का निर्माण करती है। प्रत्येक ग्रन्थि आवश्यकतानुसार एक या उससे अधिक हारमोन्स बनाती है, जिनकी तरंगे नाड़ी संस्थान के माध्यम से आकाशवाणी की भांति प्रसारित हों, शरीर के प्रत्येक भाग में शीघ्र पहुंचने की क्षमता रखती है। ये हारमोन्स हमारे शरीर में प्रतिक्षण निष्क्रिय होने वाले मृतप्राय: कोशिकाओं को पुनर्जीवित कर क्रियाशील बनाने का कार्य करते हैं, जिससे सभी शारिरिक क्रियायें व्यवस्थित रूप से चलती रहें। परन्तु जब ग्रन्थियों में विकृति आ जाती है और उन्हें पुन: शीघ्र संतुलित न किया जाये तो शरीर में असाध्य रोग पनपने लगते हैं। रोग की अवस्था में जो उपचार करते हैं, वे तो प्राय: रोग के लक्षण मात्र होते हैं, रोग के मूल कारण नहीं। मूल कारण होते हैं - **"अन्तःस्रावी ग्रन्थियों का असंतुलन।"**

सभी ग्रन्थियाँ केन्द्रीय मंत्री मण्डल की भांति सामूहिक जिम्मेदारी से कार्य करती है। किसी एक ग्रन्थि के खराब अथवा निष्क्रिय होने का प्रभाव अन्य ग्रन्थियों के कार्यों पर भी पड़ता है।

प्रमुख अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ

हमारे शरीर में 8 प्रमुख अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ होती हैं।

1. पीयूष 2. पिनियल 3. थायरोइड 4. पेराथायरोइड 5. थायमस 6. एड्रीनल 7. पैंक्रियाज 8. प्रजनन

पीयूष ग्रन्थि

यह सभी ग्रन्थियों में प्रमुख ग्रन्थि होती हैं। सिर में मस्तिष्क के नीचे स्थित इस ग्रन्थि का आकार मटर के दाने से भी छोटा होता है। यह सभी ग्रन्थियों की नेता (मास्टर ग्लेण्ड) अथवा संचालक होती है। इसका स्राव अन्य ग्रन्थियों को उत्तेजित करता है ताकि वे अपना अपना निर्धारित कार्य बराबर कर सकें। **शरीर के आन्तरिक हलन-चलन, स्फूर्ति, हृदय की धड़कन, शरीर के तापक्रम एवम् शक्कर की मात्रा को नियन्त्रित करती है। शरीर के विकास में इसका महत्त्वपूर्ण योगदान होता है।** यदि बाल्यावस्था में यह ग्रन्थि अपेक्षा से अधिक सक्रिय हो जाती है तो, बालक अपेक्षाकृत अधिक लम्बा हो जाता है। परन्तु यदि यह ग्रन्थि शिथिल हो तो, व्यक्ति बोना रह जाता है। सिर के बालों एवम् हड्डियों के विकास को यह संतुलित रखती हैं।

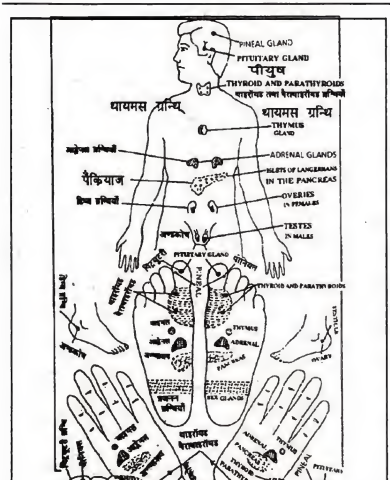

शरीर में अन्तःस्रावी ग्रंथियों की स्थिति एवं संबंधित प्रतिवेदन केन्द्र (चित्र नं. 146)

इसका मानसिक प्रतिभा, रक्त के दबाव, प्रजनन अंगों के विकास पर गहरा प्रभाव पड़ता है । स्त्रियों में प्रसूति के समय गर्भाशय में लचीलापन आना तथा स्तनों में दूध का नियन्त्रण इसी ग्रन्थि द्वारा होता है। यदि यह ग्रन्थि बराबर कार्य न करें तो कमजोरी, अधिक प्यास लगना, अधिक पेशाब आना, बालों का झड़ना, समय से पूर्व सफेद होना, गंजापन, मानसिक विकास का अवरुद्ध होना, स्मरण शक्ति बराबर न होना आदि रोग हो सकते हैं। यह ग्रन्थि हमारी जीवन पद्धति, प्रवृत्तियों, स्वभाव, मनोवृतियों को नियन्त्रित करती है। झूठ बोलने वालों, शरारती लोगों, चोरों, घमण्डी, क्रोधी, दुराचारी, पागल व्यक्तियों की यह ग्रन्थि बराबर कार्य नहीं करती है। अधिकांश आत्म हत्याओं का कारण इसका असंतुलन होता है। यह ग्रन्थि व्यक्ति को तनावमुक्त, प्रसन्न, उत्साहित, समभाव, पारस्परिक प्रेम संबंध बनाये रखने में बहुत महत्वपूर्ण हैं। इसमें सूजन आ जाने से हृदय की धड़कन बढ़ जाती है आँखे बाहर आने लगती हैं एवम् शरीर कमजोर होने लगता हैं। इसके अधिक सक्रिय होने पर व्यक्ति वाचाल, अस्थिर, बात बात में स्वभाव (मूड) बदलने वाला, अत्यधिक संवेदनशील, पैनी दृष्टि वाला होता है तथा इससे बाल चमकीले एवम् त्वचा गर्म रहने लगती हैं।

पिनियल ग्रन्थि

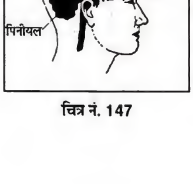

चित्र नं. 147

यह ग्रन्थि मस्तिष्क के पीछे स्थित होती है जिसका आकार राई के दाने से भी छोटा होता है। यह ग्रन्थि प्रधान सचिव की भांति शरीर की व्यवस्था एवं गतिविधियों के संचालन का कार्य करती हैं। सभी ग्रन्थियों एवम् अवयवों को संतुलित रखना, उनका विकास करना एवम् आवश्यक कार्य करवाना इसके अधीन होता है। संकट से बचने के लिये आवश्यक निर्देश देना एवम् शीघ्र क्रियान्वित कराना इसका प्रमुख

कार्य हैं। यह कामेच्छा को जागृत करती है एवम् निर्णयात्मक शक्ति को नियन्त्रित करती है। यदि यह ग्रन्थि बराबर कार्य न करें तो, व्यक्ति अस्थिर हो जाता है एवम् उसकी निर्णयात्मक तथा नेतृत्व क्षमता कम हो जाती है, जिससे समय पर सही निर्णय नहीं ले पाता। इसको प्रकृति की तीसरी आँख कहते हैं।

यह ग्रन्थि शरीर में पोटेशियम, सोडियम एवम् पानी के प्रमाण को संतुलित रखती है। अतः जब यह ग्रन्थि बराबर कार्य न करें, तो शरीर गुब्बारे की भांति फूल सकता हैं एवम् गुर्दे बराबर कार्य नहीं करते।

थायरोइड ग्रन्थि

गहरे लाल रंग की ग्रन्थि कंठ के नीचे गले की जड़ में दो भागों में विभक्ति होती है। इसका पाचन क्रिया से सीधा सम्बन्ध होता है तथा यह भोजन को रक्त, मांस, मज्जा, हड्डियां एवं वीर्य में बदलने में सहयोग करती है । इसका प्रजनन अंगों से सीधा सम्बन्ध होता है। जिससे कामेच्छा को गति देने एवम् प्रजनन अंगों को स्वच्छ रखने तथा महिलाओं के एम. सी (महावारी) को नियन्त्रित करती है। **यह पेशाब रोकने की क्षमता का नियन्त्रण, आक्सीजन के उपयोग को नियन्त्रित, कार्बन डाई आक्साईड के निष्कासन को प्रभावित करती है। शरीर के सभी अंगों को शक्ति उत्पन्न करने के लिए आवश्यक स्राव भेजना, श्वसन का संचालन, शरीर में केलशियम, आयोडिन त कोलस्ट्रोल पर नियन्त्रण रखती है। हड्डियों के विकास, घाव भरने एवम् रक्त के प्रवाह को नियन्त्रित करने में यह ग्रन्थि महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।** जब यह ग्रन्थि आवश्यकता से कम स्राव उत्पन्न करती है तो व्यस्कों में वजन बढ़ने लगता है। शरीर की गतिविधियाँ तथा बोलने एवं सोचने की क्रियाएं मन्द पड़ जाती है। त्वचा स्थूल और शुष्क होने लगती हैं।

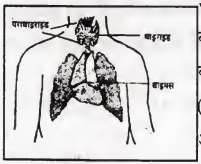

चित्र नं. 148

आवाज का नियन्त्रण (मधुर, मोटी, पतली, तेज, धीमी आदि) , स्वभाव का नियन्त्रण जैसे फुर्तीला अथवा आलसी, क्रूर अथवा दयालु, अधीर या धैर्यवान, उत्सुक अथवा उदासीन आदि इससे सम्बन्धित होते हैं। यह ग्रन्थि दाम्पत्य एवं पारिवारिक जीवन में विशेष महत्व रखती है। क्योंकि ऐसे पति पत्नी जिनकी ये ग्रन्थियाँ एक दूसरे से विपरीत होती है, अर्थात् एक की सक्रिय एवम् दूसरे की निष्क्रिय हो तो, उनके स्वभाव में तालमेल बैठना कठिन होता है। यह ग्रन्थि शरीर के मोटापे, वजन का नियन्त्रण रखती है।

थायरोइड ग्रन्थि का कार्य स्पार्क जनरेटर अथवा स्टोरेज बैटरी के समान होता है। यदि हम थायरोइड ग्रन्थि रूपी हमारी बैटरी को जल्दी डिसचार्ज कर देते हैं तो हमें थकावट अनुभव होने लगती है एवम् वजन बढ़ने लगता है । परन्तु यदि उसको ओवरचार्ज करते हैं तो व्यक्ति हतोत्साहित, चिड़चिड़ा, कमजोर एवम् दुबला होने लगता है। **इसके स्राव शरीर को बाह्य वातावरण के अनुकूल बनाने में सहयोग करते हैं।**

थायरोइड ग्रन्थि ज्यादा सक्रिय होने की अवस्था में शरीर का तापमान सामान्य से अधिक रहने लगता है। वजन घटना शुरू हो जाता है। गर्मी सहन करने की क्षमता कम हो जाती है। पसीना ज्यादा आने लगता है। व्यक्ति को ज्यादा बैचेनी एवम् घबराहट होने लगती है। जिससे साधारण सी छोटी छोटी बातों पर उत्तेजित होना, बहुत अधिक संवेदनशील होना, शीघ्र मूड बदलना, जिसको आसानी से नियन्त्रित न किया जा सके, जैसी स्थिति उत्पन्न होने लगती हैं।

बहुत से बच्चों में बचपन से ही ज्यादा चाकलेट/टाफियें खाने अथवा अन्य पैतृक कारणों से थायरोइड ग्रन्थि अशक्त हो जाती है। जिसके परिणाम स्वरूप उनकी मानसिक वृद्धि नहीं हो पाती और न उनकी जननेन्द्रियाँ पूर्णतः विकसित हो पाती है। ऐसे बच्चे प्रायः शारीरिक रूप से विकृत हो जाते हैं, दाँत खराब हो जाते हैं। अतः जो अभिभावक अज्ञानवश अपने बच्चों को चाकलेट अथवा टाफियाँ खिलाने में विवेक नहीं रखते, उन बच्चों की थायरोइड ग्रन्थि असंतुलित हो जाने से, वे अपनी क्षमताओं का पूर्ण उपयोग नहीं कर पाते। उन बच्चों की रोग प्रतिकारात्मक शक्ति क्षीण हो जाती हैं।

पेराथायरोइड ग्रन्थि

यह गले में थायरोइड ग्रन्थि के पीछे दोनों तरफ दो दो अर्थात् कुल चार छोटी छोटी ग्रन्थियाँ होती हैं। ये ग्रन्थियाँ शरीर का सबसे अधिक रक्तमय अवयव होती हैं तथा रक्त के रसायनिक तत्वों को ठीक रखने में सहायक होती हैं।

इस ग्रन्थि के श्राव रक्त में केलशियम एवम् फासफोरस के प्रमाण का संतुलन रखते हैं। शरीर में इनका संतुलन बिगड़ने से बांईटे (क्रेम्पस) आने लगते हैं। रक्त में केलशियम का अनुपात काफी महत्वपूर्ण होता हैं। क्योंकि यह रक्त के बहाव को रोकने अर्थात् कोलस्ट्रोल को नियन्त्रित रखने, नाड़ियों तथा माँसपेशियों की गतिविधियों को संचालित करने हेतु आवश्यक होता हैं।

रक्त में केलशियम की मात्रा अधिक होने से गुर्दों में केलशियम जमने लगता है, जिससे गुर्दों में पत्थरी हो सकती हैं। जब केलशियम मांसपेशियों के तन्तुओं पर जमा होने लगता है तो, रियुमेटिजम हो जाता है और यदि केलशियम जोड़ों पर जमने लगता है तो आर्थाराईटिस हो जाता है। क्रोध से यह ग्रन्थि जल्दी खराब हो जाती है और कभी कभी अत्यधिक आवेग से पक्षाघात (लकवा) तक हो सकता हैं। शांति, धैर्य, स्थिरता, सहयोग देने की भावना पेराथायरोइड ग्रन्थि के संतुलित होने का प्रतीक होते हैं।

थायमस ग्रन्थि

यह ग्रन्थि गर्दन के नीचे तथा हृदय के कुछ ऊपर सीने के मध्य में स्थित होती है। इसको बच्चों की धायमाता भी कहते हैं, क्योंकि यह बच्चों की रोगों से रक्षा करती है। यह ग्रन्थि बालकों के शारीरिक विकास एवं जननेन्द्रियों के विकास पर नियन्त्रण रखती है। युवा अवस्था प्रारम्भ होने पर इसके पिंड धीरे धीरे लुप्त होने लगते हैं अर्थात् शरीर का पूर्ण विकास होने पर यह ग्रन्थि अपना कार्य मंद कर देती है। यदि किसी कारणवश यह ग्रन्थि वयस्क होने पर भी क्रियाशील रहें तो, शरीर में जड़ता आ जाती है, सुस्ती आने लगती है तथा जल्दी जल्दी थकावट अनुभव होने लगती है। जब तक यह ग्रंथि सक्रिय रहती है, प्रजनन अंग उत्तेजित नहीं होते एवं मन में कामवासना के विकार जागृत नहीं होते। ऐसा कहा जाता है कि वृद्धावस्था में यह ग्रन्थि पुनः सक्रिय हो जाती है, इसी कारण वृद्धों का स्वभाव बच्चों के समान जिद्दी, चिड़चिड़ा एवं दूसरों से अपेक्षाएं रखने वाला हो जाता है।

एड्रीनल ग्रन्थि

ये ग्रंथियाँ दोनों गुर्दों के ठीक ऊपर होती हैं, जो शरीर की समस्त गतिविधियों जैसे संचार व्यवस्था, हलन चलन, श्वसन, रक्त परिभ्रमण, पाचन, मांस पेशियों का संकुचन अथवा फैलाव, पानी अथवा अन्य अनावश्यक पदार्थों का निष्कासन आदि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसका कार्य लड़ों या भाग जाओ अर्थात् शरीर की प्रतिकारात्मक क्षमता विकसित करना है। शरीर के लिये आवश्यक सभी प्रकार की दवाओं का शरीर में निर्माण इस ग्रंथि के स्राव बनाने में सहयोग करते हैं। यह व्यक्ति को साहसी, निर्भय, सहनशील, आशावादी बनाती है एवम् आत्म विश्वास जागृत करती है। शरीर को सभी प्रकार की एलर्जी एवम् रोगों से बचाती है। अत्यधिक भय अथवा साधारण से रोगों में दवाई लेने तथा बाल्यकाल में बच्चों के रोग अवरोधक टीके लगाने से यह ग्रंथियाँ बराबर कार्य नहीं करती। इसी कारण जापान में दो साल तक बच्चों को कोई टींका अथवा इंजेक्शन प्रायः नहीं लगाया जाता। भविष्य में रोग होने की आशंका मात्र से बिना कारण रोग निरोधक टींका लगाने से शरीर की रोग प्रतिकारात्मक क्षमता कम हो जाती है, तथा नये नये रोग होने की संभावनाएं बढ़ जाती हैं। जिस पर स्वास्थ्य मंत्रालय एवं प्रत्येक अभिभावक को बच्चों के हित में गहन चिंतन कर निर्णय लेना चाहिए।

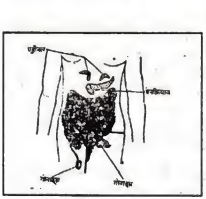

चित्र नं. 149

पेन्क्रियाज ग्रन्थि

यह पेट में स्थित 6" से 8" लम्बी ग्रंथि होती है जिसका ऊपरी भाग पाचक रस बनाता है जो क्षारीय स्वभाव का होने से शरीर में आम्लीय तत्वों का

नियन्त्रण रखता है। इसमें अनेक तत्व होते हैं जो, कठोर भोजन तो पतला बनाने में सहयोग करते हैं जिससे, आंतें उनको ग्रहण कर सकें। जबकि नीचे वाला भाग इंसुलिन नामक रस बनाता है जो शरीर में ऊर्जा उत्पादन हेतु मुख्य तत्व होता है । यह ग्लूकोज को ग्रहण करने में सहायता करता है तथा शरीर में उसकी मात्रा को संतुलित एवं नियन्त्रित रखता है। जब तक इंसुलिन उचित मात्रा में बनता है तो, यकृत भी अतिरिक्त ग्लूकोज को ग्लाइकोजिन में बदल कर अपने पास एकत्रित रख सकता है ताकि, आवश्यकता पड़ने पर पुनः ग्लूकोज में बदल कर कोशिकाओं तक पहुंचा सकें। दूसरी बात इंसुलिन की कमी के कारण शरीर ग्लूकोज को चर्बी के रूप में भी नहीं रख पाता। फलतः ग्लूकोज शरीर पूर्ण ग्रहण नहीं कर पाता और मूत्र द्वारा बाहर चला जाता है एवं मधुमेह नामक रोग हो जाता है। व्यक्ति अन्दर ही अन्दर शक्तिहीन (दीमक लगी लकड़ी के समान) लगता है।

इसके विपरित यदि पेन्क्रियाज अधिक कार्य करें तो, इंसुलिन ज्यादा बनने लगता है, जिससे रक्त में ग्लूकोज की मात्रा कम होने लगती है। इस परिस्थिति में भूख ज्यादा लगती है, पसीना अधिक आता है, रक्तचाप घट जाता है , सिर दर्द होता है एवम् कमजोरी का अनुभव होता है। रोगी कभी कभी बहकी बहकी बातें करने लगता है और यदि रक्त में ग्लूकोज की मात्रा बहुत कम हो जावे तो अचानक बेहोशी की अवस्था में पहुंच मृत्यु तक हो जाती है। आंखें एवम् गुर्दे इसकी खराबी से जल्दी प्रभावित होते हैं । **तनाव इस रोग का मुख्य कारण है। खुराक का नियन्त्रण, पाचन सम्बन्धी नियमों का पालन, प्राणायाम, नियमित भ्रमण, स्वाध्याय, भक्ति, सद् चिन्तन, तनावमुक्त आचरण, कड़वे स्वादों का सेवन इस रोग के निवारण में प्रभावशाली भूमिका निभाते हैं।** पैन्क्रियाज बहुत ही संवेदनशील अंग है एवम् इसकी मामूली खराबी से शरीर की सारी रसायनिक क्रियाएं प्रभावित होती हैं।

प्रजनन /ग्रन्थियाँ

यह ग्रंथियाँ कामेच्छा को नियन्त्रित कर विपरीत लिंग (सेक्स) में आकर्षण पैदा करती है । प्रजनन का कार्य अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होने से अन्य ग्रंथियाँ भी इस कार्य में प्रमुख भूमिका निभाती है। **पिनियल जहाँ कामेच्छा जागृत करती है, थायरोइड उसे गति देती है तथा पीयूष ग्रन्थि प्रजनन अंगों का विकास करती है, वहीं यह ग्रंथि सारे प्रजनन तन्त्र के कार्यों का संचालन करती है। प्रजनन ग्रंथियाँ ऐसे हार्मोन्स का निर्माण करती है, जिसके द्वारा स्त्री स्त्रीत्व प्राप्त करती है और उसमें स्त्रियोचित व्यक्तित्व बना रहता है। पुरुषों में इन ग्रन्थियों के स्राव पुरुषत्व के लक्षण पैदा करते हैं।**

प्रजनन ग्रंथियाँ एवम् एड्रीनल ग्रंथियाँ एक दूसरे के हारमोन बनाने में आपस में सहयोग करती है जिससे शरीर एलर्जी से बच सके। जिन महिलाओं का गर्भाशय शल्य चिकित्सा द्वारा निकाल दिया जाता है, रक्त में ओवरीज के हारमोन मिलना बंद हो जाता है, जिससे शरीर नीचे से फूलने लगता है। अतः ऐसे रोगियों की एड्रीनल,

पीयूष एवम् थायरोइड ग्रंथियों को सक्रिय करने से हारमोन्स की आवश्यक पूर्ति संभव हो सकती है। ऐसे रोगियों की प्रायः सभी ग्रंथियाँ शिथिल हो जाती है। ये ग्रंथियां बराबर कार्य न करें तो जननेन्द्रियों सम्बन्धी रोग हो जाते हैं। चेहरे का आकर्षण, तेज, व्यक्तित्व इसी ग्रंथि की क्षमता दर्शाता है। यह ग्रंथि बालों को बढ़ाने, स्वर सुधारने, शरीर के तापक्रम तथा आकार को संतुलित रखने में सहयोग करती है।

ग्रंथियों को प्रभावित करने वाले तथ्य

प्रत्येक विचार, चिन्तन, मनन, क्रिया, प्रतिक्रिया हमारी ग्रंथियों को प्रभावित करती है। **ग्रंथियाँ हमारे स्वास्थ्य की निर्माता हैं। इनमें सक्रियता, संतुलन, सहयोग और समन्वय स्वस्थता का सूचक है तथा इसके विपरीत निष्क्रियता, असंतुलन, असहयोग बीमारी का द्योतक है। "तनाव, चिन्ता, भय, निराशा, क्रोध, अहम्, माया, लोभ आदि पाशविक वृत्तियों से ग्रन्थियाँ खराब हो जाती है।"** इसीलिये हमारे ऋषि मनीषियों ने तनावमुक्त, आनन्दमय, सद् चिन्तन युक्त जीवन जीने, शुभ कार्यों में प्रवृत्ति करने, राग एवम् द्वेष को कम करने तथा संयमित, विवेक पूर्ण जीवन जीने की प्रेरणा दी। क्षण मात्र का भी प्रमाद न करने का निर्देश दिया। हमारे अधिकांश पुराने रीति-रिवाजों, परम्पराओं, त्योहारों, एवम् अनुष्ठानों के पीछे भी प्रतिकूल परिस्थितियों में उत्पन्न दुःख को भूलाकर आनन्दमय जीवन जीने का मुख्य उद्देश्य रहा हुआ हैं, जिससे हमारी ग्रंथियाँ खराब न हों, परन्तु आज हम आधुनिकता के नाम पर उनके महत्त्व को भूलाकर उन वैज्ञानिक रीति रिवाजों को छोड़ते जा रहे हैं। फलतः हमारी ग्रन्थियाँ प्रायः स्वस्थ नहीं होती है। **दवाईयों के अनावश्यक अथवा अत्यधिक सेवन करने से ग्रन्थियाँ निष्क्रिय हो जाती है, जिससे शरीर की रोग प्रतीकारात्मक शक्ति घटने लगती हैं।**

अन्तःस्रावी ग्रंथियों के उपचार की सरलतम पद्धति

एक्युप्रेशर पद्धति द्वारा इन ग्रंथियों का जितना सरल, सहज, प्रभावशाली उपचार हो सकता है, उतना अन्य चिकित्सा पद्धतियों में प्रायः सम्भव नहीं होता। अन्तःस्रावी ग्रंथियों के प्रतिवेदन बिन्दुओं पर दबाव देकर अथवा अन्य किसी विधी द्वारा उन्हें सक्रिय संतुलित एवम् सजग सरलता पूर्वक किया जा सकता है।

इन ग्रंथियों से संबंधित चैतन्य केन्द्रों पर ध्यान करने से भी ग्रन्थियों पर आये विकारों को दूर किया जा सकता है। विशेष रूप से इन चैतन्य संवादी केन्द्रों पर प्रेक्षा ध्यान में जो प्रयोग अभी तक हुये हैं, वे वास्तव में आश्चर्यजनक परिणाम वाले हैं। आधुनिक चिकित्सकों के पास अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के असंतुलन को दूर करने का कोई सरल प्रभावशाली उपाय नही है।

आज जहां चारों तरफ क्रूरता, हिंसा आतंकवाद, क्रोध, स्वच्छन्दता, घमण्ड, माया, लोभ, घृणा, द्वेष, तनाव आदि

दुष्प्रवृतियाँ बढ़ रही है। किन्तु इन दुष्प्रवृत्तियों को ग्रंथियों का उपचार कर आसानी से बदला जा सकता हैं।

स्वास्थ्य मंत्रालय से अपेक्षा है कि विज्ञापन तथा मनोरंजन के नाम पर संचार मंत्रालय द्वारा बेहिचक जो दृश्य टी.वी. पर दिखाये जाते हैं जिनसे उठने वाले आवेग, जनता की ग्रन्थियों को खराब कर रहे हैं। उन पर रोक लगावे, इससे होने वाले दुष्प्रभावों का पता लगायें, अवरोधक टीकों का प्रचार बन्द करें अन्यथा जन साधारण के साथ बहुत बड़ा विश्वासघात होगा। उन कारणों के मूल में जावे जिसके फलस्वरूप डाक्टरों एवम् अस्पतालों के निरन्तर बढ़ने के बावजूद जनता का स्वास्थ्य निरन्तर क्यों गिरता जा रहा है? रोगियों की संख्या में तीव्र गति से वृद्धि क्यों हो रही है? आज हमारी प्रतिकारत्मक शक्ति क्यों कम हो रही है? सहनशक्ति क्यों क्षीण हो रही है? आत्म विश्वास और मनोबल क्यों कमजोर हो रहा है ? साधारण सी प्रतिकूल परिस्थितियों में हम क्यों भयभीत हो जाते हैं? अन्याय अत्याचार के विरुद्ध अभिव्यक्ति की मानसिकता क्यों क्षीण हो गयी है?

दवाइयों के कहीं दुष्प्रभाव तो नहीं पड़ रहे हैं ? नये नये रोग क्यों पनप रहे है ? स्वस्थ रहने की भावना रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति को तथा दूसरों को स्वस्थ रखने में जुड़े प्रत्येक चिकित्सक को पूर्वाग्रह छोड़ ग्रंथियों के इस सरल उपचार को अवश्य सीखना चाहिये। जो हमारे शरीर में 75 प्रतिशत से ज्यादा रोगों का मूल कारण होते है। अन्यथा हम ऊपर से स्वस्थ दिखते हुये भी वास्तव में स्वस्थ नहीं बन सकते। जेलों में कैदियों के स्वभाव परिवर्तन हेतु ग्रंथियों का उपचार किया जावें। सभी अध्यापकों एवम् अभिभावकों से विनम्र अनुरोध है कि बालकों के चारित्रिक विकास हेतु इन ग्रंथियों को स्वस्थ रखने के तरीकों की बालकों को जानकारी दें। जन साधारण जितना जितना इन ग्रंथियों के प्रति सजग होगा, उतनी उतनी उनकी प्रतिकारात्मक शक्ति बढ़ेगी। चारित्रिक गुणों का विकास होगा, तनाव घटेगा, विवेकशील बनेगा, उसमें सद् चिन्तन की प्रवृति बढ़ेगी, आशावादी दृष्टिकोण पैदा होगा, साहस बढ़ेगा, चिन्तायें मिटेगी, व्यक्तित्व का विकास होने से प्रतिकूल परिस्थितियों में भी प्रसन्न एवम् स्वस्थ रहकर सच्चे अर्थों मे स्वाधीन बनेगा, एवम् अपने आपको चिकित्सकों से दूर रख सकेगा।

अन्तःस्रावी ग्रन्थियों को स्वस्थ रखने के लिए आवश्यक बातें :

1. सद्चिन्तन (Right Thinking)
2. प्रसन्नता (Happiness)
3. आशावादी दृष्टिकोण (Hopeful atitude)
4. साहस (Courage)
5. धैर्य (Patience)
6. प्रमोद (Cheerfulness)

सभी रोगों की एक दवा "शिवाम्बु"

मानव शरीर अपने आप में परिपूर्ण होता है। इसमें अपने आपको स्वस्थ रखने की क्षमता होती है। आवश्यकता है अपनी क्षमताओं को पहचानने की, समझने की तथा आवश्यकतानुसार उसका सही उपयोग करने की। अज्ञान अथवा अधूरा ज्ञान एवं उसके साथ ज्ञान का झूठा अहं सभी समस्याओं की जड़ होता है।

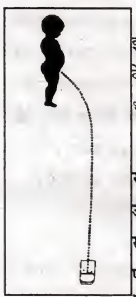

चित्र नं. 151

स्वमूत्र चिकित्सा अति प्राचीन है। जैन, बौद्ध, आयुर्वेद, बाइबिल जैसे पौराणिक ग्रन्थों में इसका उल्लेख मिलता है। डामर तंत्र में शिवजी ने पार्वती जी को शिवाम्बु कल्प यानी स्वमूत्र के लाभ एवं उपयोग के तरीके के बारे में विस्तार से समझाया था, इसी कारण स्वमूत्र को शिवाम्बु भी कहा जाता है।

आज वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि शिवाम्बु शरीर से गुर्दों द्वारा रक्त को शुद्धिकरण से प्राप्त जीवनोपयोगी जल का वह भाग है, जिसमें शरीर के लिए उपयोगी सैंकड़ों ऐसे तत्त्व होते हैं, जिनका शरीर तत्काल उपयोग नहीं कर पाता और उनको संचय करने तथा रखने के लिए शरीर में अलग व्यवस्था नहीं होने से उसको विसर्जित करना पड़ता है। ऐसे उपयोगी तत्त्व जो आवश्यकता से ज्यादा होते हैं, शिवाम्बु के माध्यम से शरीर के बाहर आते हैं। जैसे जब कभी हमारे पास पैसे अधिक होते हैं, तत्काल जिनकी आवश्यकता न हो, तो हम उस धन को बैंक अथवा अन्य किसी के पास जमा करवा देते हैं, ताकि आवश्यकता पड़ने पर हम उन्हें पुनः प्राप्त कर सकें। उसी प्रकार शिवाम्बु गंदा, खराब, विषैला, हानिकारक, विजातीय तत्त्व नहीं है, अपितु स्वास्थ्यवर्धक, जीवनोपयोगी शरीर द्वारा निर्मित रासायनिक प्रयोगों द्वारा बना जल है। शिवाम्बु में सैंकड़ों उपयोगी खनिज, रसायन, हारमोन्स, एन्जाईम्स, विटामीन, क्षार, पोषक तत्त्व, विष नाशक पदार्थ तथा रोग निवारक, पीड़ा को शान्त करने वाले, शरीर की प्रतिरोधक क्षमता और ताकत बढ़ाने वाले तत्त्व होते हैं, जो निष्क्रिय अंगों को सक्रिय बनाने, रक्त के शुद्धिकरण, पाचन एवं श्वसन तंत्र जैसे-विभिन्न शारीरिक क्रियाओं को सुव्यवस्थित, नियन्त्रित और संतुलित रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

शिवाम्बु में उपकारक तथा रोग प्रतिकारक ऐसे निर्दोष रासायनिक तत्त्व मिले हैं जो, रोगी और निरोगी दोनों के लिये उपादेय होते हैं। फलस्वरूप विश्व के आधुनिक दवा निर्माताओं ने शिवाम्बु से प्राप्त जीवनोपयोगी आवश्यक तत्त्वों तथा अन्य भौतिक तत्त्वों के योग से कैन्सर, एड्स, टी. बी., हृदय रोग, दमा, नपुसंकता, गुर्दा

आदि के असाध्य रोगों के उपचार हेतु बहुमूल्य प्राणदायिनी दवाइयों और इंजेक्शनों का व्यापक पैमाने पर निर्माण प्रारम्भ कर दिया हैं। हृदय रोगियों को दिया जाने वाला Urokine, जो महिलाएँ गर्भवती नहीं होती, उनके लिए दी जाने वाली Profasi तथा अन्य असाध्य रोगों के लिए उपयोगी Serocruption Bromocriptine, Meprate, Ukidon, Pergonal (11 MG), Metrodin HP Urofollitrophin (FHS) आदि अनेक दवाईयों के निर्माण में शिवाम्बु का प्रयोग होता है।

सभी रोगों की एक दवा :-

दुनियाँ में रोग मुक्त करने के लिए हजारों दवाईयाँ उपलब्ध हैं, जिनका रोगों की रोकथाम उपचार एवं परहेज के रूप में उनका सेवन किया जाता है। सभी दवाओं का शरीर के अंगों पर अपना अलग-अलग प्रभाव अथवा दुष्प्रभाव पड़ता है। आँख के रोगों की दवा कान में नहीं डाली जा सकती। नाक में डालने वाली दवा मुंह से नहीं ली जा सकती। परन्तु शिवाम्बु स्वयं के द्वारा स्वयं के शरीर से उनके रोगों की आवश्यकतानुसार निर्मित ऐसी दवा है, जिसका उपयोग चाहें कान हों या आंख, नाक हों या मुंह, त्वचा के रोग हो अथवा शरीर की आन्तरिक शुद्धि के लिए दिए जाने वाला एनिमा ही क्यों न हों, सभी में स्वस्थ रहने हेतु बेहिचक प्रयोग में लिया जा सकता है। अत: शिवाम्बु को अमरोली अथवा अमृत कहा जाए तो भी कोई अतिशयोक्ति नहीं होती।

मूत्र द्वारा साध्य - असाध्य रोगों की पहचान

प्रात:काल के प्रथम मूत्र की मध्य धारा को किसी कांच के बर्तन में संग्रह कर लें। उसमें एक बूंद तेल डालकर पश्चिम की तरफ मुख करके निम्न जानकारी प्राप्त करें –

1. यदि तेल की बूंद मूत्र में फैल जाये तो रोग साध्य होता है।
2. यदि तेल की बूंद मूत्र में न फैले तो रोग कष्ट साध्य होता है
3. यदि तेल की बूंद नीचे बैठ जाये तो रोग असाध्य होता है।
4. यदि तेल की बूंद पूर्व की तरफ आ जाये तो रोगी जल्दी अच्छा होगा। यदि दक्षिण की तरफ जाये तो शरीर में तकलीफ होगी। उत्तर की तरफ जाये तो रोग बना रहेगा। सर्प के आकार का सफेद हो जाये तो रोगी में वायु विकार होता है। छत्र की तरह यदि रक्त वर्ण हो जाये तो रोगी में पित्त विकार, परन्तु यदि मोती की भांति रेत के कण की तरह दिखने लगे तो, रोगी में कफ विकार होते हैं।

शिवाम्बु के प्रयोग की विधियाँ

शिवाम्बु का प्रयोग अलग अलग रोगों में अथवा रोकथाम हेतु अलग अलग ढंग से किया जाता है। पीने के लिए प्रातःकालीन प्रथम शिवाम्बु सर्वश्रेष्ठ होता है। **रात में निद्रा में व्यक्ति अपने मानवीय स्वभाव में ही होता है। कोई व्यक्ति कितना भी क्रूर, हिंसक, क्रोधी, निर्दयी, अशान्त क्यों न हो, निद्रा में तो वह शांत और तनाव मुक्त ही होता है। अतः उस समय शरीर में जो हारमोन्स का निर्माण होते हैं, वे विशेष स्वास्थ्य वर्धक होते हैं। अतः प्रातःकालीन शिवाम्बु अधिक लाभदायक होता है। परन्तु जो शान्त, तनाव मुक्त, समभाव की साधना करने वाले, ध्यान अथवा भक्ति में सदैवलीन रहते हैं, वे कभी भी अपने शिवाम्बु का प्रयोग कर सकते हैं।** अतः जो किन्हीं कारणों से प्रातःकालीन शिवाम्बु का नियमित सेवन न कर सकें, उन्हे स्वाध्याय, ध्यान, सामायिक, भक्ति के पश्चात् विसर्जित शिवाम्बु का सेवन करना चाहिए। लेखक ने स्वयं शिवाम्बु का सेवन विभिन्न परिस्थितियों में किया। जैसे भोजन के पूर्व, भोजन के बाद, यहां तक भोजन के बीच में, बिना उपवास दिन भर के शिवाम्बु का इत्यादि, फिर भी किसी भी प्रकार के दुष्प्रभावों का अनुभव नहीं किया। प्रातः काल शिवाम्बु सेवन के आधा घंटे पश्चात उषापान करने से आंतों की पूर्ण सफाई सरलता पूर्वक हो जाती है।

उपवास के साथ शिवाम्बु का सेवन करने से शरीर को ताकत मिलती है तथा दीर्घ तपस्या आसानी से की जा सकती है। अन्य समय का शिवाम्बु भी हानिकारक नहीं होता। शिवाम्बु औषधि नहीं रसायन हैं। अतः इसका प्रयोग मेरे व्यक्तिगत अनुभव के अनुसार कोई भी और कभी भी प्रयोग कर सकता है, परन्तु जो नियम और विधि के अनुसार शिवाम्बु का सेवन करता है, उसको बिना नियमों का पालन सेवन करने की अपेक्षा शीघ्र लाभ होता है। इसी कारण विदेशों में जहां माँसाहारी एवं शराब का सेवन अधिक होता है, शिवाम्बु का पान करने वालों के किसी भी प्रकार के दुष्प्रभाव पड़ने के उदाहरण लेखक की जानकारी में नही है, भले ही शिवाम्बु पान का लाभ उन्हें न मिला हो। शिवाम्बु पीने के बाद कम से कम एक घंटे तक कुछ भी खाना पीना नहीं चाहिए। आंखों में, कान में, मुंह में, एनिमा आदि के रूप में ताजा शिवाम्बु को ही उपयोग में लेना चाहिये, परन्तु त्वचा सम्बन्धी रोगों में जितना पुराना शिवाम्बु होता है, उतना अधिक प्रभावशाली होता है। **असाध्य रोगों में शिवाम्बु पीना, शिवाम्बु का एनिमा लेना, रोगग्रस्त निष्क्रिय भाग पर शिवाम्बु का मसाज करना अथवा उस भाग को शिवाम्बु से गीला रखा जाता है। व्यक्ति को शिवाम्बु का अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए अनुभवी शिवाम्बु चिकित्सक से इसके सेवन की विधि, परहेज एवं सावधानियों के बारे में विस्तृत परामर्श कर लेना चाहिये, अन्यथा अपेक्षित परिणाम प्राप्त नहीं होंगे, भले ही इसके दुष्परिणाम न भी हों।**

शिवाम्बु का स्वभाव पर प्रभाव

शिवाम्बु में विभिन्न प्रकार के हारमोन्स होने से इसके सेवन से मानव का स्वभाव बदलता हैं। व्यक्ति होशियार एवं मेधावी बनता है। स्मरण शक्ति तेज होती है। बुद्धि विकसित होती है। तनाव घटता है। निर्भयता एवं साहस विकसित होता है। चेहरे का तेज, वाणी में जोश, इन्द्रियों की क्षमता बढ़ती है। मनोबल दृढ़ होता है। जीवन में उत्साह बना रहता है। मन में शांति बढ़ती है। मांसाहारी को शाकाहारी बनने तथा दुर्व्यसनी को निर्व्यसनी बनने की स्वतः प्रेरणा मिलने लगती है और व्यक्ति सद्गुणों की तरफ प्रेरित होने लगता है। मन की शांति बढ़ती है, जिससे व्यक्ति का चिन्तन एवं विचार प्रभावित होते हैं। साधक, ध्यान, तप, आदि आत्म साधना में प्रगति करने लगता है अर्थात् शिवाम्बु का विधिवत् सेवन करने से शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक विकास में मदद मिलती है, जिसका विस्तृत विवेचन डामर तंत्र में किया गया है, जो अतिशयोक्ति नहीं परन्तु अनुभूति परक सनातन सत्य है।

शिवाम्बु और भोजन

शिवाम्बु का हमारे भोजन एवं भावों से सीधा सम्बन्ध होता है। शिवाम्बु में सभी तत्त्व होते हैं, जो हमारे भोजन में होते हैं तथा भावों के अनुसार हारमोन्स भी होते हैं। शिवाम्बु का स्वाद भोजन के अनुसार बदलता रहता है। शिवाम्बु के स्वाद एवं सुगंध के अनुसार शरीर में रोग का सही निदान किया जा सकता है। **स्वाद हीन, सुगंध हीन, प्रातःकालीन प्रथम विसर्जित होने वाला शिवाम्बु अच्छे पाचन एवम् स्वास्थ्य का प्रतीक होता है।** यदि शिवाम्बु का प्रयोग करते समय भोजन के साधारण नियमों का पालन किया जाये, मैदे, शक्कर एवं नमक का कम उपयोग किया जाये, तले, भुनें, चरखे, गर्म मसालों से मुक्त चटपटे भोजन से बचा जावें तथा साात्विक प्राकृतिक ऊर्जा से परिपूर्ण भोजन किया जाये तो, पुराने, असाध्य, मरणान्तिक रोगों में भी चमत्कारी परिणामों से रोगों में राहत मिलती है। ।

शिवाम्बु से होने वाले तात्कालिक उपचार एवं अन्य उपयोग

1. हिलते हुए दांतों को पुनः मजबूत करने के लिये तथा दांतों संबंधी अन्य रोगों (खड्डे भरने के अलावा) में ताजे शिवाम्बु को मुंह में भरकर दिन में तीन चार बार पंद्रह बीस मिनट घुमाने से रोग ठीक हो जाते हैं।

2. आंखों के सभी रोगों में, नेत्र ज्योति बढ़ाने के लिए, चश्मे के नम्बर कम करने के लिए, रोजाना तीन चार बार आंखों को ताजे शिवाम्बु को तीन चार मिनट ठंडा होने के पश्चात धोने से काफी लाभ होता है।

3. सांप, बिच्छु अथवा शरीर में अन्य जहर फैलने पर शिवाम्बु पीने से विष का प्रभाव समाप्त हो जाता है।

यदि रोगी का शिवाम्बु उपलब्ध न हों तो अन्य स्वस्थ व्यक्ति का शिवाम्बु तुरंत पिलाया जा सकता है।

4. यदि रोगी का पेशाब बंद हो तो, अन्य स्वस्थ व्यक्ति का शिवाम्बु पिलाने से मूत्र में आया अवरोध दूर हो जाता है। उसके पश्चात् रोगी अपने स्वयम् के शिवाम्बु का सेवन कर सकता है।

5. रोगी को जहाँ तक हो, अपने शिवाम्बु का ही सेवन करना चाहिये, भले ही मधुमेह के कारण मूत्र में सुगर अथवा केंसर आदि रोगों के कारण, उसमें पस अथवा बदबू कितनी ही क्यों नहीं आती हो।

6. हृदय रोग के लिये राम बाण समझे जाने वाले यूरोकाइन नामक इंजेक्शन विदेशों में सार्वजनिक मूत्रालयों से प्राप्त शिवाम्बु से ही बनाया जाता है। जिसकी भारत में कीमत सैकड़ों रूपये प्रति इंजेक्शन होती हैं तथा प्रतिवर्ष सरकार उस पर करोड़ों रुपयों की विदेशी मुद्रा खर्च करती है। **शिवाम्बु में शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता होने के कारण विदेशों में अनेकों शल्य चिकित्सक, शल्य चिकित्सा प्रारम्भ करने से पहले एवं बाद में शिवाम्बु का इंजेक्शन देते हैं। बच्चों को शिवाम्बु पिलाने से उनको चेचक, पोलियों, डी पी टी, हेपेटाईस जैसे टीकों के लगाने की आवश्यकता नहीं होती और न टीकों के दुष्प्रभावों का खतरा ही रहता है।**

7. भारत की कुछ कम्पनियाँ गर्भवती महिलाओं का मूत्र अस्पतालों एवं पैथालोजिकल लेबोरेटरीज के माध्यम से एकत्रित कर, पिछले कई वर्षों से विदेशों में निर्यात कर रही है। जो प्रोफसी नामक इंजेक्शन बनाने के काम में आता है। यह इंजेक्शन गर्भपात रोकने एवं नपुंसकता दूर करने में दुनियाँ भर में काम में लिया जाता है।

8. सभी असाध्य रोगों में चाहे कैंसर हों अथवा एड्स या एंथ्रेक्स शरीर की प्रतिकारात्मक क्षमता बढ़ाने हेतु शिवाम्बु का प्रयोग दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है, जो शिवाम्बु के चमत्कारी प्रभावों का प्रतीक है।

9. शिवाम्बु सर्वोत्तम एन्टीबायोटीक, सेविंग क्रीम, सेविंग का साबुन, दाढ़ी बनाने के लिए कार्य में आने वाला साबुन तथा बाद में उपयोग में लिया जाने वाला सेव-लोशन, बालों को मुलायम बनाने वाला शैम्पू, दांतों को साफ करने वाला दंत मंजन है। इसी कारण विदेशों में सौंदर्य प्रसाधनों तथा दंत मंजनों में शिवाम्बु का प्रयोग विशेष कर फ्रांस में निरंतर बढ़ता जा रहा है। आज सौंदर्य प्रसाधन के नाम पर जीवों पर जो निर्दयता, क्रूरता, हिंसा हो रही है उन सबका शिवाम्बु एकमात्र सस्ता, सुन्दर, प्रभावशाली दुष्प्रभावों से रहित अहिंसक विकल्प है।

10. उषापान करने वालों को प्रात: प्रथम शिवाम्बु का पान करना चाहिए। उसके आधा घंटे पश्चात् उषापान कर भ्रमण करने अथवा पेट का हलका व्यायाम करने से आंतों की सफाई प्रभावशाली ढंग से हो जाती है।

11. मुँह में 20 मिनट तक शिवाम्बु रख अन्दर ही अन्दर घुमाने के साथ-साथ, आंखों को शिवाम्बु से धोने तथा कानों में शिवाम्बु डालने से आंख और कानों की कार्य क्षमता बढ़ती है।

12. नासाग्र से स्वमूत्र पान करने से श्वसन तन्त्र मजबूत होता है तथा दमा, तपेदिक आदि रोग जल्दी ठीक होते हैं।

13. हथेली और पगथली में शिवाम्बु का मसाज करने से वहां जमें विजातीय तत्त्व दूर होने लगते हैं और व्यक्ति को अनेक रोगों से सहज राहत मिलने लगती है।

14. श्वास की बीमारी वालों को सीने पर नियमित शिवाम्बु का मसाज करने से फेंफड़ों में जमा कफ और विजातीय अवरोधक तत्त्व दूर होने लगते हैं। फलतः श्वास रोगों में राहत मिलती है।

शिवाम्बु गरम प्रकृति का होने से शिवाम्बु पान की एक जैसी विधि का निर्धारण न्यायसंगत नहीं हो सकता। सर्दी की मौसम में अथवा कफ प्रकृति वाले उसका आवश्यकतानुसार स्वविवेक के साथ अधिकाधिक प्रयोग किया जा कर सकते हैं। वर्षा की मौसम में शिवाम्बु की मात्रा सर्दी की अपेक्षा थोड़ी कम तथा गर्मी की मौसम में, तथा पित्त प्रकृति वालों को शिवाम्बु का पान कम करना चाहिए।

जो व्यक्ति दुर्व्यसनों से ग्रसित हैं, अथवा किसी प्रकार की दवा ले रहा है अथवा जिसका खानपान सात्त्विक नहीं है, उसको शिवाम्बु का अधिक सेवन करना चाहिए, ताकि थोड़े समय में ही उसके दुर्व्यसन छूट जाते हैं, दवा बंद हो जाती है तथा सात्त्विक खाने के प्रति आकर्षण बढ़ने लगता है। इसी प्रकार जिनके शरीर में मोटापा अथवा चर्बी ज्यादा है, उन्हें शिवाम्बु का सेवन अधिक मात्रा में करना चाहिये तथा जो दुबले पतले हैं, उन्हे शिवाम्बु का सीमित मात्रा में ही सेवन करना चाहिए।

विविध चिकित्साओं के साथ शिवाम्बु का प्रयोग

हथेली और पगथली में शिवाम्बु का मर्दन करने से वहां जमें विकार अपना स्थान छोड़ने लगते हैं। अतः उसके पश्चात किया गया एक्युप्रेशर उपचार, अधिक प्रभावशाली हो जाता है। शिवाम्बु को चुम्बक पर रखने से उसमे चुम्बकीय गुण, रंगीन बोतलों में धूप में रखने से अथवा अन्य विधि द्वारा रंगों की प्रकाश किरणे डालने से रंगों के गुण, पिरामिड पर रखने से, अतिरिक्त ऊर्जा का संचय होने से, उसकी प्रभावशालीता बढ़ जाती है, तथा एक साथ समग्र चिकित्सा का लाभ मिलने लगता है।

शिवाम्बु के प्रति जनजागरण

गुजरात के भावनगर विश्व विद्यालय में शिवाम्बु पर डिप्लोमा पाठ्यक्रम चालू कर दिया गया हैं। महाराष्ट्र के कोल्हापुर में भारत का प्रथम शिवाम्बु चिकित्सालय कार्यरत है। गुजरात, महाराष्ट्र और आगरा में भी शिवाम्बु शोध संस्थान कार्यरत हैं तथा सैकड़ों अनुभवी शिवाम्बु प्रेमी रोगियों को अपने अनुभव के आधार पर परामर्श देकर

मानव सेवा के कार्य में जुटे हैं।

जिस घर में स्वमूत्र चिकित्सा को पारिवारिक चिकित्सा के रूप में मान्यता मिल जाती है अर्थात सभी परिजन अपना लेते हैं, वह परिवार बड़ा भाग्यशाली होता है। उस घर में चिकित्सकीय खर्च बन्द हो जाता है, उपचार हेतु समय का दुरूपयोग समाप्त हो जाता है। घर के बालक-बालिका, प्रोढ़-प्रोढा–वृद्धा सभी रोग मुक्त हो दीर्घायु को प्राप्त करते हैं।

आज सैकड़ों आधुनिक चिकित्सा विशेषज्ञ, राजनेता, फिल्म अभिनेता, शिक्षाविद् शिवाम्बु के प्रति जन जागरण कर अपने स्वास्थ्य हेतु स्वमूत्र पान कर रहे हैं।

शिवाम्बु पर प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन गोआ में, दूसरा जर्मनी में आयोजित हुआ और तीसरा ब्राजील में इस वर्ष हो रहा है, जो शिवाम्बु के प्रति सम्पूर्ण विश्व में आकर्षण का प्रतीक है। भारत में आगरा में जनवरी 2002 में जो शिवाम्बु पर राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ, जिसमें शिवाम्बु प्रेमियों ने समापन समारोह में सामूहिक रुप से स्वमूत्र का पान कर पत्रकारों एवं दर्शकों के बीच शिवाम्बु के प्रति घृणा दूर करने का प्रदर्शन किया।

शिवाम्बु पर आज सैकड़ों पुस्तके एवं आलेख विश्व भर में विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित हो रहे हैं, फिर भी पूर्वाग्रसित मान्यताओं तथा स्वमूत्र के प्रति घृणा भावना के कारण जनसाधारण व्यापक रूप से इस पद्धति को नहीं अपना पाया हैं।

सरकारी उपेक्षा एवं हमारा दायित्व

भारत जैसे गरीब देश के लिए शिवाम्बु जैसी सरल, सस्ती, अहिंसक, वैज्ञानिक, प्रभावशाली, सहज, सुलभ, स्वावलम्बी पद्धति जो सबके लिए सभी स्थानों पर उपलब्ध हो, परन्तु सही जानकारी एवं भ्रामक धारणाओं के कारण उपयोग में न ली जाए, हमारा दुर्भाग्य ही समझना चाहिये। अतः मानवतावादी दृष्टिकोण वाले सभी स्वास्थ्य प्रेमियों का यह परम कर्तव्य हो जाता है कि, जन जन तक शिवाम्बु सम्बन्धी जानकारी पहुंचावें तथा गरीब, अशिक्षित स्वास्थ्य प्रेमियों को रोग मुक्त जीवन व्यतीत करने के पुनीत सेवा कार्य में अपनी अहं भूमिका निभाए। **"शिवाम्बु चिकित्सा में रोग के निदान की भी आवश्यकता नहीं होती। क्योंकि शरीर में रोगों की आवश्यकतानुसार ही इसका निर्माण होता है। शिवाम्बु का सम्यक् उपयोग अपने आप में चिकित्सा है तथा आधुनिक चिकित्सा में कार्य में ली जाने वाली अनेकों दवाईयों का एक मात्र प्रभावशाली विकल्प।"**

अज्ञान सभी दुःखों का मूल है ।

चुम्बकीय चिकित्सा पद्धति

संतुलन ही स्वास्थ्य का मूलाधार है-

रोगों की रोकथाम के लिये आवश्यक है कि शरीर में जमें अनावश्यक तत्त्वों को बाहर निकाला जावे एवम् शरीर के सभी अंग उपांगों को संतुलित रख शारीरिक क्रियाओं को नियंत्रित रखा जाये। जो अधिक सक्रिय हैं, उन्हें शान्त किया जावे तथा जो असक्रिय हैं, उन्हे सक्रिय किया जावे। असंतुलन ही सभी रोगों की जड़ है। चुम्बक इन सभी कार्यों में प्रभावशाली होता है। अतः रोगों के उपचार एवम् बचाव में विभिन्न प्रकार की चुम्बकीय ऊर्जा का उपयोग दिन प्रतिदिन लोकप्रिय होता जा रहा है। चुम्बकीय ऊर्जा में शरीर के उन सभी रोगों को दूर करने की ताकत होती है, जो शारीरिक क्रियाओं से विशेष रूप से सम्बन्धित होते हैं। उसका प्रभाव हड्डी अथवा शरीर के अन्य अवयवों तक सीधे पहुंचने की क्षमता के कारण उपचार शीघ्र एवम् प्रभावशाली होता है।

चुम्बकीय ऊर्जा की विशेषता -

बिजली के प्रवाह हेतु विद्युत चालक धातु (Conductor) की आवश्यकता होती है। अन्य अवरोधक वस्तुओं (Non conductor) में बिजली का प्रवाह नहीं हो सकता। परन्तु चुम्बकीय तरंगों के प्रवाह हेतु किसी विशेष प्रकार के धातु की आवश्यकता नहीं होती। प्रायः अधिकांश पदार्थ चुम्बकीय तरंगों का पूर्ण प्रतिरोध नहीं कर पाते। अतः ऊर्जा कुछ अंशों में लकड़ी, कांच एवं अन्य बिजली की अवरोधक वस्तुओं में भी प्रवाहित हो सकती है। फिर भी लोहे अथवा उससे बनी वस्तुओं के साथ चुम्बक का विशेष आकर्षण होता है। जहाँ जहाँ लोहे के उपकरण होते हैं, चुम्बकीय ऊर्जा का अधिकांश प्रवाह प्राथमिकता के आधार पर पहले उनमें होता है। उनकी अनुपस्थिति में उस ऊर्जा का प्रवाह अन्य पदार्थों में प्रायः संभव होता है। **अतः पृथ्वी और हमारे मध्य जितने अधिक लोह उपकरण होते हैं, उतना ही कम पृथ्वी के चुम्बक से हमारा सम्पर्क रहता हैं।**

पृथ्वी के चुम्बक का हमारे जीवन पर प्रभाव

वैज्ञानिकों की ऐसी मान्यता है कि सारे ब्रह्माण्ड का मूलाधार चुम्बकीय शक्ति है एवं उसके प्रभाव से ही सारे ग्रहों, उपग्रहों, नक्षत्रों को एक दूसरे से जुड़े रहने की शक्ति प्राप्त होती है। पृथ्वी हों या सूर्य, चन्द्रमा अथवा अन्य ग्रह एवं नक्षत्र सभी चुम्बकीय ऊर्जा से प्रभावित होते हैं, जिनका हमारे जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। सारा ज्योतिष शास्त्र

उनके प्रभावों पर ही आधारित होता है। पृथ्वी स्वयं एक शक्तिशाली चुम्बक है एवम् प्राणीमात्र के शरीर में भी चुम्बकीय शक्ति होती है। **जब तक पृथ्वी के चुम्बक का हमारी चुम्बकीय ऊर्जा पर संतुलन और नियंत्रण रहता है तब तक हम स्वस्थ रहते हैं। जितने जितने हम प्रकृति के समीप खुले वातावरण में रहते हैं, हमारे स्वास्थ्य में निश्चित रूप से सुधार होता है।** परन्तु आजकल हम चारों तरफ चुम्बकीय शक्ति को असंतुलित करने वाले वातावरण के बीच रहते हैं। हम खाने-पीने में प्रायः स्टील के बर्तनों का उपयोग करते हैं। आवागमन के लिये साईकल, स्कूटर, कार, बस, रेल, हवाई जहाज या स्टीमर आदि का उपयोग करते हैं। मकानों में आर. सी. सी. का प्रचलन बढ़ता जा रहा है। अधिकांश मशीनें, उपकरण, फर्नीचर आदि जिन्हें हम प्रतिदिन काम में लेते हैं, लोहे की बनी होती है, जिससे पृथ्वी के चुम्बक का प्रभाव हमारे शरीर में घटता जा रहा है। हम कुएँ का पानी उपयोग में लेने के बजाय, जो पानी कार्य में लेते हैं, वह लोहे की पाइप लाईनों में से होकर आता है। दूसरी तरफ आज पृथ्वी का अन्धाधुन्ध दोहन किया जा रहा है, जिससे उसकी चुम्बकीय ऊर्जा कम होती जा रही है एवं उसका प्रभाव घटता जा रहा है। **शरीर में चुम्बकीय ऊर्जा का असंतुलन एवं कमी अनेक रोगों का मुख्य कारण होती है। यदि इस असंतुलन को दूर कर अन्य माध्यम से पुनः चुम्बकीय ऊर्जा उपलब्ध करा दी जावे तो रोग दूर हो सकते हैं। चुम्बकीय चिकित्सा का यहीं सिद्धान्त है। इसी कारण खुले वातावरण में विचरण करने वाले, गाँवों में रहने वाले, कुएँ का पानी पीने वाले, पैदल चलने वाले, अपेक्षाकृत अधिक स्वस्थ रहते हैं। जितना-जितना पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र से संपर्क बढ़ता है, उतनी उतनी, शरीर की सारी क्रियायें संतुलित एवम् नियन्त्रित होती है, उतने उतने हम रोग मुक्त होते जाते हैं।**

विभिन्न क्षेत्रों में चुम्बक के प्रयोग

आज विश्व भर में चुम्बकीय ऊर्जा का उपयोग सभी क्षेत्रों में बढ़ता जा रहा है। **कृषि में चुम्बकीय ऊर्जा से प्रभावित पानी का उपयोग करने से अन्य सभी परिस्थितियाँ एक होने के बावजूद उत्पादन 10 से 15 प्रतिशत बढ़ जाता है। निर्माण कार्यों में ऐसे पानी एवं पदार्थों के प्रयोग से निर्माण में काम आने वाली सीमेन्ट, चूना जैसे पदार्थों की ताकत 15 से 20 प्रतिशत बढ़ जाती है। शल्य चिकित्सा के पश्चात् चुम्बकीय ऊर्जा के उपयोग से शरीर की हीलिंग क्षमता बढ़ जाती है।** अतः बहुत से देशों में शल्य चिकित्सा के पश्चात् जो रूई, पट्टियें आदि लगाई जाती हैं, वे चुम्बकीय ऊर्जा से ऊर्जित होती है, ताकि घाव जल्दी भर सकें। चुम्बकीय ऊर्जा पर शोध, विविध क्षेत्रों में हो रही है, एवम् उसके जो प्रभावशाली परिणाम आ रहे हैं, वे हमारी पूर्वग्रसित मान्यताओं को झकझोर देने वाले हैं। चुम्बक प्रभावशाली दर्दनाशक है।

वैज्ञानिकों का ऐसा निष्कर्ष है कि चुम्बक का थोड़ा या ज्यादा प्रभाव प्रायः सभी पदार्थों पर पड़ता है। चुम्बक की विशेषता है कि वह किसी भी अवरोधक को पार कर अपना प्रभाव छोड़ने की क्षमता रखता है। जिस

प्रकार बेटरी चार्ज करने के पश्चात् पुनः उपयोगी बन जाती है, उसी प्रकार शारीरिक चुम्बकीय प्रभाव को चुम्बकों द्वारा संतुलित एवम् नियन्त्रित किया जा सकता है। चुम्बक का प्रभाव हड्डी जैसे कठोरतम भाग को पार कर सकता है, अतः हड्डी सम्बन्धी दर्द निवारण में चुम्बकीय चिकित्सा रामबाण के तुल्य सिद्ध होती है।

चुम्बकीय चिकित्सा की विशेषता

चुम्बकीय चिकित्सा पद्धति पूर्णतया वैज्ञानिक एवम् प्राकृतिक नियमों पर आधारित है। यह सहज, सरल, पीड़ा रहित, पूर्ण अहिंसक, दुष्प्रभावों से रहित और सस्ती है। इसके उपचार हेतु शरीर विज्ञान की विशेष जानकारी आवश्यक नहीं। अन्य चिकित्सा पद्धतियों द्वारा उपचार कराने के साथ भी इसको अपनाया जा सकता है। रोगी स्वयं घर बैठे बैठे अपना उपचार कर सकता है, न ज्यादा स्थान चाहिये, न बड़े बड़े खर्चीले अस्पताल अथवा रासायनिक प्रयोगशालायें। स्थायी चुम्बक से अनेक व्यक्तियों का अनेक वर्षों तक उपचार किया जा सकता है तथा प्रभाव कम होने पर उन चुम्बकों को बैटरी की भांति पुनः चार्ज किया जा सकता हैं। चुम्बक को गिराने, धूप या अग्नि के पास रखने से चुम्बकीय क्षमता क्षीण भी हो जाती है।

चुम्बकीय चिकित्सा पद्धति में किसी भी प्रकार के टीके, दवाई, मालिश अथवा गहरे दबाव की आवश्यकता नहीं होती। केवल रोग के अनुसार चुम्बकों को पगथली, हथेली और रोगग्रस्त स्थान पर थोड़े समय के लिये स्पर्श करना पड़ता है। पथ्य का उतना परहेज नहीं रखना पड़ता, जितना अन्य चिकित्सा पद्धतियों में आवश्यक होता है। रोग मुक्त होने के पश्चात् चुम्बकों का उपयोग छोड़ने में कोई कठिनाई नहीं होती। जैसा कि आजकल चन्द रोगों में दवाई जीवन का आवश्यक अंग बन जाती है। यह पद्धति सभी रोगों के उपचार तथा बचाव दोनों में सक्षम होती हैं। रोग की प्रारम्भिक अवस्था में तो इस पद्धति से शीघ्र लाभ पहुंचता ही है, परन्तु अनेक असाध्य रोगों में भी इससे राहत मिलती है। चुम्बक शरीर से पीड़ा दूर करने में बहुत प्रभावशाली है। घावों को शीघ्र भरता है। रक्त संचार ठीक करता है एवं हड्डियों को जोड़ने में मदद करता है।

चुम्बकीय चिकित्सा के अनुभूत प्रयोग

लेखक के सन् 1990 में ट्रक से दुर्घटनाग्रस्त होने पर कान के नीचे की हड्डी एवं टोढी का फ्रेक्चर हो गया। अहमदाबाद के सुप्रसिद्ध चिकित्सक माननीय श्री एस के दीवान द्वारा शल्य चिकित्सा की गई। शल्य चिकित्सा के कारण पूरे जबाड़े पर छब्बीस टांके लगे। तीन दिन पश्चात् अस्पताल से छुट्टी मिलने के पश्चात लेखक ने बिना किसी दवा मात्र चुम्बक द्वारा स्वयं का उपचार परिजनों, मित्रों, चिकित्सकों के न चाहते हुये भी किया। चुम्बकीय ऊर्जा के सिद्धान्तों की सत्यता एवं चमत्कारी प्रभाव पर आत्म विश्वास होने के कारण, आधे से कम समय में स्वयं का उपचार

सफलता पूर्वक करने में सफल रहा। इसी कारण लेखक की स्वावलंबी चिकित्साओं की प्रभावशालीता के प्रति आस्था दृढ़ हुई।

दो अप्रेल 1991 को पुनः लेखक के दाहिने पैर की हीप्स बोन पर स्कूटर दुर्घटना से पुनः दो इंच की दरार पड़ गई तथा उन्हें भयंकर वेदना होने लगी। चिकित्सकों ने कम से कम 21 दिन बिना हिले डुले आराम करने का परामर्श दिया। परन्तु चुम्बकों के निरन्तर प्रयोग से उनकी पीड़ा तुरन्त शान्त होने लगी। परिणाम स्वरूप लेखक का आत्म विश्वास एवं मनोबल दृढ़ हुआ। परिणाम स्वरूप बिना किसी दर्दनाशक दवा के प्रयोग मात्र 4-5 दिनों के चुम्बकीय उपचार से अपना नियमित कार्यक्रम प्रारम्भ कर दिया। **जीवन की इन दोनों घटनाओं के कारण ही अपने इंजीनियरिग व्यवसाय से निवृत्त हो, लेखक ने प्रभावशाली, स्वावलम्बी मौलिक अहिंसात्मक चिकित्साओं के प्रति सजगता पैदा करने का मानस बनाया।**

चुम्बकीय उपचार का सिद्धान्त एवं विशेषतायें

शरीर मूल रूप से एक विद्युत चुम्बकीय क्षेत्र होता है। शरीर की प्रत्येक कोशिका (सेल) विद्युत् की एक इकाई है और उसका अपना क्षेत्र होता है। विद्युत के समान सबसे अधिक शक्तिशाली चुम्बकत्व मस्तिष्क में पैदा होता है और वह भी जब व्यक्ति निद्रा में होता है। ये चुम्बकीय क्षेत्र शरीर एवं मन में परिवर्तनों के अनुसार घटते बढ़ते रहते हैं। चुम्बकीय चिकित्सा का मूल मन्त्र यह है कि शरीर में चुम्बकीय क्षेत्रों का संतुलन बनाये रखा जाये। चुम्बकीय सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक चुम्बक में प्रायः दो ध्रुव होते हैं, एक को उत्तरी ध्रुव व दूसरे को दक्षिणी ध्रुव कहते हैं। सारे आलेख में जहाँ उत्तरी अथवा दक्षिणी ध्रुव की चर्चा की गयी है, वहाँ उपचार हेतु कार्य में लिए जाने वाले चुम्बकों के ध्रुवों को ही समझना चाहिए, न कि भौगोलिक उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव। **छड़ी वाले चुम्बक को धागे से बांध सीधा लटकाने पर जो किनारा भौगोलिक उत्तर की तरफ स्थिर होता है, यानि जो पृथ्वी के उत्तरी ध्रुव की तरफ आकर्षित होता है, चुम्बकीय चिकित्सा में उस ध्रुव को दक्षिणी ध्रुव कहते हैं।** बहुत से चुम्बक उत्पादक उस पर (True South Pole) यानी सही दक्षिणी ध्रुव लिखते हैं तथा दूसरा किनारा उससे विपरीत यानी उत्तरी ध्रुव (True North Pole) होता है। दो चुम्बकों के विपरीत ध्रुवों में आकर्षण होता है तथा समान ध्रुव एक दूसरे को दूर फैंकते हैं। **दक्षिणी ध्रुव का प्रभाव गर्मी बढ़ाना, फैलाना, उत्तेजित करना, सक्रियता बढ़ाना होता है, जबकि उत्तरी ध्रुव का प्रभाव इसके विपरीत शरीर में गर्मी कम करना, अंग सिकोड़ना, शांत करना, सक्रियता को नियन्त्रित एवम् सन्तुलित करना आदि होता है।** चुम्बकीय ऊर्जा के माँप की इकाई गौस अथवा ओस्टेड के नाम से जानी जाती है। जितना ज्यादा शक्तिशाली चुम्बक होता है, उतना ही अधिक चुम्बकीय धातुओं के प्रति उसका आकर्षण होता है। छोटे बच्चों के कम शक्तिवाले चुम्बक को लगाना चाहिये। अन्य व्यक्तियों के चेहरे तथा हृदय जैसे कोमल भाग पर प्रायः

कम शक्तिवाले चुम्बक लगाने चाहिये। परन्तु असाध्य एवम् भयंकर रोगों में ज्यादा शक्ति वाले चुम्बकों का प्रयोग अनुभवी चिकित्सकों के मार्ग निर्देशन में किया जा सकता है।

चुम्बकीय उपचार की मुख्य तीन विधियाँ

हमारे शरीर के चारों तरफ चुम्बकीय प्रभाव क्षेत्र होता है। जिसे आभा मण्डल भी कहते हैं। प्राय: दाहिने हाथ से हम अधिक कार्य करते हैं। अत: दाहिने भाग में दक्षिणी ध्रुव के गुण वाली ऊर्जा तथा बांयें भाग में उत्तरी ध्रुव के गुण वाली ऊर्जा का प्राय: अधिक प्रभाव होता है। अत: चुम्बकीय ऊर्जा के संतुलन होने हेतु बायीं तरफ दक्षिणी ध्रुव एवं दाहिनी तरफ चुम्बक के उत्तरी ध्रुव का स्पर्श करने से बहुत लाभ होता है। शरीर के चुम्बक का, उपचार वाले उपकरण चुम्बक से आकर्षण होने लगता है और शरीर में चुम्बकीय ऊर्जा का संतुलन होने लगता है। परन्तु यह सिद्धान्त सदैव सभी परिस्थितियों में विशेषकर रोगावस्था में लागू हो, आवश्यक नहीं? अत: स्थानीय रोगों में चुम्बकीय गुणों की आवश्यकतानुसार चुम्बकों का स्पर्श भी करना पड़ सकता है। फिर भी चुम्बकीय उपचार की निम्न तीन मुख्य विधियाँ मुख्य होती है।

1. रोगग्रस्त अंग पर आवश्यकतानुसार चुम्बक का स्पर्श करने से, चुम्बकीय ऊर्जा उस क्षेत्र में संतुलित की जा सकती है। स्थायी रोगों, दर्द आदि में इससे काफी राहत मिलती हैं।

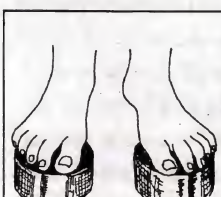

दोनों पगथली के नीचे चुम्बक लगाने की विधि (चित्र नं. 151)

2. एक्युप्रेशर की रिफलेक्सोलोजी के सिद्धान्तानुसार शरीर की सभी नाड़ियों के अंतिम सिरे दोनों हथेली एवम् दोनों पगथली के आसपास होते हैं। इन क्षेत्रों को चुम्बकीय प्रभाव क्षेत्र में रखने से वहां पर जमें विजातीय पदार्थ दूर हो जाते हैं तथा रक्त एवम् प्राण ऊर्जा का शरीर में प्रवाह संतुलित होने लगता है, जिससे रोग दूर हो जाते हैं। इस विधि के अनुसार दोनों हथेली एवम् दोनों पगथली के नीचे कुछ समय के लिये चुम्बक को स्पर्श कराया जाता है। दाहिनी हथेली एवम् पगथली के नीचे सक्रियता को संतुलित करने वाला उत्तरी ध्रुव तथा बांयीं पगथली एवम् हथेली के नीचे शरीर में सक्रियता बढ़ाने वाला दक्षिणी ध्रुव लगाना चाहिये।

हथेली के नीचे चुम्बक लगाने की विधि (चित्र नं.152)

3. चुम्बकीय प्रभाव क्षेत्र में किसी पदार्थ अथवा द्रव्य, तरल पदार्थों को रखने से उसमें चुम्बकीय गुण प्रकट होने लगते हैं जैसे: जल, दूध, तेल आदि तरल पदार्थों में चुम्बकीय ऊर्जा का प्रभाव बढ़ाकर उपयोग करने से काफी लाभ पहुंचता है।

चुम्बकीय जल का उपयोग

चुम्बक के प्रभाव को पानी, दूध , तेल एवं अन्य द्रवों में डाला जा सकता है। शक्तिशाली चुम्बकों पर ऐसे द्रव रखने से थोड़े समय में ही उनमें चुम्बकीय गुण आने लगते हैं। जितनी देर उसको चुम्बकीय प्रभाव में रखा जाता है, चुम्बक हटाने के पश्चात् लगभग उतने लम्बे समय तक उसमें चुम्बकीय प्रभाव रहता है। प्रारम्भ के 10-15 मिनटों में ही 60 से 70 प्रतिशत चुम्बकीय प्रभाव आ जाता है। परन्तु पूर्ण प्रभावित करने के लिये द्रवों को कम से कम शक्तिशाली चुम्बकों के 6 से 8 घंटे तक प्रभाव में रखना पड़ता है । चुम्बक को हटाने के पश्चात् धीरे धीरे द्रव में चुम्बकीय प्रभाव क्षीण होता जाता है। चुम्बकीय जल बनाने के लिये पानी को स्वच्छ कांच की गिलास अथवा बोतलों में भर लकड़ी के पट्टे पर शक्तिशाली चुम्बकों के ऊपर रख दिया जाता है। 8-10 घंटे चुम्बकीय क्षेत्र में रहने से उस पानी में चुम्बकीय गुण आ जाते हैं। उत्तरी ध्रुव के सम्पर्क वाला उत्तरी ध्रुव का पानी तथा दक्षिणी ध्रुव के सम्पर्क वाला दक्षिणी ध्रुव के गुणों वाला पानी बन जाता है। दोनों के संपर्क में रखने से जो पानी बनता है उसमें दोनों ध्रुवों के गुण आ जाते है। **तांबे के बर्तन में S Pole (दक्षिणी ध्रुव) तथा चांदी के बर्तन मे उत्तरी ध्रुव (N Pole) द्वारा ऊर्जा प्राप्त पानी अधिक प्रभावशाली एवं गुणकारी होता है।**

दक्षिणी ध्रुफ की दवा बनाने की विधि (चित्र नं. 153) उत्तरी ध्रुव की दवा बनाने की विधि (चित्र नं.154) दोनों ध्रुवों की दवा बनाने की विधि (चित्र नं.155)

चुम्बकीय जल की मात्रा का सेवन रोग एवं रोगी की स्थिति के अनुसार किया जाता है। स्वस्थ व्यक्ति भी यदि चुम्बकीय जल का नियमित सेवन करें तो, शरीर की रोग निरोधक क्षमता बढ़ जाती है। रोग की अवस्थानुसार चुम्बकीय जल का प्रयोग प्रतिदिन 2-3 बार किया जा सकता है। हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि चुम्बकीय प्रभाव से पानी दवाई बन जाता है । अत: उसको सादे पानी की तरह आवश्यकता से अधिक मात्रा में नहीं पीना चाहिये।

चुम्बक के अन्य उपचारों के साथ आवश्यकतानुसार चुम्बकीय पानी पीने से उपचार की प्रभावशीलता बढ़ जाती है। अत: चुम्बकीय उपचार से आधा घंटे पूर्व शरीर की आवश्यकतानुसार चुम्बकीय पानी अवश्य पीना चाहिये।

चुम्बकीय जल की भांति यदि दूध को भी चन्द मिनट तक चुम्बकीय प्रभाव वाले क्षेत्र में रखा जाये तो, वह

शक्तिवर्द्धक बन जाता है। इसी प्रकार किसी भी तेल को 45 से 60 दिन चुम्बकीय क्षेत्र में लगातार रखने से उसकी ताकत बढ़ जाती है। ऐसा तेल बालों में इस्तेमाल करने से बालों सम्बन्धी रोग जैसे गंजापन, समय से पूर्व सफेद होना ठीक होते हैं। चुम्बकीय तेल की मालिश भी साधारण तेल से ज्यादा प्रभावकारी होती है। जितने लम्बे समय तक तेल को चुम्बकीय प्रभाव क्षेत्र में रखा जाता है, उतनी लम्बी अवधि तक उसमें चुम्बकीय गुण रहते हैं। थोड़े थोड़े समय पश्चात् पुनः थोड़े समय के लिये चुम्बकीय क्षेत्र में ऐसा तेल रखने से उसकी शक्ति पुनः बढ़ायी जा सकती है। जोड़ों के दर्द में ऐसे तेल की मालिश अत्यधिक लाभप्रद होती है। दक्षिणी ध्रुव से प्रभावित दूध विकसित होते हुए बच्चों के लिये बहुत लाभप्रद होता है। दोनों ध्रुवों से प्रभावित दूध शक्तिवर्धक होता है । दोनों ध्रुवों से प्रभावित तेल बालों की सभी विसंगतियां दूर करता है।

सिर पर लगाने अथवा मानसिक रोगों के लिये चुम्बकीय ऊर्जा से ऊर्जित नारियल का तेल तथा जोड़ों के दर्द हेतु सूर्यमुखी, सरसों अथवा तिल्ली का चुम्बकीय तेल अधिक गुणकारी होता है।

चुम्बकीय चिकित्सा के प्रभावशाली प्रयोग

चुम्बकीय चिकित्सा सामान्यतया लगभग 10 से 15 मिनट एक स्थान पर करनी चाहिये, परन्तु पुराने एवम् असाध्य रोगों में चिकित्सकों के परामर्श एवम् मार्ग-निर्देशन में समय परिस्थितियों एवं रोगी की अवस्था के अनुरूप निश्चित की जाती है। सामान्यतया चुम्बक चिकित्सा करते समय रोग में वृद्धि नहीं होती, परन्तु प्रारम्भ में यदि पीड़ा कुछ बढ़ जावे तो, उसका कारण यह हो सकता है कि, चुम्बक पीड़ा को दूर करने के लिये, विकारों को शरीर से बाहर निकाल रहा है। पीड़ा पुनः थोड़े समय पश्चात स्वतः कम हो जाती है और उसको घटाने के लिये किसी अलग उपचार की आवश्यकता नहीं होती। **चुम्बकीय उपचार करते समय इस बात का ध्यान रहे कि, रोगी को सिर में भारीपन न लगें, चक्कर आदि न आवें। ऐसी स्थिति में तुरन्त चुम्बक हटाकर धरती पर नंगे पैर घूमना चाहिये अथवा एल्यूमिनियम या जस्ते पर खड़े रहने अथवा स्पर्श करने से शरीर में से चुम्बक चिकित्सा द्वारा किया गया अतिरिक्त चुम्बकीय प्रभाव कम हो जाता है।** रक्त के अधिक दबाव वाले रोगियों को चुम्बक चिकित्सा का समय धीरे धीरे बढ़ाना चाहिये । **दाहिनी हथेली के नीचे और गले के दाहिने भाग में धड़कन वाले स्थान पर उत्तरी ध्रुव स्पर्श करने से उच्च रक्तचाप तुरन्त कम होने लगता है** । यदि इस चुम्बक को किसी तेज गति वाले वाब्रेटर में लगाकर उपचार किया जाये तो चन्द मिनटों में उच्च रक्त चाप साधारण हो जाता है । यदि नीचे वाला रक्तचाप भी ज्यादा हों तो उपचार दोनों हथेलियों के नीचे तथा गले में धड़कन वाले भाग पर दोनों तरफ उपचार करने से चमत्कारी लाभ होता है। इसी प्रकार निम्न रक्त चाप को बायें हथेली के नीचे व गले के बायीं तरफ चुम्बक का दक्षिणी ध्रुव स्पर्श करने से रक्तचाप बढ़ने लगता है। दुर्ग (मध्यप्रदेश) के भूतपूर्व सांसद मोहन भैय्या के पुत्र का दुर्घटना में घायल होने के कारण 70 दिनों

से भिलाई सरकारी अस्पताल में उपचार हो रहा था। हमारे धार्मिक पर्व पर्युषणों में स्वाध्याय करवाने हेतु 9.9.1997 को धमतरी जाते हुए महासती प्रीति सुधा जी के दर्शनार्थ मैं कुछ समय के लिए दुर्ग ठहरा हुआ था । मोहन भैय्या को मालूम होने पर उन्होंने लेखक से सम्पर्क किया तथा अपने पुत्र के उपचार के परामर्श हेतु मुझे भी भिलाई के अस्पताल ले गये। जिस समय हम अस्पताल पहुंचे उस समय उनके पुत्र का रक्तचाप बहुत कम हो जाने से हालत काफी ज्यादा खराब हो रही थी। डाक्टरों में अफरा तफरी मची हुई थी । रोगी लोहे के पलंग पर सो रहा था तथा आक्सीजन और रक्त दिया जा रहा था। ऐसी विकट स्थिति में कुछ करना खतरे से खाली नहीं था। लेखक के पास चुम्बकीय वाइब्रेटर था । उन्होंने आत्म विश्वास के साथ चुम्बक का सक्रिय दक्षिणी ध्रुव रोगी के बांयें हथेली के नीचे मुख्य नाड़ियों वाले स्थान पर वाइब्रेटर की गति के साथ स्पर्श किया। मेरे आश्चर्य का पार नहीं रहा जब मात्र 2., 3 मिनट के उपचार से ही रक्तचाप साधारण के लगभग हो गया। उसके पश्चात तो प्रायः लेखक सभी प्रशिक्षण शिविरों में एवं चिकित्सा वार्ताओं में रक्त चाप नियमित करने का उपरोक्त प्रयोग रक्तचाप के रोगियों पर करता है। जिसके 80 से 90 प्रतिशत परिणाम संतोषजनक होते हैं। इतनी जल्दी रक्त चाप साधारण करने का दूसरा उपाय मिलना कठिन होता है।

पेन्क्रियाज पर चुम्बक का दक्षिणी ध्रुव लगाने से पेन्क्रियाज सक्रिय हो जाता है और मधुमेह के रोगियों को दवा और इंजेक्शन के माध्यम से इंसुलिन की आवश्यकता कम की जा सकती है। चुम्बक अत्यधिक प्रभावशाली दर्दनाशक होता है । दर्द वाले भाग पर जब तक सिर में भारीपन न हों, उत्तरी ध्रुव को स्पर्श करते हुये Anti Cloctwise घुमाने से तुरन्त लाभ मिलता है। चुम्बक का स्पर्श करने से शरीर की हीलिंग क्षमता बहुत बढ़ जाती है । **फ्रेक्चर में हड्डियों को बराबर जोड़ने के पश्चात् नियमित दक्षिणी ध्रुव के सम्पर्क में रखा जायें, तो हड्डियों के जुड़ने के** समय में बहुत कमी हो जाती है। शरीर के कमजोर अंग-उपांगों पर दक्षिणी ध्रुव को स्पर्श करने से उन अंगों की कार्य क्षमता बढ़ने लगती है। शरीर के कमजोर अंग-उपांगों पर दक्षिणी ध्रुव को स्पर्श करने से उन अंगों की कार्य क्षमता बढ़ने लगती है।

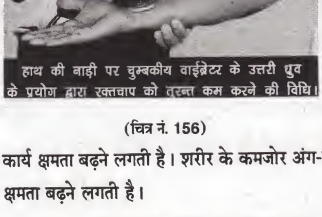

हाथ की बाहों पर चुम्बकीय वाईब्रेटर के उत्तरी ध्रुव के प्रयोग द्वारा रक्तचाप को तत्काल कम करने की विधि।

(चित्र नं. 156)

चुम्बक के समान ध्रुवों के बीच में एक दूसरे को दूर करने वाली ऊर्जा निर्मित होती है। अतः पुराने असाध्य रोगों से संबंधित हथेली और पगथली में एक्युप्रेशर के प्रतिवेदन बिन्दुओं के दोनों तरफ उत्तरी ध्रुव का स्पर्श करने से वहाँ उपस्थित विकार दूर होने लगते हैं। जिससे प्राण ऊर्जा संतुलित होने से रोग में राहत मिलती है।

नाभि पर उच्च शक्ति के चुम्बक के दक्षिणी ध्रुव को रोगी के Clockvise (घड़ी की सीधी दिशा में) 5-10 मिनट घूमाने से कब्ज दूर हो जाती है। इसी प्रकार ऐसे चुम्बक का उत्तरी ध्रुव को घड़ी की उल्टी दिशा (Anti Clockwise) में घूमाने से दस्त में तुरंत राहत मिलती है। जिस दिशा में नाभि का स्पन्दन होता है, उस दिशा में चुम्बक का उत्तरी ध्रुव और उसके विपरीत दिशा में दक्षिणी ध्रुव स्पर्श करने से नाभि का स्पन्दन अपने केन्द्र में आ जाता है।

चुम्बकीय वाईब्रेटर द्वारा कब्जी का उपचार करते हुए।
(चित्र नं. 157)

नाभि एवं उसके नीचे के चक्रों पर अधिक क्षमता वाले तथा उससे ऊपर के चक्रों पर कम क्षमता वाले चुम्बक का प्रयोग करना चाहिये, परन्तु अनुभवी चुम्बकीय चिकित्सकों के निर्देशन में असाध्य रोगों में उन चक्रों पर, अधिक क्षमता वाले चुम्बकों का उपयोग भी किया जा सकता है। **जलन अथवा खुजली वाले स्थान पर चुम्बक का उत्तरी ध्रुव फेरने से शीघ्र आराम मिलता है। हाथ और पैर संबंधी रोगों में हृदय की दिशा में चुम्बक का आवश्यकतानुसार मसाज करने से रक्त में आया अवरोध दूर होने से उपचार अधिक सक्रिय हो जाता है। जैसे साईटिका के रोगियों को उत्तरी ध्रुव का मसाज करना चाहिए जबकि लकवे (पक्षाघात) के रोगी को दक्षिणी ध्रुव का मसाज करना चाहिये।**

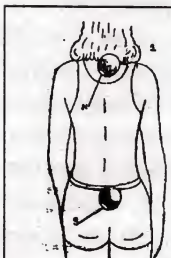
मेरूदण्ड पर चुम्बक लगाने की विधि
(चित्र नं. 158)

यदि शरीर के किसी भाग में गांठ हो गई हो तो, वहां पलसेटिंग चुम्बक या स्थायी चुम्बक का उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव को बारी बारी से स्पर्श द्वारा उपचार करने से गांठ का फैलाव और संकोचन होने लगता है और धीरे धीरे वह गांठ बिखर जाती है।

मेरुदण्ड के उपचार हेतु मेरुदण्ड पर नीचे की तरफ चुम्बक का दक्षिणी ध्रुव तथा ऊपर उत्तरी ध्रुव चित्र नं. 158 में दर्शाये अनुसार लगाना चाहिए। दक्षिणी ध्रुव पर सीधी कमर बैठने से मूलाधार चक्र सक्रिय होता है । मल द्वार की मांसपेशियां सक्रिय होती है और कब्ज दूर होती है।

बिना बाह्य चुम्बक - चुम्बकीय उपचार

हमारे शरीर में भी अदृश्य रूप से चुम्बकीय ऊर्जा होती है। यदि हम अपनी हथेलियों का आपस में घर्षण करें तो उनमें चुम्बकीय तत्त्व बढ़ जाता है। यदि घर्षण के तुरन्त बाद हम दोनों हथेलियों को समीप लायें तो उनमें

आकर्षण का स्पष्ट अनुभव किया जा सकता है। अत: दोनों हथेलियों को थोड़ी देर घर्षण के पश्चात् हथेलियों को दर्द वाले स्थान पर तब तक स्पर्श रखना चाहिए जब तक कि हथेली को उठाते समय किसी भी प्रकार के अवरोध की प्रतीति का अनुभव न हों। ऐसा करने से दर्द में राहत मिलती है।

हथेलियों के निचले उभरे (Mount) भाग को घर्षण कर आंखों पर स्पर्श करने से आंखों का भारीपन शीघ्र दूर होता है। हथेली से चेहरा रगड़ने पर सारे शरीर में रक्त संचार संतुलित होने लगता है और स्फूर्ति आ जाती है। सिर दर्द ठीक होने लगता है। चेहरे की सुन्दरता बढ़ने लगती है। दक्षिणी ध्रुव को नाक पर रगड़ने से जुकाम ठीक हो जाता है। पूर्व दिशा में सिर करके सोने से तनाव घटता है एवं हृदय संबंधी रोग एवं रक्तचाप नियंत्रण में रहता है, क्योंकि शरीर का दाहिना भाग प्रकृति के उत्तरी ध्रुव की तरफ एवं बांया भाग दक्षिणी ध्रुव की तरफ रहने से चुम्बकीय ऊर्जा के प्रति अधिक आकर्षण रहता है।

अपेक्षाएँ

सारांश यही है कि चुम्बक अपने प्रभाव क्षेत्र में चुम्बकीय क्षेत्र बना लेता है, जिसका प्रभाव सभी चेतनाशील प्राणियों पर विशेष रूप से पड़ता है, फिर चाहे मनुष्य हो अथवा पशु या पेड़ पौधे आदि। यदि चुम्बक का उपयोग रोगों के रोकथाम एवं उपचार में किया जावे तो सभी जीवों का जीवनकाल बढ़ जाने की बहुत अधिक संभावना रहती है। जिन जिन देशों में चुम्बकीय चिकित्सा का तीव्र गति से विकास हों रहा है, वहाँ के वैज्ञानिकों , चिकित्सकों से स्वास्थ्य मंत्रालय सम्पर्क करें, उनकी शोधों का अध्ययन करें एवं भारत में इस चिकित्सा पद्धति की क्रियान्विति की योजना बना व्यवस्थित कार्यक्रम बनायें तब ही इस पद्धति के प्रति अज्ञानतावश निराधार शंकायें दूर हो सकेगी। इस सहज, सरल, निरापद, सस्ती, प्रभावशाली अहिंसक चिकित्सा पद्धति के प्रति जन साधारण का विश्वास बढ़ सकेगा एवं चुम्बकीय चिकित्सा जन साधारण में लोकप्रिय बन सकेगी। चिकित्सा पद्धतियों में आपसी सामंजस्य, विचार-विमर्श एवं जन जागरण से ही पीड़ित मानव समाज रोग मुक्त बन सकता है।

उपचार हेतु कार्य में लिए जाने वाले साधन और सामग्री जितने अधिक अहिंसक होंगे तथा रोगी की दिनचर्या प्रकृति के सनातन सिद्धान्तों और नियमों के अनुकूल होती है, उतना ही उपचार प्रभावशाली होता है। –

सूर्य किरण चिकित्सा

सूर्य चिकित्सा अति प्राचीन

सूर्य ताप, प्रकाश एवं ऊर्जा का सबसे बड़ा प्राकृतिक स्रोत है। **जो प्राणिमात्र को सहज उपलब्ध है । सूर्य अपने अमूल्य स्रोतों के उपयोग के बदले अन्य बिजली उत्पादन कम्पनियों की भांति हमारे पास भुगतान हेतु बिल नहीं भिजवाता और न हमारे से कुछ भी अपेक्षाएँ रखता है अथवा अपने प्रभुत्व पर गर्व करता है।** सूर्य तथा प्राणी मात्र का आपस में घनिष्टतम संबंध होता है। सूर्य के बिना पृथ्वी पर किसी भी प्राणी, पशु और वनस्पति की कल्पना नहीं की जा सकती । अर्थवेद, सूर्योपनिषद आदि उपनिषद, समस्त पुराण, महाभारत, रामायण आदि प्राचीन ग्रन्थ सूर्य विज्ञान से भरे पड़े हैं। वैदिक काल में भारतीय सूर्य के गुणों से इतने अधिक प्रभावित थे कि उन्होंने सौर पुराण की रचना कर डाली। सौर सम्प्रदाय बनाया तथा अनेकों सूर्य मन्दिरों का निर्माण किया। अनादि काल से सूर्य नमस्कार एवं सूर्य स्नान का हमारे राष्ट्र में प्रचलन है।

भगवान महावीर की कठोर साधना में सूर्य की आतापना (धूप सेवन) का विशेष उल्लेख मिलता है। जैन साधुओं को दिन के तीसरे प्रहर अर्थात धूप में आहार एवं विहार हेतु आने जाने का शास्त्रीय विधान है, भले ही आधुनिक युग में उस निर्देश की प्राय: पालना कम होती है। परन्तु आज हम सूर्य की ऊर्जा का लाभ लेना नहीं जानते। घर एवं व्यवसायिक स्थलों पर दरवाजे बंद कर, पर्दे लगाये जाते हैं और बिजली की रोशनी में कार्य करने का प्रचलन बढ़ता जा रहा है। जिसके परिणाम स्वरूप वहां रहने एवं कार्य करने वालों की रोग प्रतिरोधक क्षमता क्षीण होती जा रही हैं।

कठोर परिश्रम करने वाले गांव के किसानों एवं मजदूरों को काफी ज्यादा केलोरी खर्च करनी पड़ती है। परन्तु उनके भोजन में प्राय: बहुत कम केलोरी ही उपलब्ध होती है । बाकी सारी आवश्यक ऊर्जा उन्हें सूर्य से ही प्राप्त होती है।

यदि सौर ऊर्जा का नियमित विधिवत आवश्यकतानुसार प्रयोग कर मस्तिष्क को सौर ऊर्जा से उत्प्रेरित कर दिया जाये तो मानव जीवन की अधिकांस समस्याओं का समाधान सहज हो सकता है और हमारे जीवन में सकारात्मक सोच, आत्म विश्वास में वृद्धि, तनाव एवं भय से मुक्ति हो जाती है। भूख एवं अन्य कामनाओं पर सरलता से विजय प्राप्त की जा सकती है।

प्रात: कालीन उदित सूर्य दर्शन से लाभ

सूर्योदय के समय वायुमण्डल में अदृश्य पर बैगनी किरणों (Ultra Violet Rays) का विशेष प्रभाव होता है, जो विटामीन डी का सर्वोत्तम स्रोत होती है। ये किरणे रक्त मे लाल और श्वेत कणों की वृद्धि करती है। श्वेत कण बढने से शरीर मे रोग प्रतिकारात्मक शक्ति बढ़ने लगती है। परा बैंगनी किरणे तपेदिक, हिस्टिरिया, मधुमेह और महिलाओं के मासिक धर्म संबंधी रोगों मे बहुत लाभकारी होती है। ये शरीर मे विकारनाशक शक्ति पैदा करती है तथा रक्त में कैलशियम की मात्रा भी बढ़ाती है, जिससे शरीर में हड्डियाँ मजबूत होती है। आंतो मे अम्ल-क्षार का संतुलन एवं शरीर मे फास्फोरस-कैल्शियम का संतुलन बना रहता है।

जिन स्थानों के वायुमण्डल में धूल, धूँआ, प्रदूषण,पर्यावरण अर्द्रता, कुहरा अथवा बादलो के छाये रहने से सूर्य की किरणें पृथ्वी पर नहीं पहुंच पाती, वहां के निवासी प्रायः अधिक रोगी होते है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण औद्योगिक शहर होते है। इसके विपरित ग्रामीण खुले स्थानो पर लोग अधिक स्वस्थ रहते है।

सूर्य किरणों का स्वास्थ वर्धक प्रभाव

सूर्य की गर्मी से वायु संचार होकर प्राकृतिक शुद्धि होती है। सूर्य किरणें गंदगी और दुर्गन्धता दूर करती है। जहाँ सूर्य प्रकाश का अभाव होती है, वहीं डाक्टर की आवश्यकता होती है। वास्तव में सूर्य के अभाव में स्वस्थ जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। रात्रि में सभी रोग अपेक्षाकृत अधिक परेशान करते है। अतः सूर्य का प्रकाश ही जीवन है और अन्धकार ही मृत्यु। प्रातःकालीन सूर्योदय की किरणें विशेष स्वास्थ्य वर्धक होती हैं। जिस घर में उन किरणों का बाहुल्य होता है, वहां संक्रामक रोग होने की संभावनाएँ कम हो जाती हैं। प्रातःकालीन सूर्योदय के सामने चन्द मिनटों तक देखने से नेत्र ज्योति बढ़ती है, परन्तु सूर्योदय के 40-45 मिनट पश्चात सूर्य को खुले नेत्रो से देखना हानिप्रद हो सकता है। उदित होते हुये सूर्य दर्शन से शरीर के सभी आवश्यक तत्त्वो का पोषण होता है। हृदय रोग, मस्तिष्क विकार, आंखो का विकार आदि अनेक व्याधियां दूर होती है।

प्रातःकालीन हल्की धूप में सूर्य की तरफ मुख कर तथा आंखे बन्द कर शरीर को दाएं-बाएं, आगे-पिछे धीरे-धीरे चारों तरफ घुमाने, झूमने से गर्दन के रोग दूर होते है। मस्तिष्क में रक्त का संचार सुव्यवस्थित होता है तथा तनाव दूर होता है। सूर्योदय के सामने वज्रासन मे बैठ सिंहासन मुद्रा में जीभ को जितना निकाल सकें, बाहर निकाल कर, आंखे पूरी खोलकर, नाक से श्वास लेते हुए, सूर्य को निहारते हुए, यथा शक्ति जोर से दहाड़ने से गले, नाक, कान, मुंह, छाती, फेंफड़ो आदि के रोग दूर होते हैं तथा वायु नली, स्वर नली और भोजन नली सशक्त होती है।

सूर्य किरणें जीवनी शक्ति बढ़ाती है, स्नायु दुर्बलता कम करती है, पाचन और मल निष्कासन की क्रियाओ

को बल देती है, पेट की जठराग्नि प्रदीप्त करती है, रक्त परिभ्रमण संतुलित रखती है, हड्डियों को मजबूत बनाती है। रक्त मे कैल्शियम फास्फोरस और लोहे की मात्रा बढ़ाती है, अन्तः स्रावी ग्रन्थियों के स्राव बनाने में सहयोग करती है।

उपर्युक्त लक्षणों के आधार पर सूर्य किरण चिकित्सा करने से रोगों से मुक्ति मिलती है। सूर्य के प्रकाश की अपनी अलग विशेषतायें होती है। सूर्य के प्रकाश में हीरे, जवाहरात आदि का जो परिक्षण किया जा सकता है, वह विद्युत के प्रकाश मे नहीं किया जा सकता। सूर्य की किरणों में सर्वरोग नाशक शक्ति होती है। सौर ऊर्जा से आज बिजली का उत्पादन कर विभिन्न उपकरणों का संचालन एवं नियंत्रण सम्भव हो सका है। सूर्य की रोशनी प्राणीमात्र एवं पेड़-पौधों के विकास हेतु आवश्यक है, इससे प्राणवायु की मात्रा बढ़ जाती है, जो कार्य क्षमता बढ़ाने में सहायक होती है। इससे पाचन शक्ति सुधरती है। सूर्य की रोशनी में अनेक सूक्ष्म जीवों की उत्पत्ति नहीं हो सकती, जो स्वास्थ्य के लिये हानिकारक होते है। इसी कारण जैन धर्म में रात्रि भोजन का निषेध किया गया है। सात रंगो से बनी सूर्य की किरणें मानव के लिये आरोग्यप्रद होती है तथा रंग चिकित्सा के सिद्धान्तानुसार सूर्य की किरणों से बहुत से असाध्य रोग पूर्णतया ठीक हो सकते हैं।

सूर्य किरणों में विभिन्न रंग

सूर्य की किरणों में सात दृश्यमान एवं दो अदृश्यमान रंगों की किरणें होती है। दृश्यमान सात रंग निश्चित क्रम से होते है, जिन्हें इन्द्र धनुष के समय अथवा विशेष प्रयोगो द्वारा आसानी से देखा जा सकता है। विभिन्न रंगों का मानव के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य पर गहरा प्रभाव पड़ता है। प्रत्येक रंग के अपने विशेष स्वास्थ्यवर्धक गुण होते हैं। सूर्य की किरणों से होने वाले सात रंग बैंगनी (Violet), नीला (Indigo), आसमानी (Blue), हरा (Green), पीला (Yellow), नारंगी (Orange), लाल (Red) के क्रम से होते हैं।

पहले तीन रंग शरीर में गर्मी को नियंत्रित करने तथा कष्ट में शांति पहुंचाने में सहायक होते हैं। ये रंग शरीर के अवयवों में रसायनिक परिवर्तन करने में अहं भूमिका निभाते हैं। अतः सूर्य की इन तीन रंग की किरणों तथा पराबैंगनी किरणों को रसायनिक किरणें भी कहते हैं। मध्य वाला हरा रंग गर्मी एवं सर्दी के प्रभाव को संतुलित रखने में सक्षम होता है। अन्तिम तीन रंग शरीर में गर्मी पहुंचाने वाले होते है। वर्तमान में सूर्य किरण चिकित्सा में सात रंगों के स्थान पर प्रत्येक समूह में से एक रंग का ही उपयोग करने का अधिक प्रचलन हैं। जिससे चिकित्सा पद्धति अधिक सरल बन गयी हैं। प्रथम तीन रंगो के समूह में से प्रायः नीला रंग, अन्तिम रंगो के समूह में से नारंगी एवं बीच के हरे रंग का अधिकतर उपयोग किया जाता है। परन्तु विशेष एवं लम्बे रोगों की स्थिति में बैंगनी एवं लाल रंग का भी उपयोग किया जा सकता हैं। रोगी के लिये कौनसी किरणों का उपचार किया जाये, यह रोग की स्थिति पर निर्भर

करता है।

आयुर्वेद के त्रि-दोष सिद्धान्त से समानता

आयुर्वेद के आधारभूत त्रिदोष सिद्धान्त के अनुसार कफ, वात एवं पित्त रूपी तीन दोषों का असन्तुलन ही रोग उत्पत्ति का प्रमुख कारण होता है। सूर्य किरण चिकित्सा में कफ प्रधान अथवा सर्दी के कारण होने वाले रोगों में नारंगी या लाल रंग का, वात प्रधान या शरीर में गन्दगी बढ़ जाने एवं उसका सही विसर्जन न होने से उत्पन्न होने वाले रोगों में हरे रंग का तथा पित्त प्रदान अथवा गर्मी की अधिकता से होने वाले रोगों में नीले रंग के विधिवत् प्रयोग द्वारा कफ, वात एवं पित्त को संतुलित कर रोगी को रोगमुक्त किया जा सकता है। सूर्य किरण चिकित्सा शारीरिक रोगों के साथ साथ हमारे स्वभाव तथा मानसिक स्थिति बदलने में भी सहायक होती है, जिससे क्रोधी व्यक्ति शान्त एवं सुस्त व्यक्ति, फुर्तीला बन सकता है। निम्न तालिका शरीर में त्रिदोष की स्थिति से प्रगट होने वाले लक्षण को दर्शाती है।

	पित्त प्रकोप	कफ प्रकोप	वात प्रकोप
जीभ का रंग	लाल	सफेद	मैली
मुँह की दशा	कण्ठ सूखना	मुंह या नाक से अधिक बलगम आना	मुंह सुखना
आवाज	स्पष्ट	भारी	कर्कश
मुँह का स्वाद	कड़वा	फीका	खराब
प्यास	ज्यादा	कम	अधिक
भूख	अधिक	कम	कभी कम, कभी ज्यादा
पाखाना	सख्त	नरम	कब्ज
पेशाब का रंग	गहरा पीला	सफेद	गंदला
पेशाब की मात्रा	कम	अधिक	कम
आंख का रंग	लाली वाला	सफेद	गंदला
पसीना	बहुत ज्यादा	कम	ज्यादा
जिस्म	दुबला	मोटा	साधारण
त्वचा	गर्म	ठण्डी	खुष्क एवं शुष्क

तीन रंग की विशेषताएँ

नारंगी रंग की विशेषताएँ

नारंगी रंग शरीर के कमजोर तथा निष्क्रिय अंगो को मजबूत एवं गतिशील बनाता है। पाचन शक्ति सुधारता है। भूख न लगने वाले रोगों को दूर करता हैं। इस रंग का प्रभाव गर्म, उत्तेजक (Stimulating), शक्तिवर्धक एवं विस्तारक (Expending) होने से सर्दी से होने वाले रोगों में विशेष लाभदायक सिद्ध होता है। नारंगी रंग का प्रभाव पीले रंग की अपेक्षा अधिक व लाल रंग की अपेक्षा कम गर्म प्रकृति का होता है। आमाशय, तिल्ली, लीवर, आंतो, फेंफड़ो व हाथ पैर के रोगों में इसका अधिक अनुकूल प्रभाव पड़ता है। **यह आयोडिन की कमी को मिटाता है। रक्त में लाल कण बढ़ाता है। मांसपेशियां स्वस्थ बनाता है और झुर्रियां मिटाने में सहायक होता है। रक्त संचालन एवं स्नायु संस्थान को सक्रिय बनाता हैं। गतिहीन अंगों की जड़ता दूर कर उसमें गति लाने की क्षमता रखता है।** भूख न लगना, गैस, जोड़ो का दर्द, खांसी, दमा, बच्चों की बिस्तर में पेशाब करने की आदत, निम्न रक्त चाप, स्नायु दुर्बलता आदि रोगों को मिटाने की अद्‌भुत क्षमता रखता हैं। सुस्ती आने, जम्भाइयाँ लेने, अधिक नींद आने, नाखून नीले पड़ जाने आदि रोगों में नारंगी रंग काफी लाभप्रद होता है।

नारंगी रंग के सेवन से पेट की गैस दूर होती है। अम्लता वाले रोगियों को विशेष लाभ होता है। खून में लाल कणों की वृद्धि होती है। वृद्धों के लिये ताकत की दवा के समान होता है। स्त्रियों की माहवारी के समय दर्द होने अथवा कम आने पर नारंगी पानी पीने तथा लाल तेल की मालिश नलों और कमर पर करने से लाभ होता है। नारंगी पानी पीने से मलेरिया से बचाव होता है। बारी बारी के अन्तराल से बुखार आने पर जिस दिन बुखार नहीं आया हुआ हो मुंह फीका हो, उस दिन नारंगी रंग का पानी देना चाहिए, परन्तु बुखार वाले दिन नीला पानी देना अधिक प्रभावकारी होता है।

नारंगी रंग मानसिक प्रभाव की दृष्टि से साहस, उत्साह एवं इच्छाशक्ति बढ़ाने में सहायक होता है। नारंगी रंग की दवा का प्रयोग सदैव भोजन या नाश्ते के 15 मिनट बाद और 30 मिनट के भीतर करना चाहिये।

हरे रंग की विशेषताएँ

हरा रंग गर्म और ठण्डे रंग के बीच का रंग होने से गर्मी तथा सर्दी के प्रभावों को संतुलित करता है। यह शरीर की गन्दगी बाहर निकालने, शरीर का ताप सन्तुलित रखने, कब्जी मिटाने तथा खून को साफ करने में विशेष सहायक होता है। मानसिक दृष्टि से हरा रंग राग एवं द्वेष को घटाकर समभाव लाने में सहायक तथा मन को प्रसन्न रखने वाला होता है। शरीर के विषैले तत्त्वों को शरीर से बाहर निकाल फैंकने की अद्‌भुत क्षमता

के कारण छूत की बीमारियों के निवारण में यह बहुत ही उपयोगी होता है।

अल्सर, टाईफाइड, चेचक, सूखी खाँसी, खुले घाव, दाद, पथरी, रक्तचाप, मिरगी, हिस्टीरिया, मुंह में छाले तथा शरीर के किसी भी भाग में पीला पीब पड़ने की अवस्था में उनको नष्ट करने में काफी लाभप्रद होता है। आँतों, गुर्दों, मूत्राशय, त्वचा, कमर व पीठ के नीचे के अंगों से संबंधित रोगों में हरा रंग अधिक प्रभावशाली होता है। शरीर में इस रंग की कमी से विभिन्न चर्म रोग तथा रक्त दोषों की सम्भावनायें बढ़ जाती है। नेत्र रोगों में भी यह विशेष लाभकारी होता है।

मोतिया बिम्ब पकने से पूर्व नियमित हरे पानी से आंखे धोने से मोतिया बिम्ब (Catract) होने की संभावनाएँ कम हो जाती है। चर्म रोग में हरा पानी पीने तथा नीला तेल रोग ग्रस्त त्वचा पर अथवा दाद पर लगाने से रोग जड़ मूल से नष्ट हो जाता है।

हरे रंग की दवा का प्रयोग सदैव प्रातःकाल खाली पेट या आधा घण्टे से एक घण्टे भोजन के पहले करना चाहिये। हरड, आंवला, नीम, हरी सब्जियों में हरी किरणों के तत्व अधिक होते हैं।

नीले रंग की विशेषता

नीला रंग ठण्डा, शान्तिदायक, कीटाणुनाशक (Antiseptic) एवं सिकुड़न वाले स्वभाव का होने से गर्मी के प्रकोप से उत्पन्न रोगों में विशेष प्रभावशाली होता है। इसके उपयोग से मानसिक तनाव कम होता है तथा साधक आध्यात्मिक विकास एवं ध्यान में सरलतापूर्वक विकास कर सकता है। कीटाणुनाशक होने के कारण मवाद पड़ने की अवस्थाओं में काफी लाभप्रद होता है। शरीर की गर्मी, हाथ पैरों की जलन, प्यास की अधिकता, तेज बुखार, हैजा, अजीर्ण, दस्त, अनिद्रा, मिरगी, पागलपन, हिस्टीरिया, उच्च रक्तचाप मूत्रावरोध, मूत्र में जलन, शरीर में किसी प्रकार का जहर फैल जाना, जैसे रोगों में नीले रंग की दवा काफी लाभप्रद होती है। नीले रंग की दवा शरीर के अन्दर अथवा बाहर से बहने वाले खून को बन्द करती है। गर्मी से गला पड़ने पर नीले पानी के गरारे से लाभ होता है। गले, गर्दन, मुँह मस्तिष्क एवं सिर से संबंधित रोगों पर नीले रंग का अधिक अनुकूल प्रभाव पड़ता है। नीले रंग का प्रयोग सदैव भोजन या नाश्ते के आधा घण्टे पूर्व करना चाहिए।

लकवा, सन्धिप्रदाह, छोटे जोड़ो का दर्द (गंठिया), विभिन्न वात, कम्पनजन्य रोग व ठण्ड से उत्पन्न विकार और अधिक कब्ज की शिकायत में नीले रंग का प्रयोग नहीं करना चाहिए। नीले रंग के दुरूपयोग में होने वाले कष्ट और विकार नारंगी या लाल रंग के उचित प्रयोग से दूर हो जाते है।

दवा निर्माण की विधि

सूर्य किरण चिकित्सा में पानी की दवा, चीनी अथवा मिश्री की दवा, सूर्यतप्त तेल, ग्लिसरीन की दवा, सूर्यतप्त हवा एवं सूर्य की किरणों का सीधा उपयोग करने से रोगों का उपचार किया जा सकता हैं।

पानी की दवा तैयार करने की विधि

रोग के अनुसार जिस रंग का पानी तैयार करना हो, उस रंग की बोतल लेकर उसको पूर्णतया साफ कर लें। यदि कोई कागज चिपके हुये हों तो, उन्हें हटा दे, अगर विशेष रंग की कांच की बोतल न मिले तो सफेद रंग की बोतल पर इच्छित रंग का सेलोफेन कागज दोहरा कर लपेट लें। बोतल को तीन चौथाई शुद्ध पानी से भर लें। बोतल का मुँह बन्द कर किसी लकड़ी के पट्टे पर रख, उसे धूप दिखाने से सूर्य की किरणों का प्रभाव पानी में आने लगता हैं। 6-8 घण्टे धूप में रखने से साधारण पानी दवा का रूप ग्रहण कर लेता हैं। सूर्यतप्त पानी को धूप जाने के पश्चात सुरक्षित स्थान पर रख स्वयं ठण्डा होने देना चाहिए। एक बार पानी दवा बनने के बाद तीन दिन तक उसमें रोग निवारक शक्ति रहती है, परन्तु जो बोतल रोजाना धूप में रखी जाती है, उसका पानी अधिक शक्तिशाली बन जाता है।

जल बनाने में सावधानी

सूर्यास्त होते होते बोतल को धूप से हटा देना चाहिए। चन्द्रमा, तारों या दीपक आदि अन्य प्रकार का प्रकाश (सूर्य के अलावा) बोतल पर पड़ जाने से वह कभी कभी निरूपयोगी ही नही, अपितु हानिकारक भी हो सकता है। अतः उसे सफेद कपड़े से ढ़क कर रखना चाहिए। अलग अलग रंग की बोतले धूप में पास पास में नही रखनी चाहिए।

सूर्य तप्त पानी लेने की विधि

जब तक पानी सूर्य की गर्मी से तप्त हों उसका उपयोग नही करना चाहिए, ठण्डा होने के बाद ही करना चाहिए। पानी को ठण्डा करने के लिए फ्रीज आदि अप्राकृतिक उपकरणों का उपयोग नहीं करना चाहिए।

साधारणतया प्रति वयस्क व्यक्ति के लिये सूर्यतप्त पानी की मात्रा एक औंस, पुराने रोगों में प्रायः दिन में तीन खुराके छः छः घण्टे के अन्तर में देना काफी होता है। रोग की तीव्र अवस्था में खुराक को बढ़ाया भी जा सकता है एवं अन्तराल (बीच की अवधि) भी कम की जा सकती है। अलग अलग रोगों की स्थिति में दो रंगो का पानी बारी-बारी या मिश्रण के रूप में भी दिया जा सकता है। कमजोर व्यक्तियों के लिए सफेद कांच के बर्तन में तैयार सूर्यतप्त पानी शक्तिदायक औषधि का कार्य करता है।

चीनी या मिश्री की दवा तैयार करने की विधि

कई बार वर्षा, बादल, धुन्ध आदि के कारण रंगीन बोतलों मे सूर्यतप्त पानी तैयार करना कठिन होता है, तब पानी के स्थान पर सूर्य किरण सिंचित चीनी या मिश्री की दवा काम में लाई जा सकती है। चीनी की दवा बनाने के लिये जिस रंग की दवा बनानी हों, उस रंग की एक बिलकुल सूखी और अन्दर बाहर से साफ बोतल लें। उसको तीन चौथाई दानेदार चीनी या मिश्री से भर लें। बोतल का मुख बन्द कर प्रतिदिन छः से आठ घण्टे धूप में रखे और दिन में एक दो बार बोतल को अच्छी तरह हिला लें, ताकि चीनी के समस्त कण पर सूर्य किरणों का एक साथ प्रभाव पड़ सकें। इस प्रकार 40 से 60 दिन तक चीनी को धूप दिखाने से चीनी में रोगनिवारक गुण उत्पन्न हो जाते हैं। इस प्रकार तैयार की गई चीनी तीन माह तक स्थायी रूप से प्रभावशाली बनी रह सकती है। तीन माह पश्चात पुनः तीन दिन धूप में रख देने से उसमें पुनः रोगनाशक प्रभाव उत्पन्न किया जा सकता है। वैसे बीच में समय समय पर धूप दिखाने से चीनी की रोग निवारक क्षमता बढ़ जाती है।

चीनी की एक खुराक प्रायः एक ग्राम होती है। बच्चों को उनकी आयु के अनुसार कम खुराक देनी चाहिए।

सूर्यतप्त तेल तैयार करने की विधि

जिस रंग का तैल तैयार करना हों, उस रंग की बोतल में तीन चौथाई भाग तेल से भर कर चीनी दवा की भांति 40 से 60 दिन तक धूप में रखने से वह तेल एक रोगनाशक और दर्दनाशक दवा बन जाता है। इस प्रकार तैयार किया गया सूर्यतप्त तेल अगले तीन महीनों तक दवा के रूप में काम में लिया जा सकता है। तीन माह पश्चात पुनः तीन दिन धूप दिखाकर उसमें पुनः चार्ज कर रोगनाशक प्रभाव उत्पन्न किया जा सकता है।

सूर्यतप्त तेल भी तीनो रंगो में बनाये जा सकते हैं। परन्तु नीले रंग की बोतल में तैयार किया गया नारियल का तेल अत्यन्त प्रभावशाली सिद्ध होता है। नारंगी रंग की बोतल में तिल का तेल बनाना अधिक अच्छा रहता है, परन्तु अलसी, सरसों तथा जैतून का तेल भी बनाया जा सकता है। हरे रंग की बोतल में सरसों के तेल की दवा बनाना ज्यादा उपयुक्त रहता है, परन्तु नारियल या अलसी का तेल भी बनाया जा सकता है।

नीले तेल के विशेष प्रयोग/लाभ

1. नीले तेल की सिर में मालिश करने से सिर दर्द, अनिद्रा, बुखार दूर होता है। दिमागी कार्य की क्षमता बढ़ती है। स्नायु तंत्र शांत होता है।
2. मच्छर अथवा विषैले जानवरों के काटने पर अथवा जलने पर नीला तेल लगाने से तुरन्त आराम मिलता है।
3. नीला तेल गर्म करके कान में डालने से कान का दर्द शीघ्र ठीक होता है।

4. बवासीर के मसों पर नीला तेल बहुत गुणकारी होता हैं।
5. बच्चों के दांत निकलते समय नीले तेल की सिर मे मालिश करने से दांत आराम से निकल जाते हैं।

सूर्य की किरणों को सीधा डालने की विधि

भिन्न भिन्न रंगों के कांच या रंगीन चमकीले कागज अथवा अन्य किसी विधि द्वारा सूर्य की किरणों को प्रवेश करा सीधे शरीर के बाहरी अंगो पर प्रकाश डालने से काफी रोगों में राहत मिलती है। 15 से 30 मिनट तक सहनशक्ति के अनुसार रोगग्रस्त अंगो पर सीधी रंगीन सूर्य किरणें डालने से शीघ्र प्रभाव पड़ता है। **पुरानी तथा कठोर सूजन में लाल या नारंगी रंग का प्रभाव व गर्म तथा लालीयुक्त सूजन की अवस्था में नीले प्रकाश से आराम मिलता है। आँखों की बीमारी में हरे रंग की किरणें डालना लाभप्रद होता है। चीनी पंच तत्व के सिद्धान्तानुसार हरे रंग की किरणों से यकृत एवं पित्ताशय, लाल रंग की किरणों से हृदय और छोटी आंत, पीले रंग की किरणों से तिल्ली, पेन्क्रियाज और आमाशय, सफेद रंग की किरणों से फेफड़े और बड़ी आंत तथा नीले रंग की किरणों से फेफड़े और बड़ी आंत तथा नीले रंग की किरणों से गुर्दे एंव मूत्राशय सशक्त होते है।**

सफेद रंग की बोतल में तैयार किया गया पानी

रंगीन बोतलों के स्थान पर सफेद रंग की बोतल मे पानी बनाने से भी वह शक्तिवर्धक दवा का काम देता है। **पीलिया या महामारी के दिनों में सफेद बोतल का धूप में रखा हुआ पानी पीने से महामारी से बचा जा सकता है। यह पानी बच्चों को ताकत देता है एवं दांत निकलते समय इस पानी को देने से दांत सरलता से निकल जाते है।** हड्डी टूटने की स्थिति में सफेद पानी पीने से हड्डी के जुड़ने में सहायता मिलती है। कमजोर व्यक्ति को हरे पानी के साथ सफेद पानी का चौथाई भाग मिलाकर देना लाभदायक सिद्ध होता हैं। सफेद बोतल के पानी में सूर्य की सातों रंग की किरणें एक साथ आकर्षित होने से इसके सेवन से मानव शरीर की सातों धातुयें पुष्ट होती है। सूर्य तप्त पानी पीने से कमजोरी दूर होती है।

सारांश यह है कि सूर्य किरण चिकित्सा पद्धति पूर्णतः वैज्ञानिक, अहिंसक, सहज, सरल एवं सभी दुष्प्रभावों से रहित है तथा सभी प्रकार के रोगों के निवारण में इसका उपयोग किया जा सकता है। इस पद्धति द्वारा उपचार अन्य उपचार के साथ में भी किया जा सकता हैं। अनेक संक्रामक एवं दीर्घकालीन रोगों से पूर्ण छुटकारा दिलानें में सूर्य किरण चिकित्सा काफी प्रभावशाली सिद्ध होती है।

VERY LITTLE MIND IS IN THE BODY, BUT WHOLE BODY IS GOVERNED BY THE SAME

सूर्य किरण चिकित्सा सार (सूरज किरण चिकित्सा डॉ. अजीत मेहता से साभार

	(कौन सी) दवा बनानी है	(साफ व सूखी) बोतल कितनी भरें	(कितने समय धूप में रखने से) दवा बनती है	कितने समय तक दवा का प्रभाव बना रहता है।	कितने समय तक धूप मे रखने से दुबारा दवा प्रभावशाली बन जाती है	किन रोगों मे अचूक
नारंगी रंग	पानी की	तीन-चौथाई	6 से 8 घंटे तक	3 दिन तक	तीन दिन बाद पुनः 6 घंटे तक	पेट में वायु (गैस) अम्लता, मुख न लगना
प्रकृति व गुण	पानी से गरारे					स्वर नलिका का पक्षाघात
गर्म (Heating) उत्तेजक (Stimulating) विस्तारक (Expanding) पाचनशक्ति वर्द्धक कफनाशक	चीनी (मिश्री)	3/4 भाग	45 दिन तक	तीन मास तक	तीन मास बाद पुनः 3 दिन तक	बदहजमी, कमजोरी, सर्दी से पतले दस्त, दमा का दौरा
	तेल (तिल का)	3/4 भाग	"	"	"	गाँठिया घुटनों का दर्द, जोड़ों का दर्द
	हवा	(खाली बोतल का मुख कार्क या हथेली से बंद रखें)	5 मिनट तकधूप में रखने से	—	(जब दुबारा हवा सूंघनी हो) पुनः पांच मिनट तक	दमा
	किरणें डालना (रेडिएशन)	रोगग्रस्त अंग पर ४ इंच दूरी से रंगीन शीशे या सेलोफेन कागज में से सीधे सूर्य की किरण डालना				लकवा चेहरे का अंधरग घेंघा, गेगरीन का घाव
	पानी	3/4 भाग	6 से 8 घंटे तक	3 दिन तक	तीन दिन बाद पुनः 6 घंटे तक	पुरानी कब्ज, उच्च रक्तचाप, एग्जिमा, पथरी, ज्वर
	पानी से धोना (3-4 बार)					आंखों मे रोहे आई फ्लू, नेत्रों की कमजोरी
मध्यम (मादल) सन्तुलक गन्दगी-निष्कासन छूत नाशक रक्तशोधक कब्जनाशक व वातनाशक	चीनी (मिश्री)	3/4 भाग	45 दिन तक	तीन मास तक	तीन मास बाद पुनः 3 दिन तक	शरीर पर दाने व बुखार
	तेल (सरसो)	3/4 भाग	"	"	"	ठंड के कारण सिरदर्द
	हवा	(खाली बोतल का मुख कार्क या हथेली से बंद रखें)	5 मिनट तकधूप में रखने से	—	(जब दुबारा हवा सूंघनी हो) पुनः पांच मिनट तक	गले के रोग
	किरणें डालना	रोगग्रस्त अंग पर 4 इंच दूरी से रंगीन शीशे या सेलोफेन कागज में से सीधे सूर्य की किरण डालना				पेट मे अल्सर, फोडे फुन्सियां
नीला रंग	पानी	3/4 भाग	6 से 8 घंटे तक	3 दिन तक	तीन दिन बाद पुनः 3 दिन तक 6 घंटे तक	मुख पाक, तेज बुखार
प्रकृति व गुण	पानी से गरारे					चीनी
ठंडा शातिदायक संकोचक कीटाणुनाशक दिमागी टानिक पित्तनाशक	चीनी (मिश्री)	3/4 भाग	45 दिन तक	3 मास तक	(तीन मास बादज) पुनः तीन दिन तक	चीनी सेप्टिक, टौंसिल मिश्री-खुश्क खाँसी
	तेल (नारियल)	3/4 भाग	"			अनिद्रा, तेज बुखार, सूखी खाज-खुजली, मुंहासे, जलने पर
	ग्लिसरीन	3/4 भाग (चोड़े मुख की शीशी)	"			मुंह के छाले, दांत मे कीड़े के कारण दर्द, गले में खराश
	किरण डालना (रेडिएशन)	रोग ग्रस्त अंग पर 4 इंच दूरी से रंगीन शीशे या सेलोफेन कागज में से सीधी सूर्य की किरणे डालना				तेज बुखार, हाथी पांव

मानव कल्याण में सौर ऊर्जा का योगदान

मानव जीवन की मूलभूत समस्याएँ

तनाव निराशा, नकारात्मक सोच, भय आदि मानसिक विकृतियाँ मानव जीवन के विकास में अवरोधक बन जाती है। शारीरिक अस्वस्थता के कारण भी जीवन की प्रसन्नता समाप्त होने लगती है। मानव जीवन ही ऐसी योनि है, जिसमें मानव नर से नारायण बन आत्मा को परमात्मा बना सकता है। परन्तु हमारी अध्यात्म के प्रति अज्ञानता के कारण हम इस अमूल्य मानव जीवन को व्यर्थ में व्यतीत कर देते हैं। यदि किसी विधि द्वारा मानव में सकारात्मक सोच विकसित कर दिया जाए तो तनाव, निराशा, भय आदि स्वत: समाप्त हो जायेंगें। जहाँ जीवन है, वहाँ समस्याएँ तो निश्चित आएगीं, परन्तु हमारा सम्यक् दृष्टिकोण हो जाने से उनसे हम व्यर्थ परेशान नहीं हो सकेंगे। मानसिक शांति होने से शारीरिक रोगों की संभावनाएँ भी क्षीण हो जायेंगी और मानव को आत्मोत्थान हेतु सम्यक् पुरुषार्थ करने की प्रेरणा भी मिलने लगेगी। सौर ऊर्जा के माध्यम से जीवन में ऐसा परिवर्तन सरलता से लाया जा सकता है।

अनन्त शक्तियों का स्रोत मानव मस्तिष्क

हमारे मस्तिष्क में अनन्त शक्तियाँ सुषुप्त अवस्था में विद्यमान होती है। आधुनिक विज्ञान भी उस बात को स्वीकार करता है कि अधिकांश व्यक्ति अपने मस्तिष्क की 95 से 99 प्रतिशत से अधिक क्षमताओं का जीवन पर्यन्त उपयोग किये बिना ही इस दुनिया से चले जाते हैं। आखिर ऐसा क्यों होता है ? हम उन सुषुप्त शक्तियों को जागृत क्यों नहीं कर पाते ? यदि मस्तिष्क की सुषुप्त क्षमताओं का पूर्ण उपयोग करना हम सीख लें तो हमारे जीवन की अधिकांश समस्याओं का समाधान सहज संभव हो सकता है।

हमारे तीर्थकरों, अध्यात्म योगियों, ऋषी मुनियों ने उन सुसुप्त ऊर्जाओं को जागृत करने की अनेक साधना पद्धतियाँ विकसित की। आज भी विश्व में आत्म-विकास की वे पद्धतियाँ प्राणायाम, ध्यान, यौगिक क्रियाओं, सम्यक् तपाराधना, इन्द्रिय संयम एवं मनोनिग्रह द्वारा समत्व की साधना इत्यादि के रूप में प्रचलित हैं।

आधुनिक विज्ञान मानव मस्तिष्क की तुलना श्रेष्ठतम कम्प्युटर से करता है। जिस प्रकार कम्प्युटर को संचालित करने के लिए बिजली की आवश्यकता होती है। ठीक उसी प्रकार मानव मस्तिष्क रूपी सुपर कम्प्युटर को संचालित करने के लिए आवश्यक ऊर्जा उपलब्ध हो जाए तो मस्तिष्क की क्षमताओं का अधिकाधिक उपयोग करना संभव हो सकता है। **प्रकृति ने हमारे लिए सूर्य, जल, हवा, भोजन आदि ऊर्जा के अनेक विकल्प उपलब्ध कराये हैं, जिसमें सौर ऊर्जा ही एक ऐसा माध्यम है, जिसकी किरणों के विधिवत् नियमित सेवन से मस्तिष्क रूपी सुपर कम्प्यूटर को अधिक व्यवस्थित ढंग से संचालित किया जा सकता है।**

सूर्य किरण चिकित्सा सार (सूरज किरण चिकित्सा डॉ. अजीत मेहता से साभार

	(कौन सी) दवा बनानी है	(साफ व सूखी) बोतल कितनी भरें	(कितने समय धूप में रखने से) दवा बनती है	कितने समय तक दवा का प्रभाव बना रहता है।	कितने समय तक धूप मे रखने से दुबारा दवा प्रभावशाली बन जाती है	किन रोगों मे अचूक
नारंगी रंग	पानी की	तीन-चौथाई	6 से 8 घंटे तक	3 दिन तक	तीन दिन बाद पुनः 6 घंटे तक	पेट में वायु (गैस) अम्लता, भूख न लगना
प्रकृति व गुण	पानी से गरारे					स्वर नलिका का पक्षाघात
गर्म (Heating) उत्तेजक (Stimulating) विस्तारक (Expanding) पाचनशक्ति वर्द्धक कफनाशक	चीनी (मिश्री)	3/4 भाग	45 दिन तक	तीन मास तक	तीन मास बाद पुनः 3 दिन तक	बदहजमी, कमजोरी, सर्दी से पतले दस्त, दमा का दौरा
	तेल (तिल का)	3/4 भाग	"	"	"	गंठिया घूटनों का दर्द, जोड़ों का दर्द
	हवा	(खाली बोतल का मुख कार्क या हथेली से बंद रखें)	5 मिनट तकधूप में रखने से	—	(जब दुबारा हवा संधनी हो) पुनः पांच मिनट तक	दमा
	किरणें डालना (रेडिएशन)	रोगग्रस्त अंग पर ४ इंच दूरी से रंगीन शीशे या सेलोफेन कागज में से सीधे सूर्य की किरण डालना				लकवा चेहरे का अंधरंग धेंधा, नेगरीन का घाव
	पानी	3/4 भाग	6 से 8 घंटे तक	3 दिन तक	तीन दिन बाद पुनः 6 घंटे तक	पुरानी कब्ज, उच्च रक्तचाप, एग्जिमा, पथरी, ज्वर
	पानी से धोना (3-4 बार)					आंखों मे रोहे आई फ्लू, नेत्रों की कमजोरी
मध्यम (मादल) सन्तुलक गन्दगी-निष्कासन छूत नाशक रक्तशोधक कब्जनाशक व वातनाशक	चीनी (मिश्री)	3/4 भाग	45 दिन तक	तीन मास तक	तीन मास बाद पुनः 3 दिन तक	शरीर पर दाने व बुखार
	तेल (सरसो)	3/4 भाग	"	"	"	ठंड के कारण सिरदर्द
	हवा	(खाली बोतल का मुख कार्क या हथेली से बंद रखें)	5 मिनट तकधूप में रखने से	—	(जब दुबारा हवा संधनी हो) पुनः पांच मिनट तक	गले के रोग
	किरणें डालना	रोगग्रस्त अंग पर 4 इंच दूरी से रंगीन शीशे या सेलोफेन कागज में से सीधे सूर्य की किरण डालना				पेट मे अल्सर, फोडे फून्सियां
नीला रंग	पानी	3/4 भाग	6 से 8 घंटे तक	3 दिन तक	तीन दिन बाद पुनः 3 दिन तक 6 घंटे तक	मुख पाक, तेज बुखार
प्रकृति व गुण	पानी से गरारे					चीनी
ठंडा शातिदायक संकोचक कीटाणुनाशक दिमागी टानिक पित्तनाशक	चीनी (मिश्री)	3/4 भाग	45 दिन तक	3 मास तक	(तीन मास बादज) पुनः तीन दिन तक	चीनी सेप्टिक, टौंसिल मिश्री-खुश्क खाँसी
	तेल (नारियल)	3/4 भाग	"			अनिद्रा, तेज बुखार, सूखी खाज-खुजली, मुंहासे, जलने पर
	ग्लिसरीन	3/4 भाग (चोड़े मुख की शीशी)	"			मुंह के छाले, दांत मे कीड़े के कारण दर्द, गलें में खराश
	किरण डालना (रेडिएशन)	रोग ग्रस्त अंग पर 4 इंच दूरी से रंगीन शीशे या सेलोफेन कागज में से सीधी सूर्य की किरणे डालना				तेज बुखार, हाथी पांव

मस्तिष्क को सोलेरियम बनाने में आँखों का योगदान

आधुनिक चिकित्सकों की ऐसी मान्यता है कि उदित होते हुए सूर्य की किरणों में नेत्रों के लिए स्वास्थ्यवर्धक गुण होते हैं।आँख ही वह माध्यम है, जिससे मस्तिष्क तक सौर ऊर्जा का प्रभाव सरलता से पहुँचाया जा सकता है। आँखें शरीर का बहुत ही नाजुक भाग होती हैं। अत: सूर्य दर्शन करते समय इस बात का विवेक और सावधानी आवश्यक है कि आँखों को किसी प्रकार की क्षति भी न हो और मस्तिष्क तक आवश्यक सौर ऊर्जा भी पहुँचायी जा सके। इसके लिए धीरे धीरे प्रात:कालीन सूर्य दर्शन की अवधि बढ़ाकर आँखों को सूर्य दर्शन हेतु अभ्यस्त किया जा सकता है। प्रत्येक व्यक्ति प्रत्यक्ष परोक्ष रूप से कम अथवा ज्यादा सौर ऊर्जा का उपयोग करता ही है। उसके बिना हमारा जीवन चल ही नहीं सकता,परन्तु सौर ऊर्जा के विधिवत् नियमित प्रयोग से ही मस्तिष्क की सुषुप्त शक्तियों को जागृत किया जा सकता है। शरीर की आवश्यकतानुसार इनका सेवन करने से हमें ऐसे चमत्कारी परिणाम मिल सकते हैं, जो अनावश्यक अनियमित बिना विधि प्राय: प्राप्त नहीं होते। यदि मनुष्य अपने शरीर को सोलेरियम (सौर ऊर्जा को संग्रह करने वाला सोलर कूकर)बनाले तो मस्तिष्क की सुषुप्त शक्तियों को सरलता से जागृत किया जा सकता है।

मस्तिष्क को सोलेरियम बनाने हेतु श्री हीरा रतन माणक के प्रयोग

शांत स्वभावी, निस्पृही, मानव कल्याण हेतु सतत प्रयत्नशील मान सम्मान से विरक्त कालीकट (केरल) के

मेकेनिकल इंजीनियर **श्री हीरा रतन माणक** ने जब भगवान महावीर का जीवन चरित्र पढ़ा तो सौर ऊर्जा शोध के प्रति उनकी जिज्ञासाएँ प्रबल होने लगी। भगवान महावीर आतापना (सूर्य की रोशनी में साधना करना) क्यों लेते थे? उनके साढे बारह साल के कठोर साधना काल में उनको कमजोरी, थकावट एवं प्रमाद अनुभव क्यों नहीं हुआ ? उन्हे भूख क्यों नहीं लगती थी? उन्होंने अपने साधकों को तीसरे प्रहर में ही अर्थात् धूप में ही भिक्षा लाने एवं विहार का क्यों निर्देश दिया? ऐसे अनेकों प्रश्नों पर उनका गहन चिन्तन चलने लगा। **आज भी विश्व में ऐसी अनेक विशिष्ट विभूतियाँ हैं जो बिना भोजन अथवा सूक्ष्म आहार से अपने जीवन का निर्वाह कर रही हैं। हम उनका कोई वैज्ञानिक आधार ढूंढने के बजाय, मात्र देवी शक्ति मान आत्म संतोष कर लेते हैं। जनसाधारण रोम आहार से उन विशिष्ट साधकों की भांति जीवन निर्वाह क्यों नहीं कर सकते?**

श्री माणक ने श्रमण महावीर के जीवन से प्रेरणा लेकर सौर ऊर्जा पर विविध प्रयोग प्रारम्भ किए। प्रतिदिन उन्होंने धूप में नंगे पांव चलना प्रारम्भ किया। उन्होने जब अभ्यास करते करते वे प्रतिदिन 10 से 12 किलोमीटर तक

चलने लगे तो उनके भोजन की आवश्यकता आधी रह गयी। परन्तु इतना कम भोजन करने के बावजूद उन्हें किसी कमजोरी, थकावट, अस्वस्थता का अनुभव नहीं होने लगा और उनका सोचने सकारात्मक होने लगा। ओजस बढ़ने लगा।

गायत्री मंत्र में सूर्य नमस्कार का उन्होंने चिंतन किया। उन्होंने अनुभव किया कि **मंत्र तो मात्र एक विधि है के जाप का वास्तविक मतलब होता है - उस विधि को क्रियान्वित करना। मात्र उच्चारण करने से उसका ं मिलता। हम नमस्कार किसको करते है? नमस्कार का मतलब होता है - स्वागत करना। सूर्य नमस्कार ब सूर्य की रश्मियों का स्वागत करना अर्थात् उनको शरीर में ग्रहण करना** । सूर्य दर्शन के प्रयोग से उन्होंने आश्चर्यजनक परिवर्तनों का अनुभव किया। प्रारम्भ में उन्होंने चन्द दिनों तक आहार का त्याग किया। उसका क्रम बढ़ाने लगे।

18 जून 1995 से 16 जनवरी 1996 तक उन्होंने मात्र गर्म पानी और सौर ऊर्जा के सेवन से अपने सारे कार्यक्रम रूप से करते हुए उपवास किए। उपवास के बावजूद उनका स्वास्थ्य संतोषप्रद रहा। अपने पारिवारिकजनों के आग्रह पर आपने न चाहते हुए भी उपवास तो समाप्त कर दिए, परन्तु एक संकल्प लिया कि भविष्य में र्न्त मात्र कुछ तरल पदार्थों का ही सेवन करेंगे। उनका सौर ऊर्जा के प्रति आकर्षण और आत्म विश्वास बढ़ने पने दृष्टिकोण को आधुनिक विज्ञान से पुष्ट करने हेतु विभिन्न राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्वास्थ्य सम्मेलनों में र ऊर्जा पर अपना दृष्टिकोण रखा तथा आधुनिक चिकित्सकों को उनकी पूर्ण देखरेख में सौर ऊर्जा पर लम्बी क उपवास रखने का प्रस्ताव रखा। अहमदाबाद के विशेषज्ञ डाक्टरों ने उनके आग्रह को स्वीकारा तथा ाद में सौर ऊर्जा और गर्म पानी का सेवन करते रहकर उपवास करने का निमन्त्रण दिया। परिणाम स्वरूप रतन माणक ने एक जनवरी 2000 से 15 फरवरी 2001 तक चौबीसों घंटे डाक्टरों की पूर्ण देखरेख में 411 उपवास किया।

उपवास के दौरान चिकित्सकों ने उनके स्वास्थ्य को पूर्णतः संतोष जनक, तनाव एवं रोगों से मुक्त पाया। उन्हें नहीं हुआ। अपितु उनके आज्ञाचक्र (पीयूष ग्रन्थि) को अधिक सक्रिय पाया गया एवं 65 वर्ष की वृद्धावस्था के शरीर में न्यूरोन का निर्माण होना पाया गया, जो प्रायः उस आयु के अन्य व्यक्तियों में संभव नहीं होता मधुमेह का स्तर लंबे समय तक 43 रहने के बावजूद उनके सारे अंग बराबर कार्य करते थे, जबकि आधुनिक कों की ऐसी मान्यता है कि जब मधुमेह का स्तर पचास से नीचे हो जाता है तो व्यक्ति मूर्च्छा में आ जाता ही नहीं, मधुमेह के इतने कम स्तर में भी उन्होंने गुजरात में भावनगर के समीप पालीताणा जैन तीर्थ जिसमें 3500 सीढ़ियों की चढ़ाई है, पैदल यात्रा कर आधुनिक चिकित्सकों को विस्मय में डाल दिया। उनका बिन लंबे समय तक मात्र 8 रहा, परन्तु इसके उपरान्त चिकित्सकों के अनुसार उनके सारे अंग बराबर कार्य । उनका स्वास्थ्य संतोषप्रद पाया गया। इसका विस्तृत विवरण गुजरात मेडीकल के मार्च 2001 के जनरल ात हुआ। परिणाम स्वरूप आधुनिक चिकित्सकों के सोच में बदलाव आने लगा। वे मानने लगे कि मानव

शरीर अभ्यास से प्रतिकूल परिस्थितियों में भी बराबर कार्य कर सकता है। उपवास की समाप्ति के पश्चात् उनमें जो मानसिक, शारीरिक और आध्यात्मिक स्थिति में बदलाव आया उसका लाभ मानव जाति को पहुँचाने के लिए सौर ऊर्जा के उपयोग की जो विधि उन्होंने प्रतिपादित की वह बहुत ही सहज, सरल है और प्रत्येक व्यक्ति उसका लाभ उठा सकता है।

सूर्य दर्शन की विधि

प्रारम्भ में प्रथम दिन नंगे पैर धरती पर मिट्टी में सीधे खड़े होकर उदित सूर्य को खुली आंखों से मात्र पाँच सैकेण्ड के लिये निहारना प्रारम्भ करें। सूर्य दर्शन का समय प्रतिदिन अपनी अनुकूलता के अनुसार 5 सैकण्ड नियंमित बढ़ाते जायें। सूर्य दर्शन के समय त्राटक करना आवश्यक नहीं है। इस प्रक्रिया की क्रमबद्ध अवधि बढ़ाने का यदि नियमित अभ्यास किया जाए तो कुछ महीनों में ही आश्चर्यजनक परिणाम मिलने लगते हैं।

मानसिक रोगों से मुक्ति – मात्र तीन साढ़े तीन मास पश्चात् सूर्य निहारने की अवधि का अभ्यास जब बढ़ाते बढ़ाते 10 से 12 मिनट हो जाता है तो हमारे नेत्रों को मस्तिष्क से जोड़ने वाला हाइपोथेलेमस ट्रेक धीरे धीरे सूर्य ऊर्जा से उत्प्रेरित (चार्जड) होने लग जाता है। जिससे व्यक्ति में आत्म विश्वास बढ़ने लगता है, नकारात्मक सोच, तनाव, भय, निराशा आदि समाप्त होने लगते हैं। व्यक्ति का मनोबल मजबूत होने तथा सकारात्मक सोच विकसित होने से वह किसी को परेशान नहीं करता। उसकी दुष्प्रवृत्तियाँ एवं दुर्व्यसन स्वयं छूटने लगते हैं। **सम्यक् सोच होना ही आत्म विकास का प्रथम सोपान होता है।**

शारीरिक रोगों से मुक्ति – सूर्य को निहारने से उसकी किरणों में व्याप्त सभी रंग मस्तिष्क ग्रहण करने लगता है। रंग चिकित्सा के सिद्धान्तानुसार अलग-अलग रंगों का शरीर के अलग-अलग अंगों, उपांगों एवं अवयवों पर अलग अलग विशेष प्रभाव पड़ता है। इन रंगों के संतुलन से ही मानव स्वस्थ तथा असंतुलन से रोगी बन जाता है।सूर्य की किरणों में वे सभी रंग होते हैं, जिनकी शरीर को आवश्यकता होती है। अतः उदित सूर्य दर्शन की अवधि बढ़ाते बढ़ाते लगभग 6 मास बाद जब 20 मिनट तक पहुँच जाती है तो सौर ऊर्जा के प्रभाव से मस्तिष्क में स्थित पीयूष और पिनियल ग्रन्थियाँ सक्रिय हो जाती हैं और अन्य ग्रन्थियों को भी सक्रिय बनाने लगती हैं। परिणाम स्वरूप शरीर से सभी प्रकार के रोग दूर होने लगते हैं और व्यक्ति शारीरिक रोगों से मुक्त होने लगता है। जिस प्रकार प्रायः अधिकांश दवाइयाँ हम मुँह से लेते हैं, वे पेट में जाकर, जो रोग होता है, उस पर अपना प्रभाव डालती है, ठीक उसी प्रकार सूर्य किरणों, में होने वाले रंग मस्तिष्क के माध्यम से शरीर के अलग-अलग भागों में पहुँच उन सभी अंगों, उपांगों और अवयवों को संतुलित बना देते हैं। परिणाम स्वरूप शारीरिक रोग ठीक होना प्रारम्भ हो जाते हैं।

भूख से मुक्ति

शारीरिक रोगों के ठीक होने के पश्चात् सूर्य दर्शन के समय की अवधि बढ़ाने से ग्रहण की गई सौर ऊर्जा

शरीर में संगृहित होने लगती है और शरीर सोलेरियम अथवा सोलर कूकर के समान बनने लगता है। सूर्य दर्शन की अवधि जब बढ़ाते बढ़ाते लगभग 8 से 9 मास पश्चात 30 से 35 मिनट तक पहुँच जाती है तो सौर ऊर्जा के प्रभाव से भूख नहीं लगती। व्यक्ति को आहार छोड़ने की आवश्यकता नहीं होती अपितु आहार ही उसे छोड़ देता है। जब ऐसी स्थिति 8-10 दिनों तक हो जाती है और कुछ न खाने के बावजूद शरीर में किसी प्रकार की कमजोरी अथवा थकावट नहीं आती तो शरीर सोलेरियम बन जाता है। शरीर में हलन चलन हेतु ऊर्जा की आवश्यकता होती है, जिसकी पूर्ति प्रायः हम भोजन पानी और हवा के माध्यम से करते हैं। अनाज, सब्जियों और फलों अथवा अन्य माध्यम से जो भी भोजन हम ग्रहण करते हैं उसके उत्पादन में भी प्रत्यक्ष परोक्ष रूप से सौर ऊर्जा का अवश्य योगदान होता है। शरीर को ऊर्जा की आवश्यकता होती है । यदि उसकी पूर्ति किसी भी माध्यम द्वारा होती रहे तो आहार की आवश्यकता नहीं रहती। शरीर को ऊर्जा मिल जाने पर भूख का अनुभव नहीं होता, क्योंकि भूख और ऊर्जा का परस्पर संबंध होता है। सौर ऊर्जा मिलने से शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता। इस प्रकार उदित सूर्य को निहारने से मानव शरीर भी पेड़ पौधों की भांति सौर ऊर्जा को ग्रहण कर शरीर के लिए आवश्यक अवयवों एवं पौष्टिक तत्त्वों में बदलने की क्षमता प्राप्त कर लेता है।

अतः उसके पश्चात् प्रातःकालीन सूर्य दर्शन की आवश्यकता नहीं रहती। मात्र धूप में नंगे पैर कम से कम 45 मिनट चलने से शरीर में संगृहीत सौर ऊर्जा पुनः क्रियाशील हो जाती है।

लगभग एक साल तक ऐसा धीरे धीरे नियमित अभ्यास करने से शरीर का सूर्य के प्रकाश के साथ बराबर तालमेल हो जाता है और उसके बाद मात्र थोड़ी देर धूप में चलने फिरने से शरीर का सोलेरियम पुनः क्रियाशील बन जाता है। सूर्य दर्शन सूर्योदय के 45 मिनट के अन्दर पूर्ण हो जाना चाहिए। उसके बाद सूर्य दर्शन से आंखों को क्षति पहुँचने की संभावना रहती है। सूर्य दर्शन की अवधि एक साथ जल्दी जल्दी नहीं बढ़ानी चाहिए। आँखों के तालमेल के साथ साथ हाइपोथेलेमस ट्रेक को उत्प्रेरित होने में जो समय लगता है वह भी अनिवार्य है। मस्तिष्क को सोलेरियम बनने में भी निर्धारित समय लगता हैं जैसे कि बीज का वृक्ष बनने में।

इस प्रकार सौर ऊर्जा के विधिवत प्रयोग से व्यक्ति के मानसिक एवं शारीरिक रोग तो जाते ही हैं, सम्यक् सोच विकसित होने से वह किसी प्रकार की गलत प्रवृत्ति नहीं करता, जिससे उसको इस जीवन में शांति, समाधि के साथ अगला जीवन भी सुखद प्राप्त होता है। आज विश्व में हजारों व्यक्ति सौर उर्जा के विधिवत प्रयोग द्वारा तनाव से मुक्ति तथा दुर्व्यसनों एवं दुष्प्रवृत्तियों से छुटकारा प्राप्त कर विवेक जागृत कर रहे हैं तथा सुखी जीवन जी रहे हैं।

विशेष जानकारी के लिए –सम्पर्क सूत्र -

Shri Hira Ratan Manak, HF-2-131 KSHB, Vikash Nagar Colony, Chakkor Thkulam, Kalikat 673 006 (Kerala) T.No. 0495-2369928

email - "HRM" < hiraratanmanek@yahoo.com >

रंग चिकित्सा

रंगों का जीवन पर प्रभाव

सूर्य के किरणों की भांति विभिन्न रंगों की किरणों का भी हमारे जीवन पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। रंग **हमारे आकर्षण का मुख्य स्रोत होते हैं। रंगों के सही संतुलन और तालमेल से बने दृश्य हमें आनन्ददायक लगते हैं। इसी कारण वस्त्रों का चयन, भवन की दिवारों के रंगों का चयन, सजावट आदि में रंगों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। रंगों की तरंगों के प्रकम्पनों अथवा अन्य विधियों द्वारा उनका आवश्यकतानुसार उपयोग करने से हम स्वस्थ एवं रोग मुक्त जीवन जी सकते हैं।** आयुर्वेद की अनेकों दवाईयाँ शरद पूर्णिमा की चाँदनी में ही बनाई जाती है। उस दिन रात भर चाँदनी के रंग से प्रभावित अनेकों खाद्य पदार्थ आज भी स्वास्थ्य वर्धक औषधि के रूप में लिये जाते हैं। रत्न चिकित्सक अलग-अलग रत्नों से निकलने वाली अलग-अलग रंगों की तरंगों के आधार पर उन रत्नों का शरीर के विशेष स्थानों पर स्पर्श करवा कर असाध्य रोगों का उपचार करने का दावा करते हैं। ज्योतिष विशेषज्ञ भी अलग अलग ग्रहों के दुष्प्रभावों को कम करने हेतु अलग अलग अंगुलियों में, अलग-अलग धातुओं के साथ आवश्यकतानुसार क्षमता के रत्नों को अंगुलियों में धारण करने का परामर्श देते हैं। पुष्प चिकित्सक अलग-अलग रंगों के पुष्पों के अर्क का उपचार हेतु दवा के रूप में उपयोग करते हैं।

जीवन के लिए श्वास आवश्यक है। रंग हमारे शारीरिक, मानसिक और भावात्मक स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं। हम प्रतिक्षण श्वास के माध्यम से जिन पुद्गलों को ग्रहण करते हैं, वे वर्ण, गंध, रस, स्पर्श आदि से युक्त होते हैं। **हमारे शरीर में भी प्रत्येक अवयव का अपना अपना अलग रंग होता है। इस प्रकार रंग का हमारे जीवन में बहुत महत्व होता है। बिना रंग व्यक्ति जीवित नहीं रह सकता। शरीर में किसी भी अवयव के रंग का असंतुलन रोग का कारण होता है। यदि रंगों को किसी विधि द्वारा संतुलित कर दिया जाये तो व्यक्ति स्वस्थ एवं रोग मुक्त हो सकता है।** श्वास के अलावा हम प्रत्येक इन्द्रिय के विषयों के जो जो पुद्गल ग्रहण करते हैं, उनमें भी रंग होता है। श्वास हमारे शरीर में रंगों का संतुलन पैदा करता है।

आहार विशेषज्ञ शरीर के अवयवों के असंतुलन को दूर करने हेतु अन्य आवश्यक उपचारों के साथ साथ उनको पुष्ट करने वाले रंगों के अनुसार फल, सब्जियाँ, अनाज तथा खाद्य पदार्थ खाने का परामर्श भी देते हैं। हमारे भावों का रंग के साथ गहन संबंध होता है। शरीर, मन, वाणी के साथ-साथ वाणी के प्रकम्पन भी रंगीन होते हैं। **प्रत्येक व्यक्ति**

के आभा मंडल के चित्र किरिलियन केमरे से लिये जायें तो उनका रंग अलग-अलग क्यों होता है ? सभी व्यक्तियों का रंग रूप एक सा क्यों नहीं होता ? शरीर में भी किसी के बाल काले तो किसी के सफेद तो किसी के अन्य अलग-अलग रंगों के क्यों होते हैं ? रक्त लाल ही क्यों होता है ? आकाश नीला ही क्यों ? सभी वनस्पतियाँ पेड़ पौधे एवं उन पर लगने वाले फल प्रारम्भ में हरे ही क्यों होते हैं ? आंखों की शल्य चिकित्सा के पश्चात् हरे रंग की पट्टी ही आँखों पर क्यों लगाई जाती है, अन्य रंगों की क्यों नहीं ? शल्य चिकित्सा करते समय दुनियाँ भर के शल्य चिकित्सक हरी पोशाक ही क्यों पहनते हैं ? आंखों से दिखने वाले अलग अलग प्राकृतिक दृश्यों, कपड़ों, पदार्थों, चित्रों का सही तालमेल हमारे आकर्षण का एक मुख्य कारण होता है । हमें आनन्द , खुशी, प्रसन्नता प्रदान करता है। इसके विपरीत गलत रंगों का तालमेल हमें अरुचिकर लगता है। कारण स्पष्ट है कि रंग प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से हमारे जीवन को प्रभावित करते हैं। शरीर के प्रत्येक अंग और अवयव को अलग अलग रंगों की **विशेष** आवश्यकता होती है तथा उसके असंतुलन से हम रोगी बन जाते हैं।

रंगों द्वारा आन्तरिक भावों की पहचान

प्रत्येक मनुष्य के शरीर के चारों और एक आभामंडल होता है। प्रत्येक व्यक्ति के आभा मंडल के चित्र किरिलियन केमरे से लिये जायें , तो उनका रंग अलग-अलग क्यों होता है ? उसके रंग भाव परिवर्तन के साथ बदलते रहते हैं। भाव और आभा मंडल का गहरा संबंध होता है। भाव शुद्धि द्वारा आभा मंडल को विशुद्ध बनाया जा सकता है तथा आभा मंडल के रंगों से भावों को जाना जा सकता है।

मुख्य मूल रंग

मूल रंग मुख्यतया पांच होते हैं। **ये रंग सफेद, काला, लाल, पीला और आसमानी होते हैं।** बाकी सभी रंग इन्हीं रंगों के अलग-अलग अनुपात में बने मिश्रण होते हैं। उदाहरण के लिए नारंगी रंग, लाल और पीला रंग के मिलाने से बनता है। हरा रंग, पीला और आसमानी रंग के मिलाने से बनता है। नीला रंग, आसमानी और सफेद रंग के मिलाने से बनता है । बैंगनी रंग, लाल व नीले रंग के मिलाने से बनता है। इसी प्रकार अन्य कोई भी रंग दो या अधिक रंगों के मिश्रण से बनाये जा सकते हैं।

नियन्त्रक रंग

रंगों द्वारा उपचार करते समय यदि रोग का कारण और लक्षण किसी रंग की अधिकता से हों, तो उसके विरोधी गुण वाले रंग के प्रयोग से सरलता पूर्वक उपचार किया जा सकता है।

रंग(Colour)	नियन्त्रक रंग (Controlling colour)
लाल	आसमानी
नारंगी	नीला
पीला	बैंगनी
हरा	चमकीला गुलाबी (मेगनेटा)
आसमानी	लाल
नीला	नारंगी
बैंगनी	पीला

शरीर के विभिन्न भागों को विशेष प्रभावित करने वाले संबंधित रंग

1. सिर और गर्दन का ऊपरी भाग	हल्का नीला
2. गला	गहरा नीला
3. छाती और फेंफड़े	बैंगनी
4. आंतें एवं गुर्दे	हरा
5. मूत्राशय	हरा
6. त्वचा	हरा
7. तिल्ली (Spleen) और लीवर	पीला
8. आमाशय	नारंगी
9. धड़, बाजू, जनेन्द्रिय	लाल
10. मस्तिष्क	बैंगनी
11. हड्डियाँ	लाल
12. हृदय	बैंगनी

रंगों का प्रभाव

नाम	संकेत	नाम	प्रभाव
Violet	V	बैंगनी	शीतल, लाल कणों का वर्धक, क्षय रोग नाशक
Indigo	I	नीला	शीतल, पित्तज रोगों का नाशक पौष्टिक
Blue	B	आसमानी	शीतल, पित्तल रोगों का नाशक ज्वर नाशक
Green	G	हरा	रक्त शोधक, वातज रोगों का नाशक, समशीतोष्ण
Yellow	Y	पीला	उष्ण , कफज रोगों का नाशक हृदय और उदर रोग नाशक
Orange	O	नारंगी	उष्ण, कफज रोगों का नाशक मानसिक शक्ति वर्धक
Red	R	लाल	अतिउष्ण, उत्तेजक, केवल मालिश हेतु कफज रोगों का नाशक

अवयवों से संबंधित विशेष रंग-

अंगों की भांति शरीर के विभिन्न अवयवों का भी अलग अलग रंगों से विशेष संबंध होता है । जैसे **नाड़ी संस्थान को बैंगनी रंग पुष्ट करता है। वीर्य नीले रंग से पुष्ट होता है। अन्तःस्रावी ग्रंथियाँ और चर्बी आसमानी रंग से अधिक प्रभावित होती है। मांसपेशियों को हरे रंग से , मज्जा को पीले रंग से, रक्त एवं भोजन से बनने वाले रस को नारंगी रंग तथा हड्डियों को लाल रंग से विशेष ताकत मिलती है।** रंगों का संतुलन स्वास्थ्य हैं। रंगों से शरीर और मन दोनों प्रभावित हो जाते हैं। जब सूर्य की किरणें उपलब्ध न हों तो रंगीन बिजली के बल्बों का प्रकाश कमजोर अथवा रोग ग्रस्त भाग में डालकर उपचार किया जा सकता है। अतः उपर्युक्त अवयवों से संबंधित रोगों में आवश्यकतानुसार सूर्य किरणों अथवा उसी रंग की विद्युत किरणों से उर्जित पदार्थों का सेवन करने से समस्याओं का समाधान हो जाता है।

रंगों की कमी अथवा अधिकता के कारण होने वाले रोग

	रंग की कमी	रंग की अधिकता	परिणाम
1	हल्का नीला	लाल	ज्वर, अतिसार, उदर रोग
2	गहरा नीला	लाल	संधियों की अकड़न, दर्द होना, प्रमेह, पथरी, दाह, खट्टी व कड़वी डकार, गर्दन अकड़ना, उबकाई आना, बाल गिरना, आंखों के रोग
3	पीला	हल्का नीला	मेद के रोग, गुल्म रोग, पसली और मसूड़ों का दर्द, फेंफड़े के रोग, कोष्ठबद्धता, सूजन
4	हरा	लाल	फोड़े-फुन्सी, खुजली, दाद, नासूर आदि त्वचा रोग
5		नीला	वातजन्य रोग
6		लाल	त्वचा में सूजन, गर्मी के विकार
7		सुनहरा	शरीर में चींसें उठना
8	लाल		सुस्ती, आलस्य, नींद, कमजोरी, मंदाग्नि, कब्ज
9.	नीला		क्रोध, चंचलता, उत्तेजना
10	पीला		मंदाग्नि, अरुचि, शरीर दर्द, अनिद्रा, त्वचा में खुश्की
11	आसमानी		अतिसार, पित्तज्वर, हैजा, पेशाब में जलन, पीलिया, पसीना अधिक
12		लाल	कामोत्तेजना

अगर शरीर का कोई अंग रोग ग्रस्त हों तो उपचार करते समय इस बात का ख्याल रखना चाहिए कि उस बीमारी में दोष शोधक रंग के साथ उस अंग के अपने रंग का भी उपचार करने से ज्यादा लाभ होता है।

पंच तत्त्व का रंगों से संबंध (मेरेडियन में प्रवाहित ऊर्जा)

चीनी पंच तत्त्व संबंधित शोध करने वाले वैज्ञानिकों की ऐसी धारणा है कि प्रत्येक तत्त्व एवं उससे संबंधित ऊर्जा का अलग अलग रंगों के प्रति आकर्षण अथवा उदासीनता भाव-शारीरिक असंतुलन अथवा रोग का प्रतीक होता है। जैसे किसी व्यक्ति को लाल रंग बहुत अच्छा लगता है। इसका मतलब उस व्यक्ति में अग्नि तत्त्व एवं ताप ऊर्जा शरीर में आवश्यकता से कम होती है, यदि लाल रंग पसंद न हों, देखते ही अरुचि होने लगें तो उसका मतलब उस व्यक्ति के शरीर में अग्नि तत्त्व एवं उससे संबंधित ताप ऊर्जा आवश्यकता से अधिक होती है। दोनों ही परिस्थितियाँ अग्नि तत्त्व से संबंधित हृदय-छोटी आंत अथवा मस्तिष्क (पेरीकार्डियन) मेरू दण्ड (ट्रिपल वार्मर) में असंतुलन का द्योतक होती है। परिणाम स्वरूप रक्त परिभ्रमण अथवा नाड़ी संस्थान एवं मानसिक रोगों के होने की संभावना बढ़ जाती है। इसी प्रकार हरे रंग के असंतुलन से वनस्पति तत्त्व (लीवर-पित्ताशय), पीले रंग का असंतुलन (तिल्ली-आमाशय), सफेद रंग का असंतुलन (फेफड़े-बड़ी आंत) तथा काले या गहरा आसमानी (Dark Blue) गहरे या नीलें रंग का असंतुलन (गुर्दे-मूत्राशय) में असंतुलन का द्योतक होता है। असन्तुलन का मतलब रोग और संतुलन का मतलब रोग मुक्तावस्था । इस प्रकार संबंधित रंगों को संतुलित कर हम स्वस्थ हो सकते हैं।

त्वचा के रंग की रोग में भूमिका –

त्वचा के रंग में परिवर्तन के आधार पर भी प्राण ऊर्जा के असंतुलन का सरलता से निदान किया जा सकता है। यदि त्वचा के किसी भाग में हरापन आ गया हो तो शरीर के उस भाग में वायु का असंतुलन होने की प्रबल संभावना रहती है। इसी प्रकार शरीर के किसी भाग में त्वचा लाल हो जाने पर उस भाग में ताप ऊर्जा के असंतुलन, पीली पड़ जाने पर नमी ऊर्जा, मन्द कान्ति वाला फीका पड़ जाने पर शुष्क ऊर्जा और नीला या काला पड़ जाने पर शरीर के संबंधित भाग में ठण्डक ऊर्जा का असंतुलन, रोग का कारण हो सकता है।

अत: उपर्युक्त अंगों से संबंधित रोगों की अवस्था में यदि किसी विधि द्वारा अभाव वाले संबंधित रंगों की तरंगों को प्रवाहित किया जायें तो तुरन्त स्वास्थ्य लाभ होता है। उसके लिये संबंधित रंग की किरणों को विद्युत बल्ब के माध्यम से संबंधित अंगों पर डाला जाता है। यदि वे अंग कमजोर अथवा निष्क्रिय हों तो संबंधित रंगों की किरणें उन पर डालने से अंग सक्रिय एवं शक्तिशाली होने लगते हैं। यदि रोग का कारण अंगों की आवश्यकता से अधिक सक्रियता हों तो संबंधित रंगों के प्रभाव को कम करने वाले रंगों की किरणें संबंधित भाग पर डालने से रोग मुक्त हुआ जा सकता है।

कपड़ों एवं वातावरण के रंगों का प्रभाव

लाल, पीला और नारंगी रंग गरम प्रकृति का होता है । अत: गर्मी की मौसम में इन रंगों के कपड़े नहीं पहनना चाहिए। नीले, हरे, बैंगनी और आसमानी कपड़ों का प्रयोग गरमी में हितकर होता है। धूप चश्में नीले या हरे रंग के अधिक शांतिदायक होते हैं। शयनागार की दिवारें और खिड़कियों का रंग भी ठण्डी प्रकृति वाले रंगों का होने से निद्रा अच्छी एवं गहरी आती है। इसके विपरीत यदि कमरे की दिवारों का रंग लाल हों या लाल बल्ब जल रहा हों, वहाँ निद्रा बराबर नहीं आती । ऐसे लाल वातावरण में रहने वालों को क्रोध अधिक आता है। **ठण्डे रंगों का चिन्तन और ध्यान करने से गरमी का प्रभाव कम होता है।**

सर्दी की मौसम में गरम प्रकृति के रंगों का उपयोग गरमी बढ़ाने से आरामदेय होता है। जिन देशों में ठण्डक संबंधी रोगियों का प्रतिशत अधिक होता हैं, उनके लिए लाल, पीले, नारंगी रंग के कपड़े ज्यादा लाभप्रद होते हैं। पगथली ठण्डी होती हों तो लाल मौजों का प्रयोग करना चाहिए। **गंठियाँ के रोगी अथवा जोड़ों में दर्द वालों को लाल कपड़े ज्यादा लाभप्रद होते हैं।** परन्तु जिनका हृदय कमजोर हों, उनको लाल कपड़े पहनना हानिकारक हो सकता है। सर्दी की मौसम में ठण्डक से सुरक्षा हेतु रजाई के अस्तर का रंग लाल रखना चाहिए। **चर्म रोगियों को हरे रंग के कपड़े लाभदायक होते हैं।** टोपी या हेल्मेट के अन्दर का भाग हरा रखने से मष्तिष्क शांत रहता है। **शरीर की गर्म और लाली वाली सूजन वाले भाग पर नीला और सफेद मिश्रित कपड़ा पहनना चाहिए। पुरानी तथा सख्त सूजन वाले स्थान पर लाल कपड़ा पहनना चाहिए।**

रंग संतुलन की स्वावलम्बी विधि

प्रत्येक मनुष्य के शरीर के चारों तरफ एक आभामंडल होता है। उसके रंग भाव परिवर्तन के साथ बदलते रहते हैं। भाव और आभामंडल का गहरा संबंध होता है। अत: भावशुद्धि द्वारा आभामंडल को विशुद्ध किया जा सकता है। इसी सिद्धान्त के अनुसार **रंग की कमी से रोग हों तो उसी रंग के वातावरण की कल्पना करते हुये श्वास लेने से शरीर में उस रंग की पूर्ति होने लगती है। परन्तु रोग का कारण यदि किसी रंग की अधिकता से होता है तो उस रंग के चिन्तन के साथ रेचक करने से लाभ होता है। साथ ही उस रंग के प्रभाव को कम करने वाले रंग की अपने आसपास के वातावरण में कल्पना कर पूरक करने से अच्छे परिणाम आते हैं।**

लाल रंग बढ़ाने से नीले रंग, हरा रंग बढ़ाने से बैंगनी रंग से होने वाले तथा नीला रंग बढ़ाने से लाल रंग की अधिकता से होने वाले विकार दूर हो जाते हैं। **शरीर के किसी भाग के उपचार हेतु लाल रंग की किरणों से उपचार करते समय, मस्तिष्क को आसमानी रंग की किरणें साथ साथ अवश्य देनी चाहिये। रंग चिकित्सा से उपचार करते समय रोगी का स्वभाव उसके रंगों के प्रति रुचि या अरुचि, मौसम, उसके द्वारा पहनी जाने वाली पोषाक, आसपास दृष्टिगत होने वाले रंग, भोजन में लिए जाने वाले पदार्थों का रंग आदि भी प्रभावित करते हैं।**

जब दो विरोधी रंग अच्छे लगते हैं तो व्यक्ति का रोग पुराना एवं जटिल होता है।

रंग चिकित्सा की चमत्कारिक अनुभूति

मेरे कानों में लम्बे समय से पीब आ रही थी। परीक्षण करवाने के पश्चात् पता चला की कान के पर्दे में दरार हो गई है। मैंने नाक में दिन में 2-3 बार शिवाम्बु की बूंदें डाली और कान में नीले रंग की बिजली की किरणें लगभग पांच-पांच मिनट के लिये दिन में 3-4 बार डाली। जिससे उसी दिन से कान में पीब आना बन्द हो गई। नीला रंग गले के ऊपर के अंगों का मुख्य पोषक रंग होता है और साथ में रोगाणुनाशक गुण वाला तथा ठण्डी प्रकृति का होने से संकोचन करने वाला भी होता है। शिवाम्बु भी रोगाणुनाशक होता है। गले, नाक और कान का आपस में घनिष्ठ संबंध होता है। अतः नाक के माध्यम से डाली गई शिवाम्बु की बूंदों का प्रभाव शीघ्र होता है। कान में पीब आने वाले अनेकों रोगियों पर भी इस प्रयोग से तुरन्त प्रभावशाली परिणाम प्राप्त हो रहे हैं।

कानों में नीली रोशनी द्वारा उपचार करते हुए।

चित्र नं. 159

दांतों के दर्द और गले संबंधी रोगों में भी बिजली के नीले बल्ब की किरणों का प्रयोग अत्यधिक प्रभावशाली सिद्ध हुआ है। अतः जहाँ सूर्य किरणें उपचार हेतु उपलब्ध न हों, संबंधित रंग के बिजली के प्रकाश का उपयोग भी किया जा सकता है।

सारांश यही है कि शरीर में अंगों एवं अवयवों के आवश्यकतानुसार, मौसम के अनुकूल रंगों का सेवन कर, कपड़े पहनने अथवा वातावरण में रहने, चिन्तन करने, रत्नों को धारण करने, ऊर्जा चक्रों के रंगों के अनुसार प्रभावित चक्रों पर बीज मंत्रों के उच्चारण के साथ ध्यान करने, रंगीन बिजली के बल्ब का प्रकाश अथवा सूर्य किरणों को रंगीन कांच या अन्य किसी माध्यम द्वारा शरीर के रोग ग्रस्त भाग पर डालने से रंगों का सन्तुलन किया जा सकता है। रंगों का संतुलन होते ही शरीर में रोग के बने रहने की संभावना नहीं रहती। अतः उपचार करते समय समग्र दृष्टिकोण से विभिन्न रंगों के गुणों को ध्यान में रख, रोग के लक्षणों एवं अन्य प्रभावों को ध्यान में रखकर रंगों का चयन करना चाहिए।

नीली रोशनी द्वारा गले के रोगों का उपचार।

चित्र नं. 160

उपचार के प्रभावशाली उपकरण

उपचार को प्रभावशाली बनाने वाले चंद उपकरण

आधुनिक चिकित्सा के प्रति जनसाधारण में आर्कषण का एक प्रमुख कारण होता है-उसके उपचार से जल्दी राहत मिलना। इसी कारण रोगी भविष्य में पड़ने वाले दुष्प्रभावों एवं आधुनिक चिकित्साओं के अन्य सभी दुर्गुणों की उपेक्षा करते हुए भी संकोच नहीं करता। प्रायः स्वावलंबी उपचारों में किसी अन्य भौतिक उपकरणों की आवश्यकता नहीं होती। परन्तु उपचार करते समय विशेष रूप से जब रोग असहनीय हों, तीव्र हों, पुराना हो तथा दर्द में तुरन्त आराम प्राप्त करना हों तो, अपवाद के रूप में यदि किसी भौतिक यंत्र एवं उपकरण का सहयोग लेने की आवश्यकता पड़ने पर उनका उपयोग भी लिया जा सकता है। जिस प्रकार पानी का प्रथम घूंट लेते ही प्यास शांत होने लगती है, ठीक उसी प्रकार ऐसे उपकरणों के सहयोग से चन्द मिनटों में ही रोगी को बिना किसी दुष्प्रभाव आराम मिलने लगता है। ऐसे ही 2.3 उपकरणों, जिनका लेखक ने स्वयं उपयोग किया एवं उपचार केन्द्र पर रोगियों का उपचार करने हेतु उपयोग लेते हैं और जिसको व्यक्ति स्वयं उपयोग कर सकता है, जानकारी देना लेखक अनुचित नहीं मानता। उनके उपयोग से वैकल्पिक चिकित्सा तुरन्त राहत दिलाने वाली बन जाती है। उपचार के पश्चात व्यक्ति को कुछ समय के लिए शिथिलीकरण हेतु शवासन और गहरे श्वास लेने से उपचार का प्रभाव स्थायी होने लगता है।

दर्द नाशक इलोक्ट्रोनिक एक्यूपंचर मशीनः-

शरीर में प्रवाहित होने वाले रक्त अथवा चेतना के प्रवाह में शरीर के किसी भाग में उत्पन्न अवरोध के कारण उस स्थान पर दर्द अथवा पीड़ा होने लगती है। माँसपेशियों पर विजातीय तत्वों का जमाव बढ़ने लगता है। हड्डियों में रसायनिक परिवर्तन भी हो सकता है। परिणाम स्वरूप उस भाग की मांसपेशियों का लचीलापन कम हो जाने के कारण हलन चलन में कष्ट एवं पीड़ा होने लगती है।

असक्रिय मांसपेशियों को पुनः लचीला, सशक्त एवं गतिशील बनाने के लिये आवश्यकतानुसार उनका मसाज आवश्यक होता है। अतः यदि किसी विधि एवं ऊर्जा द्वारा उस विजातीय तत्व को वहां से दूर कर दिया जाये तो चेतना का प्रवाह नियमित होने लगता है और दर्द में राहत मिलने लगती है।

अतः यदि उस स्थान पर सहनीय कम दबाब एवं शरीर की क्षमतानुसार उच्च गति से बिजली का प्रवाह किया जाये तो, माँसपेशियों में तुरन्त संकुचन और फैलाव होने लगता है। जिससे उस स्थान पर जमा विजातीय विकार शीघ्र

दूर होने लगते हैं। दबी हुई रक्त वाहनियाँ अपने वास्तविक स्थिति में आने लगती है। रक्त एवं चेतना का प्रवाह नियमित एवं संतुलित होने लगता है। परिणाम स्वरूप दर्द और पीड़ा कुछ ही समय के उपचार से कम होने लगती है।

वर्तमान में उपलब्ध यह उपकरण अधिकतम 6 वोल्टेज एवं 350 फ्रिक्वेन्सी पर कार्य करता है। वोल्टेज और फ्रिक्वेन्सी को आवश्यकतानुसार और सहनशक्ति के अनुसार कम करके नियंत्रित किया जा सकता है। इसमें तीन टरमीनलस होते हैं। एक टरमीनल कोमन होता है, जबकि बाकी दो टरमीनलस में एक अथवा दोनों का उपयोग किया जा सकता है। उपचार करते समय एक्युप्रेशर के संबधित प्रतिवेदन केन्द्र पर कोमन टरमीनल स्पर्श कराया जाता है, जबकि अन्य टरमीनल को आस पास के क्षेत्र की त्वचा को स्पर्श करते हैं। जब उच्च फ्रिक्वेन्सी से प्रतिवेदन बिन्दू पर बिजली का प्रवाह किया जाता है तो वहां से विजातीय तत्व दूर होने लगते हैं और स्पर्श करते ही रोगी को रोग से तुरन्त राहत मिल जाती है। रक्त का प्रवाह नियमित हो जाता है। एक प्रतिवेदन बिन्दू पर उपचार 5 से 15 सैकेण्ड तक रोग एवं रोगी की स्थिति के अनुसार करना चाहिए। उससे अधिक एक समय पर नहीं। यदि आवश्यकता हों तो थोड़े समय पश्चात पुनः उपचार किया जा सकता है।

उच्च गति के विद्युत प्रवाह द्वारा तुरन्त पीड़ा में राहत दिलाने हेतु उपचार।

चित्र नं. 161

इसी प्रकार पीड़ा ग्रस्त भाग पर इस उपकरण से मसाज करने पर चन्द क्षणों में दर्द में तुरन्त आराम मिलता है। दर्दनाशक दवा का दुष्प्रभावों से रहित, आधुनिक स्वावलंबी चिकित्सा पद्धति में यह उपकरण सरल एवं अत्यधिक प्रभावशाली विकल्प है। अस्पतालों में उस उपकरण की सहायता से सैकड़ों रोगियों को दर्द में कुछ समय में ही तुरन्त राहत दिलायी जा सकती है। परन्तु इस उपकरण से उपचार करते समय रोगी को असहनीय पीड़ा होती है। अतः जो रोगी 5-10 सैकेण्ड तक पीड़ा को सहन कर सकें, उन्हीं का इस उपकरण से उपचार करना चाहिए।

इस उपकरण द्वारा मस्तिष्क, हृदय एवं अन्य संवेदनशील भागों पर भी प्रभावी ढंग से उपचार किया जा सकता है, परन्तु उसके लिए अनुभवी चिकित्सक के निर्देशन में प्रारम्भ में उपचार करना चाहिये, ताकि सही वोल्टेज एवं फ्रिक्वेन्सी का रोगी की क्षमता एवं रोग के अनुसार चयन किया जा सकें।

अल्पकालीन उपयोग वाले मसाजर

शरीर के किसी भी स्थान पर मसाज करने से उस भाग की माँसपेशियों में लचीलापन आने लगता है और

उस पर जमा विजातीय तत्त्व दूर होने लगते हैं। मसाजर के साथ अलग-अलग उपकरण लगाकर आवश्यकतानुसार मसाज करने से उपचार अधिक प्रभावशाली हो जाता है। मसाजर के साथ चुम्बक लगाकर उपयोग किया जाये तो चुम्बकीय चिकित्सा अत्यधिक प्रभावशाली बन जाती है। उपचार करते समय उपकरण की क्षमता एवं रोगी की अवस्था के प्रति सजगता एवं विवेक महत्वपूर्ण होता है।

चुम्बकीय वाईब्रेटर द्वारा कब्जी का उपचार करते हुए।

चित्र नं. 162

(1) उत्तरी ध्रुव का चन्द मिनटों तक दर्दस्थ भाग पर मसाज करने से दर्द में आराम होने लगता है।

(2) हथेली के नीचे मुख्य नाड़ियों पर 2-3 मिनट दाहिने हाथ में उत्तरी ध्रुव का मसाज करने से उच्च रक्तचाप कम हो जाता है तथा बांयें हाथ पर दक्षिणी ध्रुव का मसाज करने से, निम्न रक्त चाप शीघ्र बढ़ने लगता है। (देखे चित्र नं.156)

(3) पेन्क्रियाज अथवा अन्य किसी कमजोर भाग पर दक्षिणी ध्रुव का मसाज करने से उस भाग में स्थित अंग सक्रिय होने लगता है। अंतःश्रावी ग्रन्थियों एवं ऊर्जा चक्रों पर दक्षिणी ध्रुव के उपचार से वे सक्रिय होते हैं।

(4) नाभि पर चित्र में दर्शाये अनुसार दक्षिणी ध्रुव के मसाज से कब्जी दूर होती है, जबकि उत्तरी ध्रुव के मसाज से दस्तें लगना रूक जाता है।

(5) नाक पर दक्षिणी ध्रुव के मसाज से जुकाम ठीक होता है।

(6) मेडूला ओब्लंगेटा पर मसाज करने से तनाव एवं रक्तचाप संतुलित हो जाता है। निद्रा आराम से आ जाती है।

(7) सीने पर दक्षिणी ध्रुव का मसाज करने से दमा एवं सर्दी संबंधी रोगों में राहत मिलती है।

(8) गांठ पर अनुभवी चिकित्सकों के निर्देशन में थोड़ी-थोड़ी देर के अन्तराल में उत्तरी एवं दक्षिणी ध्रुव का मसाज करने से चन्द दिनों में ही गांठ सिकुड़ कर बिखर जाती है और कभी कभी शल्य चिकित्सा की आवश्यकता नहीं रहती। क्योंकि उत्तरी ध्रुव के प्रभाव से गांठ सिकुड़ती है और दक्षिणी ध्रुव के प्रभाव से फैलती है। निरन्तर संकोचन और फैलाव से गांठ चंद दिनों के उपचार से ही समाप्त हो जाती है।

(9) पीड़ा ग्रस्त भाग पर उत्तरी ध्रुव का मसाज करने से दर्द शीघ्र कम होने लगता है।

शक्तिशाली मसाजर

बाजार में उपलब्ध अधिकांश साधारण मसाजर में कम क्षमता की मोटर होने से प्रायः मसाजर का उपयोग 2-3 मिनट से अधिक नहीं कर सकते हैं। दर्द वाले स्थान पर मसाजर का उपयोग प्रायः सुहावना और आरामदायक लगता है। मांसपेशियों संबंधी रोगों का मुख्य कारण उनका नियमित हलन चलन न होने से उनका लचीलापन बराबर नहीं रहता। अतः यदि किसी विधि द्वारा उनमें हलन चलन की प्रक्रिया आवश्यकतानुसार विवेक पूर्वक की जाए तो शरीर के उस भाग की मांसपेशियों सशक्त हो जाती है। वहां जमा रक्त प्रवाह में अवरोध समाप्त हो जाता है।

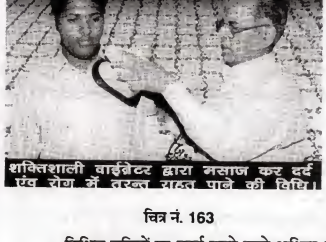

चित्र नं. 163

विभिन्न गतियों पर कार्य करने वाले अधिक क्षमता वाले मसाजर जिनका उपयोग 25 से 30 मिनट तक एक साथ किया जा सकता है, का उपयोग अधिक आसान और लाभप्रद होता है। अतः इस उपकरण से एक साथ सारे शरीर की मांसपेशियों में मसाज की जा सकती है। परिणाम स्वरूप व्यक्ति की कार्य क्षमता शीघ्र बढ़ने लगती है और रोगी रोग मुक्त होने लगता है। मसाजर के उपयोग से रोगी को दर्द नहीं होता है बल्कि बहुत अच्छा आरामदायक लगता है। सारी मांसपेशियों को आसानी से सक्रिय रखा जा सकता है। विशेषकर दमा, हृदय रोगियों में इसके उपयोग से चमत्कारी परिणाम प्राप्त होते हैं। साथ ही मसाज के अधिकांश लाभ मिल जाते हैं।

1. मल त्यागने से पूर्व अथवा उषापान के पश्चात उदर पर चन्द मिनटों तक मसाजर फेरने से आंतों में रूका मल आसानी से बाहर किया जा सकता है।

2. सीने पर मसाज करने से फेंफड़ों में जमा कफ दूर होने लगता है।

मसाज करने का समय रोगी की अवस्था और व्यक्ति पर उससे पड़ने वाले प्रभाव पर निर्भर करता है। अतः उसकी सजगता और स्वविवेक ही उपचार के समय का सही निर्धारण कर सकते हैं।

आजकल एक्युप्रेशर एवं चुम्बकीय चिकित्सा के सैकड़ों उपकरण बाजार में उपलब्ध हैं और विक्रेता उनके लाभ का बखान करते नहीं थकते। परन्तु मेरी स्पष्ट मान्यता है कि अनावश्यक उपकरणों का उपयोग करने से स्वावलंबी चिकित्साएँ न केवल परावलंबी ही बनती है, अपितु उपचार के प्रति रोगी की सजगता, नियमितता और निरन्तरता भी बाधित होती है। जहां अन्य विकल्प न हों और रोगी को शीघ्र राहत पहुंचाना हों, वही उपकरणों का उपयोग करना श्रेयष्कर होता है।

राहत उपचार का महत्वपूर्ण भाग हो सकता है,
परन्तु राहत मात्र पूर्ण उपचार नहीं हो सकता।

स्वास्थ्य सुरक्षा एवं उपचार को प्रभावी बनाने वाली जीवन शैली

शरीर मन और आत्मा को विकारों से मुक्त रख, अपने जीवन के लक्ष्य को पाने के लिये, प्रत्येक चिन्तनशील मानव को यथा संभव पूर्ण सजगता एवं विवेक के साथ, प्रकृति के सनातन सिद्धान्तों का पालन कर, अपने आपका संतुलन रखना चाहिए। पुस्तक के प्रत्येक अध्याय में ऐसी आवश्यक बातों की विस्तार से चर्चा की गई है। हमारी जीवन शैली में प्राथमिकता के आधार पर उनका पालन आवश्यक होता है, जो शरीर को असंतुलित होने से बचाती है। उन नियमों का जितना जितना पालन होगा, उतना उतना हमारा जीवन स्वस्थ, सुखी एवं शांत होगा। उन बातों का पालन करने के उपरान्त भी यदि प्रत्यक्ष परोक्ष कारणों से अथवा भूत की भूलों, असावधानी या वर्तमान की असजगता के कारण अगर रोग के लक्षण प्रकट हों भी गये हों तो भी उन सिद्धान्तों के अनुरूप जीवन शैली से उपचार अत्यधिक प्रभावशाली हो जाता है। रोग से शीघ्र मुक्ति मिल सकती है। परन्तु ठीक इसके विपरीत जाने अनजाने में जितना जितना हम उन नियमों का उल्लंघन करते हैं तो बहुत प्रयास करने के बावजूद भी न केवल हम रोग ग्रस्त ही होते हैं, अपितु कोई भी चिकित्सा पद्धति हमें स्वस्थ रखने का दावा नहीं कर सकती। ऐसी चन्द महत्वपूर्ण बातों का समावेश हमारी दैनिक गतिविधियों में करने हेतु यहां संक्षिप्त विवरण पुनः प्रस्तुत किया जा रहा हैं।

1. प्रत्येक व्यक्ति को निद्रा त्यागते ही सर्व प्रथम अपने आराध्य का स्मरण कर प्राणी मात्र के प्रति मैत्री, करुणा, दया एवं अनुकंपा रखने की भावना करनी चाहिए तथा उस दिन के लिये अपने किसी अवगुण को छोड़ने का दृढ़ संकल्प लेकर अपनी दिनचर्या का प्रारम्भ करना चाहिए।

2. प्रातःकाल जितना जल्दी सूर्योदय से पूर्व निद्रा त्याग सकें, उठना चाहिये एवं शान्त खुले वातावरण में टहलना, व्यायाम, आसन, प्राणायाम , स्वाध्याय और ध्यान करना चाहिए। व्यायाम में रीढ़ के घुमावदार व्यायाम, आसन में वज्रासन, गोदुहासन, पद्मासन एवं ताडासन का अवश्य समावेश करना चाहिये जिससे शरीर का संतुलन, मांसपेशियों में लचीलापन बना रहता है। चन्द मिनटों के लिये खुलकर हंसना, जोगिंग करना भी बहुत लाभप्रद होता है।

3. स्वास्थ्य की आज सारी समस्याओं का मूल सही दृष्टिकोण का अभाव, आत्म नियन्त्रण की कमी, स्वछन्द मनोवृत्ती, असंयम बढ़ती हुई आकांक्षायें, धैर्य एवं सहिष्णुता का अभाव, विवेक की कमी, प्राथमिकताओं का गलत चयन एवं सम्यक् लक्ष्य का अभाव होता है। अतः हमारी जीवन शैली यथा संभव संयमित, नियमित, अनुशासित, स्वावलंबी, श्रम प्रधान, अहिंसक, सात्विक एवं सम्यक् चिन्तन से युक्त विवेकमय होनी चाहिये। प्राथमिकताओं का चयन और उसकी क्रियान्विति क्षमताओं के सम्यक् उपयोग एवं महत्व के अनुरूप होनी चाहिये। प्रवृत्तियाँ करते समय मन,वचन

और काया के सम्यक् तालमेल के साथ आत्मा की उपेक्षा न हो। इस बात की सजगता रखनी चाहिए।

4. तनाव पैदा करने वाले वातावरण से यथा संभव दूर रहना चाहिए, अथवा उस समय मौन हो जाना, तथा सकारात्मक सोच रख स्वविवेक, सजगता एवं धैर्य रखने का प्रयास करना चाहिए। घर में अनुशासन, प्रेम, तालमेल और सहयोग का वातावरण होने से स्वतः प्रसन्नता एवं शांति मिलती है। तनावमय वातावरण न होने से रोग होने की संभावनाएं बहुत कम हो जाती है। टी.वी. का उपयोग यथा संभव ज्ञानवर्धक कार्यों तक ही सीमित रहना चाहिए। परिवार में मितव्ययता, उपलब्ध सुविधाओं का अनावश्यक दुरूपयोग और अपव्यय न हों, ताकि धन उपार्जन हेतु अनैतिक साधनों का उपयोग करना पड़े।

5. अपनी दिनचर्या का निर्धारण इस प्रकार करना चाहिए, जिससे शरीर के अंगों की क्षमताओं का अधिकतम उपयोग हो सके। अर्थात जिस समय जिस अंग में प्रकृति से अधिकतम प्राण ऊर्जा का प्रवाह हों (देखें चित्र नं. 37 एवं 38) उस समय उस अँग से संबंधित कार्यों को प्राथमिकता देनी चाहिये।

6. शरीर की मूल भूत आवश्यकताओं के रूप में भोजन, पानी, हवा, धूप आदि जो भी हम ग्रहण करते हैं, उनकी क्षमताओं का पूर्ण लाभ लेने हेतु सजगता रखनी चाहिये। अर्थात् यथा संभव मंद परन्तु गहरा पूरा श्वास लेना और निःस्वास निकालना चाहिए। हम वहीं भोजन अथवा अन्य पदार्थ मुख से ग्रहण करें, जिसका पूर्ण पाचन हो सके। पानी कब, कैसा, कितना पीना, इस बात का विवेक रखना चाहिए?

7. एक्युप्रेशर स्वास्थ्य परीक्षण और उपचार की सरलतम विधि है। अतः प्रतिदिन पगथली और हथेली में आगे पीछे दबाव देकर रोग ग्रस्त प्रतिवेदन बिन्दुओं की जाँच कर लेनी चाहिये तथा दर्दस्थ केन्द्रों पर उपचार कर विजातीय तत्वों को वहां से दूर कर देना चाहिये। विशेषकर अन्तःस्रावी ग्रन्थियों, मेरूदण्ड एवम् हाथ और पैर की अंगुलियों के प्रतिवेदन केन्द्रों का चेक अप तो अवश्य नियमित रूप से करना ही चाहिए।

8. सप्ताह में कम से कम एक बार मस्तिष्क शोधन की क्रिया कर लेनी चाहिये, जिससे हमारा मस्तिष्क पूर्व संचित तनावों से मुक्त हो जाता है। रोग की अवस्था में यदि संभव हो तो प्रतिदिन करने से उपचार का प्रभाव अनेक गुणा बढ़ जाता है।

9. प्रातःकालीन उदित सूर्य की रश्मियों को नियमित ग्रहण करना स्वास्थ्य वर्धक होता है, जिसकी अवधि धीरे धीरे 30 से 35 मिनट तक बढ़ानी चाहिये।

10. जो कार्य जिस स्वर के अनुकूल हों उस कार्य को करते समय उस स्वर को चलाने का यथा संभव प्रयास करना चाहिये। इससे कम श्रम में अधिक अच्छे परिणाम मिलते हैं।

11. रोग होने की अवस्था में प्रतिदिन अन्यथा सप्ताह में कम से कम एक बार अपने नाभि, मेरुदण्ड, गर्दन, पैरों आदि का संतुलन देख लेना चाहिये और उसमें गड़बड़ हों तो उसे तुरन्त ठीक कर लेना चाहिये।

12. सप्ताह अथवा पन्द्रह दिनों में कम से कम एक दिन उपवास कर पाचन तंत्र को आराम देना चाहिये।

13. क्षमताओं से अधिक शारीरिक या मानसिक श्रम न करें। जितनी आवश्यक हो गहरी निद्रा लें। ताकि

दिन भर आलस्य एवं थकान का अनुभव न हों। परन्तु अनावश्यक जागृत अवस्था में बिस्तर पर पड़े हुये न रहें।

14. हमारा खान-पान और वेष-भूषा मौसम के अनुकूल होनी चाहिये।

15. मल, मूत्र जैसी शरीर की नैसर्गिक विसर्जन क्रियाओं को जबरदस्ती नहीं रोकना चाहिये।

16. हमारा आवास और कार्य स्थली यथा संभव स्वच्छ, खुला, पर्यावरण एवं प्रदूषण रहित, जहां सूर्य की रश्मियां आवश्यक मात्रा में प्रवेश पा सकें, होना चाहिए। कमरों में दीवारों के रंग तथा साज सज्जा के समान उत्तेजना एवं भय पैदा करने वाले न हों।

17. यथा संभव अपने शिवाम्बु का अवश्य नियमित सेवन करना चाहिये। जिससे शरीर की आन्तरिक सफाई हो सकें। रोगावस्था में उसके अन्य उपयोग भी लेने चाहिए।

18. पंच तत्वों को संतुलित करने वाली मुद्राओं का नियमित अभ्यास करने से शरीर में पंच तत्वों का संतुलन बना रहता है तथा स्वास्थ्य अच्छा रहता है ?

19. पर्याप्ति और प्राणों का संयम ही स्वास्थ्य है। अतः हमारी जीवन चर्या में उनका अपव्यय अथवा दुरुपयोग न हों इस बात की यथा संभव सजगता रखनी चाहिये। हमारी प्रवृत्तियां सम्यक् हों। कषाय और प्रमाद कम करने वाली हों। इस हेतु विशेष प्रयत्नशील रहना चाहिए।

20. प्रतिदिन जल अथवा स्वमूत्र से नेति क्रिया करने से श्वसन तंत्र में आये विकार दूर हो जाते हैं। आंखें अच्छी रहती हैं।

21. सप्ताह में कम से कम एक बार सूर्य मुखी तेल का गंडूस कर लेना चाहिये, जिससे रक्त में आए विकार दूर हो जाते हैं। शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ जाती है। रोगावस्था में नित्य करना चाहिये।

22. नित्य हाथ और पैर के सभी प्रमुख जोड़ों तथा गर्दन के जोड़ों को कम से कम 5-7 बार धीरे - धीरे जितना घुमाया जा सकें, सभी तरफ घुमाना चाहिए।

23. यदि संभव हों तो अपने आवास और कार्यालय की व्यवस्था वास्तु दोषों रहित रखनी चाहिए, ताकि प्राकृतिक पंच महाभूत ऊर्जाओं का अधिकाधिक लाभ प्राप्त हो सकें। कम से कम शयन कक्ष और कार्यालय जहाँ अधिक समय गुजारना पड़ता है, वहां तो उसके अनुरूप व्यवस्था अवश्य रखनी चाहिए।

24. यथा संभव हमारा खान-पान रहन - सहन, आचार-विचार स्वच्छ एवं शुद्ध होना चाहिए।

25. यथा संभव पानी को छानकर, उबाल कर अथवा सफेद कांच के बर्तनों में सूर्य तप्त कर पीना चाहिए।

26. सद् साहित्य के स्वाध्याय, , चिन्तन, मनन हेतु नियमित समय निकालना चाहिए।

27. रात्रि में निद्रा लेने से पूर्व अपने आराध्य को स्मरण कर, अपने दिन भर के कार्यकलापों की समीक्षा करनी चाहिये और मन, वचन और काया से किये गये गलत आचरण का पश्चाताप करना चाहिये। हम ही हमारे सच्चे, निरीक्षक, समीक्षक और परीक्षक होते हैं। दोषों का स्मरण करने से भविष्य में उनसे सरलता पूर्वक छुटकारा पाया जा सकता है।

आंखों के रोगों का बिना दवा उपचार

आजकल आंखों के रोग बहुत बढ़ रहे हैं। **आंखों के रोगों का कारण अपैष्टिक आहार, धूल भरा प्रदूषित वातावरण, तेज प्रकाश में देखना, लगातार टी.वी. देखना, बात बात में आंसू निकालना, नेत्र रोगियों से संक्रमण कम्प्यूटर पर अधिक कार्य करने के अलावा क्षमता से अधिक आंखों पर जोर देकर कार्य लेना तथा वीर्य स्खलन आदि बाह्य कारण होते हैं। अतः आँखों का संयम उपचार के साथ अति आवश्यक होता है।** हम ऐसे कार्यों से यथा संभव बचें, जिससे आंखों पर अनावश्यक जोर पड़ता है । आंख भी शरीर की सक्रिय मांसपेशियों में से प्रमुख होती है। आंखों में रोग का आन्तरिक प्रभाव यकृत-पित्ताशय का असंतुलन अथवा पूर्ण क्षमता से कार्य न कर पाना भी होता है।

मानव शरीर में सारे अंग, उपांग और अवयव पूर्ण सहयोग और तालमेल से कार्य करते हैं। प्रत्येक, कार्य को करने में शरीर के उस अवयव को प्रत्यक्ष-परोक्ष कम-ज्यादा अन्य अवयवों का सहयोग मिलता है। अतः शरीर के किसी भाग में कोई गड़बड़ी हो और उस भाग से अनावश्यक कार्य न करवाये जाएँ एवं अन्य सहयोगी अवयवों का अधिकाधिक सहयोग लिया जाए तो कोई भी रोग असाध्य और संक्रामक नहीं रहता।

अतः आंखों के रोगों से बचने अथवा रोग होने की स्थिति में शीघ्र मुक्त होने के लिए स्वास्थ्य सुरक्षा हेतु जिन बातों का दैनिक जीवन शैली में समावेश प्राथमिकता के आधार पर आवश्यक बतलाया गया है, उनका यथा संभव अधिकाधिक ईमानदारी पूर्वक पालन करना चाहिए। उसके साथ निम्न उपचारों से आंखों संबंधी अधिकांश रोगों से चन्द दिनों में ही छुटकारा पाया जा सकता है। परन्तु यदि हम उन बातों की पालना नहीं करते हैं तो उपचार अस्थायी ही होता है, जिससे मात्र राहत मिल सकती है।

आंखों का सीधा संबंध चीनी पंच तत्त्व सिद्धान्त के अनुसार यकृत और पित्ताशय से भी होता है। अतः यकृत और पित्ताशय की पंच ऊर्जाओं को बियोल मेरेडियन के अध्याय में वर्णित विधि द्वारा संतुलित और नियन्त्रित रखा जाए तो यकृत-पिताशय के असंतुलन से होने वाले, आंखों के अनेक रोगों से बचा जा सकता है।

(i) कमजोर दूर या नजदीक की दृष्टि

जब यकृत की वायु ऊर्जा कम हो जाती है, तो नजदीक की दृष्टि कमजोर होने लगती है। परन्तु जब यकृत में शुष्क ऊर्जा की कमी हो जाती है तो दूर की वस्तुएँ देखने में कठिनाई होती है। अतः यकृत की बियोल मेरेडियन में वायु ऊर्जा को बढ़ाकर नजदीक की दृष्टि और शुष्क ऊर्जा को बराबर कर दूर की दृष्टि को सुधारा जा सकता है।

(ii) मोतिया बिंब का उपचार

मोतिया बिंब (केट्रक) होने का एक मुख्य कारण यकृत की ठण्डक ऊर्जा का बढ़ना भी होता है। अत: जब यकृत में ठण्डक ऊर्जा बढ़ जाती है तो, केट्रक (Cataract) होने लगता है। अत: उस स्थिति आने से पूर्व यदि यकृत की ठण्डक ऊर्जा को कम रखा जाए तो केट्रक होने की संभावनाएँ कम हो जाती है।

वृद्धावस्था में मोतियाबिंब पकने से पूर्व मुंह में पानी भरकर नियमित सूर्य तप्त हरे पानी से अथवा ताजे स्वमूत्र से अथवा त्रिफला के पानी से नियमित आंखें धोने से भी केट्रक होने की संभावनाएँ कम हो जाती है। परन्तु केट्रक होने के पश्चात यदि पुराने स्वमूत्र को दिन में दो बार आंखों में डाला जाए तो केट्रक साफ हो सकता है और शल्य चिकित्सा की आवश्यकता नहीं रहती। जितना स्वमूत्र पुराना होता है, उतना उपचार अधिक प्रभावशाली होता है। फिर भी कम से कम 15 से 20 दिन पुराना स्वमूत्र तो होना ही चाहिए। पुराना शिवाम्बु आंखों में डालने से असहनीय जलन हो सकती है। अत: हमें एक दम पुराना शिवाम्बु आंखों में डालने के बजाय पहले उसी दिन का, फिर दूसरे, तीसरे, चौथे, पांचवे दिन के हिसाब से अवधि क्रमश: बढ़ाते-बढ़ाते 15 से 20 दिन तक अवधि बढ़ाकर स्वमूत्र नियमित डालना चाहिए। इससे आंखों का पुराने स्वमूत्र के साथ तालमेल हो जाता है। किसी दुष्प्रभाव की संभावना नहीं रहती। इंदौर के अनुभवी शिवाम्बु चिकित्सक माणक चंद जी मारु के परामर्श से ऐसे बहुत से आंखों के रोगियों को शल्य चिकित्सा की आवश्यकता नहीं पड़ी।

(iii) रतोन्धी

कुछ व्यक्तियों को रात्रि में देखने और पढ़ने में परेशानी होती है अथवा रतोन्धी का रोग हो जाता है। यदि ऐसे रोगियों के यकृत की वायु और ताप ऊर्जा आवश्यकतानुसार बढ़ा दी जाए तो संतोषजनक परिणाम आने लगते हैं।

(iv) रंग न पहचान पाना (Colour Blindness)

चन्द रोगियों को कुछ रंग पहचानने में परेशानी होती है। यदि हरा रंग पहचानने में कठिनाई हो तो यकृत की वायु ऊर्जा बढ़ाने से अच्छे परिणाम आते हैं। ठीक उसी प्रकार लाल रंग न पहचानने वालों की ताप, पीला रंग न पहचानने वालों की नमी और नीला रंग न पहचानने वालों के यकृत की ठण्डक ऊर्जा बढ़ाने और संतुलित करने से लाभ होता है।

(v) आंखों के अन्य रोगों का उपचार

यदि आंखों में रक्त की नाड़ियों के बराबर कार्य न करने से देखने में परेशानी हों तो यकृत की ताप और वायु ऊर्जा बढ़ाने से लाभ होता है।

पित्ताशय बियोल मेरेडियन की वायु घटाने से आँखों का झबकना, गर्मी कम करने से आँखों की ललाई, नमी कम करने से आंखों में पानी आना, शुष्क ऊर्जा कम करने से आंखों में रक्त संचार सुधरता है और ठण्डक ऊर्जा घटाने से आंखों की रोशनी बढ़ती है।

नेत्र ज्योति अच्छी रखने के उपाय

1. प्रातःकाल उदित सूर्य के सामने देखने से आँखों की रोशनी बढ़ती है। सूर्य दर्शन की अवधि धीरे-धीरे बढ़ानी चाहिए।

2. मुंह में पानी भरकर त्रिफला के पानी से या सूर्य तप्त हरे पानी से अथवा स्वमूत्र से आंखों को धोने से आंखों की दृष्टि सुधरती है।

3. प्रातः निद्रा त्याग के समय आँखों में अपने बासी थूक का अंजन करने से आंखों के विकार दूर होते हैं।

4. प्रातः एवं रात्रि में निद्रा में जाते समय पानी अथवा स्वमूत्र से चित्र नं. 34 में बतलाये अनुसार नेति करने से आंखों के विकार दूर होते हैं। नासाग्र से स्वमूत्र पान करने से भी आँखों की ज्योति ठीक होती है।

5. रात्रि में निद्रा में आंखों पर मेथी की पट्टी बांध कर सोने से अथवा आवश्यकतानुसार क्षमता के चुम्बक लगाने से आंखें सशक्त हो जाती है।

6. प्रातः नंगे पांव हरी घास पर चलने, हरे रंग का ध्यान करने, हरी वस्तुओं को देखने एवं भोजन में हरी सब्जियों का सेवन आंखों के लिये लाभ प्रद होता है।

7. पीयूष ग्रन्थि ओप्टिकल नर्व पर नियन्त्रण रखती है। अतः चित्र नं. 117 में दर्शाये अनुसार पीयूष एवं अन्य ग्रन्थियों पर उपचार करने से आंखों के रोग होने की संभावनाएं कम हो जाती है।

8. पगथली के तलवों में नियमित तेल मर्दन करने से भी नेत्र ज्योति सुधरती है।

9. प्राण मुद्रा से आंखों की रोशनी सुधरती है। (देखे चित्र नं. 13)

10. प्रतिदिन आंखों का चित्र नं. 28 में बतलाये अनुसार व्यायाम करने से अर्थात आँखों को दायें-बांयें, ऊपर-नीचे, तिरछी बांयें नीचे-दाहिने तिरछी ऊपर, तिरछी दाहिने नीचे - तिरछी बाँयें ऊपर, बहुत दूर और बिल्कुल समीप के पदार्थों को देखने से आंखों की मांसपेशियाँ सक्रिय होती है। आँखों की पलकों को गोल -गोल घूमाने , दोनों हथेलियों के अंगूठे के नीचे के ऊभरे भाग को रगड़ कर आँखों पर स्पर्श करने से आँखों का भारीपन कम होता है तथा नेत्र ज्योति सुधरती है।

12. चित्र नं. 113 ए एवं बी तथा 114, 115 में दर्शाये आंखों के प्रमुख प्रतिवेदन बिन्दुओं एवं रीढ़ की हड्डी के सरवायकल के सी-1 और सी-2 माणकों और उनके प्रतिवेदन बिन्दुओं पर दबाव देने से आंखों में रक्त प्रवाह सुधरता है।

उपर्युक्त बातों का यथा संभव पालन करने से आँखों के अनेक रोगों में न केवल शीघ्र लाभ ही मिलता है, अपितु आंखों की ज्योति भी सुधरती हैं।

बिना दवा हृदय रोगों का प्रभावशाली उपचार

हृदय हमारे शरीर में माँसपेशियों से निर्मित एक लचीला चार प्रकोष्ठों वाला अंग होता है जो वक्ष के बांयीं तरफ तीसरी से छठी पसली के बीच में होता है। उसका आकार स्वस्थ व्यक्ति की अपनी बंद मुट्ठी के समान होता है। स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों में इसका आकार प्रायः बड़ा होता है। इसके मुख्य दो भाग होते हैं। बांयाँ और दांयाँ। जो फिर दो भागों में विभाजित होता है। ऊपरी भाग को एट्रियम (आलिन्द) एवं निचले भाग को वेन्ट्रिकल (निलय) कहते हैं। इस प्रकार दो आलिन्द और दो निलय मिलकर इसके चार प्रकोष्ठ होते हैं। **हृदय का कार्य शरीर के दूषित रक्त को लेकर फेंफड़े में भेजना तथा वहाँ से शोधित शुद्ध रक्त को पुनः सारे शरीर में वितरण कर, रक्त की आवश्यकता की पूर्ति करने का होता है।** हृदय में खुलने वाली सभी नाड़ियों के मुंह पर वाल्व होते हैं। इन वाल्वों की संरचना ऐसी होती है कि रक्त का बहाव एक ही तरफ हो सकता है। हृदय अपना कार्य बिना किसी विश्राम दिन रात करता रहता है। हृदय के धड़कन की गति स्वस्थ व्यक्ति में प्रति मिनट 70 से 75 के लगभग होती है। निद्रा और आराम के समय इसकी गति कम हो जाती है, जबकि आवेग में इसकी गति बढ़ जाती है। हृदय में दो पंप होते हैं। एक की सहायता से रक्त को फेंफड़ों में प्रवाहित किया जाता है और दूसरे से रक्त को शरीर के अन्य भागों में भेजा जाता है।

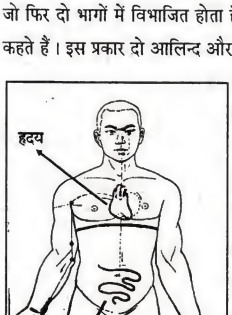

हृदय की मेरेडियन (चित्र नं. 164)

हृदय को दो कोरोनरी धमनियों में प्रवाहित रक्त से पोषण प्राप्त होता है। ये धमनियाँ (आर्टरी) छोटी-छोटी शाखाओं वाले वृक्ष की तरह होती हैं, जिसका एक तना होता है। **धमनियाँ ही हृदय का सर्वाधिक संवेदनशील भाग होती हैं। इसमें किसी प्रकार का रोग मृत्यु का कारण भी बन सकता है।**

धमनियों में अपाचित वसा के जमने के कारण धीरे धीरे इसमें रक्त का प्रवाह अवरुद्ध होने लगता है। धमनी में कभी कभी वसा का डाँट भी बन सकता है। हृदय रोग की गंभीरता धमनी में अवरोध के आकार तथा धमनी में उसके स्थान पर निर्भर करती है।

रक्त पर हृदय की पम्पिंग का जो दबाव पड़ता है उसे रक्तचाप (Blood Pressure) कहते हैं। सामान्य दबाव एक स्वाभाविक क्रिया होती है, परन्तु जब यह दबाव असामान्य हो जाता है तो रोग बन जाता है। जब किसी कारण से रक्त का दबाव बढ़ जाता है तो उसे उच्च रक्तचाप (High Blood Pressure) और जब रक्त का दबाव सामान्य से कम हो जाता है तो उसे निम्न रक्त चाप (Low Blood Pressure) का रोग कहते हैं।

जब हृदय अपने पास एकत्रित हुए रक्त को शरीर में भेजने के लिये सिकुड़ता है तो उस समय जो अधिकतम दबाव बनता है उसे सिस्टोलिक दबाव (Systolic Pressure) कहते हैं। इसी समय शरीर में वापिस लौटे रक्त को ग्रहण करने के लिये हृदय ढीला (Relex) होता है। उस समय जो रक्त का दबाव होता है, उसे डायस्टोलिक दबाव (Diastolic Pressure) कहते हैं। रक्तचाप के दबाव की निम्न सीमा अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण होती है।

हृदय संबंधी रोग

रक्त प्रवाह में किसी कारण अवरोध आने से हृदय को अपना कार्य पूर्ण क्षमता से करने में कठिनाई होती है। स्वयं हृदय की माँसपेशियाँ भी रक्त से पुष्ट होती हैं। परन्तु जब उन धमनियों में रुकावट पैदा हो जाती है तो, हृदय की मांसपेशियाँ क्षतिग्रस्त हो जाती हैं । हृदय कमजोर हो जाता है जिसके कारण हृदय की धड़कन आवश्यकता से कम अथवा अधिक हो जाती है तथा कभी कभी धड़कन बंद भी हो जाती है। रक्तचाप कम अथवा ज्यादा रहने लगता है। **अचानक सीने में दर्द होने लगता है, जो कन्धों से हाथ के छोटी अंगुली की तरफ फैलने लगता है। घबराहट, बेचैनी होने लगती है और पसीना आने लगता है। श्वास लेने में कठिनाई होने लगती है। व्यक्ति को थकान और चक्कर आने लगते हैं** । हृदय और छोटी आंत मेरेडियन के मार्ग में आने वाले शरीर के भागों में दर्द होने लगता है। ये सब हृदय रोग के लक्षण होते हैं।

धड़कन एवं रक्त चाप के असंतुलन के अतिरिक्त रक्त वाहिनियों का कड़ा पड़ जाना (Arterio Sclerosis), वाल्व का खराब हो जाना (Valvular Disorders), रक्त शिराओं का फूल जाना (Varicose Veins), रक्त संचार की कमी से हृदय में तीव्र वेदना होना (Angina Pectoris), हृदय का आकार बढ़ जाना (Heart Enlargement) हृदय के आसपास तरल पदार्थों का एकत्रित हो जाना (Pericardial Infusion) हृदय की मांसपेशियों का सिकुड़ना (Articular Fibrillation), हृदय की क्रिया की गति तीव्र होना (Articular Flutter), हृदय में अवरोध (Heart Block) , हृदय की एक या अधिक धमनियों में अवरोध (Coronary Thrombosis), दिल का दौरा पड़ना (Heart Attack), हृदय की धड़कन बंद होना (Heart Failure) आदि रोग हृदय के रोगों के अन्तर्गत आते हैं।

हृदय रोग के प्रमुख कारण -

हमारी अप्राकृतिक असंतुलित, असंयमित, अनियमित, तनावमय, जीवन शैली हृदय रोग का मुख्य कारण होती है। जैसे गलत खान-पान, मादक दुर्व्यसनों का सेवन, भोजन, पानी और हवा के सेवन के नियमों का पालन न करना, बिल्कुल परिश्रम न करना अथवा क्षमता से अधिक शारीरिक अथवा मानसिक श्रम करना। काम, क्रोध, चिन्ता, भय, शोक, मोह, लोभ आदि मानसिक तनावों से ग्रस्त रहने से हृदय रोग होने की संभावना बढ़ जाती है। मानसिक आवेग के समय मस्तिष्क को अत्यधिक रक्त की आवश्यकता होती है। गलत खान-पान से आमाशय को पाचन हेतु अधिक रक्त की आवश्यकता होती है। क्षमता से अधिक कार्य करने से भी हृदय पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। हृदय हमारे भावों का प्रतिनिधित्व करता है । **अतः नकारात्मक सोच से हृदय की ऊर्जा का अपव्यय होता है। हृदय का संबंध ताप ऊर्जा से होता है। जिसकी अभिव्यक्ति वाणी के माध्यम से होती है। अतः अधिक तेज अथवा बिना मतलब अधिक बोलना हृदय के लिये हानिकारक होता है। इसी कारण हृदय रोग में आराम, मौन, सकारात्मक चिन्तन और सुपाच्य आहार ही उपचार में प्रभावशाली भूमिका निभाते हैं।**

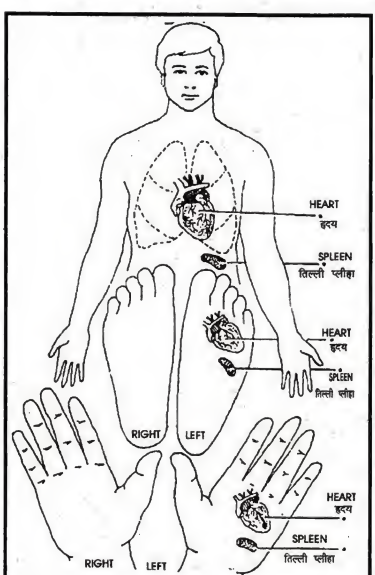

हृदय की शरीर में स्थिति तथा हथेली और पगथली में प्रतिवेदन केन्द्र (चित्र नं. 165)

हृदय रोग के लक्षण

हृदय में प्राण ऊर्जा का प्रवाह हृदय मेरेडियन से संबंधित होता है। जब तक यह प्रवाह संतुलित और आवश्यकता के अनुरूप रहता है, तब तक रक्त नलिका में विजातीय तत्वों की उपस्थिति प्रभावहीन रहती है। परन्तु निरन्तर अधिक प्राण ऊर्जा की मांग के कारण हृदय मेरेडियन के मार्ग में आने वाले शरीर के अवयवों को अधिक कार्य करना पड़ता है जिससे उनमें दर्द और पीड़ा की अनुभूति होने लगती है। **अतः हृदय मेरेडियन के किसी भी भाग में किसी भी कारण से दर्द होने की स्थिति में रोगी को अधिक सजग और सतर्क रहना चाहिये।**

दूसरी बात हृदय की गड़बड़ी के समय सुजोक एवं रिफ्लेक्सोलोजी एक्युप्रेशर के

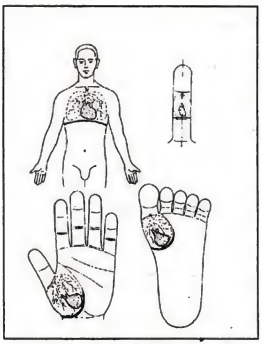

हथेली, पगथली और हाथ की अंगुलि में हृदय संबंधित सुजोक के प्रतिवेदन केन्द्र (चित्र नं. 166)

सिद्धान्तानुसार चित्र में दर्शाये गये दोनों हथेलियों और दोनों पगथलियों में अंगुठे के नीचे ऊभरे हुये भाग पर दबाव देने से हृदय के प्रतिवेदन बिन्दुओं पर हृदयरोग की स्थिति के अनुसार अवश्य पीड़ा होती है। ठीक इसी प्रकार बांयीं हथेली और बांयीं पगथली में चित्र में दर्शाये अनुसार हृदय के प्रतिवेदन बिन्दुओं पर दबाव देने से अवश्य दर्द का अनुभव होता है। **इन प्रतिवेदन बिन्दुओं पर जितना अधिक दर्द होता है, उतनी ही हृदय रोग होने की संभावना अधिक रहती है परन्तु यदि हृदय प्रतिवेदन बिन्दुओं पर दबाव देने पर दर्द न हो तो आत्म-विश्वास के साथ ऐसा समझा जा सकता है कि हृदय बराबर कार्य कर रहा है, भले ही रोगी को हृदय रोग से मिलते जुलते अन्य लक्षण प्रकट क्यों न होते हों।** उनका कारण अन्य अंगों में गड़बड़ी से हो सकता है। परन्तु आजकल चिकित्सकों का समग्र **चिन्तन न होने से, ई.सी.जी. की जांच और परीक्षणों के आधार पर रोगी को हृदय रोगी घोषित करते प्रायः तनिक भी संकोच नहीं होता।**

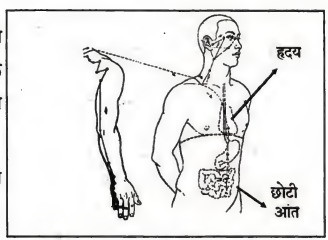

हृदय के यांग अंग छोटी आंत मेरेडियन की स्थिति (चित्र नं. 167)

यिन-यांग के सिद्धान्तानुसार हृदय और छोटी आंत जोड़ों में कार्य करते हैं और दोनों का संबन्ध ताप ऊर्जा से होता है। अतः जब दोनों अंगों की ऊर्जाओं में असंतुलन हो जाता है तो हृदय रोग के लक्षण प्रकट हो जाते हैं। **जैसे गैस के ऊपर आने से हृदय में होने वाला दर्द अथवा छोटी आंत की मेरेडियन के क्षेत्र में आने वाले शरीर के भाग पर होने वाले दर्द को हृदय रोग का कारण समझ लिया जाता है।**

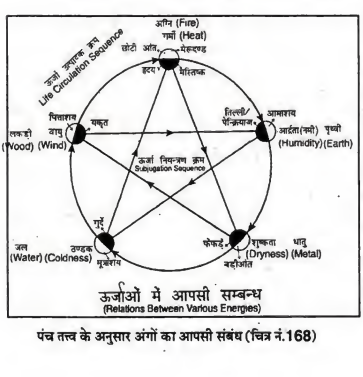

पंच तत्त्व के अनुसार अंगों का आपसी संबंध (चित्र नं.168)

चीनी पंच तत्त्व के सिद्धान्तानुसार हृदय का

नियन्त्रण गुर्दे से होता है और हृदय फेंफड़े को नियन्त्रित रखता है। अत: जब गुर्दे अथवा फेंफड़ों में गड़बड़ी हो जाती है तो भी उसका प्रभाव हृदय पर पड़े बिना नहीं रहता। जैसे कभी-कभी अकारण पसीना अधिक आने की स्थिति को हृदय रोग का कारण बतला दिया जाता है, परन्तु पसीना अधिक आने का कारण फेंफड़े-बड़ी आंत अथवा गुर्दे-मूत्राशय में असंतुलन से भी हो सकता है।

ठीक इसी प्रकार लीवर, हृदय का मातृ अंग और तिल्ली हृदय का पुत्र अंग होता है। अर्थात् हृदय ऊर्जा के उत्पादन में लीवर, तथा तिल्ली की प्राण ऊर्जा के उत्पादन में हृदय का योगदान होता है। लीवर और तिल्ली की गड़बड़ी का भी हृदय पर प्रभाव पड़ता है। अत: रोगी को हृदय रोगी घोषित करने से पूर्व चिकित्सक को समग्र दृष्टिकोण से निदान करना चाहिये।

हृदय शरीर का प्रमुख अंग है तथा उसके कार्य न करते ही मृत्यु हो जाती है। जिस प्रकार परिवार के किसी सदस्य के असाध्य रोग से पीड़ित होने पर अभिभावक चिन्तित रहता है तथा दूसरा अभिभावक अपने स्वयं के रोग से पीड़ित होने के कारण चिन्तित रहता है । बाह्य रूप से दोनों चिन्तित रहते हैं, परन्तु दोनों की चिन्ता का कारण और निवारण का उपाय अलग-अलग होता है। ठीक उसी प्रकार शरीर के अन्य महत्वपूर्ण अंगों में खराबी के कारण हृदय पर पड़ने वाले अतिरिक्त कार्यभार तथा हृदय के अवयवों में गड़बड़ी होने से उत्पन्न स्थिति का अलग -अलग विश्लेषण और उपचार आवश्यक होता है। समस्या का मूल कारण मालूम करना जरूरी होता है। अत: जब तक समग्र दृष्टिकोण से हृदय रोग के लक्षण प्रकट न हों तो रोगी को मात्र बाह्य लक्षणों एवं ई.सी.जी. की रिपोर्ट के आधार पर हृदय रोगी घोषित करना न्याय संगत नहीं कहा जा सकता। हृदय रोग व्यक्ति को जितना परेशान नहीं करता, उससे ज्यादा हृदय रोग बतलाने के पश्चात् रोगी की मानसिकता, परिजनों की सजगता से रोगी को निरन्तर आवश्यक परहेज रखने हेतु आदेश एवं निर्देश आग में घी का कार्य करते हैं। रोगी वास्तव में अपने आपको बहुत बड़ा रोगी समझ, चन्द दिनों का मेहमान मानने लगता है। जीवन के प्रति उत्साह समाप्त होने लगता है। मृत्यु का भय प्रतिक्षण लगने लगता है। चिन्ता, दु:ख, तनाव, भय आदि नकारात्मक चिन्तन से शरीर में पंच ऊर्जाओं का असंतुलन बढ़ने लगता है और धीरे-धीरे व्यक्ति वास्तव में हृदय रोगी बन जाता है। आजकल पचास प्रतिशत से अधिक हृदय रोग का उपचार करवाने वाले व्यक्ति प्रारम्भिक अवस्था में हृदय रोग से पीड़ित नहीं होते, परन्तु चिकित्सकों द्वारा हृदय रोगी बतला देने के कारण मानसिक रूप से हृदय रोग से पूर्णत: ग्रसित हो जाते हैं, जिस पर निष्पक्ष चिन्तन एवं शोध आवश्यक है। अत: जब तक हृदय की गड़बड़ी के परीक्षण में स्पष्ट संकेत प्राप्त न हों, किसी रोगी को हृदय रोगी घोषित नहीं करना चाहिए।

हृदय रोगों में विविध सुरक्षात्मक उपचार

आधुनिक विज्ञान ने हृदय रोग में राहत हेतु बाईपास सर्जरी, वाल्व परिवर्तन, पेसमेकर जैसी अनेक अत्यन्त खर्चीली सुविधाएं उपलब्ध की हैं, परन्तु उनका उपयोग साधारण रोगी नहीं कर सकता। साथ ही शल्य चिकित्सा के पश्चात सदैव दवाईयों की दासता और उनसे पड़ने वाले दुष्प्रभावों के कारण अन्य रोगों का सामना भी करना पड़ सकता

है। अतः स्वावलंबी प्रभावशाली चिकित्सा आधुनिक युग की सर्वाधिक आवश्यकता है। पुस्तक में चर्चित विभिन्न सिद्धान्तों के आधार पर हृदय रोगों का प्रभावशाली उपचार किया जा सकता है। प्रत्येक उपचार हृदय रोग से मुक्ति दिलाने में सक्षम होता है। परन्तु जब आवश्यकतानुसार अनेक स्वावलम्बी उपचार एक साथ किए जायें तो रोग तुरन्त नियन्त्रित हो जाता है। लेखक ने स्वयं अपने पर हृदय रोग से पीड़ित होने पर, बिना किसी दवा स्वावलम्बी चिकित्साओं द्वारा अपने आपको स्वस्थ करने का अनुभव किया है। हृदय -छोटी आंत मेरेडियन में प्राकृतिक ऊर्जा चक्र के अनुसार प्राण ऊर्जा का अधिकतम प्रवाह लगभग 11 A.M. से 3 P.M. के मध्य होता है। अतः उस समय किया गया आंशिक उपचार भी अधिक प्रभावशाली होता है।

दूसरी बात उस समय भोजन करने से पाचन तंत्र को अधिक ऊर्जा की आवश्यकता होती है। अतः हृदय प्रकृति से प्राप्त प्राण ऊर्जा को पूर्णतः ग्रहण न कर सकने के कारण कमजोर होता है। इसलिये भोजन जब आमाशय सक्रिय हो, तभी करना श्रेयस्कर होता है।

तीसरी बात, रात्रि 11 बजे से 3 बजे हृदय-छोटी आंत में प्रकृति से प्राण ऊर्जा का प्रवाह निम्नतम होता है। अतः उस समय निद्रा लेकर हृदय को आराम देना जरुरी है। देर रात जागृत रहना विशेष कर हृदय रोगियों के लिये बहुत हानिकारक होता है। अर्थात् हृदय रोग के कारण जैसा प्रभाव पड़ता है, उसके अनुरूप असंतुलित ऊर्जा को संतुलित करने से रोग में तुरन्त राहत और कुछ दिनों में रोग से पूर्ण मुक्ति मिल सकती है।

हृदय रोगों से बचने अथवा रोग होने की स्थिति में पुनः शीघ्र रोग मुक्त होने के लिए स्वास्थ्य सुरक्षा हेतु जिन बातों का दैनिक जीवन शैली में समावेश प्राथमिकता के आधार पर आवश्यक बतलाया गया है, उनकी यथा सम्भव अधिकाधिक पालना करनी चाहिए। उसके बिना उपचार प्रभावशाली एवं स्थायी नहीं हो सकता।

(1) हृदय रोगियों का नाभि केन्द्र प्रायः विकार ग्रस्त हो जाता है। स्पन्दन केन्द्र में नहीं रहता। अतः नाभि केन्द्र को स्वस्थ रखना आवश्यक होता है। जब तक नाभि ठीक न हो जाए, नियमित नाभि का संतुलन करना चाहिए।

(2) हृदय संबंधी रोगियों को अपने पैरों, गर्दन, और मेरूदण्ड का संतुलन नित्य परीक्षण कर ठीक रखना चाहिए।

(3) हृदय रोगियों को पगथली और हथेली में हृदय, छोटी आंत, तिल्ली, गुर्दों, फेफड़ों, यकृत, मेरूदण्ड, मस्तिष्क एवं सभी अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के मुख्य प्रतिवेदन बिन्दुओं पर नियमित दबाव देने के साथ अन्य पीड़ा ग्रस्त प्रतिवेदन बिन्दुओं पर भी एक्युप्रेशर करना चाहिए।

(4) हृदय और छोटी आंत बियोल मेरेडियन में (चित्र न. 53 में) बतलायी विधि द्वारा ऊर्जा के प्रवाह को संतुलित रखना चाहिए। जिससे हृदय की कार्य क्षमता बढ़ती है। शरीर के अन्य भागों में सहयोगी रोगों के जो लक्षण प्रकट होते हों उसके अनुरूप उस भाग से प्रवाहित होने वाली मेरेडियन की संबंधित असंतुलित ऊर्जा का संतुलन करने से हृदय रोग के दुष्परिणामों से सहज बचा जा सकता है। **यदि शरीर के किसी भाग में जलन हो तो ताप ऊर्जा को कम करना, अवरोध आ गया हो तो ताप ऊर्जा को बढ़ाना, चर्म रोग हो गये हों तो शुष्क ऊर्जा घटाना, अचेतना हो तो ताप ऊर्जा बढाना, असहनीय दर्द अथवा गांठ हो तो ठण्डक ऊर्जा घटाना, कंपन हो तो संबंधित बियोल**

मेरेडियन की वायु ऊर्जा को कम करने से तुरन्त अच्छे परिणाम प्राप्त होते हैं।

(5) यदि उच्च रक्त चाप हो तो (चित्र न. 57के अनुसार) हृदय बियोल मेरेडियन के ताप एवं वायु ऊर्जा वाले केन्द्र पर बटन चुम्बक का उत्तरी ध्रुव लगाने से रक्तचाप कम हो जाता है।

(6) यदि निम्न रक्तचाप हो तो हृदय बियोल मेरेडियन के ताप एवं वायु ऊर्जा वाले केन्द्रों पर (चित्र न. 58 के अनुसार) बटन चुम्बक का दक्षिणी ध्रुव लगाने से चन्द मिनटों में ही रक्तचाप साधारण हो जाता है।

(7) चुम्बकीय वाइब्रेटर के उत्तरी ध्रुव को दाहिने हथेली के नीचे 2-3 मिनट स्पर्श करने से (देखे चित्र. न. 156) भी उच्च रक्तचाप ठीक होने लगता है। ठीक उसी प्रकार बांयीं हथेली के नीचे चुम्बकीय वाइब्रेटर के दक्षिणी ध्रुव का उपचार करने से निम्न रक्तचाप चन्द मिनटों में ही बराबर हो जाता है।

(8) शरीर के जिस भाग की रक्त वाहिनियाँ कड़ी पड़ जाती है, उस भाग से गुजरने वाली मेरेडियन के बियोल मेरेडियन की शुष्क ऊर्जा कम करने तथा वायु ऊर्जा बढ़ा देने से चमत्कारी परिणाम मिलते हैं।

(9) शरीर के जिस भाग की शिराएँ फूल जाती हैं, उस भाग से गुजरने वाली मेरेडियन की बियोल मेरेडियन की शुष्क ऊर्जा बढ़ाने तथा वायु ऊर्जा कम करने से शीघ्र लाभ मिलने लगता है।

(10) यदि हृदय का आकार बढ़ा हो गया हो तो हृदय बियोल मेरेडियन की शुष्क ऊर्जा को बढ़ाना चाहिए।

(11) यदि हृदय की धड़कन बढ़ गई हो तो, हृदय बियोल मेरेडियन की वायु ऊर्जा को कम करने से तुरन्त लाभ मिलता है। इसी प्रकार यदि हृदय की धड़कन कम हो गई हों तो, हृदय बियोल मेरेडियन की वायु ऊर्जा बढ़ाने से शीघ्र लाभ होता हैं।

(12) यदि हृदय की मांसपेशियाँ सिकुड़ गई हों तो, हृदय बियोल मेरेडियन की वायु ऊर्जा को बढ़ाना एवं शुष्क ऊर्जा को कम करना चाहिए।

(13) यदि हृदय और धमनियों में अवरोध आ गया हों तो, हृदय बियोल मेरेडियन की नमी ऊर्जा बढ़ानी चाहिए और ठण्डक ऊर्जा कम करनी चाहिए।

(14) यदि हृदयघात हो गया हो अथवा उसकी कार्य क्षमता क्षीण हो गई हो तो, हृदय की ठण्डक ऊर्जा को घटाना और ताप ऊर्जा बढ़ानी चाहिए।

(15) हृदय रोगियों को नियमित शुद्ध हवा में टहलना, प्राणायाम करना, पाचन के नियमों का पालन, पर्यावरण एवं प्रदूषण रहित वातावरण में रहना, अति आवश्यक होता है। ओम् के उच्चारण के साथ धीरे-धीरे गहरे श्वास लेना चाहिए । ओम् के उच्चारण में "म" का उच्चारण लम्बा करना चाहिए। "म" की ध्वनि हृदय से निकलती है। अत:

ऐसे उच्चारण से हृदय की मांसपेशियां सशक्त होती हैं। साथ ही कपाल-भाति क्रिया द्वारा शरीर में जमें अनावश्यक विकारों को निःश्वास द्वारा बाहर निकालना चाहिए।

(16) रोगी को प्रातःकाल प्रकृति के शुद्ध आक्सीजन युक्त वातावरण में खुल कर 10 से 15 मिनट तक हँसना चाहिए, जिससे शरीर में रक्त का प्रवाह तेजी से होने लगता है और रक्त नलिका में जमे हुए विकार अपना स्थान छोड़ने लग जाते हैं तथा रक्त का प्रवाह संतुलित होना प्रारम्भ हो जाता है । मस्तिष्क शोधन का अभ्यास भी बहुत लाभदायक होता है।

(17) हृदय रोगियों को अपने स्वमूत्र का पान अवश्य करना चाहिए क्योंकि शिवाम्बु में शरीर के लिए सैंकड़ों उपयोगी रसायन होते हैं, जो रक्त के शुद्धिकरण, भोजन के पाचन एवं श्वसन क्रियाओं को सुव्यवस्थित, नियंत्रित और संतुलित रखने के साथ साथ शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाते हैं। **आधुनिक चिकित्सकों द्वारा हृदय घात के समय दिया जाने वाला युरोकाइन इंजेक्शन भी मानव मूत्र से ही बनता है। शिवाम्बु के सेवन से रक्त वाहिनियों की सफाई हो जाती है और बहुत बार शल्य चिकित्सा की आवश्यकता नहीं होती।**

(18) हृदय पर कुछ समय के लिए जब तक सिर में भारीपन अथवा चक्कर न आयें चुम्बक का दक्षिणी ध्रुव को स्पर्श करना चाहिए, जिससे हृदय ताकतवर होने लगता हैं।

(19) हृदय पर दाणा मेथी लगानें से वहां पर स्थित रक्त विकार दूर होने लगते हैं और पीड़ा शांत होती है।

(20) हृदय रोगियों को कार्य के अनुरूप स्वर संचालन हेतु विशेष सजगता रखनी चाहिये। अचानक हृदय घात होते ही, स्वर परिवर्तन से तुरन्त लाभ होता है।

(21) हृदय पर कर्पिंग द्वारा कुछ समय सहनीय चित्र नं.119 में दर्शाये अनुसार खिंचाव चिकित्सा करनी चाहिये

(22) रोगी को हृदय और छोटी आंत पर ध्यान अथवा चैतन्य चिकित्सा द्वारा या अन्य विधि से अधिकाधिक प्राण ऊर्जा भिजवाने की, प्रातः जल्दी उठ शान्त, एकान्त, खुले, शुद्ध वातावरण में प्रक्रिया करनी चाहिए।

(23) हृदय रोगियों को चित्र न. 15 में दर्शायी अपान वायु मुद्रा का अधिक से अधिक अभ्यास करना चाहिए।

(24) हृदय रोग का वाणी से सीधा संबंध होता है। अतः कम बोलना, मौन रखना बहुत आवश्यक है।

(25) हृदय रोगियों को चिंता, तनाव, भय, क्रोध पैदा करने वाली परिस्थितियों से यथा संभव बचना आवश्यक है। अत्यधिक खुशी और दुख के समाचार उन्हें तुरन्त नहीं बतलाने चाहिये। अत्यधिक भावुक एवं अधीर होने के

कारण ऐसे समाचार सुनते ही कभी कभी हृदयघात हो सकता है।

(26) हृदय रोगियों को मेडुला मसाज नित्य करना चाहिये जिससे रक्तचाप एवं तनाव में तुरन्त राहत मिलती है।

(27) **हृदय, पेरिकार्डियन एवं कण्ट्रोलिंग वेसल बियोल मेरेडियन की ताप ऊर्जा बढ़ाने, तिल्ली बियोल मेरेडियन की नमी ऊर्जा बढ़ाने एवं यकृत बियोल मेरेडियन की वायु ऊर्जा बढ़ाने तथा गुर्दे की ठंडक ऊर्जा कम करने से हृदय के कार्य में अन्य अंगों का सहयोग मिलने से हृदय को आराम मिल जाता है, जिससे हृदय रोग में काफी राहत मिलती है।**

हृदय रोग का दौरा पड़ने पर क्या करें ?

हृदय रोग के कारण अचानक हृदय की धड़कन बंद हो जाये तो प्रारम्भिक चन्द मिनटों की सजगता से किया गया उपचार रोगी का जीवन बचा सकता है। सर्व प्रथम रोगी का मुँह खोलकर जीभ को खींचकर सीधा करें। फिर मुख पर हलका कपड़ा रख अपने मुँह को रोगी के मुँह से हाथ के सहारे सटा दें और मुँह में श्वास भर कर जोर से फूंकें। साथ ही दूसरे व्यक्ति से रोगी के सीने पर दोनों हाथों से दबाव देकर कृत्रिम श्वास हेतु पम्पिग करें तथा दोनों हाथों की छोटी अंगुलि में तेज गति से मसाज करें। यह प्रक्रिया तब तक करें जब तक रोगी की श्वसन क्रिया पुनः प्रारम्भ न हो जाए।

इस प्रक्रिया से हृदय मेरेडियन में प्राण ऊर्जा का प्रवाह नियमित होने लगता है और रोगी की श्वसन क्रिया यानी हृदय का धड़कना प्रारम्भ हो जाता है। उसके पश्चात् रोगी को चन्द दिनों तक पूर्ण आराम और मौन में रहकर आवश्यक उपचार करने से भविष्य में हृदय रोग होने की संभावना कम हो जाती है।

यदि हृदय रोगी उपर्युक्त बातों का पालन कर अनावश्यक कार्यों में ऊर्जा का अपव्यय न करें, आराम और निद्रा बराबर लें, खाने, पीने व वाणी का संयम रखें, वाणी का प्रयोग कम से कम करें, अधिक समय मौन में रहें, तनाव, चिन्ता, भय दूर करने वाले सद् साहित्य का अध्ययन करें, प्रेरणात्मक भजनों अथवा गीतों का श्रवण या गायन करें, अनुभवी आध्यात्मिक संतों की सद् संगति करने के साथ-साथ अधिकांश समय स्वाध्याय, भक्ति, ध्यान करें तो, हृदय रोग तुरन्त ठीक हो सकता है। हम दवाओं और शल्य चिकित्सा द्वारा जीवन भर परावलम्बी जीवन जीएं अथवा प्रभावशाली स्वावलम्बी जीवन जीएं, हमारे स्वयं के विवेक पर निर्भर करता है।

इसी प्रकार हृदय रोगियों को रक्त पतला करने के लिये नियमित रूप से जीवन पर्यन्त प्रायः दवाओं पर आश्रित रहना पड़ता है। यदि ऐसे रोगी आवश्यकतानुसार हृदय की नमी ऊर्जा को बढ़ा कर संतुलित कर दें तो रोग से मुक्ति मिल सकती है। **हृदय की मुख्य ऊर्जा गर्मी होती है। अतः हृदय रोगी हृदय बियोल मेरेडियन की ताप ऊर्जा को आवश्यकतानुसार बढ़ाकर संतुलित कर लें तो हृदय शक्तिशाली बन जाता है।**

बिना दवा मधुमेह का प्रभावशाली उपचार

मधुमेह का कारण

शरीर को स्वस्थ रखने एवं समुचित विकास हेतु भोजन में अन्य तत्त्वों के साथ संतुलित प्रोटीन, वसा तथा कार्बोहाइड्रेट आदि तत्त्वों की विशेष आवश्यकता होती है। जब इनमें से कोई भी या सारे तत्त्व शरीर को संतुलित मात्रा में भोजन में नहीं मिलते अथवा शरीर उन्हें पाचन के पश्चात् पूर्ण रूप से ग्रहण नहीं कर पाता तो शरीर में विविध रोग होने लगते हैं। **इंसुलिन की कमी के कारण जब शरीर कार्बोहाइड्रेट को ग्लूकोज के रूप में अपने अन्दर नहीं समा सकता तथा उसका भलीभांति उपयोग नहीं कर पाता तो मधुमेह का रोग हो जाता है। मानसिक तनाव, शारीरिक श्रम का अभाव, गलत खान-पान अथवा पाचन के नियमों का पालन न करने से और अप्राकृतिक जीवन शैली इस रोग के मुख्य कारण होते हैं। कभी-कभी यह रोग वंशानुगत भी होता है।**

मधुमेह क्या है ?

शरीर में पेंक्रियाज* एक दोहरी ग्रन्थि होती है जो पाचन हेतु पाचक रस और इंसुलिन नामक हारमोन्स को पैदा करती है। इंसुलिन भोजन में से कार्बोहाइड्रेट्स का पाचन कर उसको ग्लूकोज में बदलती है। कोशिकाएँ ग्लूकोज के रूप में ही पोष्टिक तत्त्वों को ग्रहण कर सकती हैं, अन्य रूप में उनको शोषित नहीं कर सकती। इंसुलिन रक्त में ग्लूकोज की मात्रा का भी नियन्त्रण करती है। ग्लूकोज रक्त द्वारा सारे शरीर में जाता है तथा कोशिकाएँ उसको ग्रहण कर लेती है, जिससे उनको ताकत मिलती है। ग्लूकोज का कुछ भाग यकृत ग्लाइकोजिन में बदल कर अपने पास संचय कर लेता है, ताकि आवश्यकता पड़ने पर उसे पुनः ग्लूकोज में बदल कर कोशिकाओं के लिये उपयोगी बना सकें। शरीर की स्वस्थ अवस्था में ग्लूकोज को शरीर के विभिन्न अंगों में वसा (Fats) अथवा चर्बी के रूप में भी रखा जा सकता है। पाचन तंत्र की गड़बड़ी के कारण अथवा भोजन में शर्करा की मात्रा ज्यादा होने के कारण, अधिक इंसुलिन की आवश्यकता होती है। कभी कभी पेंक्रियाज ग्रन्थि के बराबर कार्य न करने पर भी इंसुलिन की आवश्यक मात्रा का निर्माण नहीं होता।*

इंसुलिन की कमी के कारण पाचन क्रिया के पश्चात आवश्यक मात्रा में ग्लूकोज नहीं बनता और कार्बोहाइड्रेट्स तत्व शर्करा के रूप में ही रह जाते हैं जिसके परिणामस्वरूप जिन-जिन कोशिकाओं को ग्लूकोज नहीं मिलता वे निष्क्रिय होने लगती हैं। उनकी कार्य क्षमता कम होने लगती है, जिससे प्रायः भूख और प्यास अधिक लगती है।

कृपया अन्तःस्रावी ग्रन्थियों वाले अध्याय का भी अध्ययन करें।

मधुमेह के दुष्परिणाम

शरीर में लगातार अधिक शर्करा रहने से अनेक जैविक क्रियाएँ प्रभावित हो सकती हैं। अधिक मीठे रक्त से रक्त वाहिनियों की दीवारें मोटी हो जाती हैं और उसका लचीलापन कम होने लगता है। रक्त का प्रवाह बाधित हो सकता है। जब यह स्थिति हृदय में होती है तो हृदयाघात और मस्तिष्क में होने पर पक्षाघात हो सकता है। पिण्डलियों में होने पर वहां भयंकर दर्द तथा प्रजनन अंगों पर होने से प्रजनन क्षमता प्रभावित हो सकती है।

रक्त वाहिनियों के बाधित प्रवाह से पैरों में संवेदनाओं में कमी आ सकती है तथा जाने अनजाने मामूली चोट भी घाव जल्दी न भरने के कारण गम्भीर रूप धारण कर सकती है। शरीर के सभी अंगों को क्षमता से अधिक कार्य करना पड़ सकता है। जिससे पैरों में कंपन, स्वभाव में चिड़चिड़ापन, तनाव आदि के लक्षण प्रकट हो सकते हैं। संक्षेप में प्रभावित कोशिकाओं से संबधित रोग के लक्षण प्रकट होने लगते हैं।

शरीर में इंसुलिन की आवश्यकता को कैसे नियन्त्रित किया जा सकता है ?

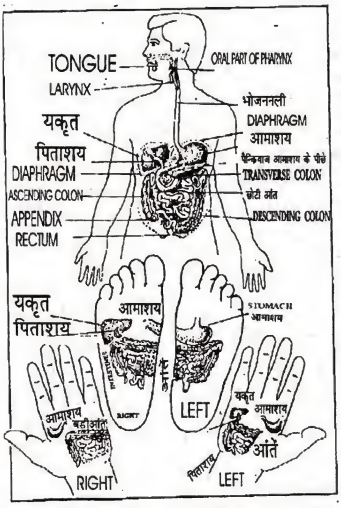

पाचन तंत्र के विभिन्न अंगों की शरीर में स्थिति तथा रिफ्लेक्सोलोजी के पगथली एवं हथेली में प्रतिवेदन केन्द्र (चित्र नं.170)

मधुमेह का रोग शरीर में पेंक्रियाज ग्रन्थि के बराबर कार्य न करने से होता है। परन्तु पेंक्रियाज बराबर कार्य क्यों नहीं करता? क्या वास्तव में पेंक्रियाज इंसुलिन कम बनाता है ? क्या जो इंसुलिन बनता है उसका हम पूर्ण सदुपयोग करते हैं? कहीं तनाव अथवा अप्राकृतिक जीवन शैली तथा पाचन के नियमों का पालन न करने से हमें आवश्यकता से अधिक मात्रा में इंसुलिन की आवश्यकता तो नहीं होती है?

पेंक्रियाज रोग ग्रस्त क्यों होता है? उसके रोग ग्रस्त होने से कौन से अंग अथवा अवयव प्रभावित होते हैं? पेंक्रियाज के कार्य को सहयोग देने वाले शरीर में कौन-कौन से अंग, उपांग, ग्रन्थियाँ और तन्त्र होते हैं? पेंक्रियाज की क्षमता को कैसे बढ़ाया जा सकता है? यदि उस अंग को ठीक कर दिया जाये तथा पेन्क्रियाज की कार्य क्षमता बढ़ा दी जाए, पाचन में इंसुलिन का जो अनावश्यक दुरूपयोग करते हैं अर्थात जो कार्य बिना इंसुलिन अन्य अवयवों द्वारा किए जा सकते हैं, कराये जाये तो समस्या का समाधान हो सकता है।

दूसरी बात, पाचन हेतु इंसुलिन की आवश्यकता को कैसे कम किया जा सकता है ? यदि सहायक अंगों का सहयोग लिया जाये तो मधुमेह का उपचार बहुत ही सरल और प्रभावशाली हो सकता है। आधुनिक चिकित्सक मधुमेह को असाध्य रोग मानते हैं परन्तु उनका कथन शत प्रतिशत ठीक नहीं होता है। मात्र पेंक्रियाज द्वारा पर्याप्त मात्रा में इंसुलिन न बना सकने के कारण बाहर से इंसुलिन देना समस्या का सही समाधान नहीं हो सकता? यह तो फूटे घड़े में बिना छिद्र को बंद किये पानी भरने के समान अथवा वृक्ष को सुरक्षित रखने के लिए फूल पत्तों पर पानी देने के समान अदूरदर्शिता पूर्ण आचरण होता है। **जिस प्रकार वृक्ष की सुरक्षा हेतु उसकी जड़ों में पानी देना आवश्यक होता है, ठीक उसी प्रकार पेंक्रियाज द्वारा इंसुलिन अथवा पाचक रस न बनाने अथवा कम बनाने के कारणों को दूर कर तथा इंसुलिन की आवश्यकता कम कर उसके सहयोगी अंगों से तालमेल एवं सहयोग लेकर मधुमेह को नियन्त्रित रखा जा सकता है। उसके दुष्प्रभावों से बचा जा सकता है। अतः जो मधुमेह से बचना चाहें, अथवा जो मधुमेह से रोग ग्रस्त हैं, उन्हें स्वास्थ्य सुरक्षा एवं उपचार में चर्चित सभी बातों का ईमानदारी पूर्वक पालन करने के साथ-साथ निम्न बातों का भी विशेष पालन करना चाहिए।**

शरीर में अधिकांश कार्यों की वैकल्पिक व्यवस्था होती है

शरीर मे कोई अंग, उपांग, अवयव पूर्ण रूप से अकेला कार्य नहीं करता। उसके कार्य में प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से कोई न कोई शरीर का अन्य अवयव अवश्य सहयोग करता है । उसके आंशिक विकल्प के रूप में कार्य करता है। शरीर में पेंक्रियाज एक अन्तःश्रावी ग्रन्थि है। **सारी ग्रन्थियाँ सामूहिक जिम्मेदारी, तालमेल और आपसी समन्वय से कार्य करती है। अतः पेन्क्रियाज की गड़बड़ी होने पर अन्य ग्रन्थियों को अधिक कार्य करना पड़ता है। अतः यदि किसी विधि द्वारा पेंक्रियाज के साथ साथ अन्य ग्रन्थियों को सक्रिय कर दिया जाये तो मधुमेह से मुक्ति मिल सकती है।** चीनी पंच तत्त्व के सिद्धान्तानुसार पेंक्रियाज, तिल्ली-आमाशय परिवार का सदस्य होता है। अर्थात् पेंक्रियाज की गड़बड़ी का तिल्ली पर सीधा प्रभाव पड़ता है। अतः यदि तिल्ली बियोल मेरेडियन में

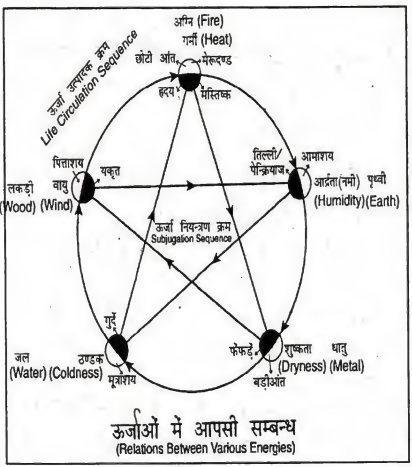

चित्र नं. 171

किसी विधि द्वारा प्राण ऊर्जा का प्रवाह बढ़ा दिया जाये तो पेंक्रियाज की कार्य क्षमता ठीक हो सकती है।

तिल्ली का आमाशय पूरक अंग होता है। अत: पेंक्रियाज के बराबर कार्य न करने से तिल्ली - आमाशय का संतुलन बिगड़ जाता है। पाचन तंत्र बराबर कार्य नहीं करता। अत: **पाचन के नियमों का दृढ़ता से पालन कर पाचन तंत्र की कार्य प्रणाली सुधारी जा सकती है जिससे पाचन हेतु अधिक इंसुलिन की आवश्यकता नहीं पड़ती।**

हृदय, तिल्ली का मातृ अंग होता है और फेंफड़ा पुत्र अंग। तिल्ली, यकृत से नियन्त्रित होता है और गुर्दों को नियन्त्रित करता है। अत: पेंक्रियाज के बराबर कार्य न करने से प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से हृदय, फेंफड़े, गुर्दे, यकृत आदि भी प्रभावित हो सकते हैं, जिसका प्रभाव उनके पूरक अंगों छोटी आंत, बड़ी आंत, मूत्राशय और पित्ताशय पर भी पड़ सकता है। जो अंग जितना जितना असक्रिय होता है, उसी के अनुपात में उससे संबंधित रोगों के लक्षण प्रकट होने लगते हैं। इसी कारण सभी मधुमेह के रोगियों के बाह्य लक्षण एक जैसे नहीं होते।

किसी को भूख और प्यास अधिक लगती है, तो किसी को अधिक पेशाब। किसी की त्वचा खुश्क एवं खुरदरी हो जाती है या चर्म रोग होते हैं तो किसी के बाल झड़ने लगते हैं। किसी में यकृत, गुर्दों, हृदय या फेंफड़ों संबंधित रोगों के लक्षण प्रकट होने लगते हैं। **यदि लक्षणों के आधार पर संबंधित अंगों में प्राण ऊर्जा के प्रवाह को बियोल ऊर्जा संतुलन पद्धति द्वारा संतुलित कर दिया जाये तो असाध्य समझा जाने वाला मधुमेह चंद दिनों में ही बिना दवा ठीक किया जा सकता है। अत: सभी मधुमेह के रोगियों के लिये एक जैसा उपचार कैसे संभव हो सकता है?**

पाचन तंत्र के नियमों का पालन आवश्यक

करोड़पति पिता का पुत्र यदि व्यर्थ धन का अपव्यय करें तो अधिक परेशानी नहीं होती परन्तु उसकी देखा देखी उसका गरीब मित्र भी धन का अपव्यय करने लगें तो उसको कठिनाई हो सकती है। इंसुलिन का कार्य भोजन के पाचन में सहयोग करना होता है। अत: मधुमेह के रोगी यदि पाचन के नियमों का दृढ़ता से पालन करें एवं उपलब्ध सीमित इंसुलिन की मात्रा का सही उपयोग करें तो इंसुलिन की कमी से होने वाले दुष्प्रभावों से सहज बचा जा सकता है जिसका विस्तृत विवेचन जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं वाले अध्याय में भोजन और स्वास्थ्य के अन्तरगत पृष्ठ संख्या 108 से 135 में किया गया है।

सही समय पर भोजन करें-

जब प्रकृति से आमाशय और पेंक्रियाज /तिल्ली समूह में अधिकतम प्राण ऊर्जा का प्रवाह हो, अर्थात् जब वे दिन में सर्वाधिक सक्रिय हों, (देखें चित्र सं. 38) उस समय मधुमेह के रोगियों को अपना मुख्य भोजन अवश्य कर लेना चाहिए, ताकि उसका सहजता से पाचन हों सके।

पाचन के नियमों का पालन करें

दूसरी बात, मधुमेह के रोगियों को खाना तनाव रहित वातावरण में धीरे-धीरे चबा-चबा कर खाना चाहिए जिससे भोजन में थूक और लार मिलने से उसका आंशिक पाचन मुँह में ही सम्पन्न हो सकें। आमाशय को पाचन हेतु अधिक ऊर्जा एवं इंसुलिन की आवश्यकता नहीं होती । **चबा-चबा कर खाना खाना मधुमेह की सर्वोत्तम औषधि है।** भोजन सूर्य स्वर में करने तथा भोजन के पश्चात कुछ समय वज्रासन में बैठने से पाचन ठीक होता है। साथ ही भोजन करने के लगभग डेढ़ घंटे से २ घंटे तक जब तक पाचन की प्रारम्भिक क्रिया पूर्ण न हो जाये, पानी नहीं पीना चाहिए।

पाचन तंत्र को अनावश्यक क्रियाशील न रखें

तीसरी बात मधुमेह के रोगियों को बार-बार मुंह में कुछ डालकर पाचन तंत्र को हर समय क्रियाशील नहीं रखना चाहिए अन्यथा भोजन के समय पाचन तंत्र पूर्ण क्षमता से कार्य नहीं करता है। सुबह का भोजन यथा संभव जल्दी एवं सायंकाल का भोजन सूर्यास्त के पूर्व कर लेना चाहिये, क्योंकि उसके पश्चात आमाशय और पेंक्रियाज में प्रकृति से प्राण ऊर्जा का प्रवाह निम्नतम होता है। फलत: आवश्यक इंसुलिन उपलब्ध नहीं होता। यथा संभव दो बार से अधिक पाचन तंत्र को क्रियाशील नहीं करना चाहिए। प्रतिदिन एक समय भोजन करना तथा सप्ताह में एक बार उपवास मधुमेह के रोगियों के लिये बहुत लाभप्रद होता है।

भोजन में स्वाद का संतुलन रखें

चौथी बात, भोजन में कड़वे स्वाद वाले पदार्थ जैसे करेला, दाणामेथी, नीम आदि का अधिक प्रयोग करना चाहिये, जिससे पाचन हेतु ताप ऊर्जा उपलब्ध हों सके। भोजन में मीठे पदार्थों का सेवन जितना कम कर सकें, करना चाहिये, ताकि उनको पचाने हेतु इंसुलिन की कम आवश्यकता पड़े।

सद्साहित्य का स्वाध्याय एवं सम्यक् चिन्तन करें

तनाव, चिन्ता, भय तथा शारीरिक श्रम का अभाव मधुमेह का मुख्य कारण होता है। मधुमेह का रोगी किसी भी दृष्टि से शारीरिक अथवा मानसिक रूप से अपंग नहीं होता है। अत: उन्हें अपने चिन्तन की दिशा बदल जीवन शैली बदलनी चाहिए। संयमित, नियमित, अनुशासित दिनचर्या से वे जीवन के किसी भी लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं। मधुमेह के रोगियों को सद् साहित्य का स्वाध्याय, आध्यात्मिक भजनों का गायन व श्रवण, ध्यान, मौन एवं सकारात्मक चिन्तन में समय व्यतीत करना चाहिए। सम्यक् चिन्तन ही मधुमेह का स्थायी उपचार होता है।

तनाव विसर्जन के प्रयोग करें

प्रतिदिन कुछ मिनटों के लिये खुलकर हँसने से शरीर में तनाव के कारण एकत्रित विजातीय तत्त्व विसर्जित होने लगते हैं। मस्तिष्क शोधन की प्रक्रिया से नकारात्मक सोच और तनाव आसानी से दूर किया जा सकता है।

उदित होते सूर्य के नियमित सविधि दर्शन से भी शरीर के शारीरिक और मानसिक रोगों का शमन होता है, जिसका विस्तृत वर्णन सौर ऊर्जा का मानव कल्याण में योगदान अध्याय में किया गया है।

श्रम साध्य नियमित जीवन शैली जीएँ

मधुमेह के अन्य प्रमुख कारण शारीरिक श्रम का अभाव, अप्राकृतिक जीवन शैली और गलत खानपान आदि होते हैं। व्यायाम, आसन, प्राणायाम तथा प्राकृतिक नियमों का यथासंभव पालन कर एवं इन्द्रिय संयम से उन पर नियन्त्रण रखा जा सकता है। मधुमेह के रोगी को अपने आपको अधिकाधिक व्यस्त रखना चाहिए। खुले बदन धूप सेवन से भी ऊर्जा मिलती है।

पेन्क्रियाज को सशक्त बनाने के उपाय

1. प्रातःकाल जल्दी उठ शांत वातावरण में चैतन्य चिकित्सा द्वारा तिल्ली-पेंक्रियाज पर ध्यान के माध्यम से आवश्यक चेतना पहुँचानी चाहिए। जिससे तिल्ली और पेंक्रियाज शक्तिशाली होते हैं।

हृदय पर दानामैथी लगाकर उपचार करते हुए

चित्र न. 172

2. पेंक्रियाज और तिल्ली डायाफ्राम के नीचे बांयी तरफ शरीर में स्थित होते हैं। अतः वहां पर दाणा मेथी का स्पर्श रखने से पेंक्रियाज की ताकत बढ़ती है।

3. रोगी को अपने स्वमूत्र का पान करना चाहिए, जिससे शरीर के अन्दर के सारे विकार दूर हो जाते हैं। प्रायः मधुमेह वालो को यह आशंका रहती है कि उनके मूत्र के साथ शर्करा का विसर्जन होता है, अतः उसको कैसे लिया जा सकता है? परन्तु शिवाम्बु चिकित्सा में रोगी का अपना शिवाम्बु ही उसके रोग की राम बाण दवा होती है। शिवाम्बु का तर्कसंगत सद् साहित्य पढ़ने से, उसके प्रति मन की सारी भ्रान्तियाँ दूर हो जाती हैं। शिवाम्बु के सेवन के प्रति आत्म विश्वास बढ़ जाता है। उसके साथ शिवाम्बु चिकित्सा का परामर्श लेते समय अनुभवी शिवाम्बु चिकित्सक का परामर्श लेना चाहिए न कि उपचार पद्धति के चिकित्सकों का जो शिवाम्बु का न तो स्वयं सेवन करते हैं और न अपने रोगियों को पीने की सलाह देते हैं, उनका परामर्श कैसे उपयोगी सिद्ध हो सकता है? जिस प्रकार जौहरी ही

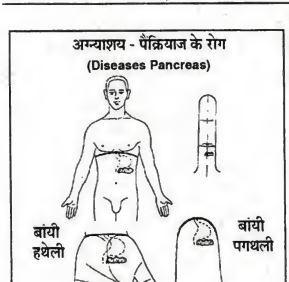

पेन्क्रियाज से संबंधित सुजोक के मुख्य प्रतिवेदन केन्द्र
चित्र नं. 173

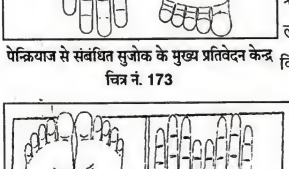

पगथली और हथेली में पेन्क्रियाज से संबंधित प्रमुख प्रतिवेदन केन्द्र

रत्नों की पहचान कर सकता है, इंजीनियर आदि अन्य व्यक्ति नहीं। ठीक उसी प्रकार जैसी चिकित्सा करनी है, उसी के अनुभवी चिकित्सक का परामर्श महत्त्वपूर्ण होता है, अन्य का नहीं।

4. चुम्बक का सक्रिय दक्षिणी ध्रुव तिल्ली-पेंक्रियाज पर आवश्यकतानुसार कुछ समय स्पर्श करने से उनकी ताकत बढ़ती है। उपचार अधिक प्रभावशाली हो जाता है।

5. प्राण मुद्रा (चित्र नं. 13) का अधिकाधिक अभ्यास करना चाहिए जिससे शरीर ताकतवर बनता है।

6. हथेली और पगथली में एक्युप्रेशर के सभी संवेदनशील प्रतिवेदन बिन्दुओं पर दबाव देना चाहिए, परन्तु पेंक्रियाज, तिल्ली, लीवर, गुर्दों तथा सभी अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के मुख्य बिन्दुओं पर विशेष एकाग्रता पूर्वक एक्युप्रेशर करना चाहिए।

8. तिल्ली बियोल मेरेडियन में ऊर्जा का प्रवाह बढ़ाना चाहिए जिससे पेंक्रियाज में भी अधिक ऊर्जा पहुँचती है।

9. मधुमेह के रोगियों के लिए पथ्य अपथ्य का विवेक औषधि एवं उपचारों से श्रेष्ठ होता है।

मधुमेह शारीरिक से ज्यादा मानसिक रोग है। आधुनिक चिकित्सकों द्वारा उसको अज्ञानवश असाध्य बतलाने के कारण, रोगी यह स्वीकार करने को तैयार नहीं होता कि मधुमेह ठीक भी हो सकता है। अनेक रोगियों का उपचार करते समय लेखक ने अनुभव किया कि उपचार के पश्चात् मधुमेह के सारे लक्षण दूर हो जाने के बावजूद रोगी अपने आपको मधुमेह का रोगी मानते रहते हैं। एक बार चिकित्सक द्वारा मधुमेह की घोषणा करने के पश्चात् अपना नियमित परीक्षण करवाते रहते हैं और परीक्षणों में मधुमेह के लक्षण न आने के बावजूद बहुत से रोगी दवा की दासता नहीं छोड़ते। परन्तु जो सम्यक् चिन्तन और वैज्ञानिक तर्कों के आधार पर रोग के मूल कारणों को समझ स्वावलम्बी उपचारों की प्रामाणिकता से अपना विवेक जागृत कर लेते हैं, उन्हें स्थायी रूप से दवाओं से मुक्ति मिलती है।

यदि उपर्युक्त नियमों की पालना की जाए तो मधुमेह जैसा असाध्य रोग चन्द दिनों में ही नियन्त्रण में आकर

समाप्त हो जाता है।

मधुमेह उपचार के चामत्कारिक प्रयोग

श्री प्रकाश चंद जी चोपड़ा (T.N. 2644911) लगभग पिछले 12 सालों से मधुमेह के रोग के कारण अत्यधिक परेशान थे। उनके रक्त सुगर सदैव 400 से अधिक रहती थी। प्रतिदिन कम से कम दो बार और कभी कभी तो तीन बार भी इंसुलिन के इंजेक्शन लेने पड़ते थे। रोग के कारण उन्हें बैंगलोर से अपनी नौकरी से हाथ धोना पड़ा। अपने रोग के कारण वे जीवन से हार चुके थे। उपचार हेतु उपचार केन्द्र पर उनसे लेखक का सम्पर्क हुआ।

सर्व प्रथम उनके शारीरिक संतुलनों जैसे पैर, नाभि एवं रीढ़ को संतुलित किया गया। साथ ही उनकी तिल्ली बियोल मेरेंडियन में प्राण ऊर्जा अधिक प्रवाहित करने हेतु नमी वाले प्रतिवेदन बिन्दु पर बटन चुम्बक का दक्षिणी ध्रुव लगाया गया तथा प्रतिदिन 2-3 मिनट चुम्बकीय वाइब्रेटर से पेंक्रियाज पर दक्षिणि ध्रुव की मसाज प्रारम्भ की गयी। उन्हें पाचन संबंधी नियमों के पालन हेतु परामर्श दिया गया तथा दोनों हथेलियों एवं पगथली में दर्दस्थ प्रतिवेदन बिन्दुओं पर 20 से 30 सैकेण्ड एक्युप्रेशर किया गया। उपचार के प्रथम दिन से ही उन पर चमत्कारी प्रभाव पड़ने लगा। तीन दिन पश्चात् हमने इंसुलिन की मात्रा घटाने का परामर्श दिया और उन्होंने उसका पालन कर दिन में एक बार ही इंसुलिन के इंजेक्शन लेना प्रारम्भ कर दिया। उनका मनोबल भी परिवर्तन होने लगा। उन्हें किसी भी प्रकार की परेशानी का अनुभव नहीं होता था। परीक्षण के अनुसार मधुमेह नियन्त्रण में ही रहने लग गया। सप्ताह भर उपचार के पश्चात उन्हें एक दिन के अन्तराल में, दूसरे सप्ताह दो तीन के अन्तराल में, तीसरे सप्ताह उन्हें तीन दिन के अन्तराल में, चौथे सप्ताह 4 दिन के अन्तराल में दिन में एक बार ही इंसुलिन लेने का परामर्श दिया गया। पाँचवें सप्ताह में इंसुलिन लेना उन्होंने स्वत: बंद कर दिया। आज भी वे स्वस्थ हैं।

जोधपुर के ही सामाजिक कार्यकर्ता गोयल मेडीकल के मालिक श्री महेश जी गोयल (T.N.2614831) भी अपने मधुमेह के उपचार हेतु हमारे उपचार केन्द्र पर आये। उनकी भी रक्त शुगर 400 से अधिक रहती थी। नियमित इंसुलिन लेने से वे परेशान थे। उपर्युक्त विधि से उनका भी उपचार किया गया। एक दो दिन के उपचार में ही उन्हें चमत्कारी प्रभाव लगने लगा। दवा व्यवसाय से जुड़े होंने के कारण वे अपनी मधुमेह की जांच नियमित करवाते थे। **सप्ताह भर के उपचार लेने के बाद उनको इंसुलिन की मात्रा कम करने का परामर्श दिया गया। उन्होंने कहा कि "उन्होने तो उपचार के प्रथम दिन से ही इंसुलिन लेना बंद कर दिया है, क्योंकि परीक्षण करवाने के पश्चात् उनका मधुमेह साधारण ही आ रहा है।**

"कहने का आशय यह है कि मधुमेह का प्रभावशाली उपचार स्वावलम्बी चिकित्सा पद्धतियों में सम्भव होता है, क्योकि वहाँ पर रोग के मूल कारणों को दूर किया जाता है न कि, बाह्य माध्यम द्वारा इंसुलिन की पूर्ति कर रोग के मुख्य कारणों की उपेक्षा की जाती है। फैसला आपके हाथ में है कि, जीवन भर दवाईयाँ खाकर मधुमेह के रोगी बने रहें अथवा स्वावलम्बी उपचारों के द्वारा उससे अपने आपको मुक्त करें।

बिना दवा दमा का प्रभावशाली उपचार

दमा क्या है ?

हमारे शरीर में फेंफड़ा एक लचीला, हल्का स्पोन्जी और रबड़ की तरह फैलने वाला अंग होता है। जिसका प्रमुख कार्य श्वास के माध्यम से वायु के साथ आक्सीजन को ग्रहण करना तथा रक्त शुद्धि के पश्चात् जो कार्बन डाई आक्साईड बनती है, उसे नि:श्वास द्वारा बाहर फेंकने का होता हैं। जब हम श्वास लेते हैं तो फेंफड़ा फूल जाता है और जब श्वास निकालते हैं तो संकुचित हो जाता है। फेंफड़े दो होते हैं। दाहिना फेंफड़ा बांयें फेंफड़े से कुछ बड़ा होता है।

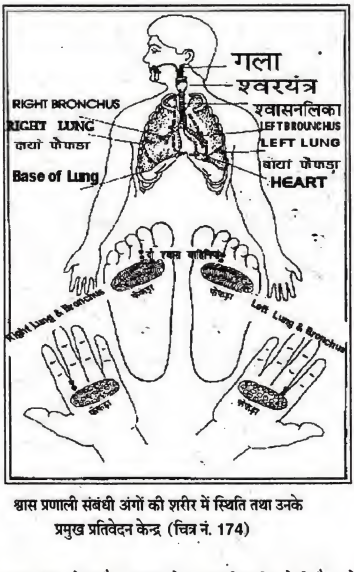

श्वास प्रणाली संबंधी अंगों की शरीर में स्थिति तथा उनके प्रमुख प्रतिवेदन केन्द्र (चित्र नं. 174)

श्वास नली तथा उसके बाद छोटी छोटी श्वास नलियों द्वारा हवा फेंफड़ों में पहुंचती हैं। जब किसी कारण से श्वास नलियों के छिद्र सिकुड़ जाते हैं अथवा उनमें श्लेष्मा भर जाने से बंद हो जाते हैं तो उनमें से होकर वायु का फेंफड़ों तक नियमित रूप से आवागमन प्रभावित होने लगता हैं। फेंफड़ों को आवश्यकता के अनुसार आक्सीजन लेने के लिये अधिक ताकत लगानी पड़ती है और उसके कारण श्वास लेने में कठिनाई होने लगती है। शरीर की ऐसी अवस्था को श्वास रोग अथवा अस्थमा या दमा कहते हैं।

दमा क्यों होता है ?

श्वास हमारे जीवन की मुख्य प्रक्रिया है। श्वास प्राणों का आधार होता है। श्वास से रक्त की शुद्धि होती है। जो वायु हम श्वास द्वारा ग्रहण करते हैं वह नाक, गला स्वर यंत्र, श्वास नलिका से होती हुई छोटी छोटी श्वास नलियों द्वारा फेंफड़ों में पहुंचती है। अत: जब श्वसन तंत्र से संबंधित शरीर के इन अवयवों के कार्य में प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष कारणों से , अवरोध उत्पन्न होने लगता हैं तो श्वसन क्रिया प्रभावित होने लगती है।

शरीर मे फेफड़ों की स्थिति तथा हथेली, पगथली और हाथ की अंगुलियों में सुजोक एक्युप्रेशर के प्रमुख प्रतिवेदन केन्द्र (चित्र नं.175)

दूसरी बात प्रदूषित अथवा आक्सीजन की कमी वाले वातावरण में श्वास लेने से फेंफड़ों में पूर्ण रूप से रक्त की शुद्धि नहीं हो पाती और रक्त में विकार बढ़ने लगते हैं । हमारे गलत खान-पान एवं अप्राकृतिक जीवन शैली से भी हमारी प्राण ऊर्जा का अनावश्यक दुरूपयोग अथवा अपव्यय होता है तथा रक्त में विकार बढ़ने लगते हैं । जब ऐसा विकार युक्त रक्त शुद्धिकरण हेतु फेंफड़ों की श्वास नलियों में पहुँचता है तो नलियों में से दूषित विकारों के जमा हो जाने से श्वास नलियाँ सिकुड़ने लगती है । श्वास नली भी कमजोर और दोषयुक्त हो जाती है और अस्थमा के लक्षण प्रकट होने लगते हैं ।

फेंफड़ों में पहुँचने के पहले श्वसन द्वारा ग्रहण वायु का शुद्धिकरण और शरीर के तापक्रम के अनुरूप गर्मी और नमी की आवश्यकता होती है । नाक में वायु को नम बनाने के लिये नमी का उत्पादन करने वाली ग्रन्थियाँ एक निश्चित मात्रा में द्रव का उत्पादन करती है । (नाक से ही श्वास क्यों लें ? पृष्ठ संख्या 105-106 पर देखें ।) परन्तु यदि हम मुंह से श्वास लेते हैं तो वायु सीधी फेंफड़ों में चली जाती है । अतः श्वास हमेशा नाक से ही लेनी चाहिए । अन्यथा दमा होने की संभावनाएँ बढ़ सकती है ।

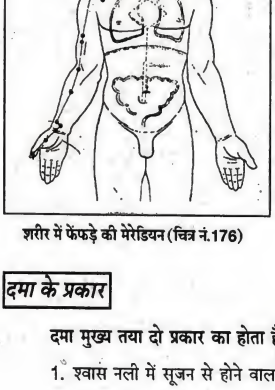

शरीर में फेंफड़े की मेरेडियन (चित्र नं.176)

फेंफड़े मेरेडियन में ऊर्जा का प्रवाह असंतुलित होने से फेंफड़े की कार्यक्षमता कम हो जाती है । जिससे भी दमा का रोग हो सकता है । अतः शरीर में जिस मार्ग से फेंफड़े की मेरेडियन प्रवाहित होती है, वहां पर भी दमा के साथ साथ अन्य रोगों के लक्षण प्रगट हो सकते हैं । परिणाम स्वरूप मेरेडियन के एक्युप्रेशर प्रतिवेदन बिन्दुओं पर दबाव देने से पीड़ा होने लगती है ।

दमा के प्रकार

दमा मुख्य तया दो प्रकार का होता है ।

1. श्वास नली में सूजन से होने वाला दमा **2.** एलर्जिक अस्थमा

श्वास नली में सूजन से होने वाला दमा

श्वास नली में सूजन से होने वाले अस्थमा का कारण प्रायः सर्दी, अधिक नमी वाला वातावरण या मौसम परिवर्तन से होता है। जिसका प्रारम्भ प्रायः सर्दी, जुकाम, खांसी, गले में संक्रमण आदि से होता है। समुद्र के आसपास रहने वाले अथवा वर्षा के मौसम या अधिक नमी वाले वातावरण में रहने वाले बहुत से व्यक्ति जिनका श्वसन तंत्र कमजोर होता है, अस्थमा होने की संभावना रहती हैं। जैसे ही वे बिना नमी वाले शुष्क वातावरण में चले जाते हैं, उनको अस्थमा से स्वतः राहत मिल जाती है।

एलर्जिक अस्थमा

हमारा शरीर शब्द, रूप, रंग, रस, गंध एवं स्पर्श के माध्यम से प्रकृति के पुद्गलों को ग्रहण करता है। कुछ पुद्गलों का सेवन अनुकूल अथवा अच्छा लगता है तो कुछ का प्रतिकूल यानी नापसन्द । ऐसे ही कुछ नापसन्द पुद्गलों के शरीर में प्रवेश के साथ ही तुरन्त प्रतिक्रिया होने लगती है। **गंध के ऐसे ही पुद्गलों जिनको हमारा श्वसन तंत्र स्वीकार करते समय प्रतिक्रिया करता है, उसे एलर्जी कहते हैं तथा उसके कारण श्वसन तंत्र को क्षमता से अधिक कार्य करने के कारण होने वाले अस्थमा को एलर्जिक अस्थमा कहते हैं।**

एलर्जी का प्रमुख कारण शरीर का असंतुलन, विभिन्न तंत्रों में तालमेल का अभाव एवं शरीर की प्रतीकारात्मक क्षमता में कमी होता है। किसी गंध के प्रति अत्यधिक नापसंद संवेदनशीलता भी इसका मुख्य कारण होती है। अतः जिन पदार्थों की गंध शरीर सहन नहीं कर सकता, उस वातावरण से अलग होते ही अस्थमा ठीक होने लगता है । **अस्थमा का जैसा कारण होता है, उसके निवारण से ही दमा से मुक्ति मिल सकती है।**

दमा का कारण अन्यत्र भी हो सकता है ?

आजकल दमा के रोग में उपचार करते समय प्रायः फेंफड़ों की खराबी को ही प्रधानता दी जाती है और दमा का उपचार करते समय सारा ध्यान फेंफड़ों तक ही सीमित रखा जाता है।

यदि रोग का कारण फेंफड़ों की खराबी तक ही सीमित हो, तब तो उपचार से रोग ठीक हो सकता है, परन्तु यदि रोग का मूल कारण फेंफड़े से संबंधित अन्य सहयोगी अंग में हो तो रोग से मुक्ति प्रायः नहीं मिलती। फिर भी आजकल प्रायः दमा से पड़ने वाले अन्य अंगों पर प्रभाव की उपेक्षा होती है। इसी कारण कभी कभी लम्बे उपचार के बावजूद दमा से मुक्ति नहीं मिलती। मात्र थोड़े समय के लिये राहत मिल सकती है। दवा जीवन की आवश्यकता हो जाती है

शरीर अपने आप में पूर्ण समन्वय से कार्य करता है। किसी भी अंग के रोग ग्रस्त हो जाने पर अन्य अंगों में प्रत्यक्ष परोक्ष रूप से कुछ न कुछ अवश्य प्रभाव पड़ता है। अन्य अंगों में होने वाले असंतुलन को शीघ्र एवं

सरलता से दूर किया जा सकता है। अन्य सहयोगी कारण दूर हो जाने से रोग शीघ्र नियन्त्रण में आ जाता है और उसका स्थायी रूप से निवारण किया जा सकता है।

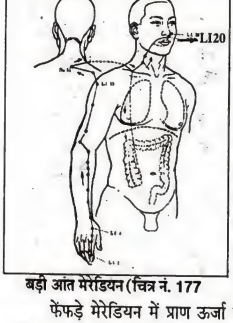

बड़ी आंत मेरेडियन (चित्र नं. 177

यिन यांग के सिद्धान्तानुसार बड़ी आंत फेंफड़ें का पूरक अंग होती है। अतः कभी कभी जब बड़ी आंत बराबर कार्य नहीं करती है, तो फेंफड़ों की कार्य क्षमता भी घट जाती है और अस्थमा के लक्षण प्रकट होने लगते हैं। ऐसी स्थिति में प्रायः अधिकांश चिकित्सा पद्धतियाँ उसका कारण फेंफड़ों में ही ढूढ़ती है। परन्तु लम्बे उपचार के बावजूद रोगी को अस्थमा से राहत नही मिलती। **जिस प्रकार कोई व्यक्ति अपनी पत्नि की बीमारी के कारण तनाव ग्रस्त हो तो उस व्यक्ति के तनाव का उपचार जब तक लाभप्रद नहीं होगा, जब तक कि उसकी पत्नि रोग मुक्त न हो जाये, जिसके कारण वह व्यक्ति तनावग्रस्त है। ठीक उसी प्रकार जब तक बड़ी आंत बराबर कार्य नहीं करेगी, फेंफड़ों का उपचार करने से दमा ठीक नहीं हो सकता।** फेंफड़े और बड़ी आंत में आपसी समन्वय, संतुलन और तालमेल होते ही लम्बे समय से पीड़ित अस्थमा के रोगी चन्द दिनों में दमा के रोग से छुटकारा पा सकते हैं।

फेंफड़े मेरेडियन में प्राण ऊर्जा का प्रवाह तिल्ली मेरेडियन से होता है। जैसा कि चित्र पृष्ठ संख्या 211 में दर्शाया गया है। तिल्ली हमारे शरीर की प्रतिरोधक क्षमता का नियन्त्रण करती है। उसके बराबर कार्य न करने के कारण ही शरीर को एलर्जी की शिकायत होती है। अतः **यदि तिल्ली एवं फेंफड़ों की मेरेडियन में प्राण ऊर्जा का प्रवाह बढ़ा दिया जाये तो एलर्जिक अस्थमा से राहत मिल सकती है।**

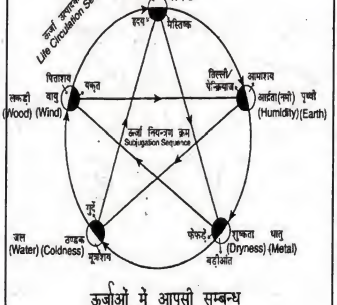

चित्र नं. 188

यिन यांग सिद्धान्तानुसार तिल्ली का पूरक अंग आमाशय होता है। अतः तिल्ली के बराबर कार्य न करने का मुख्य कारण पाचन तंत्र की गड़बड़ी भी हो सकती है। अतः अस्थमा के रोगियों के लिये पाचन के नियमों का पालन भी उसका उपचार है। जिसका विस्तृत विवरण भोजन और स्वास्थ्य वाले अध्याय में किया गया हैं।

पंच तत्त्व के सिद्धान्तानुसार भी तिल्ली फेंफड़े का मातृ अंग होता है। **अतः जब माता से पुत्र को पूर्ण पोषण नहीं मिलता है तो पुत्र वंशानुगत रोग से भी प्रभावित हो सकता है। अतः तिल्ली पर दक्षिणी ध्रुव का चुम्बक अथवा दाणा मेथी लगाने से तिल्ली सशक्त होती है और एलर्जिक अस्थमा हों या वंशानुगत कारणों से अस्थमा हों, प्रायः निश्चित राहत मिलती है।**

पंच तत्त्व के सिद्धान्तानुसार गुर्दे, फेफड़ों के पुत्र अंग

होते हैं। परन्तु फेंफड़ों के पूर्ण क्षमता से कार्य न करने के कारण गुर्दों को रक्त शुद्धिकरण के लिये अधिक क्रियाशील होना पड़ता है। इसी प्रकार हृदय फेंफड़ों के कार्यों पर नियन्त्रण रखता हैं और यकृत, फेंफड़ों से नियन्त्रित होता है। अतः हृदय और यकृत भी फेंफड़े की कार्य क्षमता बराबर न होने से प्रभावित हुए बिना नहीं रहते। पेरिकार्डियन (मस्तिष्क) सभी यिन यांग अंगों के संचालन में तालमेल रखता है परन्तु दमा के कारण उसके कार्यों पर भी प्रभाव पडता है। इस प्रकार सारा शरीर पूर्ण समन्वय और तालमेल से कार्य करता है और किसी एक की खराबी का प्रत्यक्ष परोक्ष दूसरे अवयव पर भी प्रभाव पड़ता है। जितना और जैसा प्रभाव पड़ता है वैसे ही अन्य रोगों के लक्षण प्रगट होने लगते हैं। **इसी कारण सभी अस्थमा के रोगियों के सभी लक्षण एक जैसे नहीं होते हैं। जो अंग जितना जितना प्रभावित होता है उसके अनुरूप उससे संबंधित रोग के लक्षण प्रकट होते हैं।** अतः दमा के सभी रोगियों का सारा उपचार एक जैसे कैसे संभव हो सकता है? फिर भी उपचार करते समय निम्न सामान्य बातों का आचरण आवश्यक हैं।

फेंफड़े और बड़ी आंत में प्रकृति से प्राण ऊर्जा का अधिकतम प्रवाह लगभग प्रातः 3 बजे से 7 बजे के मध्य होता है। अतः उस समय किया गया उपचार अधिक प्रभावशाली होता है।

दमा के रोगियों को प्रातः जल्दी उठ फेंफड़ों से संबंधित आसन, प्राणायाम, व्यायाम आदि नियमित करने चाहिए। प्रातः खुली हवा में टहलना, दौड़ना, बहुत लाभदायक होता है। फेंफड़ों पर खिंचाव चिकित्सा, चैतन्य चिकित्सा भी काफी लाभदायक होती हैं।

जो व्यक्ति देर से निद्रा त्यागते हैं, वे जब बड़ी आंत सक्रिय होती है तब मल नहीं त्याग सकते। परिणाम स्वरूप अपेक्षाकृत उन्हें कब्ज की शिकायत ज्यादा होती है। बड़ी आंत और फेंफड़ों में असंतुलन रहने लगता है जिससे फेंफड़ों और बड़ी आंत संबंधी अन्य रोगों के होने की अधिक संभावना रहती है।

स्वचालित श्वसन क्रिया के नियन्त्रण में मेरूरज्जू एवं मस्तिष्क का जो मिलन केन्द्र मेडूला ओब्लंगेटा (M.O.) का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। हमारी विविध गतिविधियों के लिये अलग-अलग मात्रा में शुद्ध प्राण वायु की आवश्यकता होती है। उसी के अनुरूप एम.ओ. द्वारा फेफड़ों की क्षमता के अनुसार श्वसन की गति निर्धारित होती है। एम.ओ. को श्वसन नियामक भी कहते हैं। अतः श्वसन संबंधी रोगों में एम ओ पर हल्का दबाव कुछ मिनटों तक देना बहुत लाभदायक होता हैं।

दमा का उपचार

फेंफड़ों संबंधी विभिन्न रोगों से बचने अथवा रोग होने की स्थिति में पुनः स्वस्थ होने के लिए स्वास्थ्य सुरक्षा हेतु जिन बातों का दैनिक जीवनशैली में समावेश प्राथमिकता के आधार पर आवश्यक बतलाया गया है, उनकी अधिकाधिक पालना अनिवार्य होती है। उसके साथ-साथ निम्न स्वावलंबी उपचारों से फेंफड़े संबंधी अधिकांश रोगों में बहुत कम समय में स्थायी परिणाम मिलते हैं।

1. रोगी को अपनी पगथली का निरीक्षण करना चाहिए और यदि वे ठण्डी हों तो हथेली से रगड़ कर उसको गरम करना चाहिए। हमारे यहाँ एक लोक कहावत है - **पैर गरम, पेट नरम और सिर ठण्डा फिर डाक्टर आवे तो मारों डण्डा। अर्थात् जिसकी पगथली गरम रहती है उसमें रोग होने की संभावनाएँ कम हो जाती है।**

2. शरीर में किसी भी रोग की स्थिति में उसके बाह्य संतुलन जैसे नाभि, पैर, मेरू दण्ड आदि प्राय: असंतुलित हो जाते हैं। अत: उपचार से पूर्व उनका निरीक्षण अवश्य कर लेना चाहिए । उनके संतुलित होते ही रोग शरीर में अधिक दिनों तक नहीं रह सकता।

3. दमा के रोगियों को अपने स्वरों के चलन की सप्ताह भर की तालिका बना लेना चाहिए। रोग की अवस्था में चन्द्र और सूर्य स्वरों में असंतुलन हो जाता है। दमा के रोगियों के प्राय: चन्द्र स्वर अधिक चलता है। अत: जिस स्वर में जिस कार्य को करना चाहिए, उसके अनुरूप स्वर संचालन हेतु विशेष सजगता रखनी चाहिए। **अचानक कभी किसी भी रोग की असहनीय स्थिति हो जाये तो तुरन्त जो स्वर चलता है, उसको बदलने से तुरन्त राहत मिलती है।**

4. दमा श्वास का रोग है। अत: श्वसन संबंधी नियमों का पालन, जिसका विस्तृत विवेचन पृष्ट संख्या 91 से 108 के मध्य किया गया है, उनका यथा संभव अवश्य पालन करने का अभ्यास प्राथमिकता से करना चाहिए।

5 प्रात: उदित सूर्य को नंगी आंखों से निहारना, खुले बदन सूर्य की आतापना लेना, कुछ समय नंगे पांव धूप में चलना, सूर्य तप्त सफेद बोतल का पानी पीना एवं हवा से श्वास लेना बहुत लाभदायक होता है। सौर ऊर्जा का मानव जीवन में योगदान, सूर्य किरण एवं रंग चिकित्सा के अध्यायों में सौर ऊर्जा के प्रयोग का तर्क संगत विश्लेषण किया गया है।

6. प्रात:काल शिवाम्बु का पान, करने एवं उसके आधा घंटे पश्चात् उषापान करने से आंतों में जमा मल आसानी से बाहर निकल जाता है। बड़ी आंत फेंफड़े का यांग अंग होता है। अत: दमा के रोगियों को आंतों की सफाई हेतु विशेष सजग और सावधान रहना चाहिए। रात्रि में निद्रा लेने से पूर्व शिवाम्बु पान भी काफी उपयोगी होता है, जिससे रात भर में शिवाम्बु शरीर की आन्तरिक सफाई आसानी से कर देता है।

अधिकांश शिवाम्बु चिकित्सक दमा के रोगियों को लम्बे उपवास के साथ शिवाम्बु कल्प का परामर्श देते हैं। **शिवाम्बु को नासाग्र से पीने से दमा में तीव्र गति से लाभ होता है।** मूल बात शिवाम्बु अपने आप में पूर्ण चिकित्सा है। परन्तु शिवाम्बु को चुम्बक ऊर्जा से ऊर्जित करने, रंगीन बोतलों में आवश्यकतानुसार सूर्य ऊर्जा से ऊर्जित करने, पिरामीड में रखने से उसका प्रभाव अनेक गुणा बढ़ जाता है।

7. दमा के रोगियों को ठण्डे खाद्य एवं पेय पदार्थों का सेवन बिल्कुल नहीं करना चाहिए। पीने योग्य जितना गरम पानी पी सकते हैं, प्यास लगने पर अथवा दमा का दौर आने पर पीने से तुरन्त राहत मिलती है।

8. दमा के रोगियों को दिन में 2-3 बार शक्तिशाली चुम्बकों को विधि अनुसार दोनों पगथलियों, दोनों

हथेलियों के नीचे रखना, चुम्बक के दक्षिणी ध्रुव का पानी पीना तथा सीने और पीठ पर दक्षिणी ध्रुव को फेरने से श्वसन तंत्र ताकतवर होता है। सीने और पीठ पर चुम्बकीय वाइब्रेटर फेरने से भी जमें हुये कफ वहाँ से तुरन्त दूर होने लगते हैं।

9. दाणा मेथी वात और कफ नाशक है। अत: श्वास लेने अथवा खांसी आने पर सीने के जिस भाग में कठिनाई अथवा भारीपन हों, दाणा मेथी स्पर्श कर रखने से तुरन्त चामत्कारिक राहत मिलती है। कंधों के नीचे पीछे उभरे भाग पर, कमर में पीछे गुर्दे के ऊपर एड्रीनल ग्रन्थि के स्थान पर, मेथी लगाने से दमा के रोगियों को शीघ्र आराम मिलने लगता है। जिनको एलर्जिक अस्थमा हों, उन्हें तिल्ली पर भी मेथी लगानी चाहिए, जिससे तिल्ली सशक्त होती है और एलर्जी का प्रभाव कम होने लगता है।

10. चीनी पंच तत्व के सिद्धान्तानुसार फेंफड़े और बड़ी आंत की गड़बड़ी वाले अपेक्षाकृत जल्दी दु:खी होते हैं। उनकी अभिव्यक्ति में प्राय: दु:ख झलकता है। वे निराश जल्दी होते हैं तथा अपने आप में सिमटने लगते हैं। वे दूसरों पर बड़ी मुश्किल से विश्वास करते हैं। अपेक्षाकृत अधिक पूर्वाग्रही होते हैं। अत: उन्हें मस्तिष्क शोधन की प्रक्रिया एवं खुलकर हँसने का अभ्यास बहुत ही लाभप्रद होता है।

11. फेंफड़ों की खराबी से रक्त का शुद्धिकरण बराबर नहीं हो पाता। फलत: हृदय और गुर्दों को भी अपनी क्षमता से अधिक कार्य करना पड़ता है। अत: सूर्य मुखी तेल का गंडूस नियमित करना चाहिए। जिससे रक्त में विकार कम होने लगते हैं।

12. शुद्ध देशी गाय का घी आक्सीजन का प्रभावशाली स्रोत होता है। अत: रात्रि में निद्रा लेते समय नासाग्र में घी की चंद बूंदे डालने से श्वसन में आक्सीजन की पूर्ति हो जाती है और दमा का प्रभाव कम होने लगता है।

13. दमा के रोगियो का नाड़ी तंत्र प्राय: पूर्ण क्षमता से कार्य नहीं करता। सीने की मांसपेशियों में भी लचीलापन कम हो जाता है। रीढ़ के घुमावदार व्यायाम उनके लिये बहुत ही लाभप्रद होते है। देखे चित्र सं. 108 से 115) जिससे सारा नाड़ी तंत्र सक्रिय होने लगता है। ताडासन से मांसपेशियों में लचीलापन आता है तथा विभिन्न बंधों के प्रयोग से श्वसन तंत्र , पाचन तंत्र और विसर्जन तंत्र सक्रिय होते हैं। अत: दैनिक कार्यक्रमों में इनका समावेश बहुत आवश्यक है। (देखें चित्र संख्या 30 से 33) खुली हवा में टहलना, जोगिंग एवं श्वसन संबंधी अन्य क्रियाएँ भी लाभप्रद होती हैं।

14. दमा के रोगियों को पंच तत्त्वों को संतुलित रखने वाली मुद्राओं का नियमित अभ्यास करना चाहिए।

15. एक्युप्रेशर रोग निरीक्षण, परीक्षण और निदान की सर्वश्रेष्ठ पद्धतियों में से एक है। अत: दबाव देने का तरिका सीख स्वयं को ही हथेली और पगथली के दर्दस्थ बिन्दुओं का पता लगाकर, उन पर दबाव देना चाहिए। जिससे शरीर में सहायक रोग पहले दूर हो जाने से श्वसन तंत्र को अधिक प्राण ऊर्जा मिलने लगती हैं।

रोग की अवस्था में फेंफड़ों के प्रमुख प्रतिवेदन केन्द्रों, अन्त:श्रावी ग्रन्थियों, मेरुदण्ड, डायाफ्राम, हाथ और पैर की अंगुलियों के अंतिम किनारे पर स्थित जोनल प्रतिवेदन बिन्दुओं पर तो विशेष एकाग्रता पूर्वक एक्युप्रेशर का

विधिवत् अवश्य उपचार करना चाहिए।

16. फेंफड़े बड़ी आंत मेरेडियन के प्रवाह की दिशा में हाथ से मसाज करने से, इन मेरेडियनों में प्राण ऊर्जा का प्रवाह सुधरता है।

17. फेंफड़ों पर हल्के हाथ से मसाज करते हुए चैतन्य चिकित्सा करने से फेंफड़ें शीघ्र सशक्त होने लगते है।

18. रंग चिकित्सा के अनुसार बैगंनी रंग फेंफड़े का पोषक रंग है और रोगाणुनाशक भी है । अत: एलर्जिक अस्थमा में बैंगनी रंग की किरणे फेंफड़ों पर डालने से फेंफड़े ताकतवर होते हैं।

19. फेंफड़ों पर खिंचाई वाले कप लगाने से रक्त का प्रवाह बढ़ता है और श्वसन तंत्र मजबूत होता है।

20. बियोल मेरेडियन सिद्धान्तानुसार तिल्ली और फेंफड़ो में प्राण ऊर्जा का प्रवाह बढ़ाने से दोनों अंगों की कार्य क्षमता बढ़ती है।

21. दमा का कारण यदि सर्दी हो तो फेंफड़े बियोल मेरेडियन की ठण्डक ऊर्जा को घटाने का आधार बना अन्य संबंधित ऊर्जाओं को संतुलित करने से तुरन्त लाभ होता है।

22. दमा का कारण यदि नमी का वातावरण हों तो फेंफड़े की नमी ऊर्जा को घटाना चाहिए।

23. दमा के सहयोगी रोगों के रूप में शरीर के किसी भाग में यदि अन्य रोगों के लक्षण प्रकट हो गये हों तो उस भाग से गुजरने वाली मेरेडियन की संबंधित ऊर्जा को संतुलित करने से सहायक रोग शांत हो जाते हैं, और दमा में भी राहत मिलती है।

उदाहरण के लिए **यदि किसी भाग में चर्म रोग हो गये हों तो उसके पास गुजरने वाली मेरेडियन की बियोल मेरेडियन में शुष्क ऊर्जा कम करने तथा वायु और ताप ऊर्जा बढ़ाने से लाभ होता है। यदि दर्द हों तो ठण्डक और शुष्क ऊर्जा कम करने से लाभ होता है। यदि जलन हों तो ताप ऊर्जा कम करनी चाहिए और यदि सूजन हों तो नमी ऊर्जा बढ़ानी चाहिए।**

परन्तु रोग के लक्षण यदि सारे शरीर में प्रगट हो रहे हों तो असंतुलित ऊर्जा से संबंधित मुख्य बियोल मेरेडियन को आधार बनाकर उपचार करना चाहिए। जैसे जलन में हृदय-छोटी आंत, चर्म रोग में फेफड़े- बड़ी आंत, मांसपेशियों संबंधी गड़बड़ी में यकृत - पित्ताशय, मूत्र अथवा प्रजनन संबंधी रोग में गुर्दे - मूत्राशय, रक्त संबंधी रोग में हृदय छोटी आंत, नाड़ी संस्थान अथवा मानसिक रोगों में पेरीकार्डियन-मेरुदण्ड बियोल मेरेडियन को प्रधानता देनी चाहिए।

24. दमा के रोगियों को अपनी दिनचर्या का निर्धारण इस प्रकार करना चाहिए जिससे प्रत्येक अंग जब अधिक सक्रिय हों तो उससे संबधित कार्यों को प्राथमिकता दी जाये और जब किसी अंग में प्राण ऊर्जा का प्रवाह निम्नतम हों तो, उस अंग से कम से कम कार्य लिया जाये।

उपर्युक्त नियमों का पालन करने से प्राय: सभी प्रकार के दमा रोगी शीघ्र स्वास्थ्य लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

अखिल भारतीय स्वास्थ्य चेतना ज्ञान प्रतियोगिता का आयोजन एवं प्रतियोगियों के अभिमत

"आरोग्य आपका" पुस्तक का मनोयोग पूर्वक अध्ययन एवं स्वाध्याय द्वारा स्वास्थ्य के संबंध में फैली भ्रान्त धारणाओं को दूर कर प्रभावशाली निर्दोष चिकित्सा पद्धतियों के प्रति श्रद्धा एवं आत्म विश्वास पैदा करने के उद्देश्य से हमारे न्यास द्वारा 20-6-2004 से अखिल भारतीय स्वास्थ्य चेतना ज्ञान प्रतियोगिता का आयोजन किया गया।

इस प्रतियोगिता में स्वस्थ रहने के इच्छुक किसी भी उम्र के बालक, युवा, वृद्ध, स्त्री अथवा पुरुष के भाग लेने का प्रावधान था। प्रतियोगियों को **आरोग्य आपका** पुस्तक पर आधारित लगभग 500 प्रश्नों का अपने घर बैठे पुस्तक को पढ़कर 31-3-2005 तक उत्तर भिजवाना आवश्यक था। इस प्रतियोगिता में देश - विदेश के चिकित्सकों, वैज्ञानिकों, साधु-संतों, प्रशासनिक अधिकारियों, इंजीनियरों, शिक्षाविदों के साथ सामान्य शिक्षा प्राप्त बालकों, युवाओं, वृद्धों एवं महिलाओं आदि 1565 प्रतियोगियों ने भाग लिया। प्रोत्साहन स्वरूप प्रतियोगियों को एक लाख रुपये का प्रथम पुरस्कार, 110 श्रेष्ठ प्रतियोगियों को लगभग एक हजाररूपये का उपहार, 30-11-2004 तक उत्तर भिजवाने वाले 300 से अधिक शीघ्र प्रतियोगियों को पचास पचास रुपये का सद्साहित्य एवं प्रत्येक प्रतियोगी को सान्त्वना पुरस्कार वितरित किये गये। पुरस्कार वितरण समारोह के अवसर पर दिनांक 9-10-2005 को जोधपुर मेडीकल कालेज के सहयोग से विविध चिकित्सा पद्धतियों पर दो दिवसीय राष्ट्रीय कार्यशाला का भी आयोजन रखा गया। सभी प्रतियोगियों का मत था कि "**आरोग्य आपका**" पुस्तक प्रत्येक चिकित्सक, रोगी एवं स्वास्थ्य प्रेमी के लिए पठनीय, चिन्तनीय एवं संग्रहणीय है। कार्यशाला में उपस्थित एवं प्रतियोगिता में भाग लेने वाले सभी पाठकों के अभिमत प्रकाशन योग्य हैं। पुस्तक में पृष्ठों की संख्या सीमित होने से यहां चन्द प्रतियोगियों के विचारों को ही आंशिक रूप से प्रकाशित किया जा रहा है।

आरोग्य आपका पुस्तक पर चंद लोगों के विचार

आरोग्य आपका पुस्तक को यदि एक बार पढ़ना शुरू कर दिया जाता है तो, छोड़ने को मन नहीं करता। प्रत्येक अध्याय में नया नया स्वास्थ्य संबंधी मार्गदर्शन मिलता है। मैं कहना चाहूंगा कि लेखक ने विभिन्न 40 पुस्तकों की स्वास्थ्य संबंधी जानकारी को एक ही पुस्तक में समेट लिया है। **So, it is better to carry or to have one book "आरोग्य आपका" rather than to carry 40 books weighing 40 Kg.**

Dr. R.C. Sharma (Ph.D.) Fruit Technologist, H.P. Fruit Canning Unit, Kangra (H,P.)

*** भारत के छः लाख गांवों के लिये कैसी चिकित्सा पद्धति होनी चाहिये। मेरे इस प्रश्न का जवाब यह पुस्तक है। इस पुस्तक का गांव गांव, शहर शहर, घर घर प्रचार होना चाहिये। इस पुस्तक के आधार पर जगह जगह प्रशिक्षण व चिकित्सा केन्द्र खुलने चाहिये। इन स्वावलम्बी चिकित्सा पद्धतियों को हमारी राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति घोषित कर भारत सरकार को इसका प्रचार एवं प्रसार करना चाहिये। "आरोग्य आपका" रेगिस्तान की तपती गर्मी में ठंडी हवाओं के झोंके के समान है।**

—मुरारी लाल सर्राफ, सर्वोदय विचार परिषद्, महात्मा गांधी रोड, कलकत्ता

*** सर्वप्रथम तो यह आश्चर्य ही लगता है कि इतनी सब सात्विक, स्वावलम्बी, अहिंसक तथा सरल चिकित्सा पद्धतियों के उपलब्ध होते हुये भी हम इनसे अनभिज्ञ तथा वंचित रह रहे हैं। स्वास्थ्य संबंधी जानकारियों से भरी यह पुस्तक हीरों की खान से कम नहीं है। ऐलोपैथिक चिकित्सा प्रणाली में स्नातक होते हुये भी इस पुस्तक को पढ कर यह महसूस करता हूँ कि हमारा ज्ञान अभी भी काफी कम है। श्री चंचलमलजी चोरडिया साहब का यह प्रयास निसंदेह एक मील का पत्थर साबित होगा। आपके तर्कपूर्ण वैज्ञानिक विश्लेषण सचमुच मस्तिष्क को यह मानने पर मजबूर करते हैं कि आज के इस युग में स्वस्थ रहने का इससे सरल और सस्ता रास्ता कोई नहीं है। इसमें से कई सरल चिकित्सा का उपयोग मैंने स्वयं किया तथा अपने कई मरीजों को करने की सलाह दी तथा खुशी का एहसास हुआ अब उनसे मुझे तथा मरीजों को काफी फायदा हुआ। अतः अब तक तो यह बात अनुभव सिद्ध भी हो गयी है कि इस तरह की पुस्तकों का संग्रह प्रत्येक घर में होना चाहिये। एक तरह से यह पुस्तक धार्मिक, आध्यात्मिक तथा चिकित्सा का ऐसा समन्वय है कि इसे पढने के बाद एक सफल सरल जीवन शैली जीने की राह का मार्ग दर्शन होता है। सही में यह पुस्तक आरोग्य आपका नहीं बल्कि आरोग्य हमारा या आरोग्य हम सबका है।**

—डॉ. महेन्द्र इन्द्रचंद जैन (M.B.B.S.), मुंबई (महा.)

*** आरोग्य आपका जैसी पुस्तक मैंने अपने जीवन में पहली बार देखी, जिसमें शरीर के किसी भी रोग का इलाज भांति भांति से ठीक करने की विधियां बताई गई है। इसमें मनुष्य के स्वास्थ्य के साथ अध्यात्म, मनोविज्ञान तथा**

आधुनिक जीवन शैली को दृष्टि में रखकर शारीरिक रोगों का कारण एवं उपचार करने का व्यवहारिक तरीका बताया गया है। यह पुस्तक ऐसी है जिसको जितना पढ़ते हैं और अधिक पढ़ने की चाह बढ़ती जाती है। पुस्तक में सर्वत्र मौलिक, वैज्ञानिक आध्यात्मिक तथा तर्क संगत प्रस्तुतिकरण है। खुशबु मोदी (M.B.B.S.) अहमदाबाद

* मेरे मन में **Alternative Medicines** को जानने, समझने व परखने की अटूट जिज्ञासा थी। आरोग्य आपका ने बहुत सारी शंकाओं का समाधान प्रदान कर मुझे एक नई दिशा दी है। इसके लिये मैं लेखक का अन्तरमन से साधुवाद करता हूं। कोई भी बुद्धिमान इस पुस्तक का गहन, सजगता से अध्ययन किये बिना नहीं रह सकता। यह मेरी सोच है और इसके बहुत अच्छे परिणामों की भविष्यवाणी भी करता हूं। खुली किताब परीक्षा के जरिये पाठकों को इसका गहराई से एवं पूरी विवेक व सजगता से अध्ययन करवा लेखक ने स्वावलम्बी, प्रभावशाली, अहिंसा और ध्यान साधना के लिये प्रेरित कर गुरुत्व भूमिका निभाई है।

—डॉ. हरबंस सिंह MBBS, M.S., Ph.D. वरिष्ठ शल्य चिकित्सक, कोठारी मेडीकल एवं रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बीकानेर (राज.)

* मौलिक चिकित्सा पद्धतियां ही श्रेष्ठ चिकित्सा पद्धतियां हैं क्योंकि इसमें अन्तःस्रावी ग्रन्थियों का सरलतम प्रभावशाली उपचार संभव है, जो अन्य चिकित्सा पद्धतियों में इतना सरल नहीं। पुस्तक प्रत्येक स्वास्थ्य प्रेमी के लिये पठनीय एवं स्वास्थ्य संबंधी रोगों का समाधान देने वाली है।

—Prerna Kothari, 6th Floor, Flatc, Southsea Mansion, 81 Chatham Rd. T.S.T. HONGKONG

* दुनियाँ के हर पेथी के प्रत्येक डाक्टर को कम से कम एक बार इस विशिष्ट स्वावलम्बी आरोग्य आपका ग्रन्थ को अवश्य पढ लेना चाहिये तथा जो मरीज अस्पताल में भरती हों उसको यह ग्रन्थ पढने को देना चाहिये। मैं यह कहना चाहूंगा -

आरोग्य आपका है यदि आपके हाथ में, तो अच्छा स्वास्थ्य है आपके साथ में।

—डॉ. लक्ष्मीचन्द जैन, (एम.ए, बी.एड.), ग्राम पोस्ट-छोटी कसरावद जिला खरगोन (म.प्र.)

* आरोग्य आपका पुस्तक को यदि **Mini M.B.B.S.** का पाठ्यक्रम भी कहा जाये तो कोई अतिश्योक्ति नहीं। वास्तव में सरल भाषा में घरेलू उपचार के माध्यम से हम स्वस्थ रह सकते हैं। मेरे विचार से तो इस पुस्तक को माध्यमिक स्तर तक के स्कूली पाठ्यक्रम का एक जरुरी हिस्सा बना दिया जाना चाहिये ताकि प्रत्येक व्यक्ति में स्वावलंबी चिकित्सा के प्रति जागरूकता पैदा हो जाये।

—सुरेश बंसल (M.Com.) बजाजा बजार, नारनौल (हरियाणा)

* शायद आरोग्य आपका पुस्तक 10 साल पहले मुझे प्राप्त हुई होती तो जीवन की राह में अनूठा बदलाव आता। मैंने एक डाक्टर होने से अपने G.P. में मरीजों को आपकी पुस्तक से प्राणायाम, शिवाम्बु, सौर ऊर्जा, खान पान आदि का महत्व समझाकर उन्हें अपनाने को प्रोत्साहित किया। जब रोगियों में चमत्कारिक परिणाम पाया तो मैं झूम उठा। मेरे जीवन में शायद ही इतना आनंद मुझे पहली बार मिला। मैंने मन में निश्चय कर लिया है कि हर एक स्वास्थ्य प्रेमी एवं, रोगीयों को इस किताब की जानकारी देकर, उनको पढने और आचरण में लाने को प्रेरित करूं।

—डॉ. विरचंद हरकचंद मंडलेचा, (B.A.M.S, नुतन विलनिक सराफ लेन, देवळा (जी. नाशिक) पुणे

* मेरे 8 वर्षीय पुत्र श्री प्रसन्न के पेशाब में पिछले 15 दिन से रक्त आ रहा था। डाक्टर एस.डी. शर्मा व श्री एस. के. पारख को दिखाया एवं सभी टेस्ट कराये। इसके पेशाब में I.G.A. Level 4.14 था। डाक्टरों ने कहा इस रोग का उपचार हेतु गुर्दा निकालना पड़ सकता है। कोई दूसरा इलाज नहीं है। मुझे इसके गुर्दे खराब होने की चिन्ता थी। आपकी पुस्तक में पृष्ठ 173 पर इसके इलाज की विधि व पृष्ठ 177 पर चित्र नं. 76 पर चुम्बक लगाने की विधि बताई गई थी। मैंने आपसे चुम्बक मंगवाकर उसका इलाज किया। 48 घण्टों में ही फर्क पड़ना शुरू हो गया व 10 दिनों के इलाज से बिल्कुल नोर्मल हो गया। मैंने दूबारा उसका टेस्ट कराया तो नोर्मल आया। डाक्टर भी इसकी रिपोर्ट देखकर आश्चर्यचकित है व पुस्तक के व इलाज के बारे में मुझसे जानकारी ली है।

रिंकु देवल (M.A.) D/o श्री सी.डी. देवल M.L.A Jaipur

* जब हमने आरोग्य आपका पुस्तक पढी तो ऐसा लगा मम्मी पापा को घर बैठे अच्छा डाक्टर मिल गया। पापा जो कि हृदय रोगी हैं, मम्मी शुगर की रोगी है। किताब को पढते ही वह उनमें लिखी विधियों का उपयोग कर रहे हैं। जिससे उनको काफी राहत है।

सीमा जैन (M.A.), चौपहला, झालावाड (राज.)

* किसी ने सत्य ही कहा है कि अच्छी पुस्तके जीवन्त देव प्रतिमाएँ हैं, जिनकी अध्यन रूपी आराधना एवं उपासना से प्रकाश व उल्लास मिलता है। प्रस्तुत पुस्तक आरोग्य आपका विषय वस्तु, भाषा, व्याकरण, चित्र, उदाहरण सहित सभी तथ्यों से परिपूर्ण है। इसके प्रसंग व उदाहरण इतने सरल और सहज हैं कि अध्ययन कर्ता को लगता है कि वह पढ नहीं बल्कि चल चित्र देख व समझ रहा है। जन जन को आरोग्य प्राप्त करने और न केवल आरोग्य अपितु अध्यात्म के बारे में पुस्तक के पृष्ठ 188 से 203 तक जो कुछ लिखा उसका एक एक शब्द धारणयोग्य व मनन योग्य है। इस पुस्तक को मैंने न जाने कितनी बार पढ डाला, हर बार कुछ न कुछ नया पाया। जितनी बार पढ़ा

जिज्ञासा और बढी। लेखक होने के नाते मैं इस तथ्य से परिचित हूं कि अच्छा लिखने के लिये पर्याप्त अनुभव, गहन अध्ययन, विषय और भाषा पर गहन पकड़ आवश्यक है। **कितनी हैरत की बात है कि आज का यह तथा कथित मानव आधुनिक चिकित्सा की चकाचौंध में अपना सर्वस्व लुटाने पर तुला है, उसे न तो खाने के नियम पता है न पीने के पानी के और तो और उसे ढंग से श्वास लेना भी नही आता, न ढंग से चलना, न बैठना आता है। और तो और वह रोगी होता है अपने कारणों से और स्वस्थ होना चाहता है प्रकृति के विपरीत, हिंसात्मक साधनों को अपनाकर आधुनिक चिकित्सा द्वारा।** भला बबूल का बीज बोकर आम कैसे प्राप्त हो सकते हैं ?

प्रस्तुत पुस्तक का यूं तो हर अध्याय प्रभावी है परन्तु सबसे प्रभावी है पृष्ठ 27 से 34 तक श्रीमान लेखक का स्वकथन जिसका एक एक वाक्य और शब्द चिन्तन योग्य है। आपका यह कथन किसी को दुःख देकर सुख और शान्ति नहीं मिल सकती। यह प्रकृति का शाश्वत नियम भी है। इसलिये कर्मो को भोगते समय नहीं, कर्मो को करते समय भी उसके फलों से नही बचा जा सकता। पृष्ठ 105 पर श्वसन का सही तरीका पृष्ठ 108 पर जल और स्वास्थ्य तथा भोजन में भाव का प्रभाव भी आश्चर्यजनक लगा। सत्य तो यह है कि इतनी साधारण बातें इस असाधारण पुस्तक से जान पाया। प्रस्तुत पुस्तक मात्र 360 पृष्ठों या 177 चित्रों का संकलन नहीं वरन हर स्वास्थ्य प्रेमी के घर में रखने का धर्म ग्रंथ है। मेरा सौभाग्य है कि मैंने ऐसे सम्मानीय लेखक को विभिन्न शिविरों में सुना, देखा व परखा। आपने जो कुछ कहा या लिखा उसमें तनिक भी अन्तर नही है, आपकी कथनी व करनी समान है। **माध्यमिक शिक्षा बोर्ड पाठ्यक्रम समिति का सदस्य होने के नाते मेरा प्रयास रहेगा कि प्रस्तुत पुस्तक के कुछ अध्याय कक्षा IX व X में स्वास्थ्य शिक्षा में सम्मिलित हों ताकि स्वास्थ्य का प्रकाश व सर्वांगीण विकास के वास्तविक लक्ष्य की प्राप्ति हो सके।**

अनिल कुमार सांखला M.Sc. (Phy.), M.Ed., CIC

सदस्य एवं लेखक मा.शिक्षा बोर्ड राजस्थान पाठ्य क्रम समिति, 297, लक्ष्मीनगर, पावटा बी रोड, जोधपुर

आज जहां हर व्यक्ति, बदलते जीवन शैली में बिमारीयों का शिकार हो रहा है। वहां ऐसी पुस्तकों का प्रकाशन व उससे भी बढ़कर उसे आम व्यक्ति के सामने प्रस्तुत करना, एक अभूतपूर्व कार्य है। इस पुस्तक में न सिर्फ भारतीय बल्कि विदेशी चिकित्सा पद्धति को भी महत्व व सम्मान दिया गया है। दवाओं के दुष्प्रभावों से बचने के लिए, यदि इन पद्धतियों का इस्तेमाल किया जाता है तो व्यक्ति अपने शरीर की असीम शक्तियों का सदुपयोग कर देश को एक स्वस्थ समाज दे सकता है। **संदीप सिंह सोलंकी (M.B.A.) जोधपुर (राज.)**

स्वस्थ जीवन जीने के लिये जैसे शुद्ध हवा, पानी, भोजन आदि की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार स्वस्थ जीवन जीने के लिये प्रेरित करने वाले साहित्य की भी अति आवश्यकता होती है। यह कृति उस आवश्यकता को पूर्णतः पूरा करती है। मुझे आशा है कि मेरी ही तरह अन्य लोगों के जीवन में भी यह कृति दीपक की भांति रोशनी प्रदान करेगी और उन्हें स्वस्थ, संतुलित एवं संयमित जीवन जीने का अवसर प्रदान करेगी। **डॉ. सुधा जैन (Ph.D.), पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी (यू.पी.)**

हमारे ही शरीर में सभी रोगों का उपचार संभव होता है। इस अमृत तुल्य सत्य को किताब के माध्यम से हम समझ चुके हैं कि हमारा यह शरीर किन किन अद्भुत चीजों का भंडार है ? जिसमें अणु से अणु बात को भी मन में धार कर शरीर का मुख्य ध्येय आरोग्य को प्राप्त कर सकते हैं। **डॉ. संदीप एस. जैन (B.A.M.S.) वर्धमान होस्पीटल, बोडवाड (महा.)**

*** ४ अक्टूबर २००५ को सायकाल मुझे एपेन्डिसाईटिस का गम्भीर रोग हुआ जो सोनोग्राफी से पहचिन्हे हुआ। डाक्टरों ने तुरन्त शल्य चिकित्सा करवाने हेतु परामर्श दिया। परन्तु जब मैंने डॉ. चोरडिया से सम्पर्क किया तो उन्होने कहा यदि आपको मेरे उपचार से प्रातःकाल तक आराम न मिले तो आप शल्य चिकित्सा के बारे में निर्णय ले लेना। रात्रि में उनके उपचार में मुझे तुरंत राहत मिलना प्रारम्भ हो गया और दो दिन में बिना शल्य चिकित्सा के मैं पूर्ण स्वस्थ हो गया। पुनः सोनोग्राफी करवाने पर यह तथ्य स्पष्ट हो गया।**

आर.एम. कोठारी (सेवा निवृत आई.ए.एस.) चौपासनी रोड, जोधपुर

*** यह मेरा सौभाग्य है कि मुझे आरोग्य आपका पुस्तक पढने का अवसर मिला। मैंने पहली बार जाना कि स्वावलम्बी चिकित्सा अधिक मौलिक, वैज्ञानिक व प्रभावशाली होती है।** जिसमें पूर्ण शरीर के साथ साथ मन और आत्मा को एक इकाई के रूप में मान कर उपचार किया जाता है। यह पुस्तक स्वस्थ रहने की कुंजी है। कोई व्यक्ति बीमार पड़ना नहीं चाहता। कोई व्यक्ति दवाई खाना नहीं चाहता। अतः मेरी राय में जो भी व्यक्ति यह पुस्तक पढे, वह अपने शुभचिन्तकों, मित्रों, रिश्तेदारों को इसकी जरूर जानकारी दें।

शमीम अख्तर R.A.S. (एम.बी.ए., एल.एल.बी.) आतंरिक्त निदेशक साक्षरता एवं सतत शिक्षा विभाग मस्जिद के पास, सब्जी मण्डी जौहरी बाजार, जयपुर (राज.)

*** संसार में कोई भी दो रोगी एक समान नहीं हो सकते –इस मूल सिद्धान्त पर आधारित यह ग्रन्थ स्वास्थ्य व चिकित्सा के क्षेत्र के चार आर्य सत्य यथा - रोग, रोग के कारण, निदान व निदान का उपाय, सम्यक् रूप से संश्लेषण - विश्लेषण कर अद्भुत रूप से प्रस्तुतिकरण करती है। स्वास्थ्य के प्रति लापरवाही, सनातन सिद्धान्तों की उपेक्षा, जीवन शक्ति का क्षय करने वाली पाश्चात्य संस्कृति में लिप्त मानव स्वास्थ्यवर्धक परिस्थिति की ओर किस प्रकार आरूढ होकर स्वयं को निरोगी रख सकता है। यह पुस्तक तमसो मा ज्योतिर्गमयः का कार्य करती है।** पुस्तक में वर्णित दाणा मेथी चिकित्सा, हास्य चिकित्सा व नाभि खिसकने पर खिंचाव चिकित्सा का

प्रयोग मैंने स्वयं व पारिवारिक सदस्य पर करने पर आश्चर्यजनक रूप से लाभान्वित हुआ व गौरवान्वित महसूस कर रहा हूँ। यह पुस्तक संग्रहणीय, स्कूली शिक्षा के पाठ्य पुस्तक में सम्मिलित होने योग्य व नोबल पुरस्कार से सम्मानित होने योग्य है ।

डॉ. दलवीर सिंह ढड्डा, (IRTS), (एम.ए.पी.एच.डी.) (दर्शनशास्त्र) , 1/8, हाऊसिंग बोर्ड, नागौर

* आज हमारा देश पश्चिमी संस्कृति में रंगा जा रहा है। इसे रोकने के लिये यह पुस्तक एक बहुत अच्छा कदम है। आज यदि हमें एक स्वस्थ समाज, स्वस्थ देश का निर्माण करना है तो आरोग्य आपका पुस्तक की चिकित्साएं अपनाकर हम ऐसा कर सकते हैं। इसमें बताई गई चिकित्सा विधियां अहिंसात्मक है। आज के वैज्ञानिक युग में भारत को पश्चिमी संस्कृति से बचाने का एवं हर व्यक्ति को स्वस्थ रखने का एक ही उपाय है - आरोग्य आपका का स्वाध्याय।

श्री अनिल कुमार मिश्रा (R.H.J.S.) B.Sc. , LL.B.) C/91, दुर्गापथ अम्बावाडी, जयपुर 302023

* स्वस्थ रहें या रोगी फैसला आपका, स्वस्थ रहने के लिये मार्गदर्शक है आरोग्य आपका

दवा खाये बिना भी कोई चिकित्सा हो सकती है, यह भले ही हमें अजूबा लगे किन्तु इस पुस्तक में ऐसी कई स्वावलम्बी अहिसात्मक चिकित्सा पद्धतियां बताई गई है, जिनमें औषधि का सेवन नहीं होता, फिर भी उनका प्रभाव रोग निवारण में अचूक एवं आश्चर्यजनक होता है। इतनी सारी अलग अलग चिकित्सा पद्धतियों की खोज करना व उनको संग्रहित कर पुस्तक बनाना सामान्य कार्य नहीं है। इस पुस्तक ने इन सभी अभावों को दूर कर एक नई दिशा दी है। लेखक ने इस पुस्तक में स्वावलम्बी चिकित्सा पद्धतियों पर अधिकाधिक जोर इसलिये दिया है, क्योंकि ये चिकित्सा पद्धतियाँ अधिक वैज्ञानिक एवं प्रभावशाली है।

डॉ. श्रीमती कमल दत्त (R.H.J.S.)B.Sc , (Hons.) , L.L.M., P.H.D. (Law)
अपर जिला एवं सेशन न्यायाधीश भरतपुर (राज.) 321001

* श्री चंचलमलजी चोरडिया द्वारा लिखित आरोग्य आपका पुस्तक स्वावलम्बी, अहिसक, सहज, सुलभ चिकित्सा पद्धतियों का एक अनुकरणीय सन्देश है। यह पुस्तक मौलिक चिकित्सा के क्षेत्र में गागर में सागर है। इसमें प्राकृतिक चिकित्सा, स्वर, सुजोक, चुम्बक, रंग शिवाम्बु, एक्युप्रेशर पद्धतियों को सरल, सटीक व प्रभावकारी ढंग से चित्रित किया गया है। इस पुस्तक में वर्णित प्रत्येक इलाज प्रभावशाली है। मेरे द्वारा मेथी चिकित्सा का विशेष रूप से प्रयोग किया गया, जिसके आश्चर्यजनक परिणाम आये।

नरेन्द्र सिंह ढढा (M.A., LL.B.) R.H.J.S. अपर सेशन न्यायाधीश (F.T. No. 1) उदयपुर

* आरोग्य आपका आरोग्य और स्वास्थ्य की दुनिया का सिरमौर बन गया है। स्वावलम्बी चिकित्सा और मौलिक चिकित्सा की सभी सारभूत बातें विस्तार से बताने का प्रयास गागर में सागर भरने जैसा ही है। आधुनिक विज्ञान की खोजों में पश्चिम भले ही दुनिया में आगे हो, स्वास्थ्य और आरोग्य के संबंध में प्रस्तुत पुस्तक का प्रचार प्रसार और जन साधारण में इस ज्ञान का उपयोग भारत को पुनः जगद् गुरु के पद पर आसीन कर सकता है।

सुरेन्द्र कुमार गुप्ता, (R.P.S.) अतिरिक्त पुलिस अधीक्षक (यातायात) जोधपुर

* मैंने अपने जीवन काल में इतनी गंभीर व ज्ञान गुढ पुस्तक जो इतनी सरल भाषा में पहली बार पढी है, जिसे पढकर हमें अपनी आन्तरिक शक्तियों का आभास हुआ। मेरा प्रयास आपके सामने ठीक उसी प्रकार है, जैसे भगवान कृष्ण के गोवर्धन पर्वत उठाने पर बाल गोपालों द्वारा लाठी का सहारा था।

गणपत कुमार वैष्णव, (सिविल न्यायाधीश) , सिवाना, बाडमेर (राज.)

* जिस तरह हर घर में (मेडीकल बाक्स) दवाइयों का डिब्बा रहता है उसी तरह यह पुस्तक हर घर में रहनी चाहिये। इस पुस्तक को बार-बार पढने की इच्छा होती है । हर बार नयापन लगता है। एक बार जो व्यक्ति एकाग्र होकर मन सहित इस पुस्तक को अच्छे ढंग से पढ लेगा तो वह स्वयं व अपने परिवार का इलाज बिना पैसों के घर बैठे कर सकेगा, उसको इलाज के लिये किधर भी बाहर भटकना नहीं पड़ेगा। यह पुस्तक जन जन को अपने स्वास्थ्य के प्रति जागरूक रहने तथा स्वयं का डाक्टर स्वयं बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायेगी। जनता के स्वास्थ्य के लिये राम बाण सिद्ध होगी। जनता को दवाओं के व्यर्थ खर्च से बचायेगी। लोगों के स्वास्थ्य में चार चांद लगायेगी। जनता में स्वास्थ्य की नई क्रान्ति का सूत्रपात करेगी।

श्री पारसमल डालचन्दजी दुगड़ (जैन) (प्रेक्षाध्यान प्रशिक्षक) , मुंबई 400101

* भारतीय संस्कृति में गंगा यमुना सरस्वती के संगम स्थल प्रयाग का जो महनीय रूप रहा है, ठीक वैसे ही चिकित्सा जगत में प्रस्तुत कृति को शारीरिक , मानसिक एवं भावनात्मक स्वास्थ्य का त्रिवेणी संगम कहा जा सकता है। लेखक ने अपनी दूरदर्शिता के साथ कुशल जौहरी की तरह स्वास्थ्य विज्ञान से संबंधित विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों एवं स्वानुभूत प्रयोगात्मक तथ्य रूपी अनमोल मणी मुक्ताओं को एक ही पुस्तक में इस कदर पिरोया है कि पाठक के लिये पृष्ठ दर पृष्ठ स्वतः समाधान खुलता जाता है और ज्यों ज्यों मन इसकी गहराई में डूबता जाता है त्यों त्यों मानव शरीर संरचना और उसकी सुरक्षा के गूढतम रहस्य अनायास अनावृत होते जाते हैं।

सम्पूर्ण पुस्तक के आद्योपान्त अवलोकन के बाद मुझे यह लिखने में कोई संकोच नहीं है कि - आरोग्य आपका पुस्तक हरदम रखों अपने पास, नई रोशनी नई ताजगी की सुबह का हो अहसास, न हो कभी निराश, न हो कभी दुःख में उदास, टूट जाएगा एक दिन स्वतः बीमारियों का नागपाश, भर दें हर मुर्दादिल में जिन्दादिली का विश्वास, लिख डाले समय के भाल पर कामयाबी का इतिहास ॥"

आपके प्रश्नों का सम्यक् समाधान मिलेगा - आरोग्य आपका पुस्तक में ।

सुश्री मंजु सुराणा (संयोजिका तेरापंथ कन्या मंडल) पोस्ट पड़िहारा, जिला चुरू (राज.)

* आरोग्य आपका पुस्तक स्वास्थ्य के बारे में जानकारी के साथ साथ विभिन्न सिद्धान्तों पर आधारित रोधक अवरोधक संबंध स्थापित कर मानवीय अनुभूतियों को सजग सरल कर चेतना को संजोए हुए मानव शरीर को संघर्ष करते रहने के साथ साथ आरोग्य हेतु बिना चिरफाड सजीव रखकर महान बनाता है । प्रस्तुत पुस्तक में विभिन्न ज्वलंत उदाहरणों के माध्यम से लेखक ने जटिल से जटिल रोगों पर आवश्यकतानुसार विभिन्न चिकित्सा प्रणालियों का प्रयोग प्रस्तुत कर रोगियों के लिये प्रोत्साहित किया है । वास्तव में पुस्तक चुंबकत्व का कार्य करते हुये प्रत्येक प्रतियोगी को आकर्षित करती रही है ।

डॉ. मनीषा ठाकुर Ph.D., M.Phil.,M.Ed., D.N.Y.S. इन्दौर रोड उज्जैन (म.प्र.)

* आरोग्य आपका पुस्तक में लोगों के कल्याण हेतु बिना किसी अपेक्षा से लेखक ने जो ज्ञान दिया वह अंधेरे में रोशनी की तरह कार्य करता है । भटके हुए पथिक के लिये मशाल की तरह यह पुस्तक बनाई गयी है । आरोग्य आपका संगीत के सात सुरों सा समरस और सुसंगत है । लेखन कला जीवन को संवार दे, निखार दे, विकसित कर दे ऐसी है ।

धर्म संस्कार युक्त यह पुस्तक जिसमें लेखक ने जटिल विषय सरलता से प्ररूपित कर हमें उसके प्रति आकर्षित कर रखा है ।

Dr. Preeti E. Hlizar, (B.A.M.S.), Om Clinic, Saidapur, Distt Gulberga (Kar)

* ऐसी सुलभ व सर्वव्यापी स्वावलम्बी , अहिंसक पद्धतियों का वर्णन जो स्वयं के अनुभवों के आधार पर लेखक की कलम से निकला है वह ऐसे हैं जैसे भगवान धन्वतरी ने स्वयं लेखक की लेखनी में प्रवेश करके जनमानस के कल्याण के लिये ही लिखवाएँ है ।

Dr. Abha c/o Abha Nature Cure Hospital (B.Sc.(H.), C.I.C., DNYS , Delhi

* आरोग्य आपका पुस्तक का मैंने एक एक शब्द पढा है और मुझे लगा की अगर मनुष्य इस पुस्तक में ज्ञान ले लें तो कभी बीमार हो नहीं सकता । अगर हो भी जाता है तो इसके द्वारा दिये उपचारों से ठीक हो सकता है । स्वावलम्बी, मौलिक चिकित्साओं का यह अनमोल ग्रन्थ है ।

लै. कर्नल डॉ. एम जी शर्मा (बी.ए. आयुर्वेद रत्न, एनडीडीआई) एम-53, चीलगाडी, लाजपत नगर, धर्मशाला, जिला सागडा

* आरोग्य आपका पुस्तक पढने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । आश्चर्य भी हुआ कि ऐसी सुन्दर पुस्तक बाजार में है जो स्वयं के द्वारा स्वयं की चिकित्सा कर सकती है, वह भी बिना कुछ खर्चे, फिर भी अज्ञानियों से अस्पताल भरे पड़े हैं । समय, पैसा और शरीर का नाश हो रहा है । एक रोग छुड़वाते हैं, चार नये रोग लेकर आते हैं । जैसे जैसे आयु बढती जाती है, रोग भी बढते जाते हैं । चारपाई पर पड़ जाते है । लाठी व दवाईयों के सहारे घसीट - घसीट कर इस दुनिया को अलविदा कह जाते हैं । काश वे आरोग्य आपका पढ लेते व अपना लेते तो मुझे पूरा यकिन है कि लाठी और दवाईयाँ तो छूट ही जाती और चारपाई अर्थात न बनकर आराम की वस्तु बन जाती । जो भी इस पुस्तक को पढेगा वह निरोगता का हनुमान चालीसा पढेगा । जैसे हनुमानजी के सामने कोई विपत्ति न टिक सकी, वैसे ही आरोग्य आपका के आगे कोई रोग न ठहर सकेगा । ऐसी अद्‌भुत रचना के लेखक को हम सभी का साधुवाद ।

डॉ. सुषमा(M.A. (Eng.), M.Ed., DNYS दिल्ली

* आरोग्य आपका डॉ चंचलमल चोरडिया द्वारा चिकित्सा जगत के लिये एक नया शोध है, जो भविष्य में निराश रोगियों के लिये मील का पत्थर साबित होगा । चिकित्सा में अहिंसा , भोजन में भावना, शरीर की प्रतिरोधक क्षमता का महत्व, आधुनिक चिकित्सा पद्धति की अपूर्णता, स्वास्थ्य हेतु सम्यक् आचरण की आवश्यकता आदि अनेक विषयों में डॉ साहब ने लिखकर विशेष कार्य किया है ।

डॉ. आर के वशिष्ठ 'गौड' (B.A.M.S., LL.B. M.Phil)हनुमानगढ (राज.)

* पुस्तक का एक एक अध्याय ज्ञान व अनुभवों से भरपूर है । अगर कोई अनजान व्यक्ति भी जो इलाज व रोग के बारे में न भी जानता होगा, वह भी एक सुयोग्य डाक्टर स्वयं ही बन जायेगा । पुस्तक को आदि से अन्त तक पढे बिना चैन ही नहीं पड़ सकता । पुस्तक अज्ञान से ज्ञान की तरफ ले जाने वाली एक दुर्लभ रचना बन पायी है । जो भी इसको पढेगा, मेरा विश्वास है, वह दवा के दुष्प्रभावों व गायी विज्ञापनों से बचकर पैसे तो बचायेगा ही, साथ ही साथ विज्ञान के नाम पर, आज जो मानव के साथ खिलवाड़ हो रहा है, उससे अपना बचाव भी करेगा । साथ ही अगर शरीर में कोई रोग होगा तो भी उसको खदेड़ कर निरोगता प्राप्त करेगा, ऐसा विश्वास है ।

Dr. S.M. kapoor (M.E., M.Com., B.Ed., DNYS)दिल्ली

* "नानक दुःखिया सब ससार" व आरोग्य आपका जो पढे वह भव सागर से पार । यह कोई अतिश्योक्ति नहीं है एक सच्चाई है । जो स्वयं सिद्ध है । आरोग्य आपका एक रोग के बोझ से दबे इंसान के लिये एक सहारा है । आरोग्य आपका नही आरोग्य हमारा है । कोई भी ऐसा अनुभव लेखक ने पुस्तक में नही दिया जो उसने स्वयं जांच की कसौटी पर न कसा हो और खरा उतरने पर ही दूसरों की भलाई के लिये अपनी बेशकिमती पुस्तक आरोग्य आपका में उतार दिया है । एक एक अध्याय दुर्लभ मोती के समान है और पूरी पुस्तक एक नायाब माला ।

Dr. Amit (B.A., Compt Engg., DNYS)Delhi

* आरोग्य आपका पुस्तक- 1. स्वास्थ्य तत्व का भंडार है 2. स्वास्थ्य के मर्म की जिज्ञासा रखने वाले व्यक्तियों के लिये अत्यन्त उपयोगी है । 3. आरोग्य के लिये स्वावलम्बी पद्धतियों की जानकारी व स्वयं को स्वस्थ रखने की प्रभावशाली विधि बतलाने वाली है । 4. रोग ग्रस्त व तनावयुक्त मानव का मार्गदर्शक है । यह पुस्तक उस ज्योति स्तम्भ के समान है। जिससे स्वस्थ होकर मानव अपना आरोग्य का लक्ष्य निर्धारित कर लंबे समय तक आसानी से जीवन जी सकता है। इस पुस्तक में मौलिक, आध्यात्मिक तथा तर्कसंगत दृष्टांतों से प्रस्तुतिकरण किया गया है। स्वास्थ्य के क्षेत्र में यह पुस्तक प्रकाश स्तंभ का कार्य करेगी।

श्री प्रेमचंद उत्तमचंद बरडिया (B.Sc. (Hons.) D. Pharmacy रींग रोड, जलगांव 425001

* आरोग्य आपका में जैन साधुओं के अहिंसा व्रत को भी बाधा न पहुंचे वैसे अनेक प्रभावशाली उपचार बताये हैं। अगर इस पुस्तक का विश्वस्तर पर अनेक भाषाओं में अनुवाद कर प्रचार किया जाय तो आज की पश्चिमी एलोपेथी चिकित्सा जगत से विश्व में तहलका मच जाये। आधुनिक चिकित्सा में बहुत बड़ा भूकंप आ जाये। मुनिराज श्री जंबूविजयजी के प्रशिष्य मुनि पुंडरीक रत्न जी, अहमदाबाद

* आरोग्य आपका पुस्तक चिकित्सा के मूल सिद्धान्तों पर आधारित है, जिसमें चिकित्सा से ज्यादा रोग के सही निदान पर जोर दिया गया है। उपचार किसी भी पद्धति से हो, परन्तु निदान सही होना चाहिये। स्वावलम्बी चिकित्सा पद्धति ही श्रेष्ठ पद्धति है।

डॉ. चैनसिंह चौहान, (प्राकृतिक चिकित्सक, B.A.,LL.B.)ग्रा.पो.पो. सिनला, मा. जंक्शन, जिला पाली (राज.)

* आरोग्य आपका पुस्तक हर घर में पहुंच कर हर मानव के दिल में समा जाये। जिससे हमारा राष्ट्र तन, मन व आत्मा से स्वस्थ नागरिकों को पाकर अपने को गौरवान्वित हो सके। **हरिपाल सिंह तौमर** (प्रभारी प्राकृतिक योग प्रशि. संस्थान गीता पुरम) बरेली (उ.प्र.)

* स्वयं की स्वयं से मुलाकात कराने का एक अच्छा प्रयास है 'आरोग्य आपका'। शरीर और रोगों का इतना विस्तृत विश्लेषण, उस पर विज्ञान और अध्यात्म का मिलन करने वाली ये चिकित्सा पद्धतियां अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। हम सभी इन स्वावलम्बी चिकित्साओं के प्रभावों से अभिभूत है। **कु. शीतल जैन** (एम.ए. (जीवन विज्ञान), 82, छोटा चौक, शाजापुर (म.प्र.) 465001

* आरोग्य आपका पुस्तक का मनोयोग से यदि अध्ययन किया जाये तो अध्येता स्वयं को योग्य चिकित्सक समझने लगता है, यह इस पुस्तक का विषयवस्तु एवं भाषा-शैली का ही चमत्कार है। आरोग्य आपका कृति मात्र अच्छे सिद्धान्तों को ही नहीं संजोये हुए है अपितु प्रयोगों के चमत्कार दिखलाने में भी लाजवाब है। अहिंसात्मक चिकित्सा पद्धतियों को बतलाने के कारण मेरे लिये तो आरोग्य आपका पुस्तक आगमों की तरह शिरोधार्य है, क्योंकि इसमें प्राणिमात्र को अभयदान देने की कला सिखाई गई है - दूसरों को पीड़ित करके हम कैसे पीड़ा मुक्त हो सकते हैं। यथा नाम तथा गुण कहावत को चरितार्थ करने वाली आरोग्य आपका पुस्तक घर के वैद्य का काम करती हुई सर्वजनोपयोगी है, ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है।

Dr. Surendra Kumar Jain, (B.Ed., Ph.D.) M.A. Sanskrit Hindi, Jain Darshan, Ladnun

* मैं इसे पुस्तक नहीं अनुभव शास्त्र मानता हूं। इसमें अनुभवगम्य अहिंसक चिकित्साओं को मानव कल्याण हेतु लिपिबद्ध किया गया है। व्यक्ति जन्म से लेकर मृत्यु तक नाना प्रकारों से शोषित होता है। उसमें सबसे ज्यादा शोषित वह आधुनिक चिकित्सकों व उनकी चिकित्सा प्रणालियों से होता है, जो इलाज नहीं रोगी को क्षणिक राहत का आभास देती है। यह ऐसा मीठा जहर है जो धन और स्वास्थ्य दोनों की हानि करता है, परन्तु फिर भी व्यक्ति जीवन भर अज्ञानवश उसके पीछे मृगतृष्णा की तरह भागता रहता है।

चोरडिया साहब ने इस सत्य को पहचाना और मौलिक, सहज सरल, अहिंसक व स्वावलम्बी चिकित्सा पद्धतियों द्वारा विभिन्न रोगों के इलाज को स्वयं के अनुभव द्वारा लिपिबद्ध किया। जिसको नाम दिया **"आरोग्य आपका"** जो उजागर करता है आपकी निष्पृहता को - यानि मेरा कुछ नहीं, यह आपका है आपको समर्पित। यह एक भागीरथी प्रयास था जिसको आपने अपने अदम्य साहस, प्रतिभा व धुन के द्वारा पूर्ण किया। यह शास्त्र चिकित्सा के क्षेत्र में एक प्रकाश स्तम्भ का कार्य करेगा ऐसी मेरी धारणा है। मेरा समस्त स्वयं सेवी संस्थाओं और चिकित्सा से जुड़े सेवा संस्थानों तथा विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों में संलग्न चिकित्सकों एवं रोगियों से विनम्र अनुरोध है कि वे आरोग्य आपका स्वयं अध्ययन कर लाभ उठाये तथा इसको जन जन तक पहुंचाने में अपने समय, श्रम और साधनों का सदुपयोग करें। पुस्तक को स्वास्थ्य शिक्षा के अध्ययन में सम्मिलित किया जाना चाहिए, क्योंकि पुस्तक सभी वर्ग के लिए बहुत अधिक उपयोगी है।

रमेश मेहता, चीफ मैनेजर फाईनेंस, ओएनजीसी, शिव सागर, आसाम

* आरोग्य आपका पुस्तक निश्चय ही स्वावलम्बी चिकित्सा पद्धतियों की अमूल्य थाती है। पुस्तक को पढने, सीखने और समझने के बाद निरन्तर अभ्यास करने से निश्चित ही स्वावलम्बी चिकित्सा उपचार से पारंगत हुआ जा सकता है। पुस्तक जन साधारण में स्वावलम्बी चिकित्साओं के प्रति फैली भ्रामक धारणाओं को दूर कर स्वास्थ्य के प्रति आत्म विश्वास पैदा करती है। हर किसी को स्वयं के स्वास्थ्य के बारे में पारंगत बनाने की सरल निर्देशिका है। पुस्तक व्यक्ति को पूर्ण चिकित्सक बनाने में सक्षम है। पुस्तक पठनीय और

संग्रहणीय है। मेरा दृढ विश्वास है कि यह पुस्तक मौलिक चिकित्सा के क्षेत्र में मील का पत्थर साबित होगी। यह घर घर की शोभा बनकर मौलिक चिकित्सा को देश के कोने कोने में फैलाकर गरीब मानवता की सेवा का मार्ग प्रशस्त करेगी।

लालचन्द गोलेच्छा, (प्रिंसीपल पालिटेक्निक कालेज से.नि.), मोती चौक, जोधपुर

* आरोग्य आपका महज एक पुस्तक ही नही वरन् स्वास्थ्य और आरोग्य पर उपलब्ध वर्तमान साहित्य की अंखला में एक मील का पत्थर है। वर्षो तक अध्ययन, चिंतन, एवं स्वानुभूति पर आधारित यह ग्रन्थ आरोग्य के सभी पहलुओं पर ठोस व प्रमाणिक जानकारी उपलब्ध कराता है। सामान्यतः स्वास्थ्य के संदर्भ में हमारा दृष्टिकोण भौतिक मानव शरीर तक ही सीमित रहता है, किन्तु डॉ चोरडिया जी ने शरीर मन व आत्मा की त्रिपुटि को दृष्टीगोचर कर एक सर्वांगिण एवं समग्र ग्रंथ की रचना की है।

डॉ. महेन्द्र भंडारी (LL.M. Ph.D.) H-46, एसोसियेट प्रोफेसर कानून विभाग, जे.एन.वी., विश्व विद्यालय, शास्त्रीनगर, जोधपुर

* जो व्यक्ति 'आरोग्य आपका' ग्रन्थ का मनोयोग पूर्वक अध्ययन कर लेगा उसकी बहुत सी व्याधियां तो मात्र अध्ययन कर लेने से ही दूर हो जायेगी, क्योंकि लेखक ने जनकल्याण की भावना से जो अनुभवपूर्ण चिन्तन ग्रन्थ में संजोया है, वह अवश्य ही तन मन दोनों को प्रभावित करेगा। ग्रन्थ में अनेक ऐसी स्वावलम्बी सरल चिकित्सा पद्धतियों का उल्लेख है जिन्हे अपनाकर व्यक्ति अपने शारीरिक मानसिक रोगों से भी सहज ही मुक्ति पा सकता है। बाजार में सभी चिकित्सा पद्धतियों पर अनेक पुस्तकें उपलब्ध हैं, जिनमें चिकित्सा के अच्छे प्रभावी उपायों का वर्णन है। परन्तु प्रायः उनके लेखकों ने उन्हे इस प्रकार प्रस्तुत किया है, जैसे वर्तमान में वही चिकित्सा पद्धति सर्व श्रेष्ठ है। जबकि आरोग्य आपका में लेखक ने किसी भी पद्धति पर ऐसा दावा नहीं किया। उन्होने निष्पक्ष भाव से सभी पद्धतियों का शास्त्रोक्त आधार पर सटीक वर्णन किया है और किसे कौन सी पद्धति उपयोगी लगती है यह उपयोग करने वालों पर छोड़ दिया है।

निर्मल जैन, (स्वाध्यायी-साधक), सुषमा प्रेस परिसर, सतना (म.प्र.)

* मैंने इस पुस्तक को पढने के पश्चात् मेथी से दर्द में आराम पाया, चैतन्य चिकित्सा से आलस्य (रोगों की जड़) को मिटाया, शिवाम्बु से सौन्दर्य (चर्म रोग मुक्ति) पायी। भोजन-पानी के सही तरीकों से वजन घटाकर रक्तचाप में आराम पाया। यह पुस्तक सम्पूर्ण स्वास्थ्य प्रदान करने में काया कल्प करने की सामर्थ्य रखती है। विजातीय तत्त्वों को हटाकर स्वस्थ रहने की कला इस पुस्तक का आभूषण है। मानव शरीर किसी भी अनुकूल प्रतिकूल परिस्थिति में स्वयं सहन करने की क्षमता वाला है, यह विश्वास जगाना इस पुस्तक की अमूल्य देन है, ऐसा मैं मानती हूं। पुस्तक का प्रचार प्रसार कर व्यक्ति, समाज, राष्ट्र, विश्व को अनेक समस्याओं से बचाया जा सकता है।

डॉ. श्रीमती सुषमा सिंघवी (M.A., Ph.d.) निदेशक भगवान महावीर खुला विश्वविद्यालय, जयपुर

* आरोग्य आपका के अनुसार मानव शरीर अपने आप में परिपूर्ण है। वह किसी भी अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थितियों में स्वयं को स्वस्थ रखने की क्षमता रखता है। आरोग्य आपका पुस्तक को पढकर मैंने निम्न प्रयोग किये हैं। पृष्ठ 165 पर दिये चित्र स. 57 के अनुसार चुम्बक लगा रही हूं जिससे रक्त चाप नोर्मल रहता है व लोसर गोली छूट गयी है। अंगूठे पर मेथी लगाते ही आधे घंटे में सिर दर्द ठीक हुआ एवं नींद आ जाती है। उषापान नियमित तौर पर कर रही हूं जिससे स्फूर्ति महसूस करती हूँ। हास्य चिकित्सा भी कर रही हूँ जिससे कुछ हल्कापन महसूस करती हूँ। सूर्य दर्शन मैंने प्रतिदिन 5 सैकण्ड से शुरू कर 15 सैकण्ड तक उगते हुये सूर्य का दर्शन करने का प्रयोग किया जिससे मुझमें उत्साह का संचार हुआ तथा डिप्रेशन व तनाव में कमी आयी एवं शरीर में हल्कापन व स्फूर्ति महसूस करने लगी। सुश्री शकुन्तला गहलोत (एम.ए.-दर्शनशास्त्र, एम.ए.-हिन्दी, बी.एड., एम.एड.), पाली बाजार, महामंदिर, जोधपुर

* आरोग्य आपका पुस्तक को सम्पूर्ण स्वास्थ्य व अध्यात्म का ग्रन्थ कह दिया जाय तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। प्रस्तुत पुस्तक में प्रारम्भ से अन्त तक प्रत्येक पृष्ठ पर नया ज्ञान वैज्ञानिक आधार सहित प्राप्त होता है। स्वयं स्वस्थ रहने के साथ साथ परिवार व सैंकडों रोगियों को इन चिकित्सा पद्धतियों के माध्यम से स्वस्थता प्रदान करने का अवसर मुझे प्राप्त हुआ है। लेकिन आरोग्य आपका पुस्तक की परीक्षा के बाद तो ऐसा लगा कि जो कमी मुझमें रह गयी थी, जिस ज्ञान से मैं वंचित रह गयी थी वह पूर्ण हो रही है।

आरोग्य आपका - रोगी को नीरोगी बना सकता है, आरोग्य आपका - भोगी को त्यागी बना सकता है।

लेखक ने दिया है ऐसा अविरल इसमें ज्ञान, आरोग्य आपका रागी को वीतरागी बना सकता है श्रीमती स्नेहलता चौपडा,

(प्रान्तीय अध्यक्षा महिला शाखा, अ.भा. एस.एस. जैन कांफ्रेस) 27/6, आदर्श सोसायटी, शास्त्रीनगर, जोधपुर

* डॉ. चोरडिया जी ने आरोग्य आपका ग्रंथ द्वारा इस विश्वास को दृढता के साथ प्रस्तुत किया है कि व्यक्ति स्वावलंबी चिकित्सा पद्धतियों के द्वारा बिना किसी औषधि व बिना किसी चीरफाड़ के स्वस्थ रह सकता है। विभिन्न प्रकार की चिकित्साओं के द्वारा मानव शरीर को कैसे निरोग रखा जा सकता है या रोग मुक्त किया जा सकता है? इसका पूरा ज्ञान इस ग्रंथ में समाविष्ट किया है। श्री चोरडिया जी ने यह पुस्तक लिखकर पाठकों को एक ऐसा अनमोल उपहार दिया है, जिसके द्वारा स्वयं स्वस्थ रहते हुये परिवार को भी स्वस्थ रखा जा सकता है। जयवंत भाई पी. शाह, बी.ई. सिविल, रिलायन्स टाउनशिप के पास, पीपलोद सूरत (गुज.)

* श्री चंचलमल चोरडिया जी ने स्वावलंबी चिकित्सा-पद्धतियों के साथ साथ महावीर का स्वास्थ्य दर्शन, मस्तिष्क-शोधन, चैतन्य

चिकित्सा, भोजन और स्वास्थ्य, जल और स्वास्थ्य, खिंचाव चिकित्सा, मेथी चिकित्सा, शिवाम्बु चिकित्सा आदि अनेकानेक मणियों द्वारा अभूतपूर्व माला का निर्माण कर आरोग्य आपका नामक पुस्तक की रचना की, जिसका की अभाव खल रहा था। यह अनमोल हीरा है और दुर्लभ हीरों में एक है। भाग्यशाली व्यक्ति ही इस अनमोल हीरे को प्राप्त कर फूला नहीं समायेगा। इस पुस्तक में अपार अनुभूत उपचारों का खजाना - पाठकों ,चिकित्सकों को देकर परोपकारी, निस्वार्थ भाव का प्रदर्शन किया है। यह बेश कीमती खजाना पाकर भावी पीढ़िया इसे रामायण, गीता के समान संजोये रखेगी। ऐसा मेरा दृढ विश्वास है। प्रत्येक व्यक्ति द्वारा यह पढी जानी चाहिये तभी इसकी उपयोगिता का अहसास होगा।

हर चरण दास छाबड़ा (B.E.Mech.), 3-क-4, पवनपुरी, बीकानेर

* आज समस्त मानव जीवन दवाओं के हानिकारक दुष्प्रभावों से आक्रान्त और जकड़ा हुआ है। गलत धारणाओं के कारण हम नारकिय जीवन जीने के लिये बाध्य हैं। ऐसे समय में इस पुस्तक का प्रकाशन होना संजीवनी शक्ति के समान है। इस पुस्तक के अध्ययन अनुशीलन से मानव समाज अवश्य लाभान्वित होगा।

आर.के. कुमार (B.Sc., Diploma in Elect. Engg.)कोरबा (छ.ग.)

* आरोग्य आपका पुस्तक के माध्यम से यह समझाने का प्रयास किया गया है कि यदि व्यक्ति में इच्छा शक्ति हो तो उसका आरोग्य स्वास्थ्य स्वयं उसके पास है। अतः पुस्तक का विषय अपने आप में परिपूर्णता को इंगित करता है। पुस्तक के माध्यम से पाठक वर्ग में यह आत्म विश्वास जागा है कि स्वास्थ्य के सामान्य नियमों की जानकारी रखने वाला सजग, विवेकवान, चिंतनशील व्यक्ति प्रकृति के साथ सहयोग करते हुये स्वस्थ जीवन जी सकता है।

महेन्द्र प्रताप चौधरी (एम.ई. सिविल इंजीनियरिंग), 9A, पंचवटी कॉलोनी, रातानाडा, जोधपुर

* आरोग्य के बारे में हजारों किताबे हम पढ चुके हैं लेकिन आरोग्य आपका पुस्तक में आरोग्य के बारे में विविध चिकित्सा एवं जटिल विषय को सरल ढंग से प्ररूपित कर आपने हमें प्रभावित किया। यह पुस्तक सहज, सरल और सस्ती होने के साथ साथ घरेलू चिकित्सक का काम भी करती है। व्यक्ति स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता दिखाये तो बिना दवा और महंगे इलाज के भी स्वस्थ रह सकता है और अपने परिवार को भी स्वस्थ रख सकता है। आपकी पुस्तक लोह चुम्बक की तरह हमें अपनी तरफ खिंचती रही और यह पुस्तक हर एक मानव को अँधेरे में दीपक का काम करती है। आपके ज्ञान से चिकित्साओं द्वारा मानव शरीर को कैसे निरोग रखा जा सकता है, का पूरा ज्ञान आपने इस ग्रन्थ में समावेश किया है। मैं चाहती हूँ कि यह पुस्तक देश-विदेश के हर घर और हर परिवार में होना चाहिये और हर मानव को यह पुस्तक अध्ययन करके लाभ उठाना चाहिये, क्योंकि यह अनमोल पुस्तक हर व्यक्ति व परिवार के लिये आवश्यक और बहुपयोगी है।

Sunita d/o Kishore Kumar, Saidapur, Distt. Gulbarga (K.A.)

* आज की हिंसात्मक, खर्चीली, जटिल व चिकित्सकों के द्वारा व्यापार बना दी गई आधुनिक चिकित्सा पद्धति के समक्ष आरोग्य आपका पुस्तक में वर्णित चिकित्सा पद्धतियां अहिंसात्मक, मितव्ययी व सहज सरल होने के साथ साथ स्वावलम्बी भी है। ये उपचार अधिक प्रभावशाली व स्थायी होते हैं। आरोग्य आपका एक ऐसी पुस्तक है जो पाठक को स्वचिंतन व मनन करने के लिये प्रेरित करती है तथा आधुनिक व मशीनी चिकित्सा की भूल भूलैया से बाहर निकाल कर बगैर दवा के स्वयं को रोगमुक्त करना व रोगमुक्त रखना दोनों ही बाते सीखाती है। मुझे यह पुस्तक स्वास्थ्य के क्षेत्र में ऐसे दिवाकर के समान प्रतीत होती है कि जो अपने आलोक से तनावग्रस्त व रोगग्रस्त मनुष्यों के जीवन में फैले अंधकार को मिटाने में सक्षम है। जनसाधारण को स्वास्थ्य के प्रति सजग रखने वाली एक उपयोगी व संग्रहणीय पुस्तक है।

श्रीमती भारती पोरवाल (M.A.,M.Phil Eng.) 74, जावरा कम्पाउण्ड, इन्दौर, (म.प्र.)

* आरोग्य आपका में लिखी हर पंक्तियाँ हर बार पुनः पुनः नयी शक्ति व नई ऊर्जा का संचार करती है। हर पंक्ति को पढकर लगा ये बात लाख रुपये की, ये बात करोड़ रूपये की। हमारी मानसिकता को पुष्ट करने वाली जीवन को सही राह पर चलाने वाली चाबी है, आरोग्य आपका पुस्तक।

श्रीमती सुधा जैन (M.A. B.Ed.) 23, त्रिमूर्तिनगर धार (म.प्र.)

* आरोग्य आपका पुस्तक के द्वारा चोरडियाजी ने जन मानस के स्वास्थ्य की चाबी उनके अपने हाथों में सौप दी है। लेखक ने इस पुस्तक द्वारा प्रत्येक व्यक्ति को चिकित्सक बनाने का प्रयास किया है। प्राकृतिक जीवन शैली पर जोर देते हुये, अप्राकृतिक जीवन शैली से होने वाले दुष्प्रभावों के बारे में खुलकर लिखा है।

सुनीता नाहटा (B.Sc.), 113-B, Manohar Das Katra, Kolkata 700007 (WB)

* आरोग्य आपका पुस्तक संजीवनी है, जिसे ग्रहण कर व्यक्ति अमर तो नहीं परन्तु आजीवन स्वस्थ तथा निरोगी रह सकता है। डॉ. चोरडिया जी ने एक विशाल समुद्र को एक घड़े में भरने जैसा साहसिक प्रयास आरोग्य आपका पुस्तक द्वारा किया है। इस पुस्तक को पढकर मुझे ऐसा लग रहा है मानों मैं खुद एक डाक्टर बन गई हूँ। इसमें जीवन का रहस्य छुपा हुआ है, जो व्यक्ति इसका जितना उपयोग करेगा वह उतना गरिमामयी व्यक्तित्व को प्राप्त करेगा।

सुश्री ममता जैन, चौमाला, झालावाड 326575

* यह पुस्तक केवल चखने के लिये या गोली की तरह निगलने के लिये नहीं है अपितु अच्छी तरह चबा चबाकर खाने के पश्चात पचाने के लिये है। अर्थात शुरू से अन्त तक पढकर जीवन में उतारने के लिये है। सचमुच इस खजाने को पढकर एक अद्भूत प्रेरणा तथा

उत्साह मिलता है।

सुमत चन्द जैन s/o श्री प्रेमचन्द जैन (M.A.) हिण्डोन सिटी, जिला करौली (राज.)

* उपचार की सही समझ के बिना हर छोटी बात के लिये डाक्टर की आवश्यकता होती है। इस पुस्तक की सहायता से हम घर बैठे कम खर्च में बहुत ही शीघ्र बीमारी का समाधान कर सकते हैं। इसमें उपचार करने का एक ही ढंग नहीं बताया गया है बल्कि एक ही रोग को ठीक करने के अनेक तरीके बताये गये हैं, जिससे व्यक्ति अपनी इच्छानुसार अपनी बिमारी का निवारण कर सकता है। इसको पढने के बाद ऐसा लगता है कि हमें Normally डॉ. के पास जाने की जरूरत नहीं है। हम बिना डिग्री के अच्छे डाक्टर कहला सकते हैं।

श्रीमती संगीता सामसुखा जैन (M.Com.) मूलजी की चौकी, सिवान्ची गेट के अन्दर, जोधपुर

* आरोग्य आपका पुस्तक में आपने बिंदू में सिंधू समाने का अथक प्रयास किया है। हमारी बुद्धि पर आरोग्य के अज्ञान का जंग लग था उसे आपके अनोखे प्रयास ने Polish Paper का काम किया है। गोता खोर समुद्र में मोती जैसे निकालने के लिये बार बार गोत लगाता है उसी प्रकार आपके प्रश्नों के समाधान रूप मोती पाने के लिये हमने भी इस पुस्तक का अध्ययन किया। हमने जितनी बार इसको पढा उतनी बार हमे उसमें कुछ नयापन लगा। इस किताब ने तो मानो जैसे हृदय पटल पर गहरा प्रभाव जमा दिया।

श्रीमती चारूलता मुथा, 28, बन्सिलाल नगर, रेलवे स्टेशन रोड औरंगाबाद (महा.)

* किताब एक ही पढ़ी पर हजारों का खजाना मिला। पढते पढते जिज्ञासा बढ़ी। यह किताब एवं प्रतियोगिता अपने आप में अनोखी है। पुस्तक आज के समय की महत्ती आवश्यकता को पूरा करती है और इसी कारण इसे लेखक की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि व देन मानी जा सकती है। यह पुस्तक स्वास्थ्य के क्षेत्र में एक प्रकाश स्तम्भ का कार्य करेगी। यह पुस्तक एक अनमोल निधि है, जो युगों युगों तक त्रस्त मानव का पथ प्रदर्शन करती रहेगी।

कु. पूर्णिमा मेहता, (M.A.), गुमास्ता नगर, इन्दौर 452 001

* जैसे सूर्य के संपर्क में आने के बाद अंधकार नहीं रहता, वैसे ही इस पुस्तक को पढने के बाद झूठ बोलने का साहस नहीं मुझमें। सच यह है कि इसे पढने की शुरुआत इनाम की आशा में की थी परन्तु अंत आते आते लगने लगा कि मानों कोई पीतल ढूंढने जाय और उसे सोना मिल जाये या पत्थर चुगने जाय व उसे हीरे मिल जायें। ज्ञान का अथाह खजाना मिल गया है मुझे। अब भी कईयों की (जैसे पहले मेरी थी) धारणा है कि आधुनिक चिकित्सा विधि है एकमात्र सहारा है, पर पुस्तक पढने के बाद यह विपरीत हो गयी है। अब विश्वास हो गया है कि अनंत क्षमता पूर्ण शरीर खुद ही रोग मुक्त होने की क्षमता रखता है। मेरा समस्त शिक्षा संस्थान संचालकों से नम्र निवेदन है कि इस उत्तम पुस्तक को अपने पाठ्यक्रम में शामिल कर विद्यार्थियों को इसका उन्हें सैद्धान्तिक व्यवहारिक ज्ञान बचपन से ही प्रदान करें।

श्रीमती चम्पा जैन w/o Dr. एल.के. जैन, अग्रवालों की बगेची, जसवंत कालेज के पास, जोधपुर

* आरोग्य आपका पुस्तक ने तो वास्तव में हर घर एक कम्पाउन्डर का निर्माण तो कर ही दिया, है। साथ ही साथ उन्हें घर बैठे ही रोगों के निदान का भंडार भी उपलब्ध कराया है। इस पुस्तक में लिखित कम से कम 40 उपचारों का उपयोग हमने साकार रूप से किया है तथा उसका परिणाम भी नजर साक्षात आया है।

श्रीमती नीरू जैन (B.Com.), जयपुर (राज.)

* आरोग्य आपका हमे तरीका बता रही है कि कैसे हम दवा बनाने वाली कम्पनियों के चंगुल से बाहर निकले? पुस्तक से हमें एहसास होता है कि चिकित्सा की जिम्मेदारी दूसरों पर डालकर हम स्वास्थ्य की समस्या हल नहीं कर सकते। स्वस्थ रहने हेतु हमें अपनी जिम्मेदारी स्वयं उठानी पड़ेगी।

सलमान अर्शद (B.A., M.A., LL.B.) खदरा, लखनऊ (उ.प्र.)

* यह ग्रन्थ ऊर्जा प्राप्ति के नाम पर अंधाधुंध प्राकृतिक संसाधनों का दोहन, खाने में पौष्टिकता के नाम पर हिंसा, पेय पदार्थों में हानिकारक रसायनों का प्रयोग, असाध्य रोगों की महंगी दवाओं की उत्पादन विधि एवं उनके दुष्प्रभावों को सामने लाकर, हमारी इस जीवन - शैली, मान्यताओं, तथा कथित विकास के दृष्टिकोण को बदल देने में सक्षम है।

उम्मेद आर. शास्त्री, सेखाला जूनावास तह. शेरगढ, जिला जोधपुर

* ALL BOOKS CAN INFORM, BUT AAROGHYA AAPKA CAN REFORM

अतीत को संवारने वर्तमान को संजोने व भविष्य को सुधारने का प्रकाश पुंज है –आरोग्य आपका।

तन से पूर्व मन के इलाज की आराधना का बोधिस्तल है - आरोग्य आपका, मौलिक अस्तित्व से मौलिक शांति प्राप्ति का सेतू है - आरोग्य आपका, श्वांसों की विपश्यना का चिंतन कोष है –आरोग्य आपका, आत्म सत्ता को विराट के साथ जोड़ने का अभियान है –आरोग्य आपका, महकती हुई श्वासों का अनमोल खजाना है –आरोग्य आपका, व्यवधान में से ध्यान में रूपांतरित होने की राह है —आरोग्य आपका, सकारात्मक सद्चिंतन व सद्भावों का दिशा सूचक यंत्र है —आरोग्य आपका, गुणवत्ता पठनीयता व आरोग्यता का सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ है —आरोग्य आपका, मनन शीलों के लिए रोग मुक्ति के उपायों का गोदाम है —आरोग्य आपका, प्रमाद के कालुष्य व रोग के कोहरे को हटाने की ऊर्जा है — आरोग्य आपका, हिन्दुस्तान लीवर लिमिटेड जिसने कई हिन्दुस्तानियों के लीवर खराब किये हैं उनके मुंह पर करारा तमाचा है (सब सौंदर्य व दवा कंपनियों के) आरोग्य आपका

निर्मला संकलेचा (B.Com.) सिद्धार्थ पैलेस, 9&10, Vepery Church Road, 5-F, Vepery - 7 -0 Chennai -7

* आरोग्य आपका एक अनोखी, अमूल्य, अद्वितीय, अहिंसा के सन्दर्भों से पूर्ण, अनमोल, अति सरल तथा अनगिनत रूप से प्रभावशाली पुस्तक रूपी हीरा है। भोजन के विषय में आपके तर्क पूर्ण, अकाट्य विचारों से प्रभावित होकर मैंने रात्रि में भोजन करना त्याग दिया है। परिवार के सदस्यों को भी समझा रहा हूँ। औषधि रहित चिकित्सा में स्वावलम्बी और अहिंसा शब्दों को जोड़ कर इसे अति व्यापक तथा सारगर्भित बना दिया है। आपको इस क्षेत्र में शंकराचार्य बनना पड़ेगा। पूरे भारत में शंकराचार्य की भांति चार के स्थान पर दस केन्द्र बनाने पड़ेंगे। मैं अलीगढ में केन्द्र बनाने का इच्छुक हूँ।

डॉ. भगवानदास गुप्ता (Ret. Dean Agera University), अलीगढ़

* शारीरिक, मानसिक विकारों के साथ आध्यात्मिक प्रगति का भी रास्ता बतलाने वाली आरोग्य आपका पुस्तक इस युग के लिये अनोखा उपहार सिद्ध हो रही है। विज्ञान के बढते अन्वेषण होने के बावजूद भी विज्ञान बिमारीयों को दूर नहीं कर पाता है, वहां Side effect होने के कारण व्यक्ति एक बीमारी से अनके बीमारीयां बढा लेता है।

सौ.नयनतारा w/o **रतनलाल सी. बाफना, नयनतारा, सुभाष चौक, जलगांव**

* मई मास की दम घोर गर्म उष्मा से त्रस्त जन मानस को जिस प्रकार की राहत शीतल पवन के एक झोंके से प्राप्त होती है, दिसम्बर की कडकड़ाती ठंड में सूर्योदय के साथ चिलचिलाती धूप की रश्मियों से व्यक्ति को जो गर्माहट से सांत्वना मिलती है, उसी से मिलती जुलती राहत और सांत्वना, गलत और महंगे निदानों और ढेर सारी दवाइयों से त्रस्त, दवाईयों के दुष्परिणाम, चिकित्सकों की शोषक वृत्ति के चक्र व्यूह में फंसे रोग ग्रस्त रोगी को प्राप्त होती है - आरोग्य आपका यह ग्रंथ पढकर।

जैन धर्मावलम्बियों को जो आदर जिनवाणी या आगम वाणी के प्रति होता है, बौद्ध जिस श्रद्धा से त्रिपटिक के निर्देशों का पालन करते हैं, मुस्लिम जो सम्मान कुराण की आयतों को देते हैं, हिन्दुओं को जहां वेद, पुराण, रामायण और महाभारत की चौपाईयां में स्वर्ग की अनुभूति होती है, **एक रोगी के लिए वही कार्य आरोग्य आपका ग्रंथ करने में सक्षम है। परिपूर्ण है।**

अनुभूति और स्वानुभूति से अधिक कोई और प्रमाण नहीं हो सकता। स्वावंलबी चिकित्सा पद्धतियों के अलग अलग आयामों का अपने स्वयं पर प्रयोग कर स्वास्थ्य लाभ करने के पश्चात जन जन में उसका प्रचार व प्रसार करना पुस्तक का मूलाधार है।

एडवोकेट सुभाषचन्द्र संकलेचा, (B.Sc., LL.B.) **सुभाष मार्ग, श्याम लॉज के बाजू, जालना**

* आरोग्य आपका पुस्तक अपने आप में खरा सोना है। यह एक ऐसी सरल, स्वाभाविक, सस्ती, सर्वत्र, सभी समय सभी के लिये सुलभ पूर्ण, अहिंसक दुष्प्रभावों से रहित शरीर मन और आत्मा के विकारों को दूर करने में सहायक, प्रभावशाली, स्वावलम्बी, चिकित्सा पद्धतियों का संग्रह है। आरोग्य आपका में उन गूढ व सटीक दावे के साथ स्वावलम्बी चिकित्सा पद्धति, के प्रभाव तथा उसका पूर्ण शरीर के साथ मन और आत्मा को एक इकाई के रूप में चित्रण व वर्णन किया है, जिससे साधारण पढा लिखा व्यक्ति भी पढकर, मनन कर, उसका उपयोग कर, अपने आपको सुखी व स्वस्थ बना सकता है। **पुस्तक अपने आप में शारीरिक आत्मा का दर्पण है, यह पुस्तक नहीं एक तन्दुरुस्ती हजार नियामत का खजाना है। जीवन में शरीर का कोई अंग अछूता नहीं रहा, जिस पर आरोग्य आपका पुस्तक में चर्चा न हो**

शान्तिलाल जैन (एडवोकेट) B.Com., LL.B., **गोठ राणे खां, सराफा बाजार, ग्वालियर (म.प्र.) फोन** 2321632

हमारे पास जिन व्यक्तियों ने यह पुस्तक देखी उन्होंने पढी और बहुत से लोगों ने पढने की जिज्ञासा रखी। स्वर, मुद्रा और मेथी का प्रयोग मैं करता आया हूँ। इसमें विशेष विषय वस्तु हमें मिली और उसका हमने लाभ भी ले लिया। चतुर्दशी के दिन हमारा उपवास था। गर्मी उस दिन अधिक होने से हमे बेचैनी होने लगी। हम स्नान, तेल, लाइट आदि का उपयोग नहीं करते। हमने चन्द्र स्वर किया तो थोड़े ही समय में बेचैनी दूर हो गयी। इसी तरह एक दिन पेट मे बहुत दर्द होने लगा तो, अपान मुद्रा की तो जादू की तरह दर्द तुरन्त दूर हो गया।

बाल ब्रह्मचारी अजीत भैयाजी, दिगम्बर जैन पंचबालयति मंदिर, इन्दौर -10

* यह पुस्तक गागर में सागर है जिसमें अहिंसक स्वावलम्बी चिकित्सा पद्धतियों पर बल देकर रोगों के भय से मुक्त कर जीवन की ऊर्जा का बलवती बनाने का सशक्त प्रयास किया है। **रोगों का निदान एवं उपचार इतना सहज, सरल व सस्ता है कि प्रत्येक व्यक्ति इनका उपयोग बिना किसी सहयोग के कर सकता है।** इस किताब की विशेषता यह है कि चित्त, भाव, वाणी और शरीर का आपसी सम्बन्ध मनोवैज्ञानिक एवं आधुनिक जीवन शैली की दृष्टि से प्रस्तुत कर उपचार को व्यवहारिक बनाने का प्रयास किया है। इसके अलावा **लेखक ने विषय वस्तु को जिस अकाट्य व्यवहारिक उदाहरणों एवं निष्ठा के साथ प्रस्तुत किया है जिससे पाठकों को स्वत: उनका प्रयोग करने की इच्छा होगी और जब इच्छित परिणाम आयेंगे तो डाक्टर एवं अस्पतालों के चक्कर अपने आप कम हो जायेंगे।**

श्रीमती सुशीला बोहरा, (M.A., B.Ed.) **अध्यक्षा नेत्र हीन विकास संस्थान, अध्यक्षा - सम्यग् ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर**

* चोरडिया साहब के अपने जीवन भर के अनुभवों व ज्ञान का निचोड़ आरोग्य आपका पुस्तक में है। पुस्तक के माध्यम से, बहुत सरल व तर्क संगत दृष्टांतों से वर्णित कर, तनावग्रस्त ऐलोपैथिक के चक्रव्यूह में फंसे मानव के जीवन जीने के लिये, मार्गदर्शन का कार्य करेगी। आरोग्य आपका, शरीर, मन, आत्मा पर विजय पाने का संदेश देती है।

Dr. Bimla Bhandari, (Head of Department, Philosophy, JNVU), Sardarpura, Jodhpur

* डॉ. चंचलमल चोरडिया द्वारा रचित पुस्तक आरोग्य आपका स्वावलम्बी अहिंसक चिकित्सा की एक श्रेष्ठ व बहुत उपयोगी पुस्तक है। यह मनुष्य के लिये नीरोग रहने व रोग को ठीक करने के लिये निःशुल्क , बिना चिकित्सक एवं बिना दवाई के स्वस्थ होने का उपाय बताती है। प्रस्तुत पुस्तक में बताई गई विधि व दिनचर्या से प्रत्येक व्यक्ति हमेशा स्वस्थ रह सकता है।

गौतम चन्द जैन, जिला रसद अधिकारी, बूंदी, जिला बूंदी (राजस्थान)

* **जो व्यक्ति एक बार इस पुस्तक को मन लगाकर पढेगा तो उसे बार बार पढने की इच्छा जागृत होती रहेगी। इस पुस्तक में लेखक ने समुद्र मंथन के पश्चात प्राप्त अमृत प्राप्ति वाला कार्य किया है।** इसमें कोई शक या संशय नहीं है कि लेखक अपनी मेहनत एवं प्रतिभा के खिलाड़ी हैं एवं ज्ञान के सागर हैं। **इस पुस्तक का अध्ययन मनुष्य मात्र के लिये आवश्यक होकर स्कूली शिक्षा विभाग में इसे पाठ्यक्रम का भाग बनाकर पढाया जाना चाहिये।** **सुरेश कुमार धारीवाल** (M.Com.) 43 बजाज खाना, जावरा, जिला रतलाम (म.प्र.)

* **आरोग्य आपका** पुस्तक एक संचित निधि है, जिसके उपयोग से जीवन प्रतिपल आनन्द दायक बना रह सकता है। यह शरीर के साथ साथ मन, वाणी और आत्मा को स्वस्थ और स्वस्छ बनाये रखने का सशक्त माध्यम है। इसके सारे अध्याय मानों मोती चुनकर माला में पिरोये गये हों। **यह सेहत की सही राह दिखाने वाले कुशल, घरेलू डाक्टर के समान है। इससे परिवार के लिये डाक्टरों एवं अस्पतालों पर किये जाने वाले खर्च की बचत होगी। आरोग्य आपका पुस्तक खुद पढने और अन्य लोगों को पढाने योग्य है। अच्छा हो, इसे यदि प्राइमरी स्कूल से लेकर कालेज तक अनिवार्य पाठ्यक्रम में शामिल कर ली जाये।**

कौशल्या सिंघवी, Aminjikarai, Chennai 600029

* पुस्तक में चिकित्सा के साथ साथ सुस्वास्थ्य संबंधी पठनीय एवं संग्रहणीय सामग्री सुविज्ञ पाठकों के लिये प्रेरणादायक एवं बहुत लाभकारी सिद्ध हुई है। **यह पुस्तक देश के हर घर में होनी चाहिये और हर परिवार को इस पुस्तक से लाभ उठाना चाहिये। इस ग्रंथ को चिकित्सा का खजाना भी कहा जाये तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी।**

गणपतलाल मीणा (B.A. Final) **पढाना जिला व तहसील सवाई माधोपुर (राज.)**

* **आरोग्य आपका पुस्तक अंधकार में आशा की एक किरण है जो स्वास्थ्य सम्बन्धी मिथ्या धारणाओं को तिरोहित कर सच्चा मार्गदर्शन करती है।** यह ग्रन्थ चिकित्सा विज्ञान एवं अध्यात्म का सुन्दर समन्वय है। इस पुस्तक को पढने से हमे ज्ञात हुआ है कि कौनसी चिकित्सा पद्धति स्वावलम्बी , अहिंसक एवं मौलिक है। **स्वावलम्बी , मौलिक, प्राकृतिक अहिंसक एवं प्रभावशाली चिकित्सा पद्धतियों के प्रचार प्रसार में यह ग्रन्थ नये आयाम स्थापित कर ऐलोपैथी चिकित्सा के चक्रव्यूह में फंसे व्यक्तियों के लिये नवीन संदेश देती है तथा निरन्तर स्वस्थ बने रहने के लिये अमूल्य सूत्र हमें प्रदान करती है।** यह पुस्तक एक घरेलू चिकित्सक का कार्य करेगी ।

त्रिलोकचन्द जैन (M.Sc.,M.A., B.Ed.) **सवाई माधोपुर (राज.)**

* **आरोग्य आपका से रोगी को पूरी तरह से स्वस्थ करने का खजाना मिल गया। मैं बहुत खुश हूं कि आपके स्वावलम्बी चिकित्सा से हमको नई, नई बाते सीखने को मिली। यह बहुत ही प्रभावशाली, अहिंसात्मक चिकित्सा पद्धतियां हैं।** अगर हमारा समाज आपके द्वारा बताई हुई सहज, सरल, सस्ती एवं प्रभावशाली स्वावलंबी चिकित्सा का प्रयोग अपने दैनिक जीवन में करें तो वह दिन दूर नहीं जब पूरा हिन्दुस्तान कहेगा मेरा भारत महान। मैं हूँ स्वस्थ एवं बलवान। **सौ. सुषमा प्रदिप खाबिया** (D.H.M.S.), **पुणे (महा.)**

* **नदी के बहाव की दिशा में या पवन की दिशा के साथ चलना सहज होता है परन्तु बहाव के विपरित तैरना और न केवल बहाव के विपरीत चलना बल्कि जन समूह को अपनी सोच व चिन्तन व दिशा बदलने को बाध्य कर देने वाले विरले ही होते हैं।** आरोग्य आपका पुस्तक में अहिंसात्मक पद्धति को अपनाकर निरोगी रहने का अनुपम खजाना बताया है। आरोग्य आपका ऐसा ग्रंथ है, जो भारत भर के हर घर में होनी चाहिये। **श्रीमती सूरज बोहरा** (B.A.), **अध्यापिका**, टाटियों की पोल के सामने, सिंहपोल, जोधपुर

* **मैं अपने आपको अति सौभाग्यशाली मानता हूँ कि मुझे आरोग्य आपका ग्रन्थ पढने को मिला। सोचता हूँ, 74 वर्ष की आयु से पूर्व यह ग्रन्थ पढने को मिलता तो न केवल मुझे, अपितु पूरे परिवार, पड़ोसियों, जहां रहता वहां के गांव नगर निवासियों को यथा शक्य सत्य परामर्श दे लाभान्वित करता।** **दीनदयाल ओझा (प्रभाकर साहित्य रत्न)** , साहित्य साधना सदन, केला पाडा, जैसलमेर (राज.)

* **आरोग्य आपका पुस्तक नहीं जीवन का दर्पण है जिसमें हम हमारे स्वास्थ्य पर होने वाले दुष्प्रभावों को अच्छी तरह देखकर, समझकर जानकर सोच समझकर विवेक पूर्वक रोगों का निदान, उपचार कर सकते हैं।** आरोग्य आपका ध्रुव तारा है। जिस तरह भटका हुआ राही ध्रुव तारे को देखकर दिशा को जान लेता है और अपनी मंजिल पर पहुंच जाता है उसी प्रकार इस पुस्तक में भी कई असाध्य रोगों का निवारण हल और समाधान लिखा है। **श्रीमती रेखा मेहता** w/o **श्रीमान दिनेश मेहता, मदनगंज, किशनगढ (राज.) (अजमेर)**

* **जिस तरह प्रत्येक धर्म प्रेमी के पास अपना धर्म ग्रन्थ होता है उसी प्रकार प्रत्येक स्वास्थ्य इच्छुक व्यक्ति के पास आरोग्य आपका ग्रन्थ होना चाहिये। चोरडिया जी के दिमाग की दाद देनी होगी जिन्होंने ऐसे प्रश्न बनाये कि एक एक पृष्ठ को सूक्ष्मता से पढे बिना उनका हल**

न निकल पाये। एक पंथ दो काज की कहावत से आगे कहूं कि एक पंथ चार काज पूरे हुए। 1. निरोगता 2. पापों से बचत 3. तप संयम - निर्जरा 4. पैसे की बचत

श्रीमती चंचल गोलेच्छा (M.A.) न्यू सांगानेर रोड, सोडाला, जयपुर

* मै अपना सोभाग्य समझूंगी कि मुझे आरोग्य आपका नामक पुस्तक पढने का गौरव प्राप्त हुआ। यदि दुर्भाग्यवश यह पुस्तक पढने का सौभाग्य न मिला होता तो शायद, जीवन के एक अलौकिक, सुन्दर, मन भावन अनुभव से मैं वंचित रह जाती। शिवाम्बु ऐसा टानिक है जिसमे व्यक्ति को यह नही सोचना पड़ता कि दो वक्त का भोजन घर में नही है, टानिक लाने के लिये पैसे कहां से आएंगे ? और मेथी उस स्क्रेच कार्ड के समान है जिसे जितनी ज्यादा उपयोग में लेंगे उतने ही ज्यादा हमे गारंटी उपहार मिलेंगे। आरोग्य आपका पुस्तक में इतनी ज्ञानवर्द्धक एवं मार्गदर्शक बाते बताई गई है जिसमें खोने के लिये कुछ भी नही है केवल पाना ही पाना है। इसलिये देश के प्रत्येक नागरिक को यह पुस्तक पढ़नी ही चाहिये।

शशी भंसाली, (M.A., B.Ed., M.Phil.), मनिहारों की हवेली के पास, कबूतरों का चौक, जोधपुर

* पुस्तक बाजार में उपलब्ध अन्य पुस्तकों से भिन्न हैं और निरोगी रहने की जानकारी भी परिपूर्ण है। स्वास्थ्य की विधाओं का वर्णन वास्तव में अद्भुत है जो अन्यत्र कही पढने को नहीं मिलता। पुस्तक की भाषा बहुत सरल, प्रभावशाली और रोचक है। अतः इसको बार बार पढने का मन करता है। यह पुस्तक चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में तर्क संगत व मार्गदर्शक ग्रन्थ है।

रामस्वरूप प्रजापत, (M.Com., M.Ed., MA, PGDPM), माउन्ट आबू (राज.)

* मैंने यह पुस्तक सिर्फ प्रतियोगिता में हिस्सा लेने के लिए पढी लेकिन जैसे जैसे इस पुस्तक को पढती गयी और जितनी बार पढा हर बार नयी नयी जानकारी मिलीं। मेरे आश्चर्य का पार न रहा कि क्या बिना दवा के ऐसी ऐसी बीमारियों का उपचार भी हो सकता है, वो भी घर बैठे। उसमें डाक्टर का कार्य किया है आपके आरोग्य ने। आपकी इस पुस्तक से व्यक्ति स्वयं तो स्वस्थ रह ही सकता है, साथ ही अपने परिवार को भी स्वस्थ रख सकता है।

मोनिका टाटिया, राजनंद गांव, (छ.ग.)

* आरोग्य आपका पुस्तक स्वास्थ्य के खजाने का एक विशाल सागर है। इस सागर में जितनी बार डुबकी लगाई उतनी बार मुझे स्वास्थ्य के खजाने से नये और अनमोल मोती प्राप्त हुए। आरोग्य आपका पढ़कर मन में प्रेम व श्रद्धा से कुछ विचार उत्पन्न हुए हैं, जिन्हें कविता का रूप देकर प्रस्तुत कर रहा हूँ-

आरोग्य आपका पढ़ने से पूर्व हालात कुछ ऐसे थे:-	आरोग्य आपका पढ़ने के पश्चात हालात कुछ यू बदल गये	और अब तो हर व्यक्ति से मेरी यही गुजारिश है कि:-
पढा नहीं आरोग्य आपका-2	जबसे पढ़ी आरोग्य आपका-2	पढ़ो सभी आरोग्य आपका-2
डॉक्टर रोज-रोज घर आये,	अब ना कोई रोग सतावे,	इसकी हर पंक्ति में निदान,
जाने कितने रोग बताये।	ना मेडिकल का बिल आवे।	इसकी हर पंक्ति में ज्ञान।
वैद्यराज कुछ ओर ही कहते,	जिस डाक्टर को याद था ऐड्स,	हर पक्ति में लक्ष्य का भान,
ज्योतिषि कहता फल है पाप का ॥	भूल गया वो नाम आपका ॥	हर पंक्ति है राज,स्वास्थ्य का ॥
पढी नहीं आरोग्य आपका -2	जबसे पढ़ी आरोग्य आपका-2	पढ़ो सभी आरोग्य आपका-2

नितिन व्यास, नागोरी गेट, जोधपुर

* जो पुस्तक पढेगा —**आरोग्य आपका,**
इस कृति को पढकर मन वचन काय योग से,
स्वास्थ्य का आधार —**आरोग्य आपका**
चोरडिया जी का उपहार— **आरोग्य आपका**
मिटाती है विकार —**आरोग्य आपका**
सच्चे जीवन का सार —**आरोग्य आपका।**

उसको सम्पूर्ण ज्ञान होगा —**अपने स्वास्थ्य विज्ञान का** ।
निश्चित बह पायेगा,—**मुक्ति अपने रोग से,**
जीवन का संस्कार —**आरोग्य आपका**
समग्र चिकित्साओं का सार —**आरोग्य आपका**
रोगों का करें संहार —**आरोग्य आपका**

प्रकाश सालेचा, (एम.ए., बी.एड.) स्वाध्याय संघ, घोडों का चौक, जोधपुर

* आरोग्य आपका पुस्तक का पूरा अध्ययन करने वाले डाक्टरों के पास कतार में खड़े होकर,फीस देकर,इन्तजार करना भूल जायेंगे तथा स्वस्थ एवं निरोगी रहेंगे। अतः, मेरा समस्त भारतीयों से अनुरोध है कि वे प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली, औषधि विहीन चिकित्सा का

सहारा लेकर स्वयं तथा परिवार को खुशहाल बनाये व अपने मुहल्लों में, पड़ोस में भी इसका प्रचार प्रसार कर जनहित में सहयोगी बने।

डॉ. बी.के.तिवारी 'आजाद', श्री श्री 1008 संत श्री राजू गिरी बाबा दिव्या आरोग्य मंदिर, धौलपुर (राज.)

* "आरोग्य आपका" पुस्तक, सहज व सरल भाषा में है। इसमें वैज्ञानिक तरीके से रोगों की विवेचना व विश्लेषण किया गया है। इसमें औषधि रहित चिकित्सा की सभी विधियां बताई गई है। जटिलतम विषय को सरल करके बताया गया है। इस पुस्तक में बताये गये उपचारों से किसी प्रकार का दुष्प्रभाव नहीं होता है। लेखक ने एक नया सोच दिया है। इसका भरपूर लाभ उठाया जा सकता हैं। इस पुस्तक के माध्यम से व्यक्ति आज के तनाव ग्रस्त जीवन में बिमारियों से छुटकारा पा सकता है। यह पुस्तक स्वावलंबी चिकित्सा पर आधारित है। **आज के परावलम्बी जीवन में व्यक्ति को स्वावलंबी बनाने का एक ही साधन मुझे नजर आता है। वह है आरोग्य आपका का अध्ययन। मेरा स्वयं का अनुभव इस पुस्तक के बारे में बहुत अच्छा है। मेरा रक्त चाप पिछले कई वर्षो से अधिक रहता था जो कि इस पुस्तक में बताई गयी बटन चुम्बक विधि द्वारा नियंत्रण में है।**

यह पुस्तक एलोपेथिक चिकित्सा को एक चुनौती है और श्री चोरडिया जी का यह प्रयास इस चिकित्सा को हरा कर रहेगा।

श्री अशोक कुमार गुप्ता (R.H.J.S.) B.Com., LL.B. **अपर जिला एवं सेशन न्यायाधीश, (फास्ट ट्रेक) सं. 5, भरतपुर**

* अखिल भारतीय स्वास्थ्य चेतना ज्ञान प्रतियोगिता के माध्यम से हमने भी आरोग्य आपका पुस्तक को कई बार एकाग्रचित होकर ध्यान से पढा। इतनी अच्छी पुस्तक को ध्यान से पढने का इससे अच्छा तरीका और कोई नहीं हो सकता था। **निश्चय ही इस पुस्तक को पढने के बाद व्यक्ति तनाव व भय से मुक्त होगा व स्वावलम्बी बनेगा। डाक्टरों के मनमाने खर्च से बचेगा। अपना खुद का घर एक दवाखाना होगा जहां सभी रोगों का इलाज हम खुद अपने हाथों से कर सकेंगे।**

सरोवर है मगर जल नही, तो कुछ नहीं, पैसा है मगर सुख नहीं तो कुछ नहीं।

फूल है मगर खुशबू नहीं तो-कुछ नहीं,

पुस्तक है मगर आरोग्य आपका नहीं तो-कुछ नहीं।

चिकित्सा है मगर स्वावलम्बी नहीं तो-कुछ नहीं, शरीर है मगर स्वस्थ नहीं तो-कुछ नहीं।

सौ. शकुन्तला जैन, डिस्ट्रिक्ट प्रेसीडेंट, लायन्स क्लब इन्टरनेशनल, बैतूल (म.प्र.)

* आरोग्य ज्ञान पुस्तिका माननीय डॉ चंचलमल चोरडिया जोधपुर का मनुष्य जीवन के लिये सर्वोत्तम, अनुपम, अमूल्य उपहार है जो प्रकृति पदार्थो में तुष्टिगुण का सृजन करवाता है एवं स्वतः ज्ञान, ध्यान एवं आराधना का प्रतीक है तथा सम्पूर्ण रोगो से रोगी को रहित करना इस पुस्तक का मूल उद्देश्य है। आत्मा को परमात्मा से जोड़ने वाली यह अमोद्य पुस्तिका अति दुर्लभ है, जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र एवं तप की संयम साधना में चार चांद लगाने वाली अनुभव सिद्ध है। यह पुस्तिका एक मृत संजीवनी अमरोली भी है, जो जरा, रोग, एवं मृत्यु पर विजय पाने में भी सक्षम है। यह मनुष्य के लिये शारीरिक एवं मानसिक तथा आध्यात्मिक स्वास्थ्य के लिये श्रेष्ठ है। इस पुस्तिका से जन कल्याणार्थ हेतु मनुष्य जीवन में नई जागृति का संचार होगा।

मोहनलाल जाट (बी.ए.), **पु.पो. आसावरा, तह. भदेसर, जि. चित्तौड़गढ (राज.)**

* आरोग्य आपका अपने आप में एक ऐसी पुस्तक है जो आम व्यक्ति की अवधारणा को झाकझोर देती है। यह पुस्तक चिकित्सा के क्षेत्र में तहलका मचाने वाली अनुपम भेंट हैं जिसने **Doctors** को भी अचम्भित कर दिया है। आरोग्य आपका पुस्तक आज के समय की महती आवश्यकता को पूरा करती है। इस पुस्तक से हर परिवार को लाभ उठाना चाहिये। आम व्यक्तियों के साथ साथ अहिंसा प्रेमियों तथा विशेष रूप से साधु साध्वियों के लिए भी यह ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी है।

इस पुस्तक द्वारा आपने गरीब को भी अमीर बना दिया, क्योंकि Health is wealth अर्थात् स्वास्थ्य ही धन है। इस पुस्तक को पढकर रोगी भी अपना इलाज स्वयं डाक्टर बनकर कर सकता है।

इसके शब्दों में सागर की गहराई है, इसके पृष्ठों में समाधान की चतुराई है

बहुत कुछ Suspense है आरोग्य पुस्तक में, इसके Question में आकाश की ऊंचाई है।

जम्बू कुमार कांकरिया, गिरधर नगर, शाही बाग, अहमदाबाद (गुजरात)

सुबह के धूप जैसा – आरोग्य आपका, चाँद के रूप जैसा – आरोग्य आपका।
भटके को राह दिखाने वाला आरोग्य आपका, डूबते को उनके का सहारा आरोग्य आपका॥

अनुप चंद, हिडोन सिटी (राज.)

* स्वर्ग भले ही आसमान में हो पर उसका सुकून आरोग्य आपका पुस्तक में है। छोटा सा समाधान बड़े से बड़े रोगों को समाप्त कर देता है और अपने छोटे से घर को स्वर्ग बना देता है। **आरोग्य आपका में आपने जो दिया वह हमारे भाग्य से भी अधिक दिया है। पुस्तक तो एक दी है लेकिन उपचार हजारों दिये है। हमने अनुभव किया है कि आरोग्य आपका पुस्तक अक्षय घट है जिसमें से जब भी चाहों जितना चाहों ले लों। यह तो कभी खाली होती ही नही है।** **श्रीमती सुखमाल कोठारी** (M.A.B.Ed.) **आजाद नगर भीलवाडा (राज.)**

* आरोग्य आपका स्वाध्याय, स्वास्थ्य एवं स्वावलम्बी अहिंसक जीवन शैली का मार्गदर्शन करती है, जिसमें लेखक ने अपने विशुद्ध शाकाहार, संयमनिष्ठ जीवन के अर्जित ज्ञान एवं अनुभवों को विभिन्न स्वावलम्बी, मौलिक चिकित्सा पद्धतियों द्वारा महत्ता भर दी है। इसमें मनुष्य के स्वास्थ्य के साथ अध्यात्म, मनोविज्ञान और आधुनिक जीवन शैली को दृष्टि में रखकर शारीरिक रोगों के कारणों एवं उपचारों का व्यावहारिक प्रयास है। संक्षेप में कहा जाये तो आरोग्य आपका पुस्तक चिकित्सा के क्षेत्र में एक दस्तावेज के रूप में पहचानी जायेगी।

ऋषभ कुमार जैन (M.A., B.Ed.) जरखोदा, वाया - देई, जिला बून्दी (राज.)

* आरोग्य आपका पुस्तक में सर्वत्र मौलिकता, आध्यात्मिकता एवं तर्कसंगतता छाई हुई है। आरोग्य आपका पुस्तक गागर में सागर नहीं वरन् बिन्दु में सिन्धु है। आज के परिप्रेक्ष्य में जहां नई चिकित्सा पद्धतियां एवं नई दवाइयां बढ रही है और प्रत्येक व्यक्ति उनके चक्कर में पड़ कर भ्रमित हो रहा है, वहां यह पुस्तक आरोग्य आपका वरदान साबित हुई है।

सुश्री समता बांठिया (M.A.) सदर बाजार, मसूदा (अजमेर)

* विज्ञान ने तो कम्प्युटर की रचना की है लेकिन प्रकृति ने कम्प्युटर जैसा आपके दिमाग में बनाया है वैसा प्रभु एवं प्रकृति से प्रार्थना करते है कि हमारे दिमाग में बनावे ताकि सर्व सृष्टि का कल्याण करने में सहयोग दे सकें। आरोग्य आपका में जो भाव दर्शाये गये हैं वह घर बैठे ही बिना पैसे का इलाज कर सुखी जीवन जी सकते हैं। इसमें गरीब व साधारण व्यक्तियों के हितों की अधिक रक्षा की गयी है। आपने जो 500 प्रश्नों को हल करने की जो योजना बनाई उसका मकसद यह है कि 360 पेज की किताब को कम से कम अनेक बार पढ़ा जाये, क्योंकि पढने पर ही ये सभी प्रश्न हल हो सकते हैं तथा ये 500 प्रश्न मौखिक याद करना आवश्यक हो जाता है। जब ही ये प्रश्न हल हो सकते हैं।

सुश्री रंजना बोहरा, (M.A.) मु.पो. आरनी वाया राशमी जिला चित्तौडगढ

* आपने इस पुस्तक के रूप में हमारे घर में एक तरह का वैद्य, डॉ कुशल चिकित्सक ही हमारे यहा भिजवा दिया है। इलाज के लिये जो साधन इसमें लिखे हैं वह हर घर में उपलब्ध हो जाते हैं। स्वयं का इलाज स्वयं करने की स्वावलम्बी पद्धतियां व अहिंसक तरिका अपनाने की प्रबलतम प्रेरणा हमें मिली व एलोपैथिक दवाईयों से छुटकारा मिला।

संजय कुमार सोनावत (B.Com.) दस्साणियों का चौक, बीकानेर (राज.)

रोग रोग तूँ क्या करे, रोग के हाथ न पाँव,
अब आने से वो सोचेगा, नहीं कोई उसके साथ,
क्योंकि अब हर कोई कर रहा आरोग्य आपका की बात।

मृदुला कुम्भट (M.A., B.Ed.) शास्त्रीनगर, जोधपुर

* इस पुस्तक में मौलिक, भौतिक, वैज्ञानिक आध्यात्मिक इत्यादि समस्त विचारधाराओं का बहुत अच्छा समन्वय किया है। इस पुस्तक को आत्मसात करने वाला एक डाक्टर से कम नहीं हो सकता है।

सुमतिचन्द मेहता (M.Com.) गजराज नेमीचन्द जैन, पीपाड शहर (राज.)

* आरोग्य आपका Book एक Lift है, जो रोगों को देती Shift है। आप माने या न माने यह तो हमारे जीवन के लिये एक Gift है। शारीरिक और व्यक्तिगत रूप से प्रेरणा देने वाली ये शिक्षाप्रद आरोग्य आपका जनमानस का हार बनकर हर वक्त हमारे साथ गुरु शुभ चिंतक, मित्र तथा वैद्य आदि बनकर हमारा मार्गदर्शन करती रहेगी।

मोनिका डोगी, (M.Com.) ओसवाली मौहल्ला, मदनगंज किशनगढ़

स्वावलम्बी चिकित्सा प्रणाली, डाक्टरों के लिए चुनौती है।
अचूक इलाज रूप में प्रस्तुत, कतिपय, हीरे, माणक मोती है॥

* आरोग्य आपका पुस्तक हर घर में रखने व तदनुसार उपहार देने योग्य पुस्तक हैं।

राखी आनंदकुमारजी बलई, मु.पो. कलंब, जि. उस्मानाबाद

* आपके द्वारा प्रतिपादित आरोग्य आपका पढने को मुझे मिला जिसमें प्राणी मात्र के लिये स्वास्थ्य से संबंधित व आध्यात्मिक उत्थान के लिये अकूट खजाना भरा पड़ा है।

शिवचरन शर्मा प्रधानाध्यापक, श्री वर्द्धमान जैन उच्च प्राथमिक विद्यालय, महामंदिर, जोधपुर

* यह शास्त्र हर परिवार के लिये अमृत कलश है। आरोग्य की कामना रखने वालों का अक्षय निधि है। जिस तरह हीरे में कोहिनूर, [illegible] कमल, प्रकाश में सूर्य, और शुभ्रज्योत्स्ना में चंद्रमा अद्वितीय माने जाते है उसी तरह आरोग्य शास्त्र में यह पुस्तक निसंदेह अद्वितीय है।

बाफना कल्याणमल (साहित्यरत्न), शांति चौक, भोपालगढ (राज.)

* आरोग्य आपका पुस्तक राज्य एवं केन्द्र के स्वास्थ्य विभाग में प्रचार हेतु जानी चाहिये। यह पुस्तक गांधीजी के सत्य पथ का प्रयोग जैसी है।

Dinesh Chandra (Production Manager), Modern Insulators, Abu Road

* रंक से राजा तक, राहगीर से राष्ट्रपति तक रोगों से राहत के रास्तों को रेखांकित करता है आरोग्य आपका। आजीवन अंग अंग से आत्मा तक, आरोग्य पर आक्रमण रोकने अहिंसात्मक अस्त्र और असाध्य अभिशप्त अस्वस्थता को अवरुद्ध करने, आंगन से आकाश

तक आवंटित औषधियों का अनुभव आधारित अक्षय अमृत कलश आरोग्य आपका। पुस्तक में आचरण की अशुद्धता में अवरोध और आध्यात्म को अंगीकार कर आराध्य बनने की ओर आकृष्ट किया है जो आधुनिक युग की आवश्यकता है।

तेजकरण जैन (विधि स्नातक) , जि. राजनांदगांव (छ.ग.)

* आरोग्य आपका पुस्तक स्वास्थ्य के लिये अनमोल ग्रन्थ है। प्रत्येक स्वास्थ्य प्रेमी को यह पुस्तक अवश्य पढनी चाहिये तथा इसका अधिक से अधिक प्रचार प्रसार होना चाहिये। पूनम जैन, पणजी, (गोवा)

* आरोग्य आपका शरीर ,मन, और आत्मा के विकारों को दूर करने वाली श्रेष्ठतम पुस्तक है जिससे न केवल व्यक्ति स्वस्थ ही होता है अपितु नर से नारायण बन सकता है। सरिता जैन, गांधी नगर, जम्मू कश्मीर

* आरोग्य आपका पुस्तक का एक एक शब्द , वाक्य उद्धरण , दृष्टान्त सभी कुछ अनुभवों के ताप से तप कर परिक्षण की कडी से गुजरकर उद्घाटित हुये हैं। पुस्तक 360 पृष्ठों का संकलन नहीं अपितु रोग मुक्त हो सहज जीवन जीने की कला बतलाने वाली है। जिसकी अनुभूति पुस्तक के संपर्क में आने मात्र से होती है। प्रस्तुत पुस्तक में महावीर का चिन्तन स्वास्थ्य अध्ययन तो विरला ही है जिसके द्वारा यह लोक नहीं अपना परलोक भी सुधर जाता है। पुस्तक के अध्ययन मात्र से मैंने पैरों का संतुलन व नाभि का संतुलन सीखा और अपने विद्यालय में उसका प्रयोग भी किया। अध्यापिका के रूप में, इस पुस्तक का प्रचार प्रसार करके मैं रोग ग्रस्त समाज की सेवा का प्रयास करूंगी। श्रीमती अलका गहलोत (M.Com., B.Ed.) , महामंदिर पुलिस स्टेशन के पीछे, जोधपुर

* आरोग्य आपका पुस्तक मानों स्वास्थ्य की दुनिया का ताजमहल है । ताजमहल जगत में एक ही है और वह उसके ही समान है । उस जैसी कोई वस्तु नहीं,जिससे उसे उपमित किया जा सके। यही बात आरोग्य आपका पुस्तक के संबंध में है। अनुभव इस पुस्तक का सही प्रमाण है। Kamalini Bokariya (B.A. , LL.B.) BEED (Mah.)

* यह पुस्तक देश के हर घर मे होनी चाहिए और प्रत्येक परिवार को इस पुस्तक से लाभ उठाना चाहिये। यह पुस्तक हमारे हाथों में सौंप कर लेखक ने बड़ा परोपकारी कार्य किया है। Adv. Deepak S. Jain (LL.B. , M.B.A.) Buldhana (Mah.)

* स्वस्थ रहना सहज और सरल है को चरितार्थ करने वाली अहिंसात्मक चिकित्सा पद्धतियों पर यह एक खोजपूर्ण और मौलिक पुस्तक है। स्वावलंबी अहिंसात्मक चिकित्सा पद्धतियों की (खोज) शोध एवं प्रचार प्रसार में यह पुस्तक एक मील का पत्थर सिद्ध होगी और चिकित्सा के क्षेत्र में होने वाली हिंसा को रोकने में योगदान देगी। छोटे मोटे उपचारों में मुझे भी चमत्कारी परिणाम प्राप्त हुए हैं। एक बात मैं पूर्ण विश्वास के साथ कहना चाहती हूं कि एक लाख का पुरस्कार जिन भाग्यशालियों को मिले उन्हे बधाई, पर मुझे इस पुस्तक से जो आरोग्य और स्वस्थ जीवन बनाए रखने में योगदान प्राप्त हुआ है वह कई लाखों रुपयों से भी अधिक का है।

डॉ. सुशीला राय (Ph.D.) वैज्ञानिक रक्षा प्रयोगशाला w/o डॉ. रामगोपालजी. जोधपुर

* पुस्तक का अध्ययन करने के पश्चात इस बात की आवश्यकता महसूस होती है कि एक ऐसा योजनाबद्ध प्रयास किया जावे जिससे आरोग्य विज्ञान की जानकारी जन मानस तक पहुंचाई जावे। आज गांव गांव में प्राइवेट प्रेक्टिस डॉ. की तर्ज पर अहिंसक चिकित्सा पद्धति के डॉ.हों,जो अपना रोजगार भी चला सकें और अहिंसा एवं शाकाहार का प्रचार प्रसार भी कर सकें। विचार कठिन जरूर है परन्तु असंभव नहीं । हर समय हर बात संभव हो सकती है। आवश्यकता है प्रस्तुतीकरण के कला की। इस युग में पीतल को सोना समझा जा सकता है पत्थर की मूर्तियों को दूध पिलाया जा सकता है, फिर हमें तो सोने को सोना ही समझना है। पत्थरों की जगह जीवात्माओं को दूध नहीं अमृत पिलाना है। विजेश कुमार रजावत, डग, जि. झालावाड (राज)

* आरोग्य आपका ग्रन्थ ने स्वयं को ही स्वयं की जांच करने वाला डाक्टर बना दिया है। पुस्तक स्वस्थ जीवन जीने के लिये उत्साह की किरण है। विविध चिकित्साओं के मोतियों की पिरोई हुई माला है। स्वास्थ्य के बारे में अनेक उलझे प्रश्नों का समाधान है। वैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक पहलुओं की खोज है। स्वयं के शरीर से निरोगी रहस्यों को खोलने की चाबी है। निरोगी जीवन जीने की सर्वोच्च शैली का सूत्र है "आरोग्य आपका"। जो भविष्य में निरोगी स्वास्थ्य का बीमा करती है।

कु. रश्मी सुभाषचंदजी बोकाड़िया (D.Pharmacy) अमलनेर जि. जलगांव (महा.)

* बहुत लम्बे समय से अहिंसा प्रेमियों को एक ऐसी पुस्तक की आवश्यकता थी जिसमें अहिंसात्मक तरीके से जीवन जीते हुए अपने आपको पूर्ण स्वस्थ रखा जा सके,जिसकी पूर्ति चोरडिया जी ने बहुत ही सरल भाषा में अपने अनुभवों के आधार पर की।

अनिल जैन 'शाश्वी', इन्दौर

* आरोग्य आपका पुस्तक जादू की छड़ी जैसी है । यह किताब हमारे जैसे बालकों के लिये अंधेरे में रोशनी का कार्य करती है। मेरे पिताजी को मधुमेह का रोग था। ऐसे समय यह किताब हाथ लगी । उसमे बताये हुये इलाज चालू किये एक ही महीने में मधुमेह गायब हो गया। कु. विरती महेश कुमार वोरा, बुलिया (महा.)

* विविध आयामों में चिन्तन की डुबकियाँ लगाकर जो अनमोल मोतियों के खजाने के रूप में आरोग्य आपका जनता जनार्दन के स्वास्थ्य

सेवा हित समर्पित किया है, उसकी कोई होड़ नहीं है । उदाहरणार्थ - रोगी का उपचार चिकित्सालय की अपेक्षा भोजनालय में होना चाहिये "। "पाठशालाओं, कार्यालयों, कारखानों में स्वास्थ्य के अनुरूप भोजन के अनुकूल भोजनावकाश के निर्देश।"ऐसे विषय पर चिन्तन स्वास्थ्य के सजग प्रहरी ही कर सकते है ।

"आरोग्य आपका " आया है, नव-विहान वह लाया है।
जब तक जीओ हँसकर जीओ, यह संदेश सुनाया है ।। **श्रीमती चंदनबाला (M.A.) राजनांदगांव, (छ.ग.)**

* आरोग्य आपका पुस्तक में मस्तिष्क शोधन प्रक्रिया, सौर ऊर्जा का मानव कल्याण में योगदान, विभिन्न मुद्रायें , आसन, शिवाम्बु सेवन , यिन-यांग सिद्धान्त, महावीर का स्वास्थ्य दर्शन आदि अनेक ऐसी चिकित्सकीय क्रियायें हैं जो चिकित्सा के क्षेत्र में नया आयाम प्रस्तुत करेगी । **मंजु जैन, 43/72 चौक , कानपुर**

* "आरोग्य आपका" स्वास्थ्य के लिये एक संग्रहणीय ग्रंथ है । **यह पुस्तक मात्र पुस्तक नहीं कुबेर का खजाना है ।** यह ग्रंथ घर-घर में होना चाहिये । पुस्तक में लेखक ने छोटे से गागर में प्रशान्त महासागर भर दिया है ।

रोशनलाल कटारिया, (से.नि. प्रधानाध्यापक) , नीमच (म.प्र.)

* आरोग्य आपका बहुत ही रोचक एवं सरल भाषा में लिखी गई पुस्तक है । इस पुस्तक को स्कूलों के नियमित पाठ्यक्रम में शामिल करना चाहिए। विभिन्न क्षेत्रों के पुस्तकालयों में विशेषतया शैक्षणिक संस्थाओं में इसकी प्रति रहने से लोगों में स्वावलम्बी, अहिंसक चिकित्सा पद्धतियों के प्रति फैली भ्रांतियां दूर होगी और आत्म विश्वास बढ़ेगा ।

प्रदीप कुमार जोशी (Diploma in Civil Engg & AMIE), **जोधपुर**

* आरोग्य आपका शरीर, मन और आत्मा तीनों को स्वस्थ एवं संतुलित रखने का ज्ञान कराने वाली पुस्तक है । इस पुस्तक में बहुत सी ऐसी सरल चिकित्सा विधियां हैं, जिनका वर्णन मैं अपने शब्दों में जितना करूं उतना ही कम है । **मुझे इस पुस्तक के रूप में एक चिकित्सकीय परामर्श मिल रहा है ।** **गणेशलाल पगारिया (M.Com., B.Ed.), पलाना कलां (राज.)**

* *"आरोग्य आपका" पुस्तक मैंने पढ़ी । पढ़ने के बाद मुझे ऐसा लगा कि आज तक ऐसी पुस्तक न कभी पहले पढ़ी और न कभी पहले देखी,* जिसमें विभिन्न स्वावलंबी चिकित्सा पद्धतियों को इतनी अच्छी तरह से समझाकर बताया गया हैं कि बिना औषधि के भी असाध्य रोगों का उपचार प्रभावशाली ढंग से किया जा सकता है ।**श्रीमती संगीता ललवानी w/o राजेन्द्र ललवानी, स्नेह नगर, इन्दौर (म.प्र.)**

* इस पुस्तक ने मेरी अवधारणा को झकझोर दिया । पुस्तक पढ़ने से स्वास्थ्य के प्रति मेरी जागरूकता बढ़ी है । मेरा आत्म विश्वास बढ़ा है । हम स्वयं अपने रोगों का निदान कर सकते हैं । पुस्तक से मुझे यह मालुम हुआ कि **बिना दवा के हरप रोग, मधुमेह रोग,** तथा जैसे **रोगों का भी उपचार हो सकता है जो कि अत्यन्त आश्चर्यजनक बात है ।** मैं इस निर्णय पर पहुंची हूं कि स्वावलम्बी चिकित्सा पद्धतियों द्वारा रोगों का निदान अधिक सही एवं उपचार अधिक प्रभावशाली होता है । **—पायल डागा (B.Com. (H), Islampur (W.B.)**

* आरोग्य आपका पढ़कर मुझे ऐसा लगा कि हमने इतने दिनों तक आधुनिक विज्ञान और उसके चमत्कार की पट्टी अपनी आंखों पर बांध रखी थी, लेकिन मौलिक एवं स्वावलम्बी चिकित्सा के बारे में पढ़कर हमारी आंखें खुल गयी । शरीर, मन एवं आत्मा को स्वस्थ एवं निरोगी रखने की पुस्तक में चर्चित प्रभावशाली विधियां पूर्णतः वैज्ञानिक है । **श्रीमती मनीषा अनिल जैन, बुरहानपुर (म.प्र.)**

* इस प्रतियोगी परीक्षा में, मैं कहां तक सफल रहती हूं, यह तो मुझे पता नहीं, परन्तु पुस्तक द्वारा अर्जित ज्ञान मुझे लाख रूपयों से भी कई ज्यादा लग रहा है । **किरण अशोक छाजेड (बी.एस.सी., एम.ए.) आकुर्डी, पुणे**

* आरोग्य आपका ग्रंथ का पत्रा-पत्रा अमृत है । जिंदगी की सरगम को स्वर देता है **आरोग्य आपका ।** जीवन जीने की विधि सिखाता है **आरोग्य आपका ।** जीवन की जलती रेगिस्तानी यात्रा में यह किताब एक **Sincere** दोस्त का कार्य करती है ।

कु. कोमल जयंतकुमारजी भंडारी, टिडोरी , नासिक (महा.)

* आज जीवन विभिन्न रोगों का महासागर बन गया है । ऐसे में आधि-व्याधि से ग्रस्त रोगियों को समाधि दिलाने में **आरोग्य आपका** नामक पुस्तक एक रामबाण औषध का कार्य करती है । **दिलीप लोढ़ा (B.Sc.), सिकन्दराबाद**

* पुस्तक की एक - एक लाईन हम पढ़ते हैं तो ऐसा लगता है जैसे हमे सच्चा डाक्टर मिल गया । **यह पुस्तक एक अनमोल खजाना है ।** [illegible] अत्यधिक सरल, आकर्षक, सचित्र के साथ रूचिकर भी है । **इस पुस्तक के बारे में जितना लिखों कम ही है ।**

श्रीमती अरुणा चोरडिया, महासमुन्द (छ.ग.)

* जैसे कल्प वृक्ष से मधुर फल मिलते हैं उसी तरह कल्प वृक्ष के रूप में आरोग्य आपका और उनके फलों के रूप में स्वास्थ्य साधना का ज्ञान प्राप्त हुआ है । हमारे स्वास्थ्य को कैसे मुठी में बन्ध कर रखना, यही आपकी यह पुस्तक हमें सिखाती है ।

P. Lalitha Chopra, Koppal (K.T.)